सुरुचिपूर्ण, रोचक, श्रेष्ठ, संग्रहणीय उपन्यास

अमरनाथ सहगोला
थानेदार (पुरस्कृत) ५.५०
अमृता प्रीतम — अशु ३.००
अश्क — भोर की किरणें २.२५
अक्षयकुमार जैन
पुनपुण्य राम (पुरस्कृत सचित्र) ५.००
डा० कृष्णमूर्ति
चोर की प्रेमिका (सचित्र) ४.५०
भास्कर बारहठ — सौन्दर्य की रेखाएं ५.०
कमलता सबरवाल
पुनरवार ३
कत्थांग
इन्सानियत फिर भी जीवित है ३
कृष्णमोहन राजवंशी
बीते दिन (सचित्र) ४.०
गोविन्दवल्लभ पंत
जल-समाधि (पुरस्कृत) ४.००
पर्गा (पुरस्कृत) ४
मदन ६.५
तारों के सपने ६.५
फॉरगेट-मी-नॉट (पुरस्कृत) ४
चतुरसेन शास्त्री — अपराजिता २
डोरिस मैनवल — पाप की गली ६.०
लक्ष्मी शिवशंकर मिश्र
वो मर जाय ६.०
फुलेली (सचित्र) २.५०
गुरुदत्त — कमीन घराना ३.०
बाप-बेटे ३.५
दयाशंकर मिश्र — बुझने दीप ३.०
देवदूत विद्यार्थी
चांद बैन (सचित्र) ३.०
देवीदयाल जैन — मानव की परख ३
देवीशरण — पंचमिनी (सचित्र) ४
नरेश मेहता
रवन मम्भून (पुरस्कृत) ४.५

पांडेय बेचन शर्मा उग्र — शराबी ३.५
जी-जी-जी ३.०
पृथ्वीनाथ शर्मा — विदुर ३.०
बच्चा — बर्बर हुसैन ६.०
बसन्त प्रभा
अधूरी तस्वीर (पुरस्कृत) ३.०
मारजोरी किनन रौलिंग्स — हमराही २
मोहन चोपड़ा — नींद के साये
यज्ञदत्त शर्मा — इन्सान (पुरस्कृत) ४.५
यमुनादत्त वैष्णव अशोक — दीनबन्धु ३.०
यादवचन्द्र शर्मा चन्द्र — धरती की पीर ४.०
रजनी पनिकर
काली लड़की (पुरस्कृत) ३
राजाराम शास्त्री — प्यार और पैसा ३
रामकृष्ण — बढ़ते कदम २.९
रामावतार त्यागी — समाधान २
रांगेय राघव — मौसी की मीठे २.५
लक्ष्मण त्रिपाठी — बारकणामा २
विजयकुमार पुजारी — आत्मदान ३
विष्णु प्रभाकर — निशिकान्त ६.५
शैलेश मटियानी — बधुतरखामा ३
बोरीवली से बोरी बन्दर तक ३.५
हौलदार ६.०
किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई २.२
चिट्ठीरसैन ४.५
शिवसागर मिश्र — राजतिलक ५.५
डूब मरम पानी (पुरस्कृत) ४.०
पत्ते फिर पड़े ४.०
सन्तोष नौटियाल — बीस दिन ६.५
हरिजन ४
सीताचरण दीक्षित — हृदय मंथन ५
हंसराज 'रहबर' — पर्दे-आजम ३.५
हरमन हेस — सिद्धार्थ ३
शैलम्बा चोल
पेड़ों की ओट में (पुरस्कृत) ४.५

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली

वैशाली की दत्तक पुत्री



शिवकुमार कौशिक

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

VAISHALI KI DATTAK PUTRI

(A historical novel)

By

Shiv Kumar Kaushik

Rs. 6.50

प्रकाशक
रामलाल पुरी संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट दिल्ली
हौज खास नई दिल्ली
चौड़ा रास्ता जयपुर
माई हीरा गेट जालन्धर
बेगमपुल रोड मेरठ
विश्वविद्यालय क्षेत्र चण्डीगढ़

मूल्य ६ रुपए ५०
प्रथम संस्करण १९६१

मुद्रक
एवरेस्ट प्रेस [illegible]
४ चमेलियान रोड दिल्ली ६

स्वर्गीय पिता जी

और

स्वर्गीया चाची (माँ)

को

पृष्ठभूमि

वास्तव में यह एक संयोग की ही बात हुई। और, संस्कारों का इसमें—क्या कुछ—कितना प्रभाव है फिलहाल उसकी चर्चा एकदम निरर्थक है। कारण? सम्भवतः आप विश्वास न करें। पर, वे अनेक हैं, यह मैं आपसे केवल यूँ ही बहकाने भर के लिए नहीं कह रहा। आशा है आप इतना विश्वास तो कर ही लेंगे।

यदि मैं आपसे यह कहूँ कि इसी जन्म में मेरे दो जन्म हो चुके हैं तो आप इस पर मुझे विस्फारित दृष्टि से तो देखेंगे ही, संभव है विश्वास न कर हँस भी दें। और संभवतः पूछने लगें—'अच्छा इसका कोई प्रमाण?' तो फिर, क्या मैं आपको साफ-साफ बता ही दूँ? एक दिन मैं भी इसी प्रमाण शब्द विशेष से आकर्षित हुआ था और अनुभूति एवं आत्मविश्वास की उपेक्षा कर केवल उसी को पाने का लोभ संवरण नहीं कर पाया था। वास्तव में उसे पाने के लिए सतत प्रयत्नशील हो उठा था। यूँ कहो भी कि उसके पीछे दीवाना हो गया था किन्तु हाथ पल्ले कुछ नहीं पड़ा। और, जब कुछ-कुछ सूत्र हाथ लगा भी तो तब वैशाली का सारा वैभव विनाश के कगार तक आ पहुँचा था। सो कैसे? यह मैं बाद में बताऊँगा। किसके कारण? हाँ यदि यह पूछो तो यह कुछ ठीक भी है। तो फिर बता ही दूँ? वह अपराधी स्वयं मैं ही हूँ। भला और कोई क्यों होता? अपना दोष किसी और के सिर मढ़ूँ मेरी यह आदत न तो पहले ही कभी रही और न आज ही है। आशा है मेरी इतनी सी बात तो आप मान ही लेंगे।

कदाचित् यही कारण रहा हो कि प्रस्तुत उपन्यास की पाण्डुलिपि तैयार होते समय और फिर उसके पश्चात् भी जब-जब वैशाली जाने का प्रश्न उठा मेरा मन गुदगुदा भी जाता और साथ ही एक टीस-सी से कराह भी उठता। गुदगुदा इसलिए जाता कि तब मैं देवी शिल्पा को जीवित छोड़ आया था और मेरा यह दृढ़ विश्वास बना आ रहा था कि वह इस समय भी जीवित ही होगी। अतः मैं उस सौम्यमुखी के दर्शन पा सकूँगा। परन्तु दूसरे ही क्षण मन में एक संकोच उठ खड़ा होता भला किस मुँह से उसके सामने जाऊँ? अतः इस सारी अवधि ही तो झिझक-सी बनी रही। संकोचवश अथवा आत्मग्लानि के कारण उधर पैर न उठ पाते और फिर न जाने क्या कुछ सोचते-सोचते एक घटना विशेष जैसे वह कल ही घटी हो नैनों के सम्मुख स्थिर हो उठती। तब उस घटना को सर्वथा सजीव रूप में अपनी दृष्टि में घटता देख मेरा मन बुरी तरह से कराह उठता। फिर भी पाण्डुलिपि को पढ़ने वाले कुछ उदार-हृदय मित्रों ने अंततः उधर की ओर जाने को मुझे, जैसे धकेल ही तो दिया।

और, एक दिन जब मैं संध्या बेला में अपने साथ कुछ परिचय-पत्र ले पटना स्टेशन पर उतरा तो वैसे मन सकोच की ठिठक और उत्साहोल्लास की स्फुरण का एक साथ ही तो अनुभव कर उठा।

हाँ तो मैं संयोग की बात कह रहा था।

प्रारम्भ में सोचा था कि यदि किसी दिन देवी छिप्या के दर्शन-लाभ की बात आ ही गई या फिर यूँ कहो कि सौभाग्य से यह सुयोग मिल सका तो फिर भला इस पाण्डुलिपि से श्रेयस्कर और क्या उपहार हो सकेगा जो उसकी सेवा में भेंट किए जाने योग्य हो। किन्तु साथ ही ध्यान हो आता—'इस कथानक में कुछ भी तो ऐसा नहीं जो उसे प्रभावित हो।' अतः मन पर बात कुछ जम-सी नहीं पा रही थी। पटना पहुँचते-पहुँचते तो जैसे यह दुविधा और प्रगाढ़ हो उठी। कुछ रात का जागरण और उधर ऊपर से पूरे चार प्रहर की यात्रा की थकान इधर मन पर छाया हुआ यह दुविधा भार। स्टेशन से निकल रिक्शे में बैठ जब मैं शहर की ओर बढ़ा तो अंतश्चेतना को निद्रा से बोझिल पाया। नेत्रों के लिए बहुत कुछ नया था फिर भी मन की यह गुत्थी अपने में अधिकाधिक उलझती ही रही—कि सहसा सम्मुख दिशा से आते एक रिक्शे पर दृष्टि जा टिकी। रिक्शा ठीक सामने आकर बाजू से भी निकल गया किन्तु उसके बाद भी दृष्टि मुड़कर उधर ही की ओर देखती रही—एक गौर वर्णा सौम्य मुखी ने अपनी सघन श्यामल केश राशि के दूधे जूड़े पर श्वेत कमल-पुष्प अटका रखा था। इस नयनाभिराम दृश्य को देख मेरे मुख से मानों हठात् निकल गया— "अजी किराए के पैसे वसूल हो गए।" परन्तु, तुरन्त देवी छिप्या का ध्यान आते ही मैं उस अज्ञात यौवना के प्रति श्रद्धातिरेक से नत मस्तक हो हर्षोल्लास से उमगता कह उठा—"देवी तेरे इस रूप को देख मैं तो आज सचमुच धन्य हो गया हूँ। पाटलिग्राम के इस भू पार-संस्कार का जीवित रख तूने निस्संदेह स्तुत्य कार्य किया है।"

और फिर मेरे नेत्रों के सम्मुख सहसा ही तो कोई ढाई हजार वर्ष पूर्व का वह ग्राम स्थिर-मन सरोवर अपने पूरे आकार-प्रकार के साथ फैल-सा गया, जो यहीं कहीं सदा विभिन्न रंगों के कमल-पुष्पों से आच्छादित रहता था। भगवान तथागत अपने भिक्षु संघ के साथ जब कभी वैशाली की ओर से राजगृह को अथवा राजगृह से वैशाली की ओर जाते तो वह उस सरोवर के पास अवश्य ठहरा करते। कभी-कभी तो वह यहाँ कई दिनों तक ठहरे रह सरोवर में खिले नीले रक्तिम और श्वेत कमलों की मनोहारी छटा को निहारा करते। मगधराज बिम्बसार को जब उनकी इस रुचि का पता चला तो उन्होंने अपने इस आराध्य देव के लिए वहीं सरोवर के निकट एक विहार बनवा दिया था ताकि भगवान को कोई कष्ट न हो। यूँ महात्मा बुद्ध के अनेक श्रद्धालु राजा सामन्त एवं श्रेष्ठी-जनों ने उनके लिए न जाने कहाँ-कहाँ विहार बनवाये थे परन्तु इस विहार का अपना एक विशेष महत्त्व था। इसी विहार से कुछ दूर पर ही तो अर्थात् गंगा के उस पार वज्जिसंघ की सीमा प्रारम्भ हो जाती थी। और, इस ओर मगध राज्य था ही। वज्जि संघ यदि गणराज्यात्मक शासन प्रणाली का जाज्वल्यमान प्रतीक था तो मगध राज्य एक सत्तात्मक शासन पद्धति का। अंग-विजय के बाद मगध राज्य ने जिस संघ को भी अपने में मिला साम्राज्य विस्तार की बात सोची केवल सोची ही

नहीं वरन् इस उद्देश्य से कई बार आक्रमण भी किए, परन्तु वे सभी विफल सिद्ध हुए। और, अंतत: राजा बिम्बसार को वज्जि संघ के साथ संधि कर लेनी पड़ी। वैशाली इसी वज्जि संघ की राजधानी थी और तब मगध राज्य की राजधानी थी कच्छहार सदृश पर्वतीय शृंखला की गोद में बसी राजगृह नगरी।

इन दोनों ही नगरियों का अस्तित्व अति प्राचीन था और इनकी गणना उस समय के अन्य कतिपय प्रमुख नगरों जैसे—कौशाम्बी उज्जैन श्रावस्ती वाराणसी एवं तक्षशिला आदि-आदि के साथ की जाती थी। अंग राज्य के विजित हो जाने के पश्चात् उसकी राजधानी चम्पा का वैभवपूर्ण प्रभाव कुछ-कुछ क्षीण हो चला था पर शेष सभी नगरियां मानों अपने चरमोत्कर्ष पर थीं। कौशाम्बी वत्स राज्य की राजधानी थी और वहां राजा उदयन राज किया करता था। उदयन का वीणा वादन उसे प्रिय था परन्तु वत्स प्रदेश में स्वच्छन्द विचरण करते हाथियों को पकड़ने में उसकी विशेष रुचि थी। एक प्रकार से यही उसका मुख्य आखेट भी था। उज्जयिनी के राजा चण्ड प्रद्योत से उसकी शत्रुता उससे चण्ड प्रद्योत की ओर शत्रुता थी। एक बार चण्ड प्रद्योत ने उसे पकड़ने के लिए एक बड़ी ही षड्यन्त्रपूर्ण चाल चली। उसने अपने सीमान्त पर जो वत्सराज उदयन की सीमा से ही लगती थी एक काष्ठ निर्मित हाथी भेजा और उसके अन्दर अपने कुछ सैनिकों को बैठा दिया। उधर निकट ही में वृक्षों-आदि की ओट में अन्य सैनिकों को भी छिपा दिया। अपने राज्य की सीमा पर एक नए हाथी के आने का समाचार सुनते ही राजा उदयन उसका आखेट करने चल पड़ा। जो सैनिक हाथी के अन्दर बैठे थे उन्होंने राजा उदयन को आता देख उसे तीव्र गति से दौड़ाना शुरू कर दिया और अंतत: उसे चण्ड प्रद्योत की सीमा में ले आए। उदयन भी वीणा की झंकारों पर झूमता हुआ उसके पीछे-पीछे दौड़ता रहा और, इस प्रकार वह छिपे सैनिकों से घिर गया।

सैनिक उसे पकड़ उज्जयिनी ले आए।

यह तो आप जानते ही हैं उन दिनों सैन्य बल में हाथियों का विशेष महत्त्व होता था। एक राजा की सेना में जितने हाथी होते उतने ही परिमाण में उसकी शत्रु सेना पर शक्ति सम्पन्नता की धाक हुआ करती। यदि किसी को स्वप्न में भी हाथी दीख जाता तो उसे एक शुभ लक्षण माना जाता। महात्मा बुद्ध की माता माया देवी जब गर्भवती थीं तो कहते हैं उन्होंने स्वप्न में एक हाथी ही देखा था। ठीक वैसी ही बात जैनियों के चौबीसवें तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर की माता देवी त्रिशला के सम्बन्ध में भी कही जाती है।

हां तो राजा उदयन को जब बंदी रूप में राजा चण्ड प्रद्योत के सम्मुख प्रस्तुत किया गया तो राजा चण्ड बोला—"यदि तुम मुझे हाथी पकड़ने का मन्त्र सिखा दो तो मैं तुम्हें मुक्त कर दूंगा।"

"अन्यथा क्या?" उदयन ने बंदी दशा में भी वैसे समर्थ पूछा।

चण्ड प्रद्योत ने उसके मुख पर इस दशा में भी मद का भाव छाए हुए देख क्रोध से अपनी भवें तान कहा—"अन्यथा क्या तुम्हें यहीं मरवा दिया जाएगा।

उदयन जितना पराक्रमी था उतना ही नीति कुशल भी। इस पर उसने कहा—

"राजन् मैं अवश्य ही मन्त्र सिखा सकता हूँ पर उसके लिए तुम्हें पहले मुझे गुरु रूप में मान मेरे सम्मुख एक शिष्य की भाँति प्रणाम करना होगा।

तब अधिकांश लोगों का ऐसा विश्वास था कि राजा उदयन वीणा की झंकारों से हाथियों को वश में करता है परन्तु चण्ड प्रद्योत की धारणा थी कि वह अवश्य ही कोई चमत्कारिक मन्त्र जानता है। अतः वह उसे जानने के लिए आतुर था। परन्तु साथ ही वह स्वभाव से अभिमानी और क्रोधी था अतः उसने उदयन का प्रस्ताव स्वीकार करने में अपनी हेठी समझी। कहा जाता है अत्यधिक क्रोधी होने के कारण ही उसका नाम चण्ड साथ जुड़ गया था। परन्तु इस समय उसने भी विशेष आवेश नहीं दिखाया। कारण वह उदयन की हत्या कर मन्त्र को खोना नहीं चाहता था। अतः उसने उदयन से कहा—"अच्छा यदि तुम मेरी इच्छा से किसी अन्य व्यक्ति को भी यह मन्त्र सिखा दोगे तो मैं तुम्हें मुक्त कर दूंगा।

उदयन ने यह सहर्ष स्वीकार कर लिया।

चण्ड प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता बड़ी निपुण थी। अतः पिता ने अपनी पुत्री को ही उपयुक्त समझ उसे इस विद्या के लिए चुना। परन्तु, उसके सम्मुख इस सम्बन्ध में भी कैसे एक दुविधा थी। वह अपनी पुत्री का उदयन के सम्पर्क में नहीं आने देना चाहता था। अतः उसने उदयन से कहा—"मेरी एक कुबड़ी दासी है वह तुम्हें प्रणाम कर मंत्र सीखेगी। उधर, उसने अपनी पुत्री वासवदत्ता से कहा—"एक कोढ़ी व्यक्ति हाथी को पकड़ने का मन्त्र जानता है तुम उससे वह मंत्र सीख लो।"

और फिर राजा ने दोनों के मध्य एक प र दा बनवा दिया।

एक दिन क्या हुआ वासवदत्ता मन्त्र के कुछ अक्षरों का ठीक से उच्चारण करने में कुछ चूक-सी गई। इस पर उदयन क्रोधित हो बोला—"अरी ऐ कुबड़ी क्या तेरे होठ मोटे हैं।" तब तो वासवदत्ता को भी क्रोध आए बिना न रहा। वह भी उत्तर में तावैस कह उठी—"अरे ओ कोढ़ी क्या तू एक राज कन्या को कुबड़ी कहता है?

उदयन की समझ में नहीं आया कि आखिर यह मामला क्या है। उसने परदा उठाकर ऊपर झाँका तो जैसे रहस्योद्घाटन हो गया केवल रहस्योद्घाटन ही नहीं बल्कि वे एक दूसरे पर आसक्त भी हो गए।

वैशालिकों ने जब इस प्रसंग को सुना तो वे खूब हँसे खूब हँसे। वास्तव में व अत्यन्त विनोदी स्वभाव के थे और आमोद-प्रमोद प्रिय भी। परन्तु इस घटना विशेष के संदर्भ में मैं जो बात कहने लगा था वह तो अभी रह ही गई। एक दिन प्रणय-व्यसन उदयन और वासवदत्ता ने अवन्ती से भाग जाने का षड्यन्त्र रचा। तत्पश्चात वासव दत्ता ने अपने पिता से यह कहकर भद्रवती नाम की हथिनी मंगवा ली कि शुभ मुहूर्त में मंत्र सिद्धि के लिए एक औषधि लानी है। और जब प्रद्योत उद्यान क्रीड़ा के लिए चला गया तो वासवदत्ता और उदयन दोनों ही अवसर पा भद्रवती हथिनी पर सवार हो उज्जयिनी से कौशाम्बी के लिए भाग निकले। उदयन यू हाथी चलाने में अत्यन्त कुशल था फिर भी पीछे से भेजे गये अश्वारोही सैनिकों ने उन्हें घेर ही लिया। किन्तु वासवदत्ता भी कोई कम चतुर नहीं थी। उसने भी इसका उपाय पहले ही से विचार लिया था। वह अपने पिता के कोष से स्वर्ण मुद्राएँ लेती आई थी। उसने वे स्वर्ण

मुद्राएं मार्ग पर बिखेर दीं। और सैनिक जब उन्हें बीनने में व्यस्त हो गए तो उसने रस्सियां भी और ढीली कर हथिनी को और तेज भगाने को कहा। इस प्रकार वह सारे रास्ते मुद्राएं बिखेरती गई और सैनिक उन्हें व्यस्त भाव से बटोरते रहे।

यह तुम जानते हो वैशालिकों ने क्या कहा था? वे बोले—"राजा ने अपने वेतन भोगी सैनिकों को जिस काम से भेजा था, स्वर्ण मुद्राओं के लोभ में उसकी उन्हें चिन्ता ही नहीं रही।" वास्तव में वैशालिकों का यह कहना अक्षरशः उचित ही था क्योंकि उनके यहाँ की रक्षा व्यवस्था सर्वथा भिन्न थी। उनके यहाँ कोई भी तो वेतन भोगी सैनिक नहीं था। वे तो निष्ठाभाव से अपने गणराज्य की स्वेच्छया रक्षा करते थे। उन्होंने महानगरी वैशाली के चारों ओर ऊँची और मोटी तिहरी प्राचीर बनाई हुई थी जिन पर खड़े हो सभी नागरिक बारी-बारी से पहरा देते थे। हाँ आन्तरिक व्यवस्था के लिए गणपुरुष अवश्य नियुक्त थे। परन्तु बाहर की ओर से जब कभी कोई संकट या बाधा होता तो सभी अस्त्रशस्त्र से सज्जित हो उसका सामना करने के लिए दल के दल बनाकर निकल पड़ते। उनकी सारी शक्ति इस एकता ही में थी। यही कारण है कि चारों ओर साम्राज्य लिप्सु राजाओं से घिरे रहने के बावजूद इन एकमात्र गणराज्य का अस्तित्व शेष रह सका था।

यूं, इसी के पास मल्लों का भी एक गणराज्य था परन्तु वह इतना शक्तिशाली नहीं था। एक प्रकार से वैशाली गणराज्य ही उसकी रक्षा प्राचीर बना हुआ था। वैसे भी वैशाली के लिच्छवियों और पावा एवं कुशीनारा के मल्लों में परस्पर बन्धु-बान्धव का सम्बन्ध था। एक-दूसरे के प्रति उनमें परस्पर स्नेह था। वे एक-दूसरे के उत्सवों में न केवल समान उत्साह से सम्मिलित होते वरन् संकट के समय कन्धे से कन्धा मिलाकर उसका सामना भी करते। यूं कभी-कभी उन में भी परस्पर कोई विवाद हो जाता। परन्तु, उसका प्रभाव कोई विशेष स्थायी रूप का न होता। इसी सन्दर्भ में मुझे इस समय एक घटना विशेष की स्मृति सजीव हो उठी है। वैशाली के पास ही एक लम्बी चौड़ी अभिषेक पुष्करिणी थी। वह अब भी है और उसमें मैंने कोढ़ियों को कपड़े धोते देखा है। परन्तु तब उसका अत्यन्त पुनीत महत्त्व था। आप जानते ही हैं वैशाली के प्रत्येक परिवार का प्रमुख राजा कहलाता था और इस प्रकार वहाँ एक नहीं अनेक राजा थे। राजा की मृत्यु पर उसके ज्येष्ठ पुत्र को उत्तराधिकार में यह पद मिलता। जब वह उस पद पर अभिषिक्त किया जाता तो वह ससमारोह इस पुष्करिणी के पवित्र जल में स्नान करता। और कोई भी व्यक्ति अथवा राजा कितना भी महत्त्वपूर्ण क्यों न होता इस पुष्करिणी में उसे अपने जीवन में केवल एक बार ही स्नान करने का अवसर मिल पाता था। देवी आम्रपाली जब कला के अधिष्ठात्री पद पर प्रतिष्ठित हुई थी तो उसका भी इसी पुष्करिणी में अभिषेक किया गया था। तब कई दिनों तक अनवरत रूप में उसके तट पर नृत्य एवं संगीतयुक्त समारोह चलता रहा था।

हाँ तो एक बार क्या हुआ मल्ल राज बंधुल की पत्नी मल्लिका को दोहद हुआ कि वैशाली-गुप्तों द्वारा सुरक्षित इस अभिषेक कुण्ड का जलपान किया जाए। बंधुल उसे पुष्प रथ में ले आया और जो सैनिक उसकी रक्षार्थ नियुक्त थे उन्हें उसने मार भगाया। तत्पश्चात् मल्लिका ने जल का खूब आनन्द लिया। लिच्छवी राजाओं को जब यह पता

चला तो उन्हें अत्यन्त क्रोध आया और वे शत्रु के रथ के पीछे-पीछे भाग लिए, और उसे पकड़ अर्धमृत अवस्था में कर दिया। लिच्छवी यूं अत्यन्त उदार हृदय क्षत्रिय थे परन्तु वे अपनी परम्पराओं की रक्षार्थ मर मिटने को सदा तैयार रहते। इसके लिए फिर चाहे परस्पर ही विरोध क्यों न हो जाती।

अपनी सुस्थापित परम्पराओं के प्रति वैशालिक कितने निष्ठावान थे यह एक तथ्य विशेष से विदित हो जाएगा। मगध राज बिम्बसार वैशाली के गणाध्यक्ष राजा चेटक के जामाता थे। इधर वैशाली आम्रपाली से भी बिम्बसार ने प्रणय किया था जिसकी गुप्त विवाह में परिणति हुई थी और, इसके फलस्वरूप अभय नामक पुत्र हुआ था। राजा चेटक की पुत्री का नाम चेल्लना था जिससे हल्ल और विहल्ल राजकुमार हुए। ये दोनों ही जुड़वां भाई थे। परन्तु इनके अतिरिक्त वैशाली की एक कन्या और भी थी जिससे बिम्बसार का विवाह हुआ। उसका नाम वासवी था। वासवी के साथ बिम्बसार के विवाह के पीछे भी एक कहानी है। विदेह राज विरूधक का मंत्री साकल अपने दो पुत्र गोपाल और सिंह के साथ वैशाली आया। कुछ समय के पश्चात् साकल वैशाली में नायक चुना गया। उसके दोनों पुत्रों का वैशाली ही में विवाह हो चुका था। पिता साकल की मृत्यु के पश्चात् सिंह नायक हुआ। गोपाल ने ज्येष्ठ होने के कारण इसमें अपनी अप्रतिष्ठा समझी और वह राजगृह चला गया। छोटे भाई सिंह (सिंह सेनापति नहीं) की एक पुत्री वासवी थी। गोपाल राजगृह जाते समय किसी प्रकार अपने साथ वासवी को भी ले गया और बिम्बसार ने उसके साथ विवाह कर लिया। गोपाल राजा का एक प्रमुख अमात्य बन गया। यह वासवी विदेह वंश की थी और कुमार कोणिक बाद में अजातशत्रु इसी से उत्पन्न हुआ था। इसी कारण उसे 'विदेह पुत्रो' कहा गया है। चेल्लना एवं वासवी के अतिरिक्त बिम्बसार के और भी कई रानियाँ थीं। कौशल नरेश प्रसेनजित की बहन कोशल देवी उसकी पट्टमहिषी थी। जब राजा बिम्बसार को अजातशत्रु ने बन्दी बना कारागार में डाल दिया तो वहाँ अपने पिता से मिलने के लिए अजातशत्रु ने केवल कोशल देवी को ही जाने की अनुमति दी थी। बन्दी गृह में वह राजा के लिए चोरी-छिपे भोजन ले जाती। अजातशत्रु को जब इस रहस्य का पता चला तो उसने पट्टमहिषी को राजा से मिलते समय तलाशी लिए जाने का आदेश दे दिया। इस पर वह अपने शरीर पर शहद लगाकर ले जाती। और क्षुधापीड़ित वृद्ध राजा उसे चाटकर ही अपने को तृप्त हुआ समझता। किन्तु अजातशत्रु को जब इसका भी पता लग गया तो फिर उसने रानी कोशल देवी का जाना पूर्णतः ही बन्द करवा दिया। बाद में जब अजातशत्रु ने अपने पिता की हत्या कर दी तो यह रानी इतनी शोकाभिभूत हुई कि उसने तत्काल ही तो अपने प्राण त्याग दिए। बिम्बसार ने अन्य स्त्रियों के साथ भी विवाह किये थे जिनमें से एक मद्रराज की दुहिता क्षेमा भी थी। और इस क्षेमा को अपने रूप का इतना गर्व था कि वह महात्मा बुद्ध के सामने जाने तक से हिचकिचाती थी कि कहीं वह उनके रूप की निन्दा न कर दें। अन्त में वह पंच-पहाड़ियों से घिरी राजनगरी के बाहर उत्तर दिशा में अवस्थित विस्तवन में भगवान तथागत से मिली और भिक्षुणी हो गयी। बिम्बसार उज्जयिनी से पद्मावती नाम की एक सुन्दरी वैश्या को भी ले आया था। और,

वैशाली में तो उन दिनों यह भी कहा जाता था कि राजगृह की सालवती नामक एक राजनर्तकी से भी बिम्बसार का एक पुत्र था जो बाद में उसका गृह-वैद्य बना। वह जीवक कुमार भृत्य के नाम से सुविख्यात हुआ। यूं सालवती के राजनर्तकी बनने के पीछे भी एक कहानी है, पर उसकी यहां चर्चा न कर कुछ और बताना ही उचित होगा। कहते हैं—जब सालवती गर्भवती हुई तो उसने नगर में ढोंडी पिटवा दी कि वह रुग्णावस्था में है अतः किसी से न मिलेगी। उसे भय था कि अब उसके गर्भवती होने का समाचार चारों ओर फैलेगा तो फिर सभी उसकी उपेक्षा करने लगेंगे और इस प्रकार वह तिरस्कृत हो रहेगी। कुछ समय पश्चात् जब उसके पुत्र हुआ तो उसने उसे सूप में रखवा राजनगरी के मुख्य राजपथ से लगे एक कूड़े के ढेर पर रखवा दिया। एक नवजात शिशु को इस प्रकार देख वहां आते-जाते नागरिकों की भीड़ एकत्र हो गई। संयोग से वेश्या आम्रपाली का पुत्र राजकुमार अभय भी उस समय उसी मार्ग से जा रहा था। उसे उस नवजात शिशु पर दया आ गई और वह उसे अपने प्रासाद में लिवा ले गया। जब वह कुछ बड़ा हुआ तो उसे विद्यार्जन के लिए तक्षशिला विश्वविद्यालय भेज दिया गया। वहां से वह आचार्य आत्रेय से चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा ले अपने इस विषय में पारंगत हो लौटा था। चिकित्सा के क्षेत्र में उन दिनों उसके नाम की दूर-दूर तक ख्याति थी। और वह शल्य चिकित्सा में इतना दक्ष था कि एक वैद्य को भी जो मार्गों में चीर सकता था। महात्मा बुद्ध जब कभी बीमार पड़ जाते तो उनकी भी वही चिकित्सा किया करता था। और, उज्जयिनी के राजा चण्ड प्रद्योत ने भी उसे एक बार अपने किसी असाध्य रोग की चिकित्सा के लिए सागृह बुलवाया था।

हां तो राजा बिम्बसार के अपनी विभिन्न रानियों से इस प्रकार एक नहीं वरन् अनेक पुत्र थे जिनमें से अधिकांश के नाम तो वैशालिकों को क्या स्वयं मागधों को भी विदित नहीं थे कोणिक हल्ल विहल्ल अभय नन्दिषेण मेघ कुमार, शिलव, कोकन्न सिलव, जयसेन और मुद्र नाम वैशालिकों को अवश्य ज्ञात थे। बताते हैं—शिलव राजा को अत्यंत प्रिय था। वह उसके सौम्य स्वभाव और कार्य निपुणता पर अत्यधिक मुग्ध थे इतने मुग्ध थे कि अंग विजय के पश्चात् कुमार कोणिक को जब वहां का राज्यपाल बना दिया गया तो राजा ने शिलव को ही अपने राज्य का सारा कार्य सौंप दिया था। सभी सामन्त एवं सभासद-गण उसकी शासन व्यवस्था के प्रशंसक हो गये थे तथा प्रजा में भी वह अत्यन्त लोकप्रिय बन गया था। किन्तु राजा का एक प्रमुख मन्त्री वर्षकार शिलव के संतोषी स्वभाव से तनिक भी तो प्रसन्न नहीं था। उसकी धारणा थी कि यदि राजा ने कहीं शिलव को ही युवराज घोषित कर दिया तो फिर साम्राज्य की महत्वाकांक्षा का फलीभूत होना असम्भव है। और वर्षकार साम्राज्य प्रसार के लिए दृढ़-संकल्प था। वास्तव में, मगध के राज परिवारों पर सदा ही से पुरोहित कुलों का प्रभाव रहा था। केवल प्रभाव ही नहीं वरन् वहां के ब्राह्मण राजा तो उनके समक्ष निमित्त मात्र थे तथा एक प्रकार से वास्तविक शासक वे ही थे। अतः वर्षकार ने अपनी महत्वाकांक्षा को फलीभूत करने के लिए कुमार कोणिक को ही चुना। वह प्रारम्भ से ही महत्वाकांक्षी होने के साथ-साथ क्रूर भी था। कदाचित् इसी कारण अधिकांश सभासद और सामन्तगण उससे अप्रसन्न

नहीं है।

वे देवी झिप्या मित भाषिणी थी। तो भी वह कभी-कभी मेरे एक स्वाभाविक दोष की ओर मेरा ध्यान आकर्षित कराए बिना न रहती। नयन नत किए मन्द मन्द मुस्काते हुए वह कहती— 'विषयान्तर का यह गुण तो तुम्हारा ऐसा है कि यदि मैं उसे साथ जन्म लेकर भी सीखती रहूँ तो भी कदाचित् उसका भी पल्ले न पड़े।" और तब मैं ज़ोर से खिलखिलाकर हँस पड़ता। परन्तु साथ ही लज्जित भी हो रहता। कहता—"देवी क्षमा करना मैं तो यूँ ही बहक गया था। और तब अत्यधिक संकोच से उसके कपोलों पर आकर्ष लालिमा बिखर जाती। और मैं? बस मन्त्रमुग्ध हुआ-सा उसकी ओर निहारता रह जाता।

हाँ तो मैं कह रहा था कि राजा बिम्बसार यद्यपि गणाध्यक्ष राजा चेटक के जामाता थे तथापि उन्होंने जब कभी वैशाली पर आक्रमण किया वह उसकी रक्षार्थ यौधेय वैशालिकों की सबसे अग्रिम पंक्ति में दीखते। देवी आम्रपाली की भी वैशाली के प्रति कोई कम निष्ठा नहीं थी और नायक सिंह तो प्रौढ़ावस्था में ही वीर गति को प्राप्त हुए थे। अपने अभिलिखित संविधान 'प्रवेणी-पुस्तक' पर वैशालिकों का सचमुच कितना गर्व था? उसकी मान-मर्यादा के लिए वे हँसते-हँसते जीवन की बाजी लगा देते। वे कहा करते—"पुण्यात्मा पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त यही तो हमारी समान सम्पदा है जो आर्यावर्त के किसी भी राष्ट्र में दुर्लभ है। वैशाली का सारा शासन कार्य इसी प्रवेणी-पुस्तक में लिखित नियमों के अनुसार चला करता था और वहाँ किसी व्यक्ति-विशेष का नहीं वरन् अनुशासन का राज्य था और इस अनुशासन का उद्गम स्रोत था वहाँ का संथागार। उसके सर्वोच्च पद पर जो आसीन होता वह गण संवाहक कहलाता था। इस संथागार में सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार होता। तथा कभी-कभी किसी विवादास्पद नियम विषय को लेकर तो कई दिनों तक वाद विवाद चलता रहता। परन्तु एक बार वहाँ जो भी बहुमत से निश्चय हो जाता वही वैशाली का नियम बन रहता। देवी आम्रपाली को जब जनपद कल्याणी बनाने की बात चली थी तो उस पर यहाँ कई दिनों तक विवाद चलता रहा था। कारण? नायक महानाम कन्या को वह पद स्वीकार्य नहीं था और अपने पक्ष में वह सभासदों के सम्मुख निरन्तर अकाट्य तर्क प्रस्तुत करती रही थी। अन्त में वैशाली के नियम के सम्मुख नत मस्तक हो उसने चार शर्तें रखीं और सभासदों को वे स्वीकार करनी पड़ी थीं।

वास्तव में आम्रपाली हार कर भी जीत गई थी और जीतकर भी हार गई थी। सर्वसुन्दरी और कला निपुण होने के कारण यदि उसे वैशाली की परम्परा के सम्मुख नत शिर होना पड़ा था तो सभासदों को उसकी हठ के सम्मुख। अपने प्रतिद्वन्द्वियों के निकट तो वह जैसे सदा ही एक पहेली बनी रही ऐसी पहेली कि ।" ऐसा सभी वैशालिक कहते थे परन्तु देवी झिप्या के निकट तो वह कुछ और ही थी। यूँ उसके नैनों में उसकी छवि सदा ही खटकी-सी रहती परन्तु जब कभी किसी प्रसंगवश कोई बात चल पड़ती तो वह कहती—"सचमुच कितनी करुण-हृदया थी वह देवी।" और फिर वह उसका स्मरण कर अत्यधिक भाव विह्वल हो उठती। उसके ज्योतित नैनों

को देख चलाए ऐसा प्रतीत होता कि कोई स्वप्न साकार रूप ग्रहण कर उसकी दृष्टि में स्थिर हो गया है। तब मैं देवी दिव्या की ओर देखता रह जाता। उससे कहता —"तुम्हें यह पूर्व जन्म का ही कोई संस्कार समझो कि यह मुझे यहाँ खींच लाया। कितना पुनीत संस्कार रहा होगा वह जो मैं तुम्हारे दर्शन का सुयोग पा सका।" परन्तु, यह अन्तिम बात मेरे मन में आकर भी होठों तक न आ पाती।

फिर, मैं मन ही मन वैशाली के उन वासियों को नमस्कार करता जिन्होंने अपने उदार स्वभाव के कारण मुझ जैसे अकिंचन को भी अपने विशिष्ट समाज में प्रविष्ट कर लिया था। महात्मा बुद्ध ने एक बार लिच्छवियों की समूह में आते देख अपने प्रमुख शिष्य आनन्द से कहा था—'आयुष्मान आनन्द यदि तूने सारी संख्या में देवों को एक साथ आते कभी न देखा हो तो आज वैशाली के इन लिच्छवियों को देख ले। तथागत भगवान् ने यह सर्वथा उचित ही कहा था। फिर उन्होंने अपने भिक्षु संघ की रचना भी तो वैशाली गणराज्य के स्वरूप से ही प्रेरित होकर की थी। वास्तव में वैशाली तो भगवान बुद्ध की हृदय-प्रिया थी। परिनिर्वाण से केवल कुछ दिन पूर्व जब वह वैशाली से चलने लगे तो समभावी होकर भी उनका मन जैसे कुछ भारी हो आया। बोले— आयुष्मान आनन्द वैशाली के मैं यह अन्तिम दर्शन कर रहा हूँ।

वैशालिकों ने जब यह सुना तो वे दुःखित हो तथागत के पीछे-पीछे हो लिये। तथागत के बार बार के अनुरोध पर भी वे नगर को न लौटे। अन्त में भगवान् ने वैशालिकों को अपना भिक्षा पात्र दे उनसे लौटने का अन्तिम अनुरोध किया और उन्हें विवश हो लौटना पड़ा। और भगवान ने भी एक बार फिर नगर की भव्य अट्टालिकाओं को अपनी दृष्टि में उतार जैसे अन्तिम नमस्कार किया।

उन दिनों ऐसा ही कुछ था वैशाली का महत्व।

तथापि उसकी गौरवपूर्ण सिंहांकित धवल पताका पर कभी एक काला धब्बा भी लगा हुआ था। और जिस समय इस धब्बे को मिटाने का प्रयास जारी था तभी मेरा वहाँ पदार्पण हुआ था।

एक-एक कर जब ये सभी बातें मानस पटल पर मंडराने लगीं तो पहला की वह रात ऐसी प्रतीत हुई मानों पूरे एक पखवाड़े में फैल गई हो। फिर तो वह सारी रात करवट बदलते ही बीती। और हर करवट के साथ मन का उतावलापन भी प्रखर होता गया। कभी-कभी अन्तर के किसी गुह्य प्रान्त में बैठी एक दुविधा भी आत्मविश्वास को भिंझोड़-सी जाती और तब अन्तस्तल में विश्वास से आबद्ध एक धारणा भी सहसा डगमगा-सी उठती। मैं सोचने लगा—"मैं यह कमल पुष्प लेकर भी गया और यदि देवी दिव्या ने उसे स्वीकार न किया तो? क्या पता यह सारी कल्पित हो, मैं अपने मन में एक भ्रम को ही पालता चला आ रहा होऊँ। परन्तु तब साथ ही आत्मविश्वास भी अपनी पूरी दृढ़ता से कह उठता—"नहीं यह भ्रम कदापि नहीं हो सकता अन्यथा देवी दिव्या के निकट बैठ मैं किसी विश्राम कर वृक्ष के नीचे आए एक थके बटोही की भाँति शीतलता अथवा विश्राम का-सा आभास कदापि न पाता और न ही उसकी देह से फूटती चम्पा जैसी भीनी भीनी सुवास से मैं सब उस प्रकार मद-माया-सा रहता।"

मुझे तो विश्वास है कि वह मुझे उस समय भी प्रेम करती थी पर मैं

भी वह मुझे कभी अपने आलिंगन पाश में क्यों नहीं समेट सकी ? पर, वह ऐसा करती भी कैसे ? कौन जाने वह कितनी विवश थी ?

पटना से वैशाली पहुँचते-पहुँचते रात हो गई। फिर भी सामान आदि रख मैंने सबसे पहले खण्डहरों ही की ओर मार्ग लिया। कल ही तो पूनम हो कर चुकी थी इसलिए गगन प्रकाश विहीन नहीं था। रात्रि के एकान्त में खण्डहरों से सिमटी मिट्टी को चुटकी भर मैं उसे चूमते हुए अपने मस्तक पर लगाने लगा तो मन जैसे बेकाबू हो उठा हाहाकार करता हुआ वह कह उठा—"अरे ओ-गणराज्य के प्रकाश-स्तम्भ आज तेरी यह दुर्दशा ?"

तब मुझे लगा जैसे बन्धुवर सिंह सेनापति सम्मुख ही खड़े हों और पास ही में देवी रोहिणी भी। और जैसे पितृवर गणाध्यक्ष राजा चेटक सदैव की भाँति पीठ पर हाथ फेरते हुए सांत्वना के-से कण्ठस्वर में कह रहे हों—"आयुष्मान्, तुम्हें तो अब प्रसन्न होना चाहिए कि आज सारा भारत ही वैशाली बना हुआ है। यदि यह वैशालिकों का ही स्वप्न साकार नहीं हुआ है तो फिर भला वह और क्या है ?

जब सोये खण्डहरों में भी सुपरिचित कृपालु-जन मिल जाएँ, तो फिर भला दुविधा किस बात की। चाँदनी रात तो थी ही मन और आगे निकल गया। राजा विशाल का वह गढ़ जहाँ कभी गणाध्यक्ष राजा चेटक रहा करते थे उसी के पास तो गण-मन्दिर-संथागार का भव्य भवन था। तक्षशिला विद्यापीठ से स्थापत्य कला में दीक्षा ले बन्धुवर महाली जब वैशाली लौटे थे तो उन्होंने बड़े ही चाव से उसका पुनर्निर्माण कराया था। पाषाण खण्डों की पूर्ति उन्होंने बड़ी-बड़ी ईंटें पकवाकर कर ली थीं। संथागार का तब नया ही भव्य रूप नेत्रों के सम्मुख प्रगट हुआ था। एक बार उसकी ओर नैन उठे नहीं कि वे बस देखते ही रह जाते। उसके निकट से जो भी निकलता, किंचित् समय के लिए श्रद्धा से मस्तक नत कर उसके सम्मुख अवश्य ही खड़ा होता और उसके सोपान को अंगुलियों से बुहार उसके रजकणों का नेत्रों से स्पर्श करा गद्‌गद् कण्ठ से कहता— ऐ वैशालिकों के देव मन्दिर, तेरी यह यश पताका युग-युग तक लहराये।" किन्तु पाटलिग्राम में नया दुर्ग बनवाते समय मगध के कुटिल अमात्य वर्षकार की वक्र दृष्टि जैसे हर समय उसी पर टिकी रहती। साम्राज्य प्रसार की लालसा से उसकी जिह्वा चटकारें ले कहती—"एक दिन धान के हरे भरे खेतों से लहलहाती यह रमणीय भूमि अवश्य ही साम्राज्य का अंग बन कर रहेगी।"

किन्तु, वैशालिक निश्चिन्त थे। उन्हें अपने पराक्रम पर दृढ़ विश्वास था। लगभग ढाई-सौ वर्ष पूर्व उनके जिन पूर्वजों ने निष्ठा भाव से इस गणराज्य की स्थापना की थी मन-ही मन उनका स्मरण कर, शीश नवा वे कहते— 'ऐ गणराज्य के आदि देवो हमें आशीर्वाद दो कि हम अपना सर्वस्व देकर भी इस पुण्य भूमि की रक्षा कर सकें उसकी रक्षार्थ हमारा बल बना रहे हमारी एकता बनी रहे !"

ऊपर गगन पर से छिटकती चाँदनी में यही सब कुछ सोचते विचारते मैं आगे बढ़ा जा ही रहा था कि सहसा पैर ठिठक कर रुक रहे। मैंने चारों ओर दृष्टि प्रसारित कर जब नीचे की ओर देखा तो बस देखता ही रह गया—यहाँ कभी महावीर मेंढिग रत्न का भव्य प्रासाद खड़ा था। और, इसी प्रासाद में एक दिन । की मैं आया— 'जोर से चिल्लाकर रात्रि के इस सुनसान में मैं मंजरिका को पुकार लूँ। परन्तु दूसरे

ही क्षण अपने पर हँस पड़ा। मन-ही-मन बोला—"भला मंजरिका अब यहाँ काहे का होने लगी। कौन जाने कहाँ वह तो अपनी सखी चारुस्मिता के साथ खेल रही होगी और फिर मैं भारी मन से आगे बढ़ने को उद्यत ही था कि इस बार नेत्रों के सम्मुख उपस्थित एक दृश्य को देख मैं भयभीत हो उठा। एक काला नाग फुंकारता इसी दिशा में चला आ रहा था। मन में आया कि उल्टे पैर ही भाग लूँ। परन्तु दूसरे ही क्षण ऊँचे-नीचे टीलों का ध्यान कर उसे व्यर्थ समझा चूंकि यदि वह भी मेरे पीछे-पीछे दौड़ता तो उसके लिए वह अवश्य ही अनुकूल भूमि होती। अतः खड़ा रहा खड़ा-खड़ा मन को समझाता रहा समझाता रहा कि यह अवश्य ही कोई निष्प्राण वैशालिक है जो आज भी वैशाली के ध्वस्त वैभव की रक्षा कर रहा है। फिर भला वह मुझे काहे को कुछ कहेगा? पर वह तो अब तक सर्वथा सन्निकट पहुँच चुका था। उसे देख मेरी देह बुरी तरह प्रकम्पित होने लगी। मैं सोचने लगा—'तब तो एक ऐसी भूल की ही थी परन्तु आज तो मैं जैसे उससे भी भयंकर भूल कर बैठा।' फिर, जैसे यह सोच भारी मनस्तोष हुआ कि चलो यदि कुछ हुआ भी तो अपनी वैशाली में ही होगा। तो भी पाण्डुलिपि का लोभ बना रहा और विचारने लगा कि क्या जो कुछ इतने परिश्रम से स्मरण कर मैंने लिपिबद्ध किया है वह सब कुछ ही व्यर्थ जाएगा। मोह से भला कब किसका साथ छूटा है। क्वार मास की उस रात में कुछ-कुछ शीतल बयार बह रही थी तो भी मेरे अंग प्रत्यंग से स्वेद जल बुरी तरह फूट रहा था। और, अब हाथ के कमल की ओर देखा तो वह भी इस समय मुरझाया-सा प्रतीत हुआ। भयभीत कण्ठ स्वर में मैं जोर से उस निर्जन प्रदेश में चिल्ला ही तो उठा—'देवी शिप्पा ओ कल्याणमयी देवी शिप्पा तो क्या मैं आज भी यूँ ही लौट जाऊँगा?"

तब दूर दिगंत से ध्वनि आई—"आचार्य शिष्य घबराओ नहीं वह तो सामन्त-पुत्र पद्मराग देव है। क्यों क्या पहचाना नहीं?"

यह सुन मैं तो चकित रह गया! वह स्वर तो सचमुच ही जाना-पहचाना-सा लग रहा था।

अब जबकि मैं वैशाली से लौट आया हूँ तो आप निश्चय ही उत्सुकता वश पूछेंगे—'क्यों जी देवी शिप्पा से भेंट भी हुई या बस यूँ ही लौट आए?' तो फिर उत्तर में मैं आप सभी से केवल यही कहूँगा—'सज्जनो, आपस का यह प्रेम ऐसा नहीं कि मैं उसकी ढौंडी पीटता फिरूँ—वह तो केवल मन-ही-मन गर्व की चीज है। परन्तु जब आप इतने सहज आत्मीय भाव से पूछ ही रहे हैं, तो फिर भला मुझे भी कहने में क्यों कोई संकोच हो। तो सुनो जन्म-जन्मान्तर से मुरझाता आ रहा अपना कमल-पुष्प जब मैंने देवी शिप्पा के श्यामल जूड़े पर अटकाया तो वह (कमल पुष्प) मुस्करा उठा। और हाँ देवी शिप्पा पहले तो कुछ सकुचाई-सी परन्तु फिर भाव विभोर हो बोली—"स्नेह के संस्कार भी देखो तो कितने प्रबल हैं अन्यथा क्या तुम आज यहाँ फिर आते?"

मैं नत मस्तक हो बोला—"देवी आप सत्य कहती हैं।"

"और जब मैं वहाँ से चलने लगा तो मेरे नैन कुछ पुराने और कुछ नये स्नेह से अश्रुपरिप्लुत-से हो उठे। तब देवी शिप्पा ने उन्हें अपने आँचल के पल्ले से पोंछते हुए कहा—"तुम तो व्यर्थ ही में दुखी हो रही हो, यह गणराज्य अजर अमर है और जब

तक यह है तब तक हम बार-बार मिलेंगे और बार-बार प्यार करेंगे।"

किन्तु, मेरे मुँह से सहसा निकल गया— देवी विप्पा तुम तो मुझे सदा यूँ ही बहका देती हो। जानती हो इस युग में यह कमल पुष्प लगाने की इच्छा मला कब बलवती हुई थी ? प्रतीक्षा करते-करते यह जीवन तो बीत ही गया मैं पूरे ढाई हजार वर्ष भी यूँ ही चले गए। और आज न जाने किस महादेवी की कृपा से मन की यह साध पूरी हो सकी है। देवी, एक साध और भी थी कहते कहते मेरी जिह्वा सहसा रुक जैसे जड़ हो गई परन्तु ओष्ठ उसके पश्चात् भी कुछ कहने की इच्छा से फड़फड़ाते रहे। मैं याचना भरी-सी आर्द्र दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए उसके चरणों में अन्तिम प्रयास स्वरूप बैठना ही चाहता था कि उसने मेरा हाथ पकड़ मुझे अपने आलिंगनपाश में समेट लिया अपनी स्वप्निल दृष्टि से मुझे अपार धैर्य दुलारती हुई-सी वह बोली— 'सच मुच मैं तो अब तक यूँ ही व्यर्थ का संकोच करती रही थी।"

और फिर, उसके वक्ष में न जाने कब से बंदी हुआ कोकिलोष्म दबाव मेरे अन्तस्तल में सिहर-सा गया।

मेरा हृदय गुदगुदा उठा। उसकी घुंघराली काली केश राशि के मध्य खिंची मन्द सी थी कसौटी पर खिंची स्वर्ण रेखा की भाँति इतने दिन व्यतीत हो जाने के पश्चात् आज भी चमक रही थी और उसमें से भीनी भीनी सुवास भी फूट रही थी। न जाने कितनी बार मन में आया था कि उसे भी भर एकटक दृष्टि से देखते रह उसकी सुवास मैं अपने मस्त और बाह्य को आलोकित कर लूँ और साथ ही मन का सन्ताप भी मिटा लूँ। परन्तु, न जाने क्यों अब भी मेरा साहस नहीं हो पा रहा था। कदाचित् वह मेरे मन के भाव को समझ गई मेरी अन्तर्यामिनी जो ठहरी। उसके नैन मुस्करा उठे। कितनी कल्याणमयी थी उसकी वह मुस्कराहट और कितना पुनीत था उसका वह चुम्बन जो उसने साहस कर इस बार मेरे ललाट पर न जाने कैसे टका ही दिया था।

मेरा मन मानो मचल उसके आँचल में दुबक रहा।

और अन्त में मेरे चलते-चलते वह तनिक स्मित मुस्कान के साथ बोली—'क्यों क्या तुम यह समझते हो कि तुम्हें इस तरह उचाट मन देख मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है ?"

और फिर न जाने क्यों उसके नैन सजल हो उठे मेरे भी। संस्कार सचमुच बड़े बलवान है। इस बार फिर मैं वैशालीसे विदा हुआ हूँ परन्तु पूर्व की भाँति एक दम नहीं वरन् धीरे-धीरे। विगत की उन सभी घटनाओं का स्मरण करता हुआ-सा जिनमें से यदि कुछ कुछ मधुर है तो कुछ कटु भी। परन्तु कुछ भी हों कैसी भी हों घटनाएँ तो घटनाएँ ही है ऐसी घटनाएँ कि जिनमें से कुछ के साथ मेरा मानों अटूट सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। परन्तु अब भला उनमें मेरा क्या कुछ रह गया है ? इतिहास के विस्मृत प्राय पन्नों ने उन्हें अपने अंक में जो समेट लिया है ? अतः मेरा अब अपना कहने का कुछ भी तो नहीं। और जो है भी तो वह सबके लिए ही है कम से कम वैज्ञानिक तो ऐसा ही मानते थे। इसी से मैंने अब अपने आप को केवल निमित्त मात्र मान हटा लिया है और फिर उसका जो कुछ भी सहज स्वरूप बन सका है, वह प्रस्तुत है। उसकी अच्छाई अथवा बुराई से अब जितना आपका सम्बन्ध है, बस उतना ही मेरा भी।

जातक-कथाओं में से एक प्रसंग

एक दिन उत्साह की उमंग में दौड़ती आई, उल्लसित कण्ठ से एक परिचारिका ने अपनी स्वामिनी से आकर कहा—"देवी देवी देवी !" परन्तु इससे आगे जैसे वह कुछ भी कहने में असमर्थ रही। कारण ?

उसका श्वास अभी भी फूल रहा था।

देवी आम्रपाली मध्याह्न का विश्राम कर अभी-अभी अपने प्रसाधन-कक्ष में आई थी। मानवाकार दर्पण में प्रतिबिम्बित होते अपने अलसाए अंगों एवं अपनी मुख छवि को निहार वह जैसे अपने पर ही मुग्ध हो उठी। परिचारिका इतना उत्साह दिखा कर भी जब कुछ न कह सकी तो इस पर वह कुछ झल्ला-सी गई। बोली—"देख मदिरे ! मैंने तुझे कितनी बार सावधान किया है कि इतनी भावुक न बन। अरी भो भावुकता तो बस उतनी ही उचित है कि वह अभिव्यक्ति को सुन्दरता में संवार सके। और तू है कि   अच्छा   अब कुछ बोलेगी भी कि   ।"

परिचारिका के मुख का पीलापन गाढ़ा रंग जैसे वहीं रुक और प्रगाढ़ हो गया। किन्तु, उसके नेत्रों में से प्रस्फुटित हुआ उल्लास और ज्योतित हो उठा। संयत कण्ठ से मानों सप्रयास वह बोली—"स्वामिनी जानती हो आज अपने आम्रकुंज में भगवान तथागत पधारे हैं !"

देवी आम्रपाली अपनी निहारती छवि को जैसे दर्पण में ही अकेला पीठिका से उठ खड़ी हुई   उसके नेत्र विस्फारित हो गए। संभ्रम पूछने लगी— सचमुच मदिरे !"

और फिर वह सवेग रथ में जा बैठी   रथ तीव्र गति से आम्रकुंज की ओर दौड़ लिया।

× × × ×

उधर लिच्छवियों को भी जब तथागत के आने का पता लगा तो वे भी सोत्साह एक-दूसरे को यह संवाद सुनाते तथागत के दर्शन को दौड़ लिए। पर तब तक सामने से देवी आम्रपाली का रथ धूलि-धूसरित मार्ग का आवेग रौंदता लौट रहा था इतना आवेग कि लिच्छवियों के रथों से उसका रथ टकरा गया   धुरे से धुरे टकरा उठे। आखिर उन्होंने अपने रथ रोक आम्रपाली से पूछा— 'देवी, भला आज ऐसा क्या हुआ है जो तू इतनी प्रसन्न है।

तब आम्रपाली ने सगर्व कहा— 'तथागत कल भिक्षुसंघ समेत मेरे यहाँ ज्योनार पर आएँगे।

यह सुन सभी लिच्छवियों की तो मुखमुद्रा मलिन हो गयी और वे ठगे से खड़े रह गए। परास्त हुए कण्ठस्वर में बोले—"देवी तू एक कोटि कार्षापण ले ले और और यह ज्योनार हमें दे दे।"

इस पर आम्रपाली ने सगर्व अपने सारथी को रथ आगे बढ़ाने का आदेश कर, लिच्छवियों की ओर देखते हुए कहा— "क्या कहा एक कोटि कार्षापण?"

उपहास की मुस्कान से स्पष्ट ही उसके ओष्ठ फैल गए। वह फिर बोली—"महाजनो यदि तुम समूचा वज्जि संघ देकर भी मुझ से यह ज्योनार चाहोगे तो तुम्हें उसका मिलना असम्भव है।

और, अस्तकूम को प्रतिबिम्बित करती लिच्छवियों के परिधानों की इन्द्रधनुषीय छटा देवी आम्रपाली के रथ के पहियों से उड़ती धूलि में विलीन-सी हो गई।



एक

ग्रीष्म काल का ज्येष्ठ मास और उसकी भी मध्याह्न वेला। ऐसी भीषण गर्मी कि जन कोई विरला ही बाहर निकल सके। किन्तु, आज इस वेला में भी महानगरी वैशाली के मध्य भाग की एक वीथी में कुछ हलचल-सी है। और इस हलचल का केन्द्र बनी हुई है एक भव्य स्वर्ण कलश मंडित उच्च अट्टालिका। और इस समय वहाँ उसके खुले प्रांगण में गर्म लू के थपेड़े सहता हुआ कतिपय जन समुदाय उपस्थित है।

प्रांगण में उपस्थित जन समुदाय ने सहसा उल्लसित हो, उच्च कण्ठ स्वर में जयघोष किया। इस जयघोष की प्रतिध्वनि कुछ समय तक निकट के सूने वातावरण में गूँजती रही। जब वह प्रतिध्वनि ऊपर नभ में मंडराती अंतत अंतरिक्ष के शून्य में लीन हो गई तो प्रांगण में मंत्रोच्चारण करता एक समवेत स्वर गूँज उठा। न जाने कब से यहाँ कुछ ऐसा ही क्रम चल रहा है। इस क्रम को कुछ उपस्थित नागरिक इस भ्रम हुए विस्फारित दृष्टि से देख रहे हैं तो कुछ हर्षोल्लास के भाव से। फिर वहीं इसी बीच एक उच्च जयनाद के साथ कुछ कोलाहल-सा हो उठा जो प्रांगण की परिधि को लाँघ शनै-शनै वीथी को पार कर महानगरी के भवनों प्रासादों एवं उच्च अट्टालिकाओं से टकराता हुआ आगे बढ़ निकला।

इसी अट्टालिका से कुछ दूर, नगर के एक भिन्न प्रांतर में वयोवृद्ध गण संवाहक शान्त भद्रदेव ने मध्याह्न विश्राम के पश्चात् अभी-अभी शय्या का त्याग किया था। उनके रक्तिम मुख मंडल अधनिमीलित नेत्रों और वृद्धावस्था से क्लांतप्राय अंग-प्रत्यंग पर तंद्रा प्रमाद का प्रभाव स्पष्ट दीख रहा था। उठने के पश्चात् भी वह कुछ क्षणों तक अलसाई दृष्टि से रिक्त शय्या की ही ओर देखते रहे।

स्वामी के उठ खड़े होने पर व्यजन करती ताम्रवर्णी दासी श्यामा का भी हाथ वहीं स्वत रुक गया। किन्तु वह नतमस्तक यथास्थान ही खड़ी रही। व्यजन के रुकते ही वृद्ध गणसंवाहक की देह पर भी स्वेद कण उभर आए, पर जैसे उनका इस ओर कोई ध्यान ही नहीं गया। स्वाभाविक रूप में आई एक जम्हाई और अंग प्रत्यंग पर लहराती अंगड़ाई के साथ उनके पैर, मानो स्वत बन्द गवाक्ष की ओर बढ़ लिए। गवाक्ष छिद्रों में से आते वायु के झोंके का सहसा स्पर्श पा उनकी स्वेद-सिक्त देह एक बारगी आपाद शीर्ष शीतल आभास से स्फुरित हो उठी उनका शुष्क प्रतीत होता कण्ठ भी आनन्दोच्छ्वास से तरंगित हो उठा। और दृष्टि? वह उन्मन भाव में गवाक्ष छिद्रों को लाँघ दूर दिगंत की क्षितिज रेखा तक फैले सघन आम्र कुंजों के झुरमुट में उलझ-

दी गई। सामने ही केवल कुछ अन्तर पर श्रेष्ठी मितविदक के कोठारों की पाँत खड़ी थी। उसके सम्मुख फैले लम्बे चौड़े आँगन में ताम्रलिप्ति जलपत्तन से पहुँचे वणिज्य पदार्थों का अम्बार लगा था। दास कर्मकरों का एक पूरा झुण्ड बड़ी-बड़ी गाँठों से झूमता उन्हें पीठ पर लादता कोठारों की ओर जाता दीख रहा था। अत्यधिक श्रम से कर्मकरों की सुडौल काली देह से स्वेद-जल धार फूट रही थी पर जैसे उन्हें इस समय उसे पोंछने तक का अवकाश नहीं था। तथापि उनसे कुछ ही दूर एक वट वृक्ष की छाया में बैठा श्रेष्ठी मितविदक का एक विश्वस्त सेवक उन्हें यदा-कदा ललकार उठता। उसकी ललकार का यह कर्कश स्वर गणसंवाहक के कानों में भी गूँज उठा। उन्होंने उचटती दृष्टि से एक बारगी उधर देखा। फिर उनके नेत्र नगर प्राचीर के बाह्य क्षेत्र वाले भवनों पर जा टिके। सन्निवेश क्षत्रिय कुण्डग्राम के उन भवनों के मध्य खड़े एक भव्य प्रासाद पर जब उनकी दृष्टि जा केन्द्रित हुई तो जैसे उसी के साथ उनका मस्तक श्रद्धा भाव से नत हो रहा। मन-ही-मन में बोले—'एक दिन आदि व्रात्य कुलों ने वैशाली को जीत यहीं तो अपना क्षत्रिय निवेश किया था। और सम्मुख दीखता यह भव्य प्रासाद? यह तो अपने पर कितना भी गर्व करे, थोड़ा ही है। यह कहते हुए उनका नतसिर श्रद्धातिरेक से और भी अवनत हो गया। हाथों को अंजलिबद्ध कर बोले—'आर्यकुल भूषण महावीर मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। यह पावन भूमि तुम्हें अपने पर अवतरित कर सचमुच धन्य हुई है।"

अपने आराध्य के स्मरण से वृद्ध गणसंवाहक के ज्योतित नेत्र और प्रदीप्त हो उठे।

कुछ क्षण पश्चात् जब सहसा उनका ध्यान भंग हुआ तो वह कुछ चौंक से गए। दृष्टि ऊपर उठा तनिक समय मात्र से उन्होंने गवाक्ष छिद्रों में से बाहर की ओर झाँका। बोले—अरे, यह तो सचमुच विलम्ब हो गया।" उनके विश्राम शिथिल अंगों में तत्परता लहर उठी। अस्त-व्यस्त रूप में लटकते अपने उत्तरीय को सावेग कंधे पर पटक सम्मुख ही एक पीठिका पर रखे स्वर्ण किरीट की ओर बढ़ लिए। नत-मस्तक हो उसे उठाया अपने शीश पर धारण किया और फिर आवेग संथागार तक के लिए चल पड़े।

शयन कक्ष और द्वार मण्डप के बीचों बीच चतुष्शाल पड़ता था। वृद्ध सामन्त अभी उसी तक पहुँचे थे कि प्रासाद-द्वार की ओर से आता हुआ एक तरुण ग्रामवासक उनके सम्मुख खड़ा हो गया। वह भी रुक गए। तरुण नत मस्तक ही रहे कुछ पग पीछे की ओर हट गया। और फिर वह विनय के रुंधे स्वर में बोला—"आर्य एक आवश्यक संवाद है।"

क्या संवाद है वत्स? गणसंवाहक ने जैसे प्रश्न में उसके प्रति किंचित भी उत्सुकता न दिखाई। हाँ उनकी अन्तर दृष्टि उस पर अवश्य जा टिकी। आकुल तरुण ने भी उसे उत्तर की विशेष आवश्यकता नहीं समझी। यथापूर्व नतमस्तक रह वह बोला—"आर्यवर देवी आम्रपाली ने कन्या विसर्जन हो सद्य प्रथा की घोषणा की है।"

वृद्ध गणसंवाहक यह सुन सर्वथा स्तब्ध रह गए। किन्तु संदेशवाहक तरुण नतमस्तक रहने के कारण उनके इस परिवर्तित मुख भाव को नहीं देख सका। उत्साह आवेग के से कण्ठ स्वर में वह पुनः बोल उठा—"आर्यवर केवल घोषणा ही नहीं वरन् आज अभी इसी मध्याह्न बेला में वह तथागत से विधिवत दीक्षा ग्रहण कर संघ में प्रविष्ट भी हो चुकी है।"

यह संवाद सुनाते हुए स्वयं तरुण का हृदय चीत्कार कर उठा। परन्तु, वृद्ध सामन्त तो उसे सुन सचमुच विचलित हो गए। मन ही मन बोले— क्या तथागत क्या एक गणिका को भी अपने संघ में प्रविष्ट कर सकते हैं? और फिर यही एक प्रश्न बार-बार उनके अन्तर में ध्वनित हो गूंजता रहा।

केवल कुछ क्षणों पूर्व तक जिस हिम-धवल श्मश्रु आच्छादित आभा प्रदीप्त औ रक्तिम मुख मण्डल से उनका प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व प्रस्फुटित हो रहा था वह सहसा निस्तेज हो गया।

उनके मानस पटल पर बैठे रह रह कर अतीत के अंतराल से वर्षा ऋतु के सघन मेघों की भांति कोई विस्मृतप्राय घटनाएँ घुमड़ उठीं। विचारों के एक प्रबल झंझावात ने वृद्ध सामन्त के अंतरतम् को बुरी तरह झिंझोड़ दिया। अन्त में विवशता से सिहर ऊर्ध्वमुख हो उन्होंने शून्य दृष्टि से चतुश्शाल की छत की ओर देखा। दृष्टि वहीं स्थिर हो रही। उनका विशाल वक्ष अवरुद्ध श्वास से और फूल-सा गया।

गणसंवाहक प्रस्तुत प्रसंग को मस्तिष्क से निकाल देने को प्रयत्नशील हो उठे। किन्तु इस दिशा में जितना प्रयास करते उसमें उतने ही उलझ कर रह जाते। उधर संथागार सत्र का समय सन्निकट देख वह और भी दुविधा ग्रस्त हो उठे। एक बार मन में आया भी कि क्यों न सत्र-स्थगन का ही आदेश भिजवा दूं। पर इसी के साथ उन्हें कुछ स्मरण हो आया। बोले—"ओह, आज तो तथागत संथागार में सभासदों के समक्ष सद्धर्म प्रवचन के लिए भी आमंत्रित हैं।"

अन्ततः उन्होंने अपनी दृष्टि उठा संदेशवाहक की ओर देखा। फिर सदैव के स्वाभाविक संयत कण्ठ स्वर में पूछने लगे—"क्यों आयुष्मान कपिल वाहन तो प्रस्तुत है न?"

वाहन द्वार मण्डप में खड़ा कभी का प्रतीक्षा कर रहा था। फिर भी संदेशवाहक ने गणसंवाहक के प्रश्न का अपेक्षित उत्तर न दे कहा—"किन्तु आर्य इस समय कुछ अस्वस्थ प्रतीत हो रहे हैं।"

तरुण के इस अप्रत्यक्ष प्रस्ताव में निहित आशय को समझ वयोवृद्ध सामन्त पहले तो कुछ हँसे फिर शीघ्र ही उसे रोक अंतर का समस्त गाम्भीर्य को कण्ठ स्वर में समेटते हुए बोले— 'तात भी आयुष्मान संथागार सत्र महत्त्वपूर्ण है। आज तो वह और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। केवल इतनी सी बात के लिए उससे अनुपस्थित होना क्या किसी को शोभा देता है।" तनिक रुक एक श्वास छोड़ते हुए वह फिर बोले—'और गणसंवाहक को तो यह कदापि शोभा नहीं देता। आयुष्मान मैं संथागार अवश्य जाऊँगा।" यह कह, वह तत्परता से द्वार मण्डप की ओर बढ़ लिए।

संदेशवाहक कपिल भी विनीत सेवक की भांति उनके पीछे-पीछे हो लिया।

रथारूढ़ होते-होते गणसंवाहक के मस्तिष्क में सहसा एक प्रश्न प्रबल वेग से आ टकराया। मुख पर जिज्ञासा का सा भाव फैल गया। रथ के निकट ही खड़े तरुण संदेशवाहक की ओर उत्सुक दृष्टि से देखते हुए पूछने लगे—"क्यों आयुष्मान कपिल, तुम्हारी देवी अधिष्ठात्री तो विपुल सम्पत्ति की स्वामिनी थी न? क्या उसने उस सब कुछ का क्या किया?"

स्वामी के इस प्रश्न को सुन तरुण जैसे असमंजस में पड़ गया। और वह मानो अंतर के सारे साहस को समेटते हुए, मस्तिष्क में उत्तर की भूमिका बैठाते हुए तथा फिर एक-एक शब्द को तोलते हुए बोला—"सामन्त श्रेष्ठ, देवी अधिष्ठात्री ने अपनी सम्पत्ति का आधा भाग तो संघ को भेंट किया है औ र ।"

तरुण मध्य ही में रुक गया। इस पर वृद्ध गणसंवाहक की जिज्ञासा जैसे और उग्र हो उठी। अत्यधिक उत्सुक दृष्टि से कपिल की ओर देखते हुए व्यग्र भाव से पूछने लगे—"और आधी आयुष्मान्?"

संदेशवाहक ने पूर्ववत नत मस्तक रह, मानो साहस कर कहा—"सामन्त श्रेष्ठ, देवी अधिष्ठात्री ने आधी सम्पत्ति उत्तराधिकार स्वरूप अपनी प्रिय शिष्या दासी कन्या को प्रदान की है।"

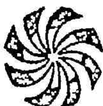
कौन दासी कन्या यह गणसंवाहक तुरन्त समझ गए। देवी आम्रपाली ने उसे मधुपर्व के अवसर पर शिव की भूमिका में नृत्य मंच पर अवतरित किया था। यह ध्यान आते ही वयोवृद्ध सामन्त सहसा क्रोधाभिभूत हो उठे। उन्होंने जैसे अपने क्षत्रिय कुल गौरव को अपमानित हुआ अनुभव किया। धमनियों में प्रवाहित होता क्षत्रिय रक्त पुलकित में उत्तेजित हो उठा, मुख तमतमा गया अंग प्रत्यंग उत्तेजित हो उठे और भृकुटी तन गई। आवावेश के कारण अवरुद्ध श्वास से उनका विशाल वक्ष स्थल भी कम्पित हो उठा। नासिकारंध्र भी फूल गए और मस्तिष्क शिराएँ क्रोधाभिभूत विचारों से तन कर फैल उठी। अंतर की इस उत्तेजना को जब उनके अंग प्रत्यंग न सम्भाल सके तो जैसे वह महाक्रोधित हो उठे। वाहन में बैठे-बैठे ही एक तीव्र पदाघात कर उनके ओष्ठ फड़ फड़ा गए और फिर वे उसके पश्चात् भी फड़फड़ाते रहे। पदाघात से विशाल वाहन बुरी तरह दहल उठा अश्व चौंक से गए, और वे आतंकित हो हिनहिना उठे हिनहिनाते रहे कि इसी मध्य मेघ गर्जन के से कड़कते स्वर में गणसंवाहक बोले—"अरे नर्तकी तेरा यह दुस्साहस! वासिष्ठा अच्छा अब मैं भी देखूं, वैशाली में सामन्त मंजदेव के रहते एक दासी कन्या किस प्रकार आर्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार का उपभोग करती है।"

तरुण संदेशवाहक स्वामी के इस रुद्र रूप को देख भय से कांप-सा गया। उनके नेत्र अभी भी अन्तर्ज्वाला से धधक रहे थे और भृकुटी तो क्रोधावेश से जैसे अब टूटी, तब टूटी।

गणसंवाहक सहसा फिर कड़कते स्वर में बोले— सारथी चलता क्यों नहीं? अरे ओ, यहाँ खड़ा-खड़ा तू किसका मुँह ताक रहा है?"

सारथी सहम-सा गया। अश्वों को कसी वल्गा मानो स्वतः उसके कंपकंपाते

हाथों में शिथिल हो गई। अश्व पूर्व से भी अधिक वेग में हिनहिनाते हुए पार्श्वस्थित से दौड़ लिए। रथ घर्र र्र से द्वार मंडप को लांघ वाटिका पथ को पार कर, मुख्य द्वार में से निकल राजपथ पर सरपट दौड़ निकला।





दो

महाश्रेष्ठी मणिरत्न ने जब यह संवाद सुना तो वह सहज ढंग से बोले—"मित्रवर चलो यह अच्छा ही हुआ कि अब सद्धर्म में श्राविकाओं का भी प्रवेश होने लगा। अन्यथा इन दिनों अभिजात कुलों से भिक्षु संघ प्रवेश की जैसी बाढ़ आई हुई है, किसी दिन वह तो हमें भी अपने साथ खींच कर ले जाती।"

यह कहते हुए महाश्रेष्ठी के मुख की झुर्रियाँ भी मुहास्य से प्रदीप्त हो उठीं। और नैन ? वे विनोद भाव की चपलता से मुस्कुरा उठे। दृष्टि सम्मुख पीठिका पर बैठे गणसंवाहक पर जा टिकी।

वास्तव में महाश्रेष्ठी आज अत्यन्त प्रसन्न चित्त थे। कारण केवल कुछ समय पूर्व ही उनके अनुप्रेषित दूत ने उन्हें एक शुभ संवाद सुनाया था। उनके एक सार्थ ने अनेक सौरेय्य नगर में पूरे दस सहस्र कार्षापणों का लाभ अर्जित कर अब मगधराज नगरी साकेत की ओर प्रस्थान किया था। यों महाश्रेष्ठी के लिए दस सहस्र कार्षापण कोई बड़ी बात नहीं थी। परन्तु उसके साथ जो सार्थवाह गया था वह अभी नया-नया ही था अतः उनके लिये यह सचमुच एक सुखद समाचार था। और इस समाचार के उत्साह में उन्होंने सिंहल द्वीप के एक सांयात्रिक से कतिपय बहुमूल्य रत्नों का भी क्रय कर लिया था। अब इन रत्नों को लेकर वह स्वयं ही वत्सराज उदयन की नगरी कौशाम्बी की ओर जाने की बात सोच रहे थे। सोच रहे थे कि चलो कदाचित्, इसी निमित्त से अवन्तिराज दुहिता वासवदत्ता के दर्शन का सुयोग मिल जाए। मन ही मन बोले—देखो कैसा कठोर है चण्ड प्रद्योत और कैसी सुकोमल है उसकी दुहिता वासवदत्ता। भला सोचो तो उनके विवाह को कितने वर्ष बीत चुके होंगे किन्तु उदयन आज भी उस पर उतना ही मुग्ध है जितना कि उज्जयिनी से पलायन के समय रहा होगा। इसी मनोरमा तरंग से मुस्कुराते हुए उनकी दृष्टि बलात् विजन करती परिचारिका की ओर घूम गई अन्तर्भाव ध्वनित हो उठा। बोले—"क्यों कपिले तूने भी तो सुना होगा कि वत्सराज आज भी वासवदत्ता के बिना एक क्षण नहीं रह पाता मानो दोनों में जैसे अभी-अभी प्रणय का प्रारम्भ हुआ हो।"

कपिला वृद्ध स्वामी के मुख से यह सुन सकुचा-सी गई। बोली कुछ नहीं। हाँ उनके उन्नत कपोलों की लालिमा अवश्य प्रगाढ़ हो गई। और वृद्ध महाश्रेष्ठी की नैन दृष्टि सरसता से हास्यपूर्ण हो उठी।

वह केवल कुछ समय पूर्व ही शयन कक्ष में आये थे कि सहसा गणसंवाहक के आने का संदेश मिल गया। इस असमय में उनके आने पर वह कुछ चौंके थे किन्तु

अपने को शीघ्र ही संयत कर जब वह उन तक पहुँचे तो उनके मुख पर वही पूर्ववत् प्रफुल्ल भाव उभर आया।

प्रासाद से प्रस्थान करते समय गणसंवाहक का जो उग्र रूप उभर आया था वह अब तक प्रकट में प्रायः लुप्त हो चुका था। हाँ मुख पर कुछ खिन्नता अवश्य दीख रही थी। कदाचित् इसी खिन्नता के कारण वह महाश्रेष्ठी को अभी तक केवल अधूरी बात ही सुना पाए थे। उनकी दृष्टि जैसे किसी जटिल समस्या की गहनता में उलझ गई। वृद्ध सामन्त की इस उलझन अवस्था को देख महाश्रेष्ठी को कुछ हँसी-सी आ गई। गणसंवाहक की जैसे तन्द्रा टूटी। सचेष्ट हो उन्होंने महाश्रेष्ठी की ओर देखा। किन्तु इसी समय महाश्रेष्ठी समुस्कान चपलता से बोल उठे—"मित्रवर यदि आम्रपाली के जाने से इतने खिन्न हो उठे हो, फिर तो यही उत्तम है कि तुम भी तथागत की शरण जा लो।"

महाश्रेष्ठी ने यह बात केवल सहज विनोद में कही थी, तो भी वह जैसे गणसंवाहक के किसी मर्मस्थल का स्पर्श कर गई। आक्रोश के से कण्ठ स्वर में वह बोले—"श्रेष्ठिवर, आपको विदित हो स्कंधावार की ओर जाते-जाते मैं यहाँ आया हूँ। क्या इसीलिए कि मेरा उपहास किया जाय?"

यह कहते हुए गणसंवाहक कुछ उत्तेजित हो उठे। साथ ही पीठिका से भी उठ खड़े हुए। फिर महाश्रेष्ठी ही भला किस प्रकार बैठे रह जाते। वे दोनों ही परस्पर बाल सखा थे। अतएव एक दूसरे के स्वभाव से सुपरिचित थे। इसी से गणसंवाहक को उत्तेजित हुआ देखकर भी महाश्रेष्ठी घबराये नहीं। वरन सहज आत्मीय भाव से हँस पड़े। आवेश सटकते अपने धवल श्मश्रु केशों को हाथ में पकड़ उन्हें सद्यस्क सामन्त के नेत्रों के सम्मुख फैलाते हुए बोले—"मित्रवर! कुछ इनकी ओर भी ध्यान दो। वैशाली के तरुण जब यह सुनेंगे कि वयोवृद्ध गणसंवाहक आम्रपाली के चले जाने पर खिन्न मन हो उठे हैं तो भला क्या वे हँसे बिना रह जाएँगे? क्या अब भी हमारी ऐसी अवस्था रह गई है कि किसी रूपसी के पीछे निराशा से इतने उदास हो उठें। फिर, साथ ही गणसंवाहक सदृश यह दुर्लभ गौरवास्पद पद उसकी मान रक्षा भी तो।"

"तभी तो इतनी चिन्ता है महाश्रेष्ठी!" गणसंवाहक ने वक्ष में रुकी श्वास बाहर छोड़ते हुए तत्परता से कहा। दृष्टि नत ही रही।

किन्तु इस बार भी गणसंवाहक के मुख को उदासी से भटका हुआ देख महाश्रेष्ठी फिर हँसने को उद्यत हो उठे। पर इस बार वह प्रकट में नहीं वरन मन ही मन हँस कर रह गये। ऊपर से यथावत गम्भीर भाव दिखा बोले—"मित्र सामन्त! महाश्रेष्ठी कोई मूर्ख नहीं। क्या वह इतना भी नहीं समझता कि गणसंवाहक की यह चिन्ता सर्वथा उचित ही है। वैशाली में जब पीठिका की अधिष्ठात्री का पद श्रीहीन हो जाए और सामन्त श्रेष्ठ गणसंवाहक को उसकी चिन्ता तक न हो भला यह कैसे सम्भव है?"

सहसा वह ठमक कर और कुटिल दृष्टि से गणसंवाहक की ओर देखा। गणसंवाहक की मुख मुद्रा इस समय उदासी की सीमा को लांघ किसी गूढ़ समस्या की गहनता में उलझ चुकी थी। महाश्रेष्ठी कुछ क्षणों तक तो ध्यान से उनकी मुख रेखाएं को देखते रहे फिर बोले—"सम्भवतः! स्मरण है गत बार जब देवी चित्रार्पिता

अकस्मात निधन से यह पद रिक्त हो उठा था तो उसकी पूर्ति के लिए आपको कितना भीषण संघर्ष करना पड़ा था। यह तो मात्र भवितव्य की कृपा हुई कि आपका यह प्रयास सफल हो गया। अन्यथा पग-पग पर कितनी भारी निराशा का सामना करना पड़ रहा था। निस्सन्देह यह आपका ही सतत प्रयास था कि वैशाली के इस पद पर आयुष्मान महानाम कन्या आम्रपाली सदृश कलश और नृत्य विशारदा आरूढ़ हो सकी। परन्तु देखो तो यह भी एक ही विडम्बना रही। इसे पाकर जहाँ एक ओर गण महानगरी का जनसाधारण 'धन्य धन्य' कह उठा वहाँ कुलीन अभिजात वर्ग उपकृत होकर भी अपना माथा ठोकता रह गया। वास्तव में आम्रपाली को अभिषेक की वेदी पर बैठे देख उसकी रूप छटा को निहार, वह जितना हर्षित हुआ अभिषेक के पश्चात् उसकी प्रथम घोषणा पर वह उतना ही क्षीण उठा। परन्तु इससे क्या? सामन्त श्रेष्ठ वैशाली में अभिजात् कुल हैं ही कितने जो उनकी चिन्ता की जाए।" कहते-कहते वह पुनः रुक गये। और फिर, कुछ रहस्यपूर्ण दृष्टि से गणाध्यक्ष की ओर देखते रहे।

वास्तव में हुआ यह था कि महानाम कन्या आम्रपाली ने कला पीठिका के अधिष्ठात्री पद पर अभिषिक्त होने के तुरन्त पश्चात् ही घोषणा की थी कि उसका नृत्य केवल अभिजात वर्ग तक ही सीमित न रह समान रूप से जनसाधारण के लिए भी होगा। उसने कहा था— अपनी सभी पूर्वाधिकारिणियों के विपरीत कला धर्म की यह अकिंचन सेविका आम्रपाली पीठिका की पूर्व परम्परा का परित्याग कर, अभिजात वर्ग एवं सर्व साधारण का मन में कोई भेद विचार न रख सभी के लिए अपना नृत्य प्रस्तुत करेगी।

तब उसकी इस अभूतपूर्व घोषणा पर जन-साधारण हर्षोल्लास से करतल ध्वनि कर उठा था। परन्तु, अभिजात वर्ग के सभी जन इस पर क्षुब्ध हो उठे। उसने एक निश्चय और भी किया था। उसने कभी अपने इस निश्चय की विधिवत् घोषणा तो नहीं की थी फिर भी अभिजात वर्ग के जन उसे समझने में असमर्थ नहीं रहे। वह पूर्णतः अवरोध में रहती थी। और देवी आम्रपाली के इस निश्चय का भंग करने की दिशा में श्रेष्ठियों अथवा सम्पन्न सामन्त जनों के एक एक कोटि कार्षापणों के प्रलोभन भी निष्फल सिद्ध हुए थे।

अतएव, महाश्रेष्ठी इस समय क्या कुछ कह रहे थे और उनका क्या गूढ़ प्रयोजन था गणाध्यक्ष उस सभी को भलीभाँति समझ रहे थे। महाश्रेष्ठी का एक-एक शब्द उनके मर्मस्थल पर तीव्र आघात कर रहा था। परन्तु जिस निमित्त वह आए थे उस दिशा में भी वह पूर्णतः सचेष्ट थे। अतः सब कुछ ही तो वह केवल मौन भाव से सहन करते रहे। अन्त में विनम्रता की साक्षात् मूर्ति बन वह बोले—"महाश्रेष्ठी वह निस्सन्देह जीवन की एक भयंकर भूल थी। परन्तु मेरी जिस अबोधता वश वह भूल हो गई क्या उसके लिए मुझे जीवन भर क्षमा नहीं किया जा सकेगा?

गणाध्यक्ष के अवनत ऊपर उठ महाश्रेष्ठी के मुख पर जा केन्द्रित हुए। उन्हें मर्माहत हुआ देख महाश्रेष्ठी ने अब प्रसंग बदलना ही उचित समझा। बोले— सामन्त श्रेष्ठ न जाने क्यों अब गणशासन अधिकारियों में इतना प्रमाद आ गया है। देखा तो मुख्य प्रधान का यह पद कितने महीनों से रिक्त चला आ रहा है परन्तु, गणाध्यक्ष राजा चेटक, महाबलाधिकृत सिंह सभी तो इस ओर से

उदासीन प्रतीत होते हैं। क्या उस पद के लिए अब महानगरी वैशाली में कोई भी योग्य युवक नहीं रह गया?

यह कह वह तनिक रुके और फिर तत्परता से अपना मुख गणसंवाहक के कानों के अत्यन्त समीप ला बोले—"बन्धुवर अपने अभिजात समाज के कई वरिष्ठ जनों का तो यह मत है कि आयुष्मान प्रचण्ड को ही क्यों न उस पद पर नियुक्त कर दिया जाय। छ मास की अवधि बीत जाने पर फिर निर्वाचन हो ही जायेगा। क्यों क्या आर्य की दृष्टि में वह पद आयुष्मान के योग्य नहीं है?"

प्रचण्डदेव सामन्त मंगदेव का ही एक मात्र पुत्र था। परन्तु, आज जब इस प्रसंग विशेष में अनायास ही उसका नाम आया तो उसे सुन वह उल्लसित न हो सके उलटे व्यथित हो उठे। उनकी वह अन्तर्व्यथा मुख पर भी स्पष्ट रूप में प्रतिबिम्बित हो उठी। अतः कुछ बोझिल कण्ठस्वर में बोले—"बन्धुवर किसी भी क्षत्रिय कुमार के लिए यह तो सचमुच ही गौरव की बात होती। जिस नगरी के ऐश्वर्य को देख स्वर्ग के देवता भी ईर्ष्या करें उसकी रक्षा का भार जिस किसी भी क्षत्रिय कुमार को सौंपा जाय भला उससे बढ़ कर सौभाग्यशाली और कौन होगा। पर महाश्रेष्ठी कदाचित् यह नहीं जानते कि आयुष्मान् प्रचण्ड कितना महत्त्वाकांक्षी है।

महाश्रेष्ठी तत्परता से बोल उठे—"यह तो सामन्त श्रेष्ठ का निस्सन्देह ही धन्य कुल गौरवोचित सहज संकोच है अन्यथा आयुष्मान अपने सभी समवयस्कों से कहीं अधिक प्रतिभावान है। रही महत्त्वाकांक्षा की बात यह भी भला कोई अवगुण है। यह तो निश्चित ही एक दुर्लभ गुण है। फिर, अभी भला उसकी वयस ही क्या है। उदीयमान है अतएव महत्त्वाकांक्षा का होना अनिवार्य है और फिर आर्य महत्त्वाकांक्षा भला किस में नहीं होती? तनिक मेरी ओर तो देखो। पूरे अस्सी मधु पर्व देख चुका हूँ फिर भी जब मेरा सार्थ पश्चिमोत्तर राष्ट्रों अथवा सुदूर पूर्व दिशा के द्वीपों से दस लक्ष कार्षापण अर्जित कर लौटता है तो उस समय मेरी इच्छा पूरे एक कोटि कार्षापणों के लिए बलवती हो उठती है।"

गणसंवाहक कुछ गम्भीर कण्ठस्वर में बोले—"परन्तु महाश्रेष्ठी यह महत्त्वाकांक्षा कुछ ऐसी है जिसमें वैशाली की श्रीवृद्धि निहित है और दूर दिगंत में उसकी जय पताका फहराती है और यह ...।"

गणसंवाहक का कण्ठस्वर सहसा अत्यधिक बोझिल हो अवरुद्ध हो गया।

महाश्रेष्ठी सोचने लगे— विपुल सम्पत्ति का स्वामी यह सामन्त भी सचमुच कितना अभागा है। सन्तान के नाम पर केवल एक पुत्र है और उससे भी वह प्रसन्न नहीं या फिर वही निर्भीक उसे प्रसन्न रखने में असमर्थ रहा है। असंभवतः आप उसके नाम पर अपने मित्र को व्यथित हुआ देख महाश्रेष्ठी फिर विषयान्तर के लिए जैसे बाध्य हो गये। परन्तु सोचने पर भी जब उन्हें कोई निरपेक्ष रोचक प्रसंग नहीं मिला तो विवश हो मौन रखना ही श्रेयस्कर समझा।

इसके पश्चात् कक्ष में कुछ समय के लिए मौन छाया रहा। अन्ततः इस निस्तब्धता को भंग किया स्वयं गणसंवाहक ने। कदाचित् वह भी मौन बने रहते परन्तु संथागार सत्र के लिए पर्याप्त विलम्ब हुआ देख वह उस ओर प्रस्थान करने के

लिए व्यग्र हो उठे। फिर भी प्रस्थान से पूर्व वह महाश्रेष्ठी से इस नवोत्पन्न स्थिति पर कुछ परामर्श कर लेना अनिवार्य समझते थे। महाश्रेष्ठी वैशाली के सर्वसंगठित अभिजात समाज के अधिष्ठाता थे अतएव उनसे इस स्थिति विशेष पर बातें कर लेना और भी अनिवार्य था। बोले—"महाश्रेष्ठी को यह तो विदित ही है कि आम्रपाली विपुल सम्पत्ति की स्वामिनी थी ?"

महाश्रेष्ठी उत्साह का सा भाव दिखाते हुए तत्परता से बोल उठे—"हाँ भली भांति जानता हूँ सामन्त श्रेष्ठ।" यह कह वह तनिक रुके फिर पूर्व से भी अधिक उत्साह के साथ बोले—"यदि आर्य की उसमें रुचि हो तो उसका अवश्य क्रय करें। मैं उसमें अवश्य ही यथासम्भव सहयोग प्रदान करूंगा।"

गणसंवाहक इस पर तनिक हंसते हुए बोले—"महाश्रेष्ठी ऐसी तो मेरी कोई रुचि नहीं। तो भी आर्य ने सहयोग का जो आश्वासन दिया वह निश्चित ही मेरा परम सौभाग्य है। परन्तु उसके क्रय की सामर्थ्य यदि वैशाली में किसी की है तो वह महाश्रेष्ठी के अतिरिक्त और कोई नहीं। केवल महाश्रेष्ठी ही तो उसके लिए योग्य पात्र हैं।"

महाश्रेष्ठी तनिक उपेक्षा का सा भाव दिखाते हुए बोले—"सामन्त श्रेष्ठ उसमें तो मेरी लेशमात्र भी रुचि नहीं। कम भी हो मित्रवर, है तो वह एक गणिका की ही सम्पत्ति।"

"तो फिर उसमें क्या हुआ महाश्रेष्ठी आम्रपाली को अपनी इस सम्पत्ति का अधिकांश भाग तो अपने पिता नायक महानाम से ही उत्तराधिकार में मिला था। फिर बन्धु महाश्रेष्ठी इसके अतिरिक्त एक बात और भी तो है। देश देशान्तरों में दास-दासियों के क्रय विक्रय से अर्जित धन राशि से भी क्या उसकी यह सम्पत्ति अथवा उपहारों में मिले बहुमूल्य रत्नाभूषण एवं मणि मुक्ता मालाएँ अधिकतर न होंगी। महाश्रेष्ठी जानते हो उसका एक-एक रत्नाभूषण दस-दस सहस्र स्वर्ण कार्षापणों के मूल्य का होगा। देश देशान्तरों में जा कर यदि उसका विक्रय करो तो बस सर्वत्र कार्षापण ही कार्षापण समझो।"

रत्नाभूषणों का प्रसंग आते ही महाश्रेष्ठी के नेत्र जैसे उनकी आभा से दीप्त हो उठे। मस्तिष्क में कौशाम्बी जाने की कल्पना फिर उभरने से लगी। इस बार वह अपने मनोभाव को दबाने में पूर्णतः असमर्थ रहे। बोले—"सामन्त श्रेष्ठ क्या देवी आम्रपाली की चल सम्पत्ति का मूल्य कितने कार्षापण होगा ?"

इतनी शीघ्रता से महाश्रेष्ठी का मत परिवर्तित होते देख गणसंवाहक हंसे बिना नहीं रहे। उन्मुक्त हास्य से उनकी शुभ्र दन्त पंक्ति चमक उठी। बोले—"परन्तु महाश्रेष्ठी इस मूल्यांकन की अब आप किंचित भी चिन्ता न करें। आपकी देवी आम्रपाली उसकी ऐसी अच्छी व्यवस्था कर गई है कि महाश्रेष्ठी को दासों के क्रय विक्रय से ही सदा-सदा के लिए निवृत्ति मिल जाएगा।"

इस पर महाश्रेष्ठी ने आश्चर्य पूछा—"सो कैसे सामन्त श्रेष्ठ ?"

गणसंवाहक ने इसका प्रत्यक्ष उत्तर न दे कहा—"महाश्रेष्ठी उसने अपनी सारी सम्पत्ति भिक्षुसंघ को दान भी कर दी है।"

"फिर भी आधी तो बची ही सामन्त श्रेष्ठ।" महाश्रेष्ठी ने मानों भारी सन्तोष का अनुभव करते हुए कहा।

गणसंवाहक ने इसका तत्परता से कुछ उत्तर न दे मौन रखा। जैसे कुछ सोच रहे हों। उन्हें इस प्रकार मौन देख महाश्रेष्ठी की उत्सुकता अथाह हो उठी। घबराये मन से पूछने लगे—"और आधी सम्पत्ति का क्या हुआ आर्य ?"

महाश्रेष्ठी की इस उत्सुकता को देख गणसंवाहक खिलखिला उठे। बोले—"आधी महाश्रेष्ठी ? जानते हो उसने आधी सम्पत्ति का क्या किया ? वह उसने अपनी उसी छिन्ना दासी-कन्या को दे दी है जिसे उसने ।"

गणसंवाहक अभी आधी ही बात कह पाये थे कि महाश्रेष्ठी हतप्रभ हुए कुछ कहने को उद्यत हो उठे। परन्तु, इस बार उनका मुख केवल खुला ही रह गया। जिह्वा जैसे बन्द हो गई।

महाश्रेष्ठी की यह दशा देख गणसंवाहक एक उच्च ठहाका दे हँस पड़े हँसते रहे। उनकी इस हँसी से सारा कक्ष भर गया और फिर हँसते हुए ही संथागार की ओर चल पड़े। किन्तु दो एक पग चलने के पश्चात् रुक रहे। पर इस समय उनके मुख पर अट्टहास की फूहड़ हँसी नहीं वरन् यथोचित गाम्भीर्य था। उसी गम्भीरता के कण्ठस्वर में बोले—"महाश्रेष्ठी देखा इस महानाम कन्या ने वैशाली के सम्मुख कैसी जटिल समस्या उत्पन्न कर दी है। हमें उस पर विचार करना ही होगा। अत यदि आज रात्रि में ही समाज के अन्तरंग सदस्यों की गुप्त मन्त्रणा हो तो कैसा है ?"

महाश्रेष्ठी उत्तर में बोले—"सामन्त श्रेष्ठ क्या यह भी पूछने की बात है।"

गणसंवाहक ने फिर प्रश्न किया—"और महाश्रेष्ठी स्थान के लिए मेरा आवास कैसा रहेगा ?"

महाश्रेष्ठी ने उत्तर में कहा—"निश्चित ही वह उचित रहेगा आर्य।"

"तो फिर सब सदस्यों को सूचना देना अब आपका कार्य है।"

गणसंवाहक के पीठ देते ही महाश्रेष्ठी की सूक्ष्म दृष्टि में घृणा की तिक्तता उभर आई। फिर उसी दृष्टि से वह गणसंवाहक की ओर देखते रहे। गणसंवाहक आँखों से ओझल हो गए परन्तु उसके पश्चात् भी वह महाश्रेष्ठी की आँखों में टिके रहे कुछ सोचते भी रहे।





तीन

और, टन्न टन्न का गम्भीर स्वर टंकारता गण संथागार का भीमकाय कांस्य घड़ियाल तीन बार बज उठा।

ग्रीष्मकाल की इस सन्ध्या में और दिनों गण महानगरी की एक वीथी विशेष निर्जीव-सी मौन सोई पड़ी रहती थी। परन्तु आज उसमें निरन्तर बढ़ते आ रहे जन प्रवाह के कारण गति है तथा उस गति के कारण कोलाहल भी। कोलाहल सुन शयन कक्षों में विश्राम करती वारांगनाएँ चौंक-सी गईं। हड़बड़ा कर वे मखमल शय्याओं से उठ खड़ी हुईं तथा उसी अर्धनग्न अवस्था में अपने अस्त-व्यस्त वस्त्रों को समेटती-सी गवाक्षों की ओर दौड़ लीं। और फिर, कौतूहलवश छज्जों पर आ बैठीं।

पौरजनों का प्रबल प्रवाह इस समय अबाध गति से पश्चिम दिशा की ओर अग्रसर था।

सागर में उफनते ज्वारों की भाँति जन-समुदाय प्रतिपल ही अधिकाधिक आवेग के साथ उमड़ता दीख रहा था। उन्होंने अपनी इस वीथी में दिन के समय इससे पूर्व इतनी भारी संख्या में पौरजनों को आते कदाचित् ही देखा होगा अतः उन सभी का कौतूहल का होना स्वाभाविक था। छज्जों पर बैठे-बैठे ही उन्होंने विस्मय से वीथी के आर-पार परस्पर एक दूसरे की ओर देखा। उनके मुख पर क्षण-क्षण के अन्तर से विविध भाव भंगिमाएँ क्रीड़ा करने लगीं। नेत्रों को तथा ओष्ठों को तनिक सिकोड़ते हुए उन्होंने उस जन-प्रवाह की ओर देखा जिसे इस समय उनकी ओर देखने तक का भी जैसे अवकाश नहीं था। रसिक पौरजनों की इस वीतरागता पर वे यदाकदा खिलखिला भी उठतीं। इस पर जन प्रवाह में बहे जा रहे इक्के-दुक्के व्यक्ति की दृष्टि हठात् उस ओर उठ जाती पर साथ ही अवसर बोध की लज्जा से नत हो रहती।

और इसी वीथी के बीच ही मधुकरश्रेणी नगर शोभिनी कला की अधिष्ठात्री देवी आम्रपाली की वैभवशालिनी नीलवर्णी, सप्तभूमीय उच्च अट्टालिका गर्व से ग्रीवा ऊपर उठाये खड़ी थी। और, स्वर्ण कलशों से युक्त कला कुल गौरव आभा से दीप्त उसके उन्नत ललाट पर इस समय भी एक धार्मिक कौशेय धवल पताका पवन झोंकों से फहरा मानो देवी अधिष्ठात्री के कला कौशल का यशगान गुनगुना रही थी।

केवल कल तक ही तो इसी अट्टालिका के विस्तृत प्रांगण में नित्य संध्या समय में वैशाली का नृत्य समाज जुड़ा करता था। इसमें न केवल नगर का अभिजात्य वर्ग एवं जन साधारण समाज का ही सम्मिलित होता था वरन् दूर दिगंत से सामन्त श्रेष्ठ एवं कला रसिक जन भी इस ओर खिंचे चले आते थे। अतः संध्या ही तो

सोपारा जनपद के महाश्रेष्ठी सुप्पारक ने उसके चरणों पर अपने बहुमूल्य मणि मुक्ता कण्ठहार को अर्पित कर, अभिभूत कण्ठ से कहा था—"क्षमा देवी! मेरे विकट अभियानों की विजय पर प्रसन्न हो स्वयं समुद्र-देवी देवी मणिमेखला ने एक नहीं अनेक बार मेरे इन नेत्रों के सम्मुख नृत्य किया है। परन्तु वे सभी काल्पनिक ही तो थे। देवी! और उन्हें आज मैं यहाँ साकार रूप में देख सचमुच धन्य हो गया हूँ।"

सुप्पारक ने तब इसे अपना केवल एक सुयोग ही समझा था। परन्तु वैशालिकों के सम्मुख तो वह प्रतिदिन ही प्रस्तुत होती थी। तथापि उसका नृत्य नूतनता लिए होता। प्रतिदिन संध्या बेला में जिस क्षण वह शुभ्र हिमधवल झीने परिधान में रत्न-जटित स्वर्णाभूषण बाहु बंधन कटि मेखला एवं दीप्त मणिमुक्ता हार आदि अलंकारों से अलंकृत हो नूपुरों की धीमी सहज तालपूर्ण ध्वनि एवं सरस झंकार के मध्य हंस युगल की सी मंद गति से दर्शनोत्सुक समुदाय के सम्मुख प्रकट होती तो सारा प्रांगण उस समय हर्षातिरेक की गुंजन ध्वनि से गूंज उठता। और फिर, उसी उत्साह के प्रवाह में पर्याप्त समय तक गुंजायमान रहता।

फिर इस गुंजन ध्वनि के मंद होते ही जब वह सुरक्षित नृत्य मंचिका पर छम्म-छम्म कर नृत्य रचती सी अपनी लम्बी पैनी सुगोल अरुणिम भुजाओं पर श्वेत उत्तरवस्त्र के पल्लों को फैलाती-सी उन्मन भाव से आगे बढ़ती तो मंद गति से प्रवाहित होते वायु के झोंकों का स्पर्श पा वे फरफरा उठते। तत्क्षण वह ऐसी प्रतीत होती कि ऊपर नभ-मण्डल में पूर्णेन्दु के चारों ओर गतिमान निर्मल धवल रुई-जैसे सघन बादलों के मध्य से प्रसूत कोई देव कन्या अपने श्वेत पंखों के सहारे, धीरे-धीरे भूतल पर अवतरित हो रही है। दर्शक समाज चित्रलिखित-सा उस ओर निहारता रहता निहारता रह जाता तथा अन्त में सहसा उसके मध्य हर्ष की एक अथाह लहर दौड़ जाती। साथ ही 'साधुवाद-साधुवाद' अथवा 'अनुपम अनुपम' की गुंजन ध्वनि से सारा नभ-मण्डल अनुप्राणित हो जाता।

तत्पश्चात् वह क्षमाप्राण सस्मित वदन अंजलिबद्ध हो दर्शक समाज के सम्मुख अभिवादन के लिए प्रस्तुत होती। तब अन्तस के विनीत भाव से अवनत लतिका सदृश उसकी सुकोमल कांचन देह विशेष ध्यान देने योग्य होती। अभिवादन की मुद्रा में उसकी कटि रेखा पर उसका ऊर्ध्व भाग पुष्पभार से झुकी मालती मञ्जरी की भाँति अवनत हो रहता और उसके अन्तर का सारा विनीत भाव मानो साकार रूप में प्रस्तुत हो दर्शकों के अन्तस्तल का स्पर्श कर जाता। इस सारी अवधि वे श्वास रोके इस भय से उसकी ओर देखते रहते कि कहीं उसका अधोमुख कम्पायमान लतिका विच्छिन्न पल्लव की भाँति नृत्य मंचिका पर न आ गिरे। बैठे-बैठे ही वे उसके सुकोमल अङ्गों को अपनी प्रसारित बाहुओं में सम्हालने के लिए उद्यत हो उठते परन्तु फिर शीघ्र ही सावधान हो दर्शक समाज मृदुल कण्ठों से "धन्य-धन्य" का उच्चारण करता नतमस्तक होता उसके इस विनम्र अभिवादन को स्वीकार कर उठता। इसी मध्य मृदंग पर एक ओर की थाप पड़ती जिसकी ध्वनि के इंगत पर वह सहसा हरिणी की सी चपलता से सम्हल खड़ी हो जाती। और इस अभिनय विधान से सहसा उसके ग्रीवा भाग पर जो एक लचका सा लग रहता उससे छिहर उसका सुगन्धित श्यामल

स्निग्ध केशों का जूड़ा सहसा विसर्जित हो कतिपय अलकों में छिटक रसाभा से दीप्त कर्ण कपोलों के आस-पास मण्डराने लगता। नितम्बों का स्पर्श करती उसकी लम्बी, काली, बल खाती मस्त वेणी एवं शीर्ष पर बिखरी श्यामल अलकों के मध्य उसका गौर, आभा दीप्त मुख मण्डल ऐसा प्रतीत होता मानों वर्षाऋतु में नभ पर तैरते सघन कारे-कजरारे मेघों को छिन्न विछिन्न करता मयंक सहसा बाहर खिसक आया हो। और उसके स्मितमय ओष्ठों पर मुस्कान की एक निर्मल रेखा सी खिंच रहती।

मृदंग पर फिर एक बार पड़ती। और, उसी के साथ इस बार वीणा के तार झंकृत हो उठते। वेणु के हृदय से भी करुण स्वर में कोई मदमाता राग फूट निकलता तथा फिर उसके साथ दीप वाद्य भी परस्पर स्वर-ताल मिलाते हुए उसमें सम्मिलित हो जाते। देवी आम्रपाली के सहज कर में थिरकते पैर तथा उनमें बंधे किंकरण धीमे-धीमे नृत्य को गति देने लगते वाद्य यन्त्र से प्रस्फुटित स्वरों के आरोह अवरोह के साथ गति में प्रवाह आता चलता तथा उसी के साथ-साथ दर्शक समाज का मनमयूर भी प्राणोच्छ्वास से तरंगित होने लगता। किञ्चित् समयोपरान्त जब नृत्य अपने पूरे प्रवाह वेग में आता तो देवी आम्रपाली की थिरकती छरहरी देह सूक्ष्म पक्षान्त में पवन के झोंकों के साथ क्रीड़ारत ज्योत्स्ना रेखा के समान प्रतीत होने लगती। धीमे परिमाण में से उसकी रूप छटा छिटक-छिटक स्वच्छन्द रूप से दर्शकों के सम्मुख बिखर जाती। और, अन्त में विद्युत गति से होता उसका भ्रमण वामन कटिप्रदेश पर आकर केन्द्रीभूत हो रहता। दोलायमान नितम्बों के चंचल गति क्रम से उसका रोम रोम स्फुरित हो उसके अंग प्रत्यंग को स्पन्दित कर देता। तब, नृत्य और गतिमान होता चलता।

फिर भावाभिभूत उसका एक-एक अंग अधिकाधिक मुखरित हो दर्शक समाज के सम्मुख प्रस्तुत होने लगता। कपोल पहले से भी अधिक अरुणिम हो उठते। उसके मस्तक और नासिकाग्र भाग पर स्वेद कण उभर आते। ओष्ठ तरल हो रहते। और, फिर अपनी ही रूप सुषमा पर मानों प्रसन्न हो नैन मन्द-मन्द मुस्करा देते। तब केशपाश पर अटका शुभ्र पुष्प भी अपने स्थान से खिसक उसके चरणों में आ बैठता। और, इस सारी अवधि नृत्य का अतिक्रम और भी अधिक वेग से चलता रहता।

अस्तु:, स्वेदकण एक प्रवाह में ढुलक भ्रू रेखाओं को पार कर कपोलों पर उतर, अब तक बिखरी अलकों को सिंचित करते से—ओष्ठ कोरों पर सहम—स्थिर हो रहते तो तब यही प्रतीत होता कि उसकी रूप-सुषमा सावन प्रभा से प्रभावित हो, स्वयं कामदेव ने उसे मदमत्त रूप में संवार, संवार कर बस देखते दिखाते रहने भर का कठोर व्रत लिया है। उसकी सघन श्यामल ग्रीव केश छटा के मध्य प्रदीप्त भालस्थ मोती, कसौटी पर खिंची कान्तिमान स्वर्ण रेखा की भाँति दर्शकों को सहज ही में अपनी ओर खींच लेती।

और जब नृत्य प्रवाह के पूर्ण वेग के मध्य मृदंग पर सहसा पड़ी एक चोट की थाप के साथ नृत्य देवी सहसा थिरक स्थिर हो जाती तो सारा प्रांगण 'साधुवाद-साधुवाद' के मधुर कोलाहल से गूंज उठता। और फिर दर्शक समाज मन्त्र मुग्ध हुआ सा

उसके रूप-लावण्य को मन ही मन सराहता, उस पर पुष्प पंखुड़ियों की वर्षा कर देता।

मणिमी औषध फाटक में से पारदर्शित होती उसकी गौरवर्ण स्फटिक भुजाएँ संवरे, कटे छटे स्निग्ध कदली स्तम्भ की भाँति प्रतीत होती।

कुछ समय पूर्व ही विधिवत केशों से उसके उपके-उपके मधमय सब नृत्य पवित्र होने पर शिथिलता वश कुछ नया ही रूप ग्रहण कर लेते। वक्षस्थल पर कसा सचेष्ट कौशेय पट्ट भी अंग चालन के कारण अपने स्थान से कुछ खिसक रहता। और तब, उच्छ्वास निश्वास के प्रतिक्रम में सिमटते-उभरते उरोज युगल से सहसा जो सलिल रस धार-सी फूट निकलती और फिर वह दर्शक वृन्द की दत्तचित्त दृष्टि का स्पर्श कर आगे बढ़ती तो सभी के ओष्ठ मानस्वातिरेक का रसास्वादन कर तरल हो उठते।

देवी आम्रपाली के नृत्य कौशल के प्रति समुचित समादर भाव होते हुए भी सभी आबाल-वृद्ध वैशालिकों के हृदय उसकी कमनीय देह तथा उस पर उभरे हुए उरोज युगल को अपने आलिंगन पाश में समेटने के लिए लालायित हो उठते। उसके स्निग्ध मधु ओष्ठों के पराग पर उनके मन भ्रमर की भाँति मण्डराने लगते। तब वे उसकी नित नूतन यौवन छटा से पराभूत हो, कल्पना तरंग में उसके चिबुक को तनिक ऊपर उठा क्रीड़ा रत हो उसके रक्तिम कपोल पर एक हल्की सी चपत लगाते और फिर मन ही मन 'देवी तुम सचमुच कितनी सुन्दर हो' कहते हुए उसके नेत्रों में झाँक उठते। और फिर वे उस रूपसी के स्थिर नेत्रों में उभरी मादकता का अवलोकन कर उस पर उन्मत्त हुए बिना न रहते। परन्तु, देवी आम्रपाली केवल अंगुलि के इंगित पर सदा ही, सभी को दूर रखती।

दर्शक वृन्द पर उसका अदृश्य दृढ़ आदेश चलता था। और कदाचित ही कभी, किसी ने उसके निकट आने का साहस किया होगा।

कला की अधिष्ठात्री गणनर्तकी रूपसी देवी आम्रपाली के केवल नृत्य समाज में ही नहीं वरन् समूची अट्टालिका की विस्तृत परिधि में अनुशासन का दृढ़ता से पालन होता था। तथापि वह सभी की हृदयप्रिया थी।

रूप और गुणों के कारण वैशाली समाज में उसका विशिष्ट स्थान था। वह रथ अथवा शिविका आरूढ़ हो जिस किसी भी नगर भाग से निकल जाती दर्शन की इच्छा से पीछे-पीछे भागती जन साधारण की भारी भीड़ तथा उसके सोत्साह कण्ठों से उच्च स्वर में निकले जय-जयकार, यह सारा दृश्य सहज ही में एक शोभायात्रा का रूप ग्रहण कर लेता।

अतः आज जब पौरजनों ने यह सुना कि उनकी हृदयेश्वरी ने राग रंग एवं कलाधर्म का परित्याग कर वैराग्य मार्ग का अनुसरण किया है तो उनके नेत्रों के सम्मुख घोर निराशा का अन्धकार छा गया।

बौद्ध भिक्षुणी बनने से पहले वे कम से कम एक बार और, जी भर कर उसकी रूप छटा का दर्शन कर लेने को आतुर हो उठे।

सप्तभूमि अट्टालिका का जो मुख्य प्रवेश द्वार सन्ध्या समाज के अतिरिक्त सदा ही बन्द रहा करता और किसी के माथा सिर पटकने पर न खुल पाता था आज

वहीं इस मध्याह्न वेला में उन्मुक्त भाव से मानों अपनी लम्बी भुजाएँ फैला खिन्न मन वैशालिकों को अपने आलिंगन पाश में समेटने के लिए आतुर हो उठा।

घोर प्रतीक्षा के पश्चात् मध्य में तथागत भिक्षु मण्डली से घिरे मुख्य द्वार से बाहर निकले। दर्शन आतुर जन समुदाय में हर्ष की लहर दौड़ गई और असंख्य कण्ठों से निकला गगन को प्रकम्पित करता जयघोष गूंज उठा।

ज्येष्ठ मास की कड़ी धूप इस तीसरे प्रहर में भी अपने प्रचण्ड रूप में थी। साधारणतः किसी भी व्यक्ति के लिए उसमें बाहर निकलना असम्भव था। किन्तु सभी उसकी किंचित्मात्र भी चिन्ता न कर उत्साहोल्लास का अनुभव करते हुए खड़े थे। इस समय सभी की दृष्टि एक बिन्दु पर ऐसे बिन्दु पर जिसमें कि मानों अनन्त लहरा रहा हो स्थिर थी। निर्निमेष हो वे सम्मुख की अलौकिक रूप छटा को निहार रहे थे। वृहद् भिक्षु समुदाय के मध्य तथागत की मुख आभा उसी प्रकार प्रतीत हो रही थी जैसे वैशाख पूर्णिमा की रात्रि का पूर्ण चन्द्रमा मेघोन्मुक्त निर्मल नीले नभ वितान पर जग-मग छिटके तारकगण के मध्य अपनी आलोक छटा के साथ ज्योतिर्मय होता है। उनकी भव्य सौम्याकृति एवं प्रबुद्ध दीर्घ-शिराओं से प्रस्फुटित ओजपूर्ण तथा स्वर्णिम रेखाएँ, तथा फिर, उनसे स्वतः सृष्ट वृत्ताकार प्रभामण्डल से प्रसूत आलोक किरणों ने जब नयन मार्ग से प्रवेश कर जन-जन मन के अन्तः छोर का स्पर्श किया तो उनसे उनकी भवबाधा उसी प्रकार नष्ट विनष्ट हो उठी जैसे शुक्ल पक्षान्त की सन्ध्या बेला में प्राची दिशा से नवोदित नभ-शोभा सुधाकर प्रखर दिवस की तपन और उभर आगत रात्रि के अन्धकार को अपने अन्तर में समेट समूचे भूमण्डल पर शीतल प्रकाश की स्वर्णिम कण कणिकाएँ छिटका देता है।

सभी के मुख रात्रि में खिले कुमुद पुष्प की भांति मुखरित हो उठे।

सहसा नागरिकों की दृष्टि बलात पीछे-पीछे आती भिक्षुणियों पर जा टिकी। शास्ता के पीछे आता भिक्षुणी संघ इस भीषण ग्रीष्म में भी निपट नग्न पैरों तप्त वीथी मार्ग को विराग भाव की सी मन्द गति से शास्ता आगे बढ़ता चला जा रहा था। उनके केश-विहीन नग्न-सिरों पर आकाश की ओर से फटकारें लेती प्रचण्ड सूर्य-किरणें फुंकार रही थीं। परन्तु उस ओर भी जैसे उनका कोई ध्यान नहीं था। वे तो केवल वैराग्य की साकार मूर्ति बनी सर्वथा अविचलित रह, निर्लिप्त भाव से निश्चय की दृढ़ता के साथ बस आगे बढ़ी चली जा रही थीं। जैसे उन्होंने जो कुछ भी कठोर व्रत लिया था उसके प्रभाव में उनका न तो उन फुंकारों से ही कोई सम्बन्ध था और न ही उस कौतूहल से जो इस समय तक दर्शक नागरिकों की दृष्टि में इन सीमन्तिनियों को देख-देख स्थिर हो गया था। नागरिक अतः विस्मय से निस्तब्ध हुए उनकी ओर देखते रहे। देख रहे थे उन पीत चीवरों को जिन्होंने उनकी सब स्फुरित सभी भाव अभिमानों और मनोभावनाओं को समेट केवल वीतराग के प्रति समर्पित कर दिया था और इस प्रकार पटाक्षेप हो गया था उनके उस यौवन अध्याय पर जो अभी राग रंग से ओतप्रोत रहा होगा। नागरिकगण मन ही मन आर्तनाद कर कह उठे—'अरे, ऐसा क्या था वह भाव इन्द्र जिसने इन सभी आगार वासिनियों को सहज ही में वैराग्य पथ की ओर प्रवेश दिया; और कैसा है रे यह

अलौकिक तथागत-धर्म जिसने इन्हें आश्वस्त कर इस दुर्गम एवं कठोर मार्ग का पथिक बना लिया।

और, इसी मध्य किसी दर्शन विशेष के नाम से उल्लसित हो जैसे किसी कंगाल को यों ही कोई पड़ा हुआ बहुमूल्य रत्न मिल गया हो नागरिकगण उत्साह आवेग से एक दूसरे की ओर देख उठे। जैसे नेत्रों के इंगित से एक दूसरे से पूछ रहे हों—'भाई! भला पहचाना यह देवी साध्वी कौन है?'

देवी महाप्रजापति गौतमी कपिलवस्तु के राजप्रासाद के सुख वैभव को त्याग इस भीषण गर्मी में अपने पुत्र राजकुमार के पीछे-पीछे मानों कुछ इसी आशा से चली आ रही थी कि शायद वह उसे अब भी अपना प्रासाद की ओर वापस लौटने को राजी कर ले। किन्तु इस क्षण उसके मुख पर न तो कोई गर्व गरिमा का ही भाव था और न वात्सल्य की ही तरलता केवल एक सौम्य भाव था और सौम्य भाव की वह तटस्थता, जिसमें सभी शेष सम्बन्ध केवल अशेष बन कर रह जाते हैं। फिर भला भिक्षु-भिक्षुणी समुदाय के इस लहराते सागर में उस दीक्षित देवी आम्रपाली का ही क्या अस्तित्व शेष रह जाता?

किन्तु, देवी अधिष्ठात्री तो गत संध्या तक भी क्या रह रही थी। सदैव की भांति कल भी उनके कला प्रांगण में नृत्य-समाज सजा था और वह दीपालोकित मंच पर अवतरित हुई थी। मंच नूपुरों की झंकार से झंकृत हुआ था और रात्रि का अथाह तिमिर भी उसकी नृत्य मुद्राओं भाव-भंगिमाओं को देख आनन्दातिरेक से स्फुरित हो उठा था। अतः जिन नागरिकों ने गत रात्रि तक ही नृत्य देवी के कला कौशल से अभिभूत हो उन्मुक्त कण्ठ से 'साधु-साधु' एवं 'धन्य धन्य' कह उसका अभिनन्दन किया हो उसके केवल कुछ प्रहर पश्चात् ही उस देवी को विरक्ति के इस रूप रूप में देख भला उनके मुख पर विषाद की अगाढ़ रेखा छाए बिना कैसे रह जाती?

उसे मुण्डित शीर्ष देख समूचे जन गण का अन्तराल विकलता से विह्वल, क्षुब्ध हो उठा। परन्तु स्वयं देवी आम्रपाली की मनोदशा इस समय कुछ और ही थी। उसे इस रूप में देख जन गण के हृदय पर भला क्या बीत रही होगी, इस ओर जैसे उसका ध्यान ही नहीं था। उसका जो कुछ भी अवशिष्ट अस्तित्व रहा था मानों वह अभी को अधिकाधिक अस्तित्वहीन करती जान पड़, दैन्य ही मन में यदि भूल से भी कोई आकांक्षा शेष रह गई हो उसे अन्तर और बाहर की पूरी शक्ति से रौंदते तप्त वीथी मार्ग पर शेष भिक्षुणी समुदाय के साथ आगे बढ़ी चली जा रही थी। और वीथी में उमड़ता जन समुदाय व्यग्र भाव से उसकी ओर निहार रहा था। परन्तु उसे भला आज इतना अवकाश कहाँ था कि वह एक क्षण को भी दृष्टि उठा उस ओर देख लेती। किन्तु, दर्शक गण उनके इस अनोखा भाव के पश्चात् भी उसका जय जयकार कर उठे। और दिनों वह उनके इस जय-जयकार पर अपनी स्वर्णिम मुस्कान बिखेर देती थी किन्तु आज उसने उसे सुनकर भी जैसे अनसुना कर दिया। मन ही मन कह उठी—'आम्रपाली, यही तो वह मोह माया और ममता है जिस पर तुझे विजय पानी है।' यह केवल तटस्थ भाव की साम्यगति से आगे बढ़ी चली जा रही थी। आगे,

किसी ने उनके अन्तर में कहा—'आम्रपाली शिष्टता वश ही उस ओर देख लो।' परन्तु उसने उससे भी अधिक दृढ़ता से मन ही मन कहा—शिष्टता तो आडम्बर है और शाक्य पुत्र का धर्म आडम्बर हीन है।

किन्तु, नागरिकों की दृष्टि पूर्व से भी अधिक भाव विह्वल हो उसे देखते रहने को उद्यत हो उठी। वे मन ही मन सोचने लगे—देवी अम्बपाली को कल भी यह भाव नहीं रही और जो आज है कल यह भी नहीं रहेगी यह रहेगी अवश्य पर हमारी स्मृति में दृष्टि में तो केवल प्रदीप बन कर रह जाएगी। यह सोचते-सोचते उनका हृदय विकलता से मानों फटने-सा लगा। परन्तु नृत्य देवी का भला अब किसी भी भाव उद्वेग से क्या सम्बन्ध शेष रह गया था। यदि रह भी गया था तो बस वैराग्य के उस कठोर व्रत से जिसके वशीभूत हो वह राज मार्ग में और इस सारी हलचल कोलाहल के मध्य केवल एकान्त का अनुभव करती आगे बढ़ी जा रही थी। उसका मुख स्वेद कण प्लावित हो उठा। परन्तु उसकी भी उसे कोई चिन्ता न थी। किन्तु स्वेद कण से स्वतः प्रक्षालित उसका मुख छिपुलित मुखरित हो दर्शकों की दृष्टि में स्थिर हो उठा और स्थिर हो उठा उनकी अभिभूत दृष्टि में वह काला तिल जो उसके अरुणिम मांस-दीप्त कपोल पर इस क्षण भी विद्यमान था। किन्तु इस समय तो वह उसकी कभी-सहचरी अनन्त-रूप-राशि पर मात्र शून्य बन कर रह गया था और प्रदीप बन गया था उसका वह भला समृद्ध जीवन जिसकी यशपताका अभी भी मुर्गों के प्रथम थपेड़ों के साथ वैशालिकों के हृदय पटल पर फहरा रही थी।

उनके नासिका रन्ध्र अब भी देवी आम्रपाली की सुकोमल देह से निरन्तर फूटने वाली आम्रमंजरी सदृश भीनी-भीनी गन्ध से सुवासित हो रहे थे और उस सुवास से उनके मन भ्रमर मदमस्त हुए जा रहे थे। किन्तु जिस क्षण भी उन्हें सहसा वस्तु स्थिति का स्मरण हो आता उनकी मद आभा मलिनता हो उठती और पराभव की खिन्नता छा जाती। अंतपीड़ा से कराह से कह उठे—देवी! यह तो वैराग्य नहीं निष्ठुरता है। निष्ठुरता नहीं तो भला और क्या है?





चार

सिंहभद्र महारथी गणसंवाहक का विशाल भव्य वाहन मध्य मार्ग में ही रुक खड़ा हो गया।

वीथी मुख के बाहर मुख्य राजपथ के पूरे आकार प्रकार पर आच्छादित सघन भीड़ को देख वह अपने गरुड़ रथ से नीचे उतर पैदल ही सभागार की ओर हो लिए। किन्तु, अभी कुछ दूर ही चले थे कि उनका पैदल चलना भी असम्भव हो गया। तब विवश हो उन्होंने वहीं भीड़ के मध्य ही खड़े रह प्रतीक्षा करना श्रेयस्कर समझा।

वयस की दृष्टि से गणसंवाहक अब तक निश्चित ही पूरे अस्सी मधुमास देख चुके होंगे। फिर भी उनकी सुडौल देह ने कदाचित् ही कहीं से बल खाया था। ऊँचा डील-डौल और वर्ण श्वेत सघन श्मश्रु केश आच्छादित भारी भरकम मुख उन्नत ललाट उठी हुई नासिका विशाल वक्ष ज्योतित नेत्र और उनमें से प्रतिबिम्बित होता उनके अंतस् का कुल गौरवाभिमान फिर उस पर छाया हुआ उच्च पदाधिकार का मद यदि वह सहज दृष्टि से भी किसी की ओर देख लेते तो न चाह कर भी उसका सिर नत हुए बिना न रह पाता। फिर वैसे ही उनका अपने कुछ विशिष्ट गुणों के कारण वैशाली में क्या कम सम्मान था? तो भी उनका यह प्रभावशाली व्यक्तित्व इस समय प्रतीक्षातुर पौर जनों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में असफल रहा। वास्तव में इस क्षण सभी की दृष्टि सम्मुख दिशा से वीथी मार्ग पर आते तथागत एवं उनके भिक्षु समुदाय पर स्थिर थी।

सामन्त मन्नदेव ने भी वैसे इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। प्रकट में स्पष्ट ही उनके मुख पर अगाध शान्ति व्याप्त थी। किन्तु भिन्न दृष्टि? वह विचारों के उलझे उलझन अथवा समस्या की गहनता में उलझे कुछ खोई-सी प्रतीत हुई।

सहसा अंतस् में उठी एक आवेग हिलोर के साथ वह सोचने लगे— मन्नदेव इस जन-साधारण को तो देखो जिसका न तो कोई धर्म है और न कोई आस्था भाव ही। एक बार जिधर मुख उठ गया न वे बस उसी ओर दौड़ लिए। आज यदि यह शाक्यपुत्र गौतम यहाँ है तो उसी का जय-जयकार कर उसके पीछे भाग लिए। और यदि कल यहाँ महाश्रमण वर्धमान महावीर आ जाएँ तो? तब वे उनके दर्शन को भी ऐसे दौड़ पड़ेंगे जैसे उनकी आस्था का अवलम्ब बस वही है। भला कोई इन अल्पबुद्धि व्यक्तियों से यह तो पूछे अरे मूर्खो क्या भिक्षु संघ में एक गणिका को प्रविष्ट करने के पश्चात् भी इस तथागत के श्रमण का कोई गौरव शेष रह गया है? मूर्खो भिक्षु आम्रपाली की सम्पत्ति का भक्षण करने की बात सोचते हुए एक बारगी महाश्रेष्ठी

मणिरत्न भी संकोच का अनुभव कर उठता है उसी सम्पत्ति को इस भिक्षु संघ ने सहज स्वीकार कर ऐसे उपरत किया है जैसे वह सर्वथा निर्विकार हो। धन्य है यह सद्धर्म और धन्य है जन-साधारण का यह निरपेक्ष आस्था भाव।

इसी मध्य लहराते जन-सागर में उद्वेलित एक ज्वार की लहर उनसे आ टकराई। उसके प्रबल आघात से उनकी न केवल विचार तन्द्रा भंग हुई वरन् वह गिरने से भी किसी प्रकार बच सके। केवल दैवसंयोग से ही अपने को सम्भाल सके। दर्शक समुदाय की इस उन्मत्तता अथवा अपनी ही इस दयनीय स्थिति पर खिन्न हो वह हल्के से हँस भी दिए।

तथागत का भिक्षु संघ इस समय तक वीथी को पार कर मुख्य राजपथ पर आ चुका था और वीथी में खड़ा जन-समूह सोत्साह अपने को धकेलता परस्पर टकराता तथागत एवं भिक्षु वृन्द के पीछे-पीछे भाग रहा था। इधर, मुख्य राजपथ के विपुल विस्तार पर दर्शनोत्सुक पौर जनों की विशाल भीड़ खड़ी ही थी। वीथी वाली भीड़ को इसमें समाविष्ट होते देख ऐसा प्रतीत होने लगा मानो समतल भूमि को जलप्लावित करता कोई महानद अब उत्ताल ऊँची उर्मिल हिलोरों के साथ किसी अनंत सागर में प्रविष्ट हो रहा हो।

सहसा आन्दोलित सघन भीड़ में से भारी कोलाहल फूट निकला। जन पंक्तियाँ भी विशृंखलित हो उठीं। इस अव्यवस्था को देख तथागत समेत भिक्षु वृन्द ने अपनी चारिका की गति धीमी कर दी। साथ ही सुपुष्ट कंठ से प्रस्फुटित 'बुद्धं शरणं गच्छामि धम्मं शरणं गच्छामि संघं शरणं गच्छामि' का मन्द्र स्वर पाठ भी गूँज उठा। उसे सुन जन समुदाय भी स्थिर चित्त से यथा स्थान ही खड़ा हो गया। सर्वत्र महासागर में उठे ज्वार के पश्चात् की अगाध शान्ति छा गई जिसमें अब त्रिशरण का सौम्य स्वर गूँजता रहा।

किन्तु गणसंवाहक इस समय चकित हुए से एक दृश्य विशेष को देखने में तल्लीन थे। पर्याप्त समय से उधर ही लगी अपनी दृष्टि को ऊपर उठा वह कुछ कहने को उद्यत ही हुए थे कि उससे पूर्व ही उनके मुख से एक भारी श्वास निकल चारों ओर के सन्तुलित वातावरण में फैल गई। फिर जैसे अपने को ही सुनाते हुए वह बोले— अब समझा राजा चेटक का समर्थन अन्यथा आम्रपाली का यह दुस्साहस कदापि न होता।

भिक्षु संघ के पीछे-पीछे केवल गणाध्यक्ष राजा चेटक ही नहीं वरन् महाबलाधिकृत सिंह सेनापति विनिश्चय महामात्य रिपुदमन महावीर मणिधर रत्न एवं कोष्ठागारिक सुमन को जाते देख उनकी भृकुटी तन गई। साथ ही आम्रपाली द्वारा एक दासी कन्या को प्रदत्त उत्तराधिकार का स्मरण कर उनके माथे पर बल पड़ गए। तथागत की ओर वह केवल तिरस्कार की ही दृष्टि से देख सके। भिक्षु समुदाय को देख कर तो उनका हृदय जैसे घृणा से ही भर गया।

उनका दुराग्रह भाव प्रबल हो उठा। अंतर में उठते विचारों के आवेग में उनका विचार स्वर सहसा ध्वनित हो और वे कह उठे—"आर्यपुत्र! भला यह कैसे संभव है?"

यह सुन निकट खड़े सभी पौर जनों का ध्यान गणसंवाहक की ओर आकृष्ट हो उठा। चकित हुए से वे उनकी ओर देख अपने मन में कहने लगे—"देखो तो,

अवास्तव सामन्त को आज भला यह क्या हो गया !

तथागत इस समय तक कुछ आगे निकल चुके थे फिर भी गणसंवाहक का यह प्रश्न उनके विशाल कानों से आ टकराया। वह वहीं रुक खड़े हो गए। उनका अनुगमन करता भिक्षु सार्थ भी उनके साथ ही रुक गया। त्रिशरण का उच्चारण करता मधुर कण्ठ स्वर भी सहसा मन्द हो निस्तब्धता में लीन हो गया। सबसे अन्तिम पंक्ति में पीछे-पीछे आ रहा वैशाली का अभिजात समाज गणसंवाहक के प्रश्न पर जैसे क्षोभ उठा। पर वह इस समय कहता भी क्या ? विक्षोभ के कारण फड़फड़ाते ओष्ठों के साथ वह विवशता से केवल मौन रह गया।

ध्यानमग्न तथागत के अर्ध निमीलित नेत्र इस मध्य प्रश्न कर्ता पर आ टिके थे। पर गणसंवाहक अब चाह कर भी उनकी ओर दृष्टि न उठा सके। उनके मुख पर उभरा दुविधा भाव और अगाढ़ हो स्पष्ट धाराओं में प्लावित हो उठा। इस अप्रत्याशित स्थिति को उपस्थित हुआ देख उनके प्रदीप्त नेत्र चिन्ता में व्यस्त हो रहे। वास्तव में उनके मुख से जो कुछ भी निकल गया था उन्होंने वह निश्चित ही कहने के अभिप्राय से नहीं कहा था वरन् मानस के उद्वेलित विचार प्रवाह में वह स्वतः ध्वनित हो उठा था। वह अब किंकर्तव्यविमूढ़ थे।

इस प्रकार तथागत सर्वथा सौम्य भाव से गुरु गम्भीर ओजपूर्ण कण्ठ स्वर में पूछ उठे—"आयुष्मान् ! तो वह क्या है जो सम्भव नहीं ?"

गणसंवाहक की सारी अंत चेतना अवरुद्ध हो रही। विवेक मानो कुंठित हो गया। साहस का पाद भी ढीला हो बिखर उठा। हतप्रभ हुए से वह असमंजस सोचते रहे—उत्तर में अब क्या कह दूँ ? अन्ततः किसी प्रकार अपने अंतर का साहस बटोर नतमस्तक हो वह बोले—'भगवन् ! आपने नर्तकी आम्रपाली को अपने संघ में प्रविष्ट किया है इस पर भला मुझे क्यों आपत्ति होने लगी। उसने अपनी आधी सम्पत्ति भिक्षु संघ को भेंट की है इस पर भी मुझे कोई आपत्ति नहीं भन्ते। हाँ मुझे यदि कोई आपत्ति है तो केवल इस बात पर कि आम्रपाली ने यदि आधी सम्पत्ति भिक्षु संघ को प्रदान की है तो शेष एक दासी कन्या को। तो क्या भन्ते एक दासी कन्या संघ के समकक्ष हो गई ?"

सामन्त जयदेव के इस तर्क को सुन जन-सागर में कौतूहल की एक लहर हिलोर उठी और सभी के नेत्र उत्सुकता से दीप्त हो गए। उधर राजा चेटक सिंह सेनापति तथा महावीर श्रेणिमल्ल इस विवाद पर विचलित हो उठे। किन्तु देवी आम्रपाली गणसंवाहक के प्रश्न का वास्तविक तात्पर्य समझ उसका उत्तर देने को व्यग्र हो उठी। तथापि उसने अपने को इस समय सर्वथा संयत रख मौन रखना ही श्रेयस्कर समझा।

तथागत ने अपने प्रधान शिष्य आनन्द की ओर दृष्टि फेर कहा—"आयुष्मान् आनन्द ! देवी आम्रपाली जब भिक्षु संघ में नहीं आई थी तो उसका मुख्य धर्म क्या था ?"

आनन्द ने अपना नतमुख और अवनत कर कहा—"भन्ते ! जैसा शास्ता ने कहा है, सर्व हिताय किया जाने वाला कोई भी कर्म कर्तव्य है और कर्तव्य ही धर्म है।

देवी आम्रपाली नृत्यरत थी अतः उसका मन रमा था।"

तथागत फिर पूछने लगे—"और आयुष्मान्, जब देवी ने कला धर्म भी ग्रहण नहीं किया था तब ?"

"भन्ते तब वह एक गृहस्थ के योग्य सभी गुणों से सम्पन्न एक कुल कन्या थी और कुल सेवा ही उसका मुख्य धर्म था।"

'तो आयुष्मान्, जिस प्रकार देवी आम्रपाली के नहीं रहने पर भी समयान्तर अथवा कर्म भेद से उसका धर्म रूप बदल गया तो क्या इसी प्रकार उस दासी कन्या का भी धर्म नहीं बदल जाएगा।"

कौतूहल अभिभूत पौर जनों में यह सुन हर्ष की अगाध लहर दौड़ गई। और वे उल्लसित कण्ठ स्वर से तथागत एवं तत्पश्चात् सद्धर्म का जय-जयकार कर उठे। किन्तु तथागत का मुख भाव पूर्ववत तटस्थ बना रहा। निरुत्तरता का सा अनुभव कर गणसंचालक खिन्न हो उठे। पर अपने क्षण ही उनकी फीकी मुख आभा पर भावा-वेग की रक्तिमा फैल गई। वह साग्रह बोल उठे—"किन्तु वैशाली की कुछ सुस्थापित *परम्पराएँ भी हैं उसकी अपनी कुछ विशिष्ट मान्यताएँ हैं और व्यवस्था भी। भन्ते!* इसी व्यवस्था के अन्तर्गत कथा पीठिका की अधिष्ठात्री नियुक्त नहीं होती वरन् उसका चयन होता है।"

इस पर तथागत ने पूर्ववत शान्त भाव से पुनः अपने प्रधान शिष्य को सम्बोधित कर पूछा—"क्यों आयुष्मान आनन्द जब देवी आम्रपाली केवल एक कुल कन्या ही थी तो उसने कला धर्म क्यों ग्रहण किया ?"

यह सुन देवी आम्रपाली उत्तर देने की अभिलाषा से पुनः व्यग्र हो उठी। उसे भय हुआ, आनन्द तथ्यों से अनभिज्ञ होने के कारण कहीं भिन्न उत्तर न दे बैठें।

इसी मध्य आनन्द कह उठा—'भन्ते! वैशालिकों ने नायक महानाम कन्या को कलाधर्मोचित सभी गुणों से सम्पन्न समझ उसे अधिष्ठात्री के पद पर अभिषिक्त किया था।"

देवी आम्रपाली की जो आशंका थी वह उचित ही रही। अतः इस बार वह अपने पर नियंत्रण न रख सकी। अपने स्थान पर खड़ी भी न रह सकी। कुछ क्षणों पूर्व तक उसके मुख पर जो तटस्थ भाव था वह विचलित हो उठा। वह सावेग जिधर शास्ता खड़े थे उधर ही को ओर बढ़ ली। उनके समीप आ उनके दिव्य रूप को नत मस्तक हो प्रणाम किया और फिर, भगवान् ही जिसे मान लिया है ऐसे बुद्ध की परिक्रमा कर सम्मान का भाव दिखाते हुए कुछ पीछे हट खड़ी हो गई। फिर अत्यन्त विनीत भाव से बोली—"भगवन्! यह सर्वथा सत्य है कि मुझ में कला धर्मोचित सभी गुण विद्यमान थे तथापि अधिष्ठात्री रूप में अभिषिक्त होने की मेरे मन में लेशमात्र भी इच्छा नहीं थी। कारण वैशाली के अभिजात वर्ग ने अपने निहित स्वार्थों के कारण इस गौरवपूर्ण पद की पुनीत परम्परा को नष्ट भ्रष्ट कर उसे कुत्सित बना दिया था। किसी भी स्वाभिमानी कुल कन्या का तो उस पद पर आसीन होना शोभा की बात नहीं रह गई थी। अतः मुझे उस पद पर बलात् आरूढ़ किया गया प्रतिरोध के कारण सामन्त मंडल ने प्रतिशोध के वशीभूत होकर ही मुझे उस पद पर आसीन

कराया था।"

यह सुन सभी उपस्थित जन चकित हो उठे। उनके सम्मुख जैसे सहसा कोई बड़ा भारी रहस्योद्घाटन हुआ हो। उनका मन प्रस्तुत बाद विवाद की कल्पना तीव्र रोचकता से स्फुरित हो उठा। सभी के उत्सुक नेत्र गणसंवाहक की ओर घूम गए।

आम्रपाली के इस प्रहार पर सामन्त मंजदेव तिलमिला उठे। उत्तर में क्या कुछ कहें, अत्यधिक आवेग के कारण वह उनका भी तत्परता से निश्चय करने में जैसे असमर्थ रहे। अतः अपने ही पर क्षुब्ध हो उठे। साथ ही अन्तर में प्रवाहित क्रोध उनका उस भाव भी भूमण्डित में प्रज्वलित हो धधक उठा। आग्नेय नेत्रों से देवी आम्रपाली की ओर देखते हुए वह उत्तर में कुछ कहने को उद्यत ही हुए थे कि इसी मध्य देवी आम्रपाली फिर बोल उठी—"शास्ता! कला के अधिष्ठात्री पद पर रहते हुए मैंने पूर्वजों से पूर्व का कुछ पुनीत परम्पराओं का पालन किया है और अब उस गौरवपूर्ण आसन के लिए मैंने एक ऐसी कन्या को प्रस्तुत किया है जो कलासन के पालन में सभी दृष्टियों से दक्ष है। भन्ते कला और धर्म पर सभी का समान रूप से अधिकार है और फिर वह दासी कन्या तो मेरी सभी शिष्याओं में प्रमुख थी।"

गणसंवाहक आवेग के दृढ़ स्वर में बोल उठे—"भन्ते! आम्रपाली ने यह सब कुछ कर अधिकार का अतिक्रमण किया है। कला-अधिष्ठात्री के पद पर किसी आर्य कन्या को ही अभिषिक्त किया जाना वैशाली की पुरानी परम्परा रही है। फिर इस परम्परा का एक विशिष्ट राजनीतिक कारण भी तो है। भन्ते वैशाली की सर्व सुन्दरी का सभी समान रूप से उपभोग कर सकें यह उसका निश्चित रहस्य था।"

यह सुन आम्रपाली का सारा अन्तराल फुत्कार उठा। क्रोधाविष्ट उच्च कण्ठ स्वर में वह ललकारती हुई सी बोल उठी—"गणसंवाहक बस करो! यह तुम्हारे दुराग्रह की अति ही तो है अन्यथा जिस वैशाली में महिलाओं से सविनय प्रणय निवेदन की परम्परा हो वहाँ कभी सौन्दर्य के उपभोग की दूषित वृत्ति भी सम्भव हो सकती है?"

इधर तथागत सर्वथा शान्त स्वर में गणसंवाहक से पूछ उठे—"और आयुष्मान का सभी द्वारा उपभोग से तात्पर्य?"

"भन्ते जिसकी भी कला में रुचि हो।" गणसंवाहक के मुख से यह जैसे अनायास ही निकल गया। तनिक रुक कुछ सोचते हुए से वह फिर बोल उठे—"और भन्ते या भी गण नर्तकी के सौन्दर्य का इच्छित पुरस्कार दे सके वह उसके उपभोग का अधिकारी था।"

उनके इस उत्तर पर देवी आम्रपाली पुनः क्रोधाभिभूत हो उठी। ऊर्ध्वबाहु हो वह सावेग बोली—"भन्ते! यह एक दम मिथ्या है। आम्रपाली ने यह अधिकार कदापि किसी को नहीं दिया। फिर भन्ते कला संयम ही का तो दूसरा नाम है।"

सामन्त मंजदेव इस बार कुछ परास्त हुए से घटित कण्ठ स्वर में बोले—"भन्ते! संयम के नाम पर यह गण नर्तकी की हठ धर्मिता थी। वस्तुतः इसने अपने धर्म का

आचरण ही नहीं किया।"

देवी आम्रपाली इस आक्षेप का उत्तर देने को उद्यत हुई ही थीं कि सहसा उपस्थित जन समूह एक स्वर में कह उठा— 'प्रमुख सामन्त का यह आरोप तो एक दम निराधार है। देवी आम्रपाली ने हमें अपने अनुपम नृत्य कौशल से सदा ही तो प्रभावित किया है।"

जिधर से यह ध्वनि आई थी सामन्त मंजदेव ने उस ओर तनिक आक्रोश से देखा। किन्तु शीघ्र ही सावधान हो अपने आप को संयत कर पुनः तथागत की ओर देखते हुए बोले— 'भन्ते आम्रपाली पर मेरा एक स्पष्ट आरोप है। इसने एक आर्य भिन्न कन्या को संभ्रान्त समाज में बलात् प्रतिष्ठापित कर सामाजिक राजनीतिक एवं नैतिक-सभी दृष्टियों से वैशाली का नियम भंग किया है। अतएव इसे भिक्षु संघ में प्रविष्ट होने से पूर्व विनिश्चय-अमात्य के सम्मुख उपस्थित होना होगा। भन्ते इसने राजद्रोह का जघन्य अपराध किया है जिसके लिए इसे कदापि क्षमा नहीं किया जा सकता।"

यह सुन समूचा जन-समुदाय पहले तो स्तब्ध रह गया फिर शीघ्र ही उनमें से एक कोलाहल गूंज उठा। इस कोलाहल को शान्त करने के प्रयास में भिक्षु समुदाय ने 'शान्तं आवेशं शान्तं आवेशं' कहना प्रारम्भ कर दिया।

गणसंवाहक ने जैसे सभी के सामने एक जटिल समस्या प्रस्तुत कर दी।

सारा जन समुदाय कौतूहल एवं आश्चर्यजन्य स्तब्ध भाव से तथागत की ओर देखने लगा। परन्तु तथागत स्वयं इस नवोत्पन्न समस्या से सर्वथा अविचलित रह पूर्ववत् शान्त स्वर में बोले— 'आयुष्मान आनन्द! नियम क्या है?"

आनन्द ने नतमस्तक हो कहा—"भन्ते जिसे अधिकांश जन स्वीकार कर लें, वही नियम है।"

"और जिसे सभी स्वीकार करें, वह क्या है आयुष्मान आनन्द?"

"वह बड़ा नियम है भन्ते।"

"और आयुष्मान आनन्द जिसे विपक्षी वर्ग के भी अधिकांश जन स्वीकार कर लें?"

"वह शाश्वत नियम है भन्ते।"

जन साधारण इस पर हर्ष प्रकट करता भारी करतल ध्वनि कर उठा।

किन्तु गणसंवाहक अपने उच्चतम कण्ठ स्वर में आवेश कह उठे— 'भन्ते! यदि यही और ऐसा ही शाश्वत नियम है तो फिर मैं इसे दूर ही से नमस्कार करता हूं।"

क्रोध से उनके मुख का रक्तिम वर्ण प्रगाढ़ हो गया।

परन्तु तथागत ने उस ओर कोई ध्यान न दे पूर्ववत् शान्त स्वर में कहा—
"आयुष्मान आनन्द!

"हां भन्ते" उनके प्रधान शिष्य ने सदैव की भांति नतमस्तक हो कहा। तथागत ने तत्पश्चात् प्रश्न किया— आयुष्मान आनन्द क्षमा से बड़ा दान कौन है?"

आनन्द ने तत्परता से विनयातिरेक के मन्द स्वर में कहा— 'भन्ते। क्षमा बुद्ध के [illegible] है।"

तथागत ने पुनः प्रश्न किया—"और आयुष्मान् आनन्द जिसे दासी कन्या कह सम्बोधित कर रहे हैं वह ?"

"वह कलाधर्म में दीक्षित एक मानव मात्र है भन्ते।"

"और सद्धर्म क्या कहता है आयुष्मान् ?"

"भन्ते मानव मात्र के साथ सम भाव का व्यवहार।"

इस पर, गणसंचालक क्रोधावेश के साथ बोल उठे—"और यदि कोई तथाकथित सद्धर्म को न माने तो ?"

तथागत ने उलट कर प्रश्न किया—"आयुष्मान आनन्द और यदि कोई सद्धर्म को न माने तो ?"

आनन्द ने शान्त भाव से कहा—"भन्ते तो भी सद्धर्म सर्वव्यापी है क्योंकि वह मानव मात्र के कल्याण के लिए है। दुराग्रह विकार है, और विकार की उग्रता ही पाप है।"

तत्पश्चात् समूचा भिक्षु समुदाय 'शान्तं पापं -शान्तं पापं' का उच्चारण करता बालिका समेत तथागत के पीछे-पीछे हो लिया।

जन समूह में पुनः हर्ष की एक प्रगाढ़ लहर दौड़ गई। गणसंचालक भी उस जन समूह की उमंग धार में बलात् आगे बढ़ लिए। परन्तु साथ ही वह मन ही मन कहते रहे—'तथागत यह सद्धर्म का विजय नहीं वरन् हठ हुआ। मंजदेव भला इसे क्यों स्वीकार करे ? मैं इसे कदापि स्वीकार नहीं कर सकता।





पाँच

जहाँ तक अधिकारों का प्रश्न है वज्जि संघ के गतिमान जीवन में गणसंवाहक सामन्त मंजरेव और बलाध्यक्ष राजा चेटक दोनों ही का विशिष्ट स्थान था। लिच्छवि संविधान अथवा 'पुस्तक' में निर्दिष्ट व्यवस्थाओं के अनुसार यदि सामन्त मंजरेव संघ की प्रमुखता सम्पन्न वृहत्-सभा गण सभागार के सर्वोच्च पद पर आसीन थे तो राजा चेटक के दृष्टि इंगित पर सारा शासन कार्य चला करता था। वह पूर्ण अधिकार प्राप्त गण शासन-परिषद अष्ट कुल के प्रधान पद पर सीमित थे। फिर भी जब वह सभागार में उपस्थित होते तो उन्हें गणसंवाहक के आदेश के सम्मुख नत मस्तक होना पड़ता। अनुशासन की दृष्टि से राजा चेटक को सामन्त मंजरेव के प्रत्येक निर्णय को नियम रूप में मान उसका पालन करना होता। एक अर्थ में वहाँ उनका कोई भी विशिष्ट स्वरूप न रह संथागार के शेष सभी सदस्यों के समान केवल सामान्य बनकर रह जाता। वैसे अन्य वैशालिक सदस्य रूप में राजा कहलाते वह भी बस वही होते। फिर भी अपने कतिपय गुणों के कारण सभी के मध्य उनका विशेष सम्मान था। यद्यपि अपने सभी शासन कार्यों के लिए वह गण संथागार के समक्ष उत्तरदायी थे तो भी वैयक्तिक रूप में उनका शेष सभी सभासद् राजाओं पर विशेष प्रभाव था।

आयु की दृष्टि से राजा चेटक सामन्त मंजरेव के समकक्ष ही थे। संभवतः वह एक दो वर्ष बड़े भी रहे हों। किन्तु दोनों के स्वभाव और विचारों में भारी अन्तर था। यदि सामन्त मंजरेव में अभिजात कुल का गौरवाभिमान कूट-कूट कर भरा था तो राजा चेटक सरल रुचि एवं साधारण प्रकृति के जाज्वल्यमान प्रतीक थे। बलाध्यक्ष होते हुए भी उन्हें दम्भ छू तक नहीं गया था हठ उनमें नाममात्र को नहीं था और उदारता तो उनकी जैसे चेरी बनकर रह गई थी। उनके विशाल दुर्ग के द्वार सदैव सभी के लिए समान रूप से खुले रहते। उत्तराधिकार में उन्हें भी सामन्त मंजरेव की भांति विपुल सम्पत्ति मिली थी और सम्बन्धों की दृष्टि से भी वह सुप्रतिष्ठित थे। मगधराज बिम्बसार के साथ उनकी पुत्री चेल्लना का पाणिपीड़न हुआ था और इधर जैन धर्मवेत्ता वर्द्धमान महावीर की माता त्रिशला उन्हीं की बहिन थीं। तथापि उन्होंने अपने जीवन में शायद ही कभी पक्षपात का आचरण किया होगा। गंगातट स्थित तीर्थ विहार को लेकर अपने जामाता बिम्बसार ने जब वज्जिसंघ के विरुद्ध युद्ध के लिए प्रस्थान किया तो उसकी विजयोन्मत्त वाहिनियों का सामना करने के लिए वह स्वयं वैशालिकों की अग्रिम पंक्ति में उपस्थित थे और गणाध्यक्ष रूप में केवल महावीर और तथागत का ही

नहीं वरन् अन्य सभी श्रमण सम्प्रदायों का समान भाव से आदर कर वह सभी की दृष्टि में ऊँचे उठ गए थे। परन्तु इसके अतिरिक्त भी उनका एक और विशेष गुण था जिसने उनकी यशोवृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। वह सदा ही नए विचारों का स्वागत करने को उद्यत रहते थे।

इसके विपरीत सामन्त मंजदेव निश्चय ही रूढ़िवादी स्वभाव के थे। उत्तराधिकार में उन्हें जहाँ भारी सम्पत्ति मिली वहाँ कुछ कुल परम्पराएं भी और वे परम्पराएं ही जैसे उनके जीवन की मार्ग-दर्शक रेखाएं बन उठीं। प्रत्येक नये विचार का प्रतिरोध करना उनका सहज स्वभाव था। अतएव गण सभागार सदृश महत्त्वपूर्ण सभा के संचालक पद पर सुशोभित होते हुए भी वह सभासदों के उतने प्रियपात्र नहीं बन सके जितने कि राजा चेटक। फिर भी सामन्त मंजदेव का वैशाली प्रेम वज्जिसंघ के प्रति उनकी अगाध आस्था एवं संविधान के प्रति अटूट निष्ठा भाव में कुछ ऐसे गुण थे जिनके कारण सभी वैशालिक उनकी भूरि भूरि प्रशंसा करते न अघाते थे। वज्जिसंघ के विरुद्ध प्रत्येक युद्ध में वह भी राजा चेटक की भाँति सदैव न केवल अग्रिम पंक्ति में दिखाई देते वरन् संघ की मान मर्यादा की रक्षार्थ अपने प्राणों की भी बाजी लगा रिपुसेना पंक्ति में प्रविष्ट हो रहते। अतएव इन सभी कारणों से उनकी भी कोई कम प्रतिष्ठा नहीं थी। फिर भी जब कभी किसी वैशालिक के सम्मुख प्रसंगवश दोनों के मध्य तुलना करने का प्रश्न उपस्थित हो जाता तो राजा चेटक अनायास ही उसके हृदय छोर का स्पर्श करते प्रतीत होते और यह रहस्य स्वयं गणसंचालक सामन्त मंजदेव से भी नहीं छिपा था। यही कारण है कि आज उनके अंतर में उठे विद्रोह के पश्चात् भी वह मतद केवल खिन्न होकर ही रह गए।

सन्ध्या समय जब वह अपने आवास की ओर चले तो उन्हें ऐसा अनुभव हुआ जैसे वह स्वयं ही अपने जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण विजय को पराजय के हाथों में सौंप लौट पड़े हों। सदा की भाँति आज भी उनका विशाल अश्व वाहन राजपथ पर जनरव के मध्य सरपट दौड़ता चला जा रहा था। किन्तु पथ पर पड़ती अश्वों की तालपूर्ण पदचापों से वह उल्लसित नहीं हो सके। और दिनों जब इन्हीं सैन्धवों की पद ध्वनि उनके कानों से टकराती थी तो उनके अंतर में बैठे गणसंचालक का उदात्त भाव और मुखरित हो उठता था। पद गौरव से प्रदीप्त उनका मुख मार्ग पर आते-जाते पौरजनों पर सहज मुस्कान बिखेरता चलता। किन्तु आज उनके मन में न तो जन प्रवाह की ओर देखने का ही कोई उत्साह शेष रह गया और न वह आत्मीयता का भाव ही। वे सभी तो उन्हें परिजन जैसे प्रतीत हुए। मार्ग में पड़ते सुपरिचित आवास भी उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने में असमर्थ रहे। सारी वैशाली ही उन्हें एक अनजान नगरी के सदृश प्रतीत होने लगी। और राजा चेटक महाबलाधिकृत सिंह महावीर अभिजय एवं सभी तो । उन सभी के प्रति मात्र से उनके मन में तिक्त भाव उभर आया और फिर वह उनके सारे अंतराल पर व्याप्त हो उठा।

सम्मुख ही पश्चिम दिशा में सदानीरा के उस पार जाता चकित सूर्य रश्मियाँ अपनी बिखरी मुस्कान के साथ क्षितिज रेखा पर कम्पती जा रही थीं। उत्तरोत्तर धूमिल होती जा रही उनकी मलिन आभा को देख आज न जाने क्यों उनके मन में एक

टीस सी उठ खड़ी हुई। रथ से मुख बाहर निकाल वह उसी ओर निहारते रहे। सूर्य अपना अन्तिम आलोक बिखा अस्ताचल में झुकता रहा और फिर डूब गया। सोचने लगे—'यह जीवन भी क्या है! मध्याह्न-सूर्य के उस प्रचण्ड रूप का क्या हुआ? अरे केवल दो पहर पश्चात् ही वह तो ढल कर अंधकार में विलीन हो गया। मनुष्य का जीवन भी तो कुछ ऐसा ही है। और मेरे जीवन की यह बेला?

उनके मुख पर निराशा का प्रगाढ़ भाव छा गया।

इसी मध्य सरपट दौड़ता उनका रथ बरौठा मुख्य राजपथ से उतर प्रासाद द्वार की ओर मुड़ लिया।

द्वार मण्डप में रुके रथ से जब वह नीचे उतर सोपान की ओर बढ़े तो उन्हें तुरन्त सेवकों की उपस्थिति का ध्यान हो आया और उनका स्वामी रूप सचेष्ट हो उठा। उनके अन्तर का खिन्न भाव जैसे स्वतः लुप्त हो गया और शयनकक्ष में प्रविष्ट होते ही उन्होंने सदा की भाँति आज भी 'छाया छ या' की रट लगा दी।

दासी कन्या छाया इस समय शयन कक्ष के ही एक कोने में कुछ सिमटी-सी बैठी थी। वास्तव में स्वामी की प्रतीक्षा करते करते वह अपने अन्तर में उठ भावों तथा तत्पश्चात् विचारों की भंवर में कब उलझ गई इसका उसे स्वयं कुछ भान नहीं रहा। अतः स्वामी का स्वर उसके कानों से टकराया तो भंग हुई विचार तन्द्रा के साथ वह कुछ चौंक-सी गई। तत्क्षण दृष्टि से वह जैसे अपने ही में कुछ टटोलने का प्रयास कर उठी। स्वामी ने न जाने कितनी देर तक प्रतीक्षा कर मुझे पुकारा होगा इस आशंका से उसका सारा गात प्रकम्पित हो उठा। परन्तु फिर शीघ्र ही अपने को किसी प्रकार संयत कर वह मल्लसंवाहक के सन्मुख आ उपस्थित हुई।

वह नयन नत किए खड़ी रही और वृद्ध सामन्त ससंभ्रम दृष्टि से उसकी सुगठित देह एवं मुख छवि का निहारते रहे।

सामन्त अंबरेब के विचार उद्वेग थकित मस्तिष्क को कुछ-कुछ विश्रांति का सा अनुभव हुआ। उनके मुख से संतोष की एक भारी श्वास निकल गई। क्षण में मन-प्राण उनकी सुकंपित अधर मुख रेखाएं अंगड़ाई ले उठीं तथा दीप शिखाएं कुछ मचल-सी गईं। और वृद्ध सामन्त आयु थकित पैरों को तनिक विश्राम देने की इच्छा से शय्या पर आ बैठे।

दासी कन्या भी हाथ पर टिके रजत आधार एवं उस पर रखे स्वर्ण-मद पात्र को लिए, आगे बढ़ स्वामी के समीप आ खड़ी हुई।

सस्नेह उसकी ओर देखते रह वृद्ध सामन्त ने रजत आधार से मद पात्र उठा लिया। साथ ही कहने लगे—"दासी कन्या छाया! तू जितनी सुन्दर है यदि उतनी ही चालाक भी हुई होती तो भला क्या ही अच्छा होता।"

वृद्ध स्वामी की यह बात उसे अन्तर में मर्मभेदक प्रतीत हुई। परन्तु प्रकट में उसके मुख पर सहज संतोष का भाव उभर आया। उसकी समस्त कपोलों की लालिमा से छिटक-सी गई।

सामन्त अंबरेब अपने ओष्ठों से मधुपात्र को हटा पुनः बोल उठे—"दासी कन्या तुझ में यह संकोच! अरी अभागी यह संकोच और यह मौन तो केवल अभिजात

कामना को ही धोखा दे सकता है जिसे न उदर पोषण की चिन्ता होती है और न किसी स्वामी को प्रसन्न कर पुरस्कार पाने की अभिलाषा।"

दासी कन्या इस बार भी केवल मौन ही रही। हाँ उसके ओष्ठकोर खिन्नता से अवश्य फैल गए।

किन्तु सामन्त मंजरदेव ने उस ओर विशेष ध्यान न दे अपना हाथ उसके मुख की ओर बढ़ा दिया। उसके चिबुक को अंगुलि के सहारे से तनिक ऊपर उठा बोले—"छाया ! इधर तो देख।"

वृद्ध स्वामी ने यह सर्वथा अनुनय के भाव कण्ठ स्वर में कहा था तो भी वह दासी कन्या के लिए केवल आदेश बन कर रह गया। स्वामी के आदेश पर उसने लज्जावनत दृष्टि को ऊपर उठाने का सा प्रयास किया। वृद्ध सामन्त ने उसकी संकोच बोझिल दृष्टि में झाँकते हुए पहले तो अपने भर्राए कण्ठ को कुछ साफ किया तथा फिर उसको दृढ़ करने का प्रयास करते हुए बोले— छाया अभी तेरा यह रूप इस दासी कन्या से कुछ कम भाता ही है परन्तु ।" कहते-कहते उनका कण्ठ स्वर स्वतः अवरुद्ध हो गया। परन्तु दृष्टि फिर भी कौतूहल से हतप्रभ हो उसकी ओर देखती रही।

जिस बात को दासी कन्या से, यद्यपि स्वयं सामन्त मंजरदेव ने इसे स्पष्ट नहीं कहा तो भी वह उसे समझने में असमर्थ नहीं रही। सम्भवतः एक तरुण कपिल ने मध्याह्नोपरान्त में अश्वसंवाहक को बताने से पूर्व ही उसे सब कुछ बता दिया था। केवल बता ही नहीं दिया था बल्कि उसके चिबुक को इसी प्रकार अपनी अंगुलि के सहारे ऊपर उठा उत्कण्ठित हो स्फुरित कण्ठ स्वर में पूछा था—"क्यों कुमारी क्या यह एक शुभ समाचार नहीं है ?" दासी कन्या छाया उस समय भी मौन रही थी परन्तु प्रत्युत्तर में वह संदेशवाहक तरुण की ओर अपने नेत्र पलक उठा उसे देखने का लोभ संवरण नहीं कर सकी थी। तरुण कपिल के मुख पर छाए भाव को देख वह कुछ-कुछ केवल कुछ ही नहीं बल्कि असीम गर्व का अनुभव कर उठी थी हृदय में एक स्फुरण का संचार हो उठा था नेत्र आभा से ज्योतित हो गए थे और उसकी सारी देह एक चन्द्रहास का स्पर्श पा नवोदित ऊषा बेला की भाँति अरुणिम हो उठी थी। उस क्षण का वह दृश्य उसके नेत्रों के सम्मुख साकार रूप में आ उपस्थित हुआ और उसी के साथ एक आह्लाद विशेष के साथ उसका रोम रोम पुलकित हो उठा।

और इस सारी अवधि वृद्ध सामन्त निष्पलक हो उसके मुख चन्द्र को देखते रहे, कल्पना करते रहे कि भला इसमें और आम्रपाली की उस शिष्या में क्या अन्तर होगा। अंततः वह यही भूल गए कि इस क्षण उनके सम्मुख उन्हीं की एक परिचारिका खड़ी है अथवा यही दासी कन्या जिसे आज आय सम्पत्ति के उपभोग का उत्तराधिकार मिला है। जैसे कोई उनके ममत्व अंतराल को कचोट-सा गया। केवल कुछ क्षणों पूर्व ही उनके नेत्रों में जो प्रतिबिम्बित होता अनुनय का भाव प्रतिशोध की कठोरता में परिणत हो उठा। अब गर्जन सदृश कड़कते स्वर में बोले—"दासी कन्या देखूँगा तुझे भी देखूँगा।"

यह सुन रात्रि का अंधकार सहम गया और छाया काँप उठी। कहीं स्वामी को सारा रहस्य न खुल गया हो इस भय से उसका सारा अन्तस्तल प्रकम्पित हो

टीस सी उठ खड़ी हुई। रथ से मुख बाहर निकाल वह उसी ओर निहारते रहे। सूर्य अपना अन्तिम आलोक दिखा अस्ताचल में छुपक रहा और दिन डूब गया। सोचने लगे—'यह जीवन भी क्या है! मध्याह्न सूर्य के उस प्रचण्ड रूप का क्या हुआ? अरे, केवल दो पहर पश्चात् ही वह तो ढल कर अंधकार में विलीन हो गया। मनुष्य का जीवन भी तो कुछ ऐसा ही है। और मेरे जीवन की वह वेला?

उनके मुख पर निराशा का प्रगाढ़ भाव छा गया।

इसी मध्य सरपट दौड़ता उनका रथ धर्राता अकस्मात् राजपथ से उतर आवास द्वार की ओर मुड़ लिया।

द्वार मण्डप में रुके रथ से जब वह नीचे उतर सोपान की ओर बढ़े तो उन्हें तुरन्त सेवकों की उपस्थिति का ध्यान हो आया और उनका स्वामी रूप सचेष्ट हो उठा। उनके अन्तर का खिन्न भाव जैसे स्वतः लुप्त हो गया और शयनकक्ष में प्रविष्ट होते ही उन्होंने सदा की भाँति आज भी 'छाया छ या' की रट लगा दी।

दासी कन्या छाया इस समय शयन कक्ष के ही एक कोने में कुछ सिमटी-सी बैठी थी। वास्तव में स्वामी की प्रतीक्षा करते-करते वह अपने अन्तर में उठे भावों तथा तदुपरान्त विचारों की भंवर में कब उलझ गई इसका उसे स्वयं कुछ भान नहीं रहा। अतः स्वामी का शब्द उसके कानों से टकराया तो मग्न हुई विचार तन्द्रा के साथ वह कुछ चौंक-सी गई। सशंक दृष्टि से वह जैसे अपने ही में कुछ टटोलने का प्रयास कर उठी। स्वामी ने न जाने कितनी देर तक प्रतीक्षा कर मुझे पुकारा होगा इस आशंका से उसका सारा गात प्रकम्पित हो उठा। परन्तु फिर शीघ्र ही अपने को किसी प्रकार संयत कर वह गणसंचालक के सम्मुख आ उपस्थित हुई।

वह नयन नत किए खड़ी रही और वृद्ध सामन्त ससंभ्रम दृष्टि से उसकी सुगठित देह एवं मुख छवि को निहारते रहे।

सामन्त मंवरेश के विचार-उद्वेग थकित मस्तिष्क को कुछ-कुछ विश्रान्ति का सा अनुभव हुआ। उनके मुख से संतोष की एक भारी श्वास निकल गई। क्षण में श्रम-वश उभरी सुचिंतित अधर सूक्ष्म रेखाएँ मंदगति से उठीं तथा दीप शिखाएँ कुछ मचल-सी गईं। और वृद्ध सामन्त श्रम थकित पैरों को क्षणिक विश्राम देने की इच्छा से शय्या पर आ बैठे।

दासी कन्या भी हाथ पर टिके रजत आधार एवं उस पर रखे स्वर्ण-मद्य पात्र को लिए, आगे बढ़ स्वामी के समीप आ खड़ी हुई।

अपलक उसकी ओर देखते रह वृद्ध सामन्त ने रजत आधार से मद्य पात्र उठा लिया। साथ ही कहने लगे—"दासी कन्या छाया! तू जितनी सुन्दर है यदि उतनी ही वाचाल भी हुई होती तो सदा क्या ही अच्छा होता।"

वृद्ध स्वामी की यह बात उसे अन्तर में अविचारित प्रतीत हुई। परन्तु प्रकट में उसके मुख पर सहज संकोच का भाव उभर आया। उसकी समस्त कर्णपटी लालिमा से सिहर-सी गई।

सामन्त मंवरेश अपने ओष्ठों से मद्यपात्र को हटा पुनः बोल उठे—"दासी कन्या तुझ में यह संकोच! अरी अभागी यह संकोच और यह मौन तो केवल अभिजात

बाला को ही शोभा दे सकता है जिसे न उदर पोषण की चिन्ता होती है और न किसी स्वामी को प्रसन्न कर पुरस्कार पाने की अभिलाषा।"

दासी कन्या इस बार भी केवल मौन ही रही। हाँ उसके ओष्ठकोर किञ्चित स अनायास फैल गए।

किन्तु सामन्त मंजदेव ने उस ओर विशेष ध्यान न दे अपना हाथ उसके मुख की ओर बढ़ा दिया। उसके चिबुक को अंगुलि के सहारे से तनिक ऊपर उठा बोले—"छाया! इधर तो देख।"

वृद्ध स्वामी ने यह सर्वथा अनुनय के भाव कण्ठ स्वर में कहा था तो भी वह दासी कन्या के लिए केवल आदेश बन कर रह गया। स्वामी के आदेश पर उसने अवज्ञानत दृष्टि को ऊपर उठाने का था प्रयास किया। वृद्ध सामन्त ने उसकी संकोच बोझिल दृष्टि में झाँकते हुए पहले तो अपने भर्राए कण्ठ को कुछ साफ किया तथा फिर उसको दृढ़ करने का प्रयास करते हुए बोले— "छाया भला तेरा यह रूप उस दासी कन्या से कुछ कम थोड़े ही है परन्तु ।" कहते-कहते उनका कण्ठ स्वर स्वत अवरुद्ध हो गया। परन्तु दृष्टि फिर भी कौतूहल से हतप्रभ हो उसकी ओर देखती रही।

किस दासी कन्या से, यद्यपि स्वयं सामन्त मंजदेव ने इसे स्पष्ट नहीं कहा तो भी वह उसे समझने में असमर्थ नहीं रही। संदेशवाहक तरुण कपिल ने मध्याह्नो-परान्त में पत्रसंवाहक को बताने से पूर्व ही उसे सब कुछ बता दिया था। केवल बता ही नहीं दिया था बल्कि उसके चिबुक को इसी प्रकार अपनी अंगुलि के सहारे ऊपर उठा अत्यन्त उत्कण्ठित हो स्फुरित कण्ठ स्वर में पूछा था—"क्यों कुमारी क्या यह एक शुभ संवाद नहीं है?" दासी कन्या छाया उस समय भी मौन रही थी परन्तु प्रत्युत्तर में वह संदेशवाहक तरुण की ओर अपने नेत्र पलक उठा उसे देखने का लोभ संवरण नहीं कर सकी थी। तरुण कपिल के मुख पर छाए भाव को देख वह कुछ-कुछ केवल कुछ ही नहीं बल्कि असीम गर्व का अनुभव कर उठी थी हृदय में एक स्फुरण का संचार हो उठा था नेत्र आशा से ज्योतित हो गए थे और उसकी सारी देह एक वसन्तश्वास का स्पर्श पा नवोदित ऊषा वेला की भाँति अरुणिम हो उठी थी। उस क्षण का वह दृश्य उसके नेत्रों के सम्मुख साकार रूप में आ उपस्थित हुआ और तभी के साथ एक आह्लाद विशेष के साथ उसका रोम रोम पुलकित हो उठा।

और इस सारी अवधि वृद्ध सामन्त निष्पलक हो उसकी मुख छवि को देखते रहे कल्पना करते रहे कि भला इसमें और आम्रपाली की रूप श्री में क्या अन्तर होगा। अंतत वह यही भूल गए कि इस क्षण उनके सम्मुख उन्हीं की एक परिचारिका खड़ी है अथवा वही दासी कन्या जिसे मात्र आय सम्पत्ति के उपभोग का उत्तरा-धिकार मिला है। जैसे कोई उनके समूचे अंतरास को कचोट-सा गया। केवल कुछ क्षणों पूर्व ही उनके नेत्रों में से प्रतिबिम्बित होता अनुनय का भाव प्रतिशोध की कर्क-शता में परिणत हो उठा। मेघ गर्जन सदृश कड़कते स्वर में बोले—"दासी कन्या देखूँगा तुझे भी देखूँगा।"

यह सुन रात्रि का अंधकार सहम गया और छाया काँप उठी। कहीं स्वामी को सारा रहस्य न खुल गया हो इस भय से उसका सारा अन्तस्तल प्रकम्पित हो

उठा। सन्देशवाहक कपिल भी यह न जाने क्या मत कर बैठें इस भय से तो उसकी मनोदशा और भी अधिक विचलित हो उठी। प्रयत्न करके भी वह अपने को न संभाल सकी और न ही उस रजत आधार को जो उसके हाथ पर टिका था। हाथ के कंप कंपाते ही रजत आधार झनझनाता हुआ धराशायी हो रहा और उसी के साथ मूल्य पात्र से मदिरा निकल कक्ष में बह निकली। मदिरा की गंध समग्र कक्ष में से प्रस्फुटित होती भीनी भीनी सुवास पर छा गई।

क्रुद्ध सामन्त ने समझा आर्या ने एक क्षुद्र दासी कन्या को मिली आर्य सम्पत्ति पर निश्चय ही गर्व का अनुभव किया है तभी तो वह अपना सन्तुलन खो बैठी है। अन्यथा, एक दासी कन्या और उसे यह संकोच यह गर्व और उसका यह दुस्साहस ! उनकी उत्तेजना ने उत्तरोत्तर उग्रतम रूप ले लिया। नीचे भूमि पर बिखरी बहुमूल्य मदिरा को देख वह और भी उत्तेजित हो उठे। अन्तर का उग्र भाव ध्वनित हो उठा। कड़कते हुए बोले— चांडाल छोकरी जानती नहीं तू इसका मूल्य ? जानती नहीं क्या कपिला के एक सार्थवाह से यह पूरे एक शत कार्षापण प्रति कुम्भ के भाव पर ली गई थी।"

उनका सीधा भाव बुरी तरह फूट गया। नेत्र आग्नेय हो उठे। फिर भी उनके अन्तर में ही बैठा कोई उन्हें जैसे कुछ समझाने का प्रयत्न करता रहा। किन्तु, उनका प्रज्वलित क्रोध उतने ही परिमाण में भड़क उठा। उनका क्रोध स्वयं उनके वश में न रह सका और आवेश में उठे हाथ ने दासी कन्या का बक्षेम ही तो दिया। और उनके इस प्रहार के फलस्वरूप दासी कन्या तो गिर ही गई, साथ में स्वयं उनके हाथ से भी चषक छूट गया।

बिखरी मदिरा का स्पर्श कर दासी कन्या के गीले वस्त्र उसके गात से चिपट गए और उधर गात अधिकाधिक आतंकित होता अपने में सिमटता जा रहा था। वस्त्र हरिणी की भाँति उसके नेत्र दैन्य भाव से कोपाभिभूत स्वामी की ओर देखते रहे।

परन्तु उसकी दृष्टि का सहमा कातर भाव सामन्त मंजुदेव के आग्नेय नेत्रों को तनिक भी अपनी ओर आकृष्ट करने में असफल रहा। उनके नेत्रों के सम्मुख तो इस समय कुछ क्षणों पूर्व की दासी कन्या का वह प्रफुल्लित मुख था जिसे देख उन्होंने अनुमान लगाया था कि आम्रपाली की शिष्या के प्रसंग मात्र से वह कितनी प्रसन्न हो उठी है। अतः उनके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला भड़क उठी और इस भड़कते प्रतिशोध के साथ ही उनका हाथ सम्मुख पड़े चर्म-प्रतोद पर जा पड़ा। यह देख दासी कन्या बुरी तरह सिहर उठी उसकी देह से स्वेद जल फूट निकला। हाथ में प्रतोद के आते ही दण्डवाहक का उग्र रूप और प्रचण्ड हो उठा

दासी कन्या प्रतोदाघात से कराह उठी। उसके मुख से निकला चीत्कार रात्रि के अन्धकार में विलीन हो उसे प्रकम्पित करता रहा। अन्धकार सिहर उठा परन्तु मदान्धवाहक का उठा हाथ और भी अधिक आवेश के साथ उस दासी कन्या पर प्रहार करता रहा और प्रत्येक प्रहार के साथ वह मेघ गर्जन सदृश कष्ट स्वर में कहते रहे "मारूँगी देखता हूँ सामन्त मंजुदेव के जीवित रहते तुम्हें वैशाली में कैसे सभा विहार मिलता है।"

इसी मध्य मध्य संथागार का कांस्य घड़ियाल 'टन्न-टन्न' का आर्तनाद कर बज उठा।

रात्रि का सघन अंधकार भी जब दासी कन्या के चीत्कारों को सहन करने में स्वयं असमर्थ रहा तो उसने उसे प्रासाद के ओर छोर तक फैला दिया। फलस्वरूप उसे सुन अन्य दास दासी एवं भृत्य जन भी कक्ष की ओर दौड़ लिए। सम्मुख पड़ी बेसुध काया को देख उनका मन गणसंवाहक को धिक्कार उठा। अतीव प्रहारों से फटे काया के वस्त्र चीथड़े होकर इधर-उधर छितर गए थे और अब वह प्रायः नग्नावस्था में पड़ी थी। उसकी देह का रंग भी नीला हो गया था। उसकी यह दशा देख उन सभी का हृदय फूत्कार उठा। परन्तु विवशता से वे सभी मौन रहे। मन ही मन केवल इतना ही कहा—'स्वामी यह तो सचमुच अति है।

सामन्त मंजदेव भी वहीं खड़े रह उसकी ओर देख रहे थे। प्रहारों के अधिक श्रम से उनका श्वास बुरी तरह फूल उठा। परन्तु दास-दासियों को इस प्रकार एकत्र होते देख उनका विश्राम करता क्रोध जैसे पुनः सचेष्ट हो गया। कुछ क्षण पर अधिकार का स्वाभाविक मद आरूढ़ हो रहा। आवेश के दृढ़, कर्कश स्वर में वह बोले—"अरे मातुलो मेरा मुख क्या ताक रहे हो ले जाओ न इसे।"

किन्तु उनकी यह ललकार निष्फल रही भृत्य जन उन पर किंचित् भी नहीं हिले डुले पाषाण मूर्ति की भांति बस काया की ओर निहारते रहे।

उनके इस अवज्ञापूर्ण दुस्साहस पर भी गणसंवाहक कुछ कहने को उद्यत हो उठे कि इसी मध्य सन्देशवाहक कपिल ने सहसा कक्ष में प्रवेश किया। भेदकारों से सम्मुख बेसुध पड़ी अपनी काया को देख उसका हृदय टीस से कराह उठा। परन्तु प्रकट में सदा की भांति इस समय भी नतमस्तक हो गणसंवाहक का अभिवादन कर वह बोला—"सामन्त श्रेष्ठ! गणाध्यक्ष के पुत्र से सन्देशवाहक-प्रधान आर्य मृत्युंजय पधारे हैं।"

किन्तु, सामन्त मंजदेव ने पूर्ववत् आवेश में कहा—"तो फिर उपस्थित करो न।"

फिर भी कपिल प्रत्युत्तर में सदा के सहज भाव में बोला—"अपने आर्य मृत्युंजय कोई गोपनीय सन्देश लाए हैं अतएव उन्होंने एकान्त का अनुरोध किया है।"

और फिर वह गणसंवाहक के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वहाँ से चल दिया। वास्तव में वह कक्ष में जितनी देर खड़ा रहा वही उसे भारी बन आया था। कक्ष के बाहर निकलते ही उसका हृदय जैसा बोझिल हो उठा और नेत्र भी सजल हो गए।

उपस्थित दास-दासी तथा भृत्यजन सन्देशवाहक कपिल का संकेत समझ वहाँ से खिसक गए। केवल दासी कन्या ही अपनी बेसुध अवस्था के कारण जाने में असमर्थ थी सो वह वहीं पड़ी रही। उसे देख सामन्त मंजदेव के क्रोधाभिभूत मुख पर भी एक बार को चिन्ता की रेखा-सी खिंच गई। अतः वह तत्परता से उस मृतप्राय देह को शय्या के नीचे खिसकाने लगे, परन्तु इसी मध्य गणाध्यक्ष के सन्देशवाहक मृत्युंजय वहीं आ पहुँचे। कक्ष पर एक भेदपूर्ण दृष्टि डालते हुए उन्होंने गणसंवाहक का

अभिवादन किया और फिर नतमस्तक हो बोले—"सामन्त श्रेष्ठ ! बलाध्यक्ष राजा चेटक ने आर्य की सेवा में एक आवश्यक संवाद निवेदन करने का आदेश किया है।"

गणसंवाहक ने किंचित उत्सुकता का भाव प्रदर्शित करते हुए कहा—"निवेदन करो आयुष्मान।"

मृत्युंजय बोले—'आर्य ! बलाध्यक्ष ने कहा है कि आज संध्या से सुरक्षा प्रधान के पद पर तक्षशिला विद्यापीठ से आए उच्च-स्नातक आयुष्मान प्रभवर की नियुक्ति कर दी गई है।"

परिसंवाहक मृत्युंजय के मुख से यह संवाद सुन सामन्त मंजरीक स्तब्ध रह गए। किन्तु, शीघ्र ही भावावेश से उनका मुख रक्तिम हो उठा। उन्हें प्रतीत हुआ कि बलाध्यक्ष ने यह संवाद नहीं भेजा वरन् प्रत्यक्षतः वज्र प्रहार किया है।

वह बोले— आयुष्मान मृत्युंजय ! मेरी ओर से आर्य चेटक की सेवा में निवेदन करना कि वैशाली की शासन व्यवस्था में सुरक्षा प्रधान का पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और उस पद पर एक ऐसे युवक की नियुक्ति की गई है जो न केवल वैदेशिक है वरन् अज्ञात कुलशील भी है और साथ ही अनभिषिक्त भी अतएव मैं उसकी इस नियुक्ति का विरोध करता हूँ।"

आर्य मृत्युंजय सामन्त मंजरीक द्वारा प्रस्तुत आपत्ति को नत मस्तक हो सुनते रहे। आयु की दृष्टि से वह प्रौढ़ावस्था के अन्तिम छोर पर पहुँच चुके थे। उनके मुख पर इस समय गाम्भीर्य और विनय का अद्भुत मिश्रित भाव व्याप्त था। फिर दीर्घावधि से गणाध्यक्ष के दुर्ग में प्रधान संदेशवाहक के पद पर आसीन होने के कारण उसके दायित्व भार तथा शील से सुपरिचित थे। अतएव बलाध्यक्ष के संदेश के उत्तर में गणसंवाहक ने जो कुछ भी कहा उसे सुनने के पश्चात् भी वह धैर्य से किंचित् समय तक खड़े रहे। अन्ततः जब वह आश्वस्त हो गए कि गणसंवाहक को अब निश्चित ही और कुछ नहीं कहना है तो वह 'आर्य की आज्ञा शिरोधार्य है' कह, अभिवादन कर, कक्ष से बाहर की ओर चल पड़े।





छह

कृष्ण पक्ष का सघन तिमिर भी एक दृश्य विशेष को देख, उन्मुक्त भाव से खिलखिला उठा।

मुख्य महानगरी से बाहर सदानीरा के बाएँ तट से लगी कम्मकरों की बस्ती में इस समय हर्षोल्लास का प्रवाह गतिमान था। एक वृद्ध ने अपने से भी अधिक आयु की एक स्त्री के सिर पर जब जीर्ण-शीर्ण पंख मुकुट रखा तो चारों ओर से हँसी की फुहार छूट पड़ी। वृद्धा के सिर पर पंख मुकुट रख रसिक बीवठे वृद्ध ने घुटनों के बल नत हो अपने दोनों हाथों को सम्मुख फैला साभिनय कुछ कहा भी था परन्तु उनके वे सभी स्वर हँसी की उस फुहार में विलीन हो गए। आबाल वृद्ध नर नारियों की अपार भीड़ इस दृश्य विशेष को देख हँसी से लोट पोट हुई जा रही थी कि इसी मध्य एक दासी बाला ने अपने हाथ की सभी पुष्प मालाओं एवं गजरों आदि को सावेग उस रसिक वृद्ध के सामने ला पटका। किन्तु उसके मुख पर आवेग से भी अधिक निराशा का भाव व्याप्त था। भर्राए कण्ठ स्वर में वह कह उठी—"लो ये लो सारी मालाएँ जितनी गूँथी थीं सभी तो बच गईं। ।

वृद्ध पहले तो खिलखिला कर हँस पड़ा। फिर सांत्वना के से आत्मीय कण्ठ स्वर में बोला—"अरी ओ छोकरी घबराती क्यों है? कल ही देख लेना ये तो क्या इस गुनी मालाएँ भी गूँथेगी तो थोड़ी पड़ जाएँगी। देवी आम्रपाली की वह शिष्या कोई ऐसी वैसी नहीं है। उसके अनुपम नृत्य के देखने वालों की एक दिन वह भीड़ जमा करेगी कि तू, बस देखते ही रह जाएगी।"

यह सुन उस दासी बाला को हँसी आ गई। वास्तव में वह उपहास की हँसी थी जिसके मध्य से उसका निराशा का भाव भी स्पष्ट रूप में प्रतिबिम्बित हो रहा था। व्यंग्य के से तिक्त स्वर में वह बोली—"कितनी भीड़ जमा करेगी यह तो आज ही विदित हो गया। चलो वह कल भी दूर नहीं देखूँगी वह भीड़ कैसी जमती है।"

उसके मुख की निराशा और अगाध हो गई। वृद्ध इस बार कुछ कुछ उल्लास के से स्वर में बोल उठा—"बंधुजनों यह हमारे उदास होने का समय नहीं। एक दिन हम में से किसी ने यदि कुछ ताम्र कार्षापण अर्जित न किए तो उससे क्या? क्या हमारे लिए यह गर्व की बात नहीं कि हम ही में से एक जन इस महानगरी की कला अधिष्ठात्री होने वाली है। देवी आम्रपाली के स्थान पर जब वह विराजमान होगी तो क्या हमें कुछ भी नहीं मिलेगा? क्या हम सभी यहीं इसी प्रकार रह जाएँगे।

वृद्ध की इस बात को सुन सभी में हर्ष की एक लहर दौड़ गई। परन्तु वह बाला

तथा उसी की भांति पुष्पमालाओं का विक्रय करने वाली अन्य बालाएं जैसे आश्वस्त न हो सकीं। एक दूसरी पहली बाला की ही भाँति व्यग्र हो उठी। फिर, अविश्वास के से बिखरे कण्ठ स्वर में बोली— 'वृद्ध बाबा यह तुम्हारा केवल एक स्वप्न है। जानते नहीं वैशाली के ये सामन्त कितने बलवान हैं।'

यह कह वह तनिक रुकी। फिर चुटकी बजाते हुए बोली— देखो तो ए, यूं देखते ही देखते उस दासी कन्या को समाप्त कर देंगे जिस पर कि तुम इतना गर्व कर बैठे हो।"

एक आगत यौवना के मुख से यह सब कुछ सुन कर भी वृद्ध खिन्न नहीं हुआ। उल्टे उसके अन्तर का उत्साह द्विगुणित हो उठा। उसके नेत्र प्रदीप्त हो गए। आत्मविश्वास के से दृढ़ कण्ठ स्वर में बोला—"ऐसा कदापि नहीं हो सकता पुत्रिया! और यदि हुआ भी तो निराश होने की आवश्यकता नहीं। मेरी अभागी पुत्रियो वास्तव में तुम्हारे अन्तर का साहस मर चुका है और मर चुका है तुम्हारा आत्मविश्वास तुम्हारे स्वाभिमान का गला समय के क्रूर हाथों ने घोट दिया है, जो अब केवल निराशा की ही भाषा बोल सकता है। अन्यथा क्या तुम एक तथ्य को सामने देखकर भी इस प्रकार अविश्वास की बात करतीं? क्या तुम समझती हो कि देवी अम्बपाली ने अपनी सारी सम्पत्ति वैसे ही बिना कुछ समझे बूझे, एक दासी कन्या को सौंप दी है? उसके पीछे भी तो कोई शक्ति ही होगी? यदि न होती तो तुम अभी आज देखते कि वैशाली में रक्त की नदियाँ बह उठी हैं।"

एक प्रौढ़ कम्मकर इस पर उत्सुकता का सा भाव दिखाते हुए तत्परता से पूछ उठा—"और वह शक्ति कौन सी है महाभाग?"

इसी मध्य एक दूसरा कम्मकर तत्परता से कह उठा— 'रक्त की नदियाँ यदि आज न बहीं तो कल बह जाएँगी पर एक दासी कन्या को किसी आर्य की सम्पत्ति मिल जाए वैशाली में यह कोई सहज काम नहीं।"

वृद्ध वक्ता का मन इस बार कुछ क्षीण-सा गया। किन्तु फिर भी प्रकट में किसी प्रकार अपने उल्लास को बनाए रख वह बोला—"तुम्हारी यह निराशा स्वाभाविक है। कारण एक दीर्घ अवधि से दास रूप में जो हमारा जन्म विक्रय होता आ रहा है, उससे हमारा विश्वास समाप्त हो चुका है परन्तु एक दिन तुम अवश्य ही देखोगे कि हमारा यह अविश्वास निरर्थक था।"

इस वाद-विवाद में हर्षोल्लास का वह रंग स्वतः फीका पड़ गया, जो कम्मकरों की इस धूम्राच्छादित बस्ती में दिन के एक प्रहर को सुन इस समय अनायास ही प्रारंभ हो गया था।

इसी मध्य हांफते आ रहे एक दास कम्मकर ने कम्मकरों की घन भीड़ में प्रवेश किया और फिर अपने उच्च कण्ठ स्वर में बोला—"बन्धु जनो! सुना तुमने अरे सुना नहीं क्या तुमने आज सामन्त मंगलदेव ने एक दास पुत्री श्यामा को किस बुरी तरह से पीटा है, इतना पीटा है कि उसका समूचा गात नीला पड़ सूज उठा है और वह अभागी अभी भी अचेत पड़ी है।"

यह सुन सभी अवाक रह गए। भीड़ में से एक वृद्ध विक्षोभ के बोझिल कण्ठ-

स्वर में कह उठा—"अनुचरो धैर्य रखो यह गणसंचालक का प्रतिशोध मात्र है, और केवल हताश ही ऐसा आचरण करते हैं।"

पहले वाला वृद्ध वक्ता इस बार सावेश बोल उठा—"धैर्य रखो ? किस बात का ? सामन्त है तो क्या वह एक दासी कन्या को जान ही से मार देगा ? अरे मान मर्यादा भी तो कोई चीज होती है। यदि आज वह समर्थ है तो हम क्या जीवन को भी तरस जाएँगे ?"

यह सुन भीड़ के बीचों बीच खड़ा एक प्रौढ़ कम्मकर जैसे क्रोध के आवेश में ललकारता हुआ-सा बोल उठा—"वृद्ध रहने दो इस उपदेशना को नहीं चाहिए हमें तुम्हारा यह साहस क्या तुम हमें इस प्रकार प्रोत्साहित कर धधकती अग्नि ज्वालाओं की ओर नहीं धकेल रहे हो ? याद रखो सामन्त जन यदि एक बार भी प्रतिशोध की भावना से भभक उठे तो हमारा हम सभी का वही हाल होगा जो आग की लपटों में निरीह कीट पतंगों का होता है। अतः कृपा कर, हमारी दशा पर दया कर हमें वहीं रहने दो जहाँ हम रहते चले आ रहे हैं। पूर्ण विनाश हो इससे तो यही श्रेयस्कर है कि हमारा जैसा भी अस्तित्व शेष रह जाए। देवी अम्बपाली ने तो यह हमारे अस्तित्व को समूल नष्ट करने का ही अनुष्ठान किया है। बंधुओ ! इसे कृपा कदापि न समझो और यदि इसे कृपा समझो तो पहले अपने विनाश की कल्पना भी कर लो।"

प्रौढ़ कम्मकर आवेश में यह सब कुछ अबाध गति से कहता चला गया। बहुत कुछ कह चुकने के पश्चात् भी उसे लगा जैसे अभी और भी बहुत कुछ कहने को शेष रह गया है। सभी उसकी बात को ध्यान से सुनते रहे और दासी बालाएँ उसके इस वाक् सामर्थ्य पर मुग्ध हो उठीं। अपनी ही बात का समर्थन होते देख उसके नेत्र प्रदीप्त हो उठे। परन्तु पहले वाला वृद्ध यह सब कुछ सुन न केवल अवाक् रह गया वरन् उदास भी हो उठा। एक अनामी किसी आशंका से उसका समूचा अंतर प्रकम्पित हो उठा। कुछ समय पूर्व तक के उसके उत्साह-ज्योतित नेत्रों में निराशा की गहनता छा गई। उसका मुख निस्तेज हो उठा तथा वह अपने को निर्जीव की भाँति अनुभव करने लगा और, सहारे के लिए उसने निकट बैठे एक युवक की ओर देखा। साथ ही अन्य की दृष्टि भी उधर की ओर घूम गई। अपने मध्य एक ग्रामजात दासके युवक को देख वे सभी दंग रह गए।

युवक के मुख पर आत्मविश्वास की मुस्कान खेल रही थी। वह अपने स्थान पर अत्यन्त शान्त भाव से उठ खड़ा हुआ फिर बोला—"सज्जनो !"

दास कम्मकर इस प्रकार के सम्बोधन के अभ्यस्त नहीं थे। अतः उन्होंने समझा यह युवक निश्चित ही उनका उपहास कर रहा है। परन्तु उनमें से अनेक ने उसे गत दिनों से अपनी बस्ती में आते जाते देखा था अतः उपहास का भ्रम अधिक देर तक मन में टिका नहीं रह सका। फिर भी ससंभ्रम दृष्टि से वे एक दूसरे की ओर अवाक् देखते रहे। युवक पुनः बोल उठा—"सज्जनो ! शायद तुम सभी मेरे सम्बोधन पर कुछ चकित हुए हो। पर क्यों ? क्या वैशाली में भी इस बात पर चकित होने की आवश्यकता है ? क्या तुमने आज दिन में देवी आम्रपाली को यह कहते नहीं सुना कि कर्म ही धर्म है, और दासी कन्या दासी कन्या नहीं वरन् एक कलाकार है उसका धर्म कला है। यह

फिर भला भगवान् तथागत से भी बड़ा कोई धर्मावतार है। जानते हो आज उन्होंने अपने प्रधान शिष्य से क्या प्रश्न किया था ? उन्होंने आनन्द से पूछा था—"क्यों आयुष्मान आनन्द भला इस संसार में सबसे बड़ा दास कौन है ? जानते हो तब आनन्द ने क्या कहा था ? अश्रुपूरित आनन्द ने तब भगवान् के दिव्य रूप को मस्तक नवा कहा था—तथागत भला आपसे बड़ा दास कौन है ?"

यह सुन श्रोता कम्मकरों के नेत्र जैसे किसी नव प्रस्फुटित आलोक का स्पर्श कर प्रदीप्त हो उठे। एक प्रौढ़ कम्मकर के मुख से अनायास ही निकल गया—"बंधुवर हम उस समय भला वहाँ कैसे होते ? हम तो उस समय दूरस्थ ईख कमीतों में पुकाई कर रहे थे अथवा सेट्ठी मित्तविदक की बड़ी-बड़ी गाँठों को अपनी पीठों पर लाद उसके कोठारों में पहुँचा रहे थे अथवा किसी अन्य कर्मशाला में कार्य व्यस्त रहे।"

युवक इस मध्य जैसे उसकी बात को बड़े ध्यान से सुनता रहा। कम्मकर जब अपनी बात कह चुका तो युवक फिर बोला—"मित्रवर कार्य रत रहने से तो बढ़कर कोई पावन धर्म ही नहीं। किन्तु जो बात मैं कहने लगा था वह तो कुछ और ही है। जानते हो वैशाली एक देव भूमि है ऐसी देव भूमि जहाँ सभी समान होने चाहिएं। और जब यहाँ इस गणराज्य की स्थापना हुई थी तब यहाँ सभी समान भी थे। इस देव भूमि का कभी भी युद्ध में विश्वास नहीं रहा। हाँ यदि कोई इस पर आक्रमण करे तो आत्मरक्षा में लड़े जाने वाला युद्ध युद्ध कदापि नहीं कहा जा सकता। तो जब वैशालिकों का युद्ध में विश्वास नहीं फिर विजितों अथवा विजयी का भेदभाव यहाँ कैसे आ गया। सम्भवतः विजयी लोगों ने ही तो विजितों को दास बनाया है। दास कौन है ? जो विजित हैं वे ही दास हैं। बन्धुओ कदाचित् तुम मानव जाति के इस कर्दभपूर्ण तथ्य को भूल गए हो। वैशाली में कोई विजयी नहीं सभी समान हैं। क्यों ? क्योंकि उसने कभी भी किसी विजय के लिए युद्ध नहीं किया। फिर विजित कैसे ? दास कैसे ?"

सम्मुख ही खड़े एक कम्मकर ने साश्चर्य पूछा—"बंधुवर तो फिर हम सभी यहाँ कैसे आए ?"

वक्ता युवक बोल उठा—"मित्र तुम्हारा यह प्रश्न तो सचमुच चकित करने वाला है। तुम अनायास ही तो एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछ बैठे हो। तो फिर सुनो तुम्हारा आज का यह अस्पष्ट भ्रम-सामर्थ्य बता रहा है कि कभी तुम भी बलवान रहे होगे। देवी अदिति तुम्हारी सहचरी रही होगी और देवी सिद्धि ने भी किसी दिन स्वयं अपने हाथों से तुम्हारे उन्नत ललाट पर समृद्धि का तिलक लगाया होगा और तब तुम भी इस माता वसुन्धरा की गोद में स्वच्छन्द रूप से विचरण करते होगे। तुम उस भू भाग के निश्चय ही स्वामी रहे होगे। तब किसी महत्त्वाकांक्षी पड़ोसी ने ईर्ष्या-दृष्टि से तुम्हारी ओर देखा होगा उसी प्रकार जिस भाँति कि आज मगध वैशाली की ओर देख रहा है कोसल काशी की ओर और अवन्तिका कौशाम्बी की ओर और मगध ने तो अंग राज्य को अभी-अभी परास्त कर अपने में मिला भी लिया है। ऐसे ही एक दिन तुम्हारी भी पावन भूमि पर किसी ने क्रूर प्रहार किया होगा तब तुम

हार गए होंगे और वे जीत गए होंगे। परास्त पुत्रों को बन्दी बना लिया होगा और फिर आप सभी को निस्सहाय अवस्था में यत्र-तत्र बेच दिया होगा। क्यों? इसलिए कि कभी फिर तुम्हारा स्वाभिमान न जाग उठे। कहते-कहते वह सहसा रुक गया। उसका कण्ठ स्वर जैसे आत्म ग्लानि से कुछ बोझिल-सा हो गया। उसके आत्म विश्वास प्रदीप्त नेत्रों में अंतर्व्यथा का-सा भाव उभर आया। सभी एकत्र कर्मकर मन्त्र मुग्ध हुए से उसकी ओर देखते रहे।

तनिक रुकने के पश्चात् वह युवक फिर बोला— और बन्धुवरो इन राज्य लिप्सु राजाओं के संरक्षण में फिर स्वार्थी सार्थवाहों ने दासों का एक नियमित व्यापार ही आरम्भ कर दिया। जैसे वे मनुष्य नहीं वरन् कोई निर्जीव पदार्थ हों। और, तुम यहाँ भूल गए हो कि तुम कहाँ से आए। पीढ़ी दर पीढ़ी और कालान्तर के दुर्दिनों ने तुम्हें इतिहास का केवल एक भूला भटका पन्ना बना कर छोड़ दिया है। किन्तु वैशाली में "

सहसा रात्रि के उस अन्धकार में नगर की ओर से दौड़ते आ रहे अश्वों की पद चाप गूंज उठी। उसे सुन सभी का ध्यान उस ओर आकृष्ट हो उठा। युवक भी कहते से रुक गया। सभी उपस्थित कर्मकर इस समय आतंकित प्रतीत हुए। पद चापों की अधिकाधिक स्पष्ट ध्वनि उनके इस मूक भाव को प्रगाढ़ करती चली। वक्ता युवक कुछ क्षणों तक उनकी ओर देखता रहा। फिर सहसा जैसे आह्वान करता हुआ उच्च स्वर में बोल उठा—"माता वसुन्धरा के उपेक्षित पुत्रो! वैशाली के गौरव के प्रतीक उस गण संथागार की ओर देखो जो तुम्हें विचार स्वातन्त्र्य के आत्म विश्वास के लिए ललकार रहा है, और उच्च स्वर में पुकार-पुकार यह कह रहा है कि किसी दिन बहिष्कृत किए गए व्रात्यों का यदि मैं आदर्श हूँ तो मेरे इस स्वरूप निर्माण में तुम्हारा भी हाथ लगा है यदि मैं आज वैशाली का देव मन्दिर बन सका हूँ तो फिर मेरे लिए सभी समान हैं, समूची मानव जाति के लिए मैं समान हूँ। जो भी मेरी आधारशिला में रखे आदर्श का सम्मान करे, मैं उसी का हूँ फिर क्या स्वामी और क्या दास! यह सब कुछ भ्रम है। स्वार्थों का प्रपंच है। अतः साहस कर मेरे आलिंगन में आओ। जो कुछ मैं कह रहा हूँ तथागत ने उससे कुछ भी तो भिन्न नहीं कहा है। और देखो उन्होंने अपने भिक्षु संघ की—उस भिक्षु संघ की जहाँ उपालि नापित और देवदत्त शाक्य पुत्र तथा मोग्गलायन ब्राह्मण सभी समान हैं—मेरे स्वरूप से प्रेरित हो रचना की है। फिर भला तुम्हीं मेरी ओर अविश्वास की दृष्टि से क्यों देख रहे हो?"

युवक का कण्ठ रुँध गया, किन्तु फिर भी वह कहता रहा— ऐ माता वसुन्धरा के बहिष्कृत, विस्मृत पुत्रो पदचापों की ध्वनि के साथ बढ़ते आ रहे संकट से मत घबराओ। तथागत ने आज हमें एक नई दिशा दी है तथा उस दिशा में अग्रसर होने के लिए मार्ग भी दिखाया है। उनके सद्धर्म का आचरण कर हम प्रस्तुत संकट का विनय और शील से सामना करेंगे। क्यों? क्योंकि हमारा पक्ष बलवान है।"

सहसा उसके कण्ठ स्वर पर पदचापों की ध्वनि आच्छादित हो रही। अश्व सर्वथा निकट पहुँच खड़े हो गए। युवक तत्परता से भीड़ के मध्य से निकल अपना सीढ़ियों की ओर बढ़ फिर बोल उठा—"बन्धुवरो! आश्वस्त रहो। इस संकट में मैं

तुम्हारे साथ हूँ। हम एक हैं। जब एक हैं तो कोई भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। हमारा लाभ ही होगा हानि नहीं।"

कम्मकर कुछ आतंकित और कुछ उत्सुक दृष्टि से उसकी ओर देखते रहे।

अश्वारोहियों का एक पूरा गुल्म उस समय वहाँ आया था। उनमें से एक त्वरता से अपने अश्व से उतर कम्मकरों के समुदाय की ओर बढ़ लिया। शेष आरोही भी अश्व से नीचे कूद गए। परन्तु वे अभी वहीं खड़े रहे।

वातावरण शांत हो उठा और कम्मकर समुदाय के पूरे आकार प्रकार पर निस्तब्धता छा गई जैसे वह किसी तूफान से पूर्व की शान्ति हो।

किन्तु अश्वारोही ने सम्मुख खड़े युवक का अभिवादन किया और फिर त्वरता से एक पत्र उसकी ओर बढ़ा दिया। जब तक युवक ने वह पत्र पढ़ा सभी उपस्थित जन उसकी ओर उत्सुकता से देखते रहे। पत्र पढ़ने के पश्चात् युवक बोला—"अच्छा बन्धुओ मैं चला। गणाध्यक्ष आज्ञा बैठक ने मुझे तत्काल अपने दुर्ग में उपस्थित होने का आदेश दिया है।"

दिन भर के थके माँदे कम्मकर यह सुन स्तब्ध रह गए। आशंका से उनके क्लांत मुखों की खिन्न आभा और फीकी हो उठी। फिर भी वे सोत्साह एक स्वर में बोल उठे—"अज्ञात युवक तुम निश्चय ही हमारे त्राता हो भविष्य की आशा हो हम तुम्हें इस प्रकार एकाकी कदापि न जाने देंगे। हम सभी तुम्हारे साथ चलेंगे।"

युवक के मुख पर जैसे विजय की सहज मुस्कान खेल उठी। वह बोला—"नहीं बन्धुओ ऐसी कोई बात प्रतीत नहीं होती और यदि हुई भी तो ।"

और फिर वह त्वरता से एक वृक्ष से बंधे अपने अश्व की ओर अग्रसर हो लिया।





सात

प्रत्यूष के धुंधलके में कई रथ अनुक्रम से एक प्रासाद के द्वार को आवेग के साथ छोड़ और भी अधिक तीव्र गति से आगे की ओर बढ़ लिए और फिर वे सभी [illegible] मुख्य राजपथ पर सरपट दौड़ चले।

उनकी घड़घड़ाहट से महलपाटी का वह प्रान्तर तो गूंज ही उठा पीछे छूटता हुआ मार्ग भी दहलता रह गया। तथागत के दर्शन को निकले कतिपय नागरिकों ने जब इस वेग विशेष में अभियान का सा यह दृश्य देखा तो वे सहम गए। वे सभी वहीं खड़े हो इस दृश्य को देखते रहे।

वृक्षों के झुरमुट में अभी-अभी पक्षियों का कलरव प्रारम्भ हुआ था। [illegible] रथों के इस कोलाहल में उनका यह समवेत स्वर विलीन हो गया और निकटवर्ती आवासों में सोए पड़े नागरिक चौंक कर उठ बैठे।

कई रथ निकल चुके थे फिर भी प्रासाद विशेष के द्वार मंडप के दोनों ओर अभी भी अन्य अनेक रथों की लम्बी पांत खड़ी थी। सम्मुख प्रांगण में दीपिकाएं टिकी थीं और वृक्षों से अश्वों की वल्गाएं बंधी हुई थीं। अभिजात समाज के कुछ सदस्य जा चुके थे, और कुछ सोत्साह अभी तक वहीं द्वार मण्डप के पास परस्पर वार्ता व्यस्त थे। गणसंवाहक सामन्त भंजदेव प्रत्येक जाते हुए सामन्त अथवा श्रेष्ठिजन को नम्रता की जैसे प्रतिमूर्ति बन नत मस्तक हो विदा कर रहे थे और कह रहे थे—"आयुष्मान ने इस आवास पर पधार सचमुच अत्यन्त कृपा की है।"

वह इस समय अत्यन्त प्रसन्न चित्त थे। उनका अंतराल उल्लासोच्छ्वास से स्फुरित था और नेत्र परम विश्वास से चमक रहे थे। महाश्रेष्ठी मणिरत्न जब जाने लगे तो उन्होंने उन्हें जैसे भावविभोर हो अपने आलिंगन-पाश में ही कस लिया। फिर बोले—"बंधुवर! आदि आत्मदेवों ने निश्चय ही यह हमारी परीक्षा ली है। किन्तु आज की इस सभा के सफल आयोजन को देख अब हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं रह गई। मित्रवर इसका श्रेय केवल आप ही को है। यह कहते हुए उन्होंने आलिंगन पाश को और दृढ़ कर लिया और साथ ही निकट खड़े श्रेष्ठी चित्तविक की ओर दृष्टि फेर पूछा—"क्यों आयुष्मान् मैंने इसमें कुछ अनुचित तो नहीं कहा?"

गणसंवाहक ने यह सर्वथा सहज ढंग में कहा था फिर भी श्रेष्ठी चित्तविक ने अपने को गौरवान्वित हुआ अनुभव किया। प्रकट में उसके मुख पर सौम्यता एवं संकोच का सा मिश्रित भाव फैल गया। नतमस्तक हो बोले—"आर्य आप दोनों ही तो अभिजात समाज के गौरव पूर्ण मुकुट हैं।"

यह कह, श्रेष्ठी जितविक्रम ने अपने समवयस्क सामन्त कार्तिकेय की ओर देखा। सामन्त कार्तिकेय श्रेष्ठी जितविक्रम की ही बात को जैसे आगे बढ़ाते हुए बोल उठे— "मित्र श्रेष्ठिन् आपने यह उचित ही कहा है। तनिक सोचो तो हम दोनों महासत्व के नेतृत्व के अभाव में भला हमारी क्या गत हुई होती?"

इसी समय महाश्रेष्ठी मणिरत्न सामन्त भद्रदेव के कड़े आलिंगन में एक पक्षी की भाँति फड़फड़ा उठे। सविनोद बोले— 'बन्धुवर, इस आयु में तुम्हारा यह दृढ़ आलिंगन! इस संघर्ष में यदि तुम अकेले भी होते तो पर्याप्त था। इतने आयुष्मानों को व्यर्थ ही भला क्यों कष्ट दिया।"

गणसंवाहक इस पर खिलखिला पड़े। साथ ही अन्य भी। तत्पश्चात् गण संवाहक जैसे गम्भीर हो बोले— 'मित्रवर, इस प्रगाढ़ आलिंगन का रहस्य जानते हो?"

महाश्रेष्ठी को विदित था कि गणसंवाहक इसका क्या कारण बताएँगे अतः वह केवल मुस्कुराते हुए उनकी ओर देखते रहे। किन्तु द्वार-मण्डप में खड़े अन्य सभी उनकी ओर उत्सुकता से देखने लगे। महाश्रेष्ठी को मुस्कराते देख गणसंवाहक स्वयं ही बोल उठे—"महाश्रेष्ठिन्, आलिंगन की इस दृढ़ता का रहस्य ये आयुष्मान ही हैं इनके उत्साह ने उदास मन को कितनी शांति प्रदान की, मेरे पक्ष को कितना सुदृढ़ किया है और उनके इस सहयोग से मैं परम्परा की रक्षा के प्रति कितना आशावान् हो उठा हूँ, यह सब कुछ इन्हीं आयुष्मानों की तो देन है।"

इस पर सभी उपस्थित सामन्त एवं श्रेष्ठिजन नत मस्तक हो बोले—"आर्य हमें लज्जित न करें।"

फिर, सामन्त कार्तिकेय का अकेला स्वर बोल उठा—"आर्य आपने इस विश्राम योग्य वयस का ध्यान न करते हुए भी इस संघर्ष में जो आह्वान किया है वह हम सभी के हितों की दृष्टि से ही तो किया है। आपका इसमें निज का भला क्या स्वार्थ था?"

सभी कह उठे—"बन्धुवर कार्तिकेय! तुमने यह तो सचमुच हम सभी के मन की बात कह डाली।"

गणसंवाहक उच्च स्वर में बोल उठे—"आयुष्मानो तुम्हारा यह विनय उच्च कुल गौरवोचित ही है। सारी रात्रि जागरण करते रहने के पश्चात् भी तुम्हारा यह उत्साह देखकर मुझे तो सचमुच गर्व का अनुभव हो रहा है।"

तनिक रुक वह फिर बोले—"गणों की कीर्ति पताका फहराने वाले आयुष्मानो! हाँ एक बात तो मैं तुम सभी से कहना भूल ही गया। आज रात्रि यहाँ क्या कुछ मंत्रणा हुई है अभी उसे गुप्त रखना ही श्रेयस्कर है। उसका भेद खुलते ही विपक्षी सचेष्ट हो उठेंगे और हम समर्थ का साहस खो बैठेंगे। अतः इस ओर से पूर्ण सावधान रहने की आवश्यकता है।

सभी एक स्वर में कह उठे— 'आर्य आश्वस्त रहें।"

तत्पश्चात्, वे एक-एक कर एक दूसरे से सोल्लास विदा लेते हुए अपने-अपने वाहन की ओर बढ़ लिए। वे क्या बढ़े जैसे वैशाली का कोई घटना क्रम ही आगे की ओर बढ़ लिया।

उधर, क्षितिज पर भोर की फूटती प्रथम किरण के साथ-साथ एक मद वाहन

पवन गति से दौड़ता देवी आम्रपाली की अट्टालिका के निकट पहुँच सहसा रुक खड़ा हो गया।

वाहन के रुकते ही उसमें से एक युवक सैनिक की सी तत्परता के साथ नीचे उतरा। प्रातःकाल के वायु झोंकों से उसका उत्तरीय कुछ-कुछ अव्यवस्थित हो उठा था। वह दाएँ हाथ से उसे सँवारता तथा बाएँ हाथ से सिर के बिखरे केशों को तत्परता से व्यवस्थित करता आगे बढ़ रहा था। किन्तु उसने अभी कुछ ही पग रखे होंगे कि वह सहसा रुक खड़ा हो गया उसकी दृष्टि सम्मुख खड़ी अट्टालिका पर केन्द्रीभूत हो रही। नील वर्णा अट्टालिका के मध्य कक्ष पर प्रातः बेला की पड़ती स्वर्णिम धूप रश्मियों के सहयोग में उसका सुसज्जित रूप और मुखरित हो उठा। उसकी यह छवि देख युवक की मुख आभा भी अधिक परिमाण में प्रदीप्त हो उठी। उसका गौर वर्ण उन्नत ललाट उठी नासिका विशाल वक्षस्थल सुडौल भुजदंड तथा नेत्रों में से झाँकता आत्मविश्वास स्पष्ट ही उसके कुलीन होने का परिचय दे रहे थे। परन्तु उसकी नेत्रदृष्टि में कुछ और असाधारण भी था और वह था उसके हृदय का कोमल भाव जिसमें से अंतः वेदना की एक क्षीण रेखा स्पष्ट झलक रही थी। अपनी इस संवेदन शील आर्द्र दृष्टि के साथ वह जिस किसी की ओर भी देख लेता उसमें सहज ही मे आत्मीयता के भाव का संचार हो उठता।

वह कुछ क्षणों तक वहीं खड़ा रह जैसे अट्टालिका के मध्य कक्ष को निहारता रहा। उसके मुख पर एक व्यथा भाव झलक आया और फिर उस पर शीघ्र ही एक सहज मुस्कान फैल गई। बाहर निकलते श्वास के साथ उसका भी अंतः भाव ध्वनित हो उठा। वह बोला—"देखो प्रिया सचमुच तुम अत्यन्त अबोध हो अन्यथा क्या आज इस अट्टालिका ने यह नया रूप धारण किया होता।"

फिर, जैसे अपने ही को समझाता मन ही मन में 'अरे कोई बात नहीं' कहता हुआ वह युवक द्रुत तत्परता के साथ अट्टालिका के मुख्य प्रवेश द्वार की ओर बढ़ लिया।

देवी आम्रपाली की अट्टालिका पर सारी रात्रि दृढ़ पहरा रहा था और प्रधान द्वारपाल पंचुक पहरे को अभी अभी शिथिल कर मुख्य द्वार के ही सम्मुख पड़े एक शिला खंड पर आकर बैठा था। रात्रि बिना किसी व्याघात के बीत सकी इस पर उसने मन ही मन भारी सन्तोष का अनुभव किया। अतः शिलाखंड पर बैठते ही उसके निद्रा-बोझिल नेत्रों में एक झपकी सी आ गई। किन्तु केवल कुछ क्षणों पश्चात् ही जब उसके कानों में पद-ध्वनि टकराई तो वह पुनः सचेष्ट हो उठा। चौंककर वह शिलाखंड से उठ खड़ा भी हो गया। अत्यधिक थका होने के कारण कदाचित् कुछ झल्लाया भी। निद्रा आलस्य से भरी जम्हाई के साथ उसका ऊँघा मुख कठ बड़-बड़ा भी उठा। बोला— "अरे ओ मार्गभ्रष्टो अब क्या यहाँ देवी आम्रपाली बैठी है जो इस प्रातः बेला में यूँ शिर पटकने आ पहुँचे।"

किन्तु फिर शीघ्र ही उसे जैसे कोई बात स्मरण हो आई। वह सशंक हो उठा और हाथ वश पांव से स्वतः आई और लपटते खड्गकोष पर जा पहुँचा। वक्र दृष्टि से आगंतुक की ओर देखता सावधान हो वह द्वार पिंड के सम्मुख तन कर खड़ा हो गया।

द्वार पिंड पर खड़े हो उसने इस बार अपने नेत्रों को पूरा खोल पैनी दृष्टि से

आगंतुक की ओर देखा किन्तु शीघ्र ही उसके प्रति उपेक्षा का सा भाव दिखा अपनी दृष्टि को समेट भी लिया। वास्तव में एक दीर्घ अवधि से देवी आम्रपाली की सेवा में नियुक्त रहने के कारण इस प्रकार असमय में आये सभी जनों के प्रति उपेक्षा का भाव दिखाना उसके स्वभाव का प्रमुख अंग बन चुका था। कभी-कभी उन्मत्त दशा अथवा विक्षिप्त-प्राय अवस्था में आए किसी सामन्त अथवा श्रेष्ठी-पुत्र को तो वह जैसे साधिकार दुत्कार भी उठता था।

किन्तु आगंतुक युवक जब सर्वथा अविचलित रह सहसा उसके सम्मुख ही आ खड़ा हुआ तो वह निश्चित ही स्तब्ध हो उठा। युवक की ढिठाई पर नहीं वरन् उसके इस आकस्मिक आगमन पर। अगले क्षण ही उसके मुख का भाव परिवर्तित हो रहा। स्तम्भना से अवरुद्ध रक्त धमनियों में नवोत्साह का संचार हो उठा और मुख का आभा मर्म उल्लास से दीप्त हो गया। नैन भी चमक उठे। वह हर्षातिरेक से पुलकित हो उठा। उसने शीघ्रतापूर्वक अपने बाईं ओर लटकते कोष में से खड्ग को खींचा फिर दोनों हाथों को हवा में उछालते हुए वह स्फुरित कण्ठ स्वर में बोला—"आचार्य शिल्प की जय हो! आज इस वेला में आप के शुभ दर्शन कर यह कंचुक सचमुच धन्य हो गया है महाप्रभो।"

उसके समूचे अन्तराल में भावोद्गारों की एक साथ ही तो सहस्रों धाराएं फूट निकलीं। उसका कण्ठ स्वर यह कहकर भी और अधिक आवेश के साथ गड़गड़ाता रहा। किन्तु वह और अधिक कुछ न कह, अपना मस्तक नत कर, शान्त भाव से ऐसे खड़ा हो गया जैसे कोई आदेश पाने की प्रतीक्षा कर रहा हो। विनम्रता से उसका मस्तक अधिकाधिक नत होता रहा किन्तु साथ ही वह उसी परिमाण में गर्व का भी अनुभव कर उठा।

कंचुक द्वारा प्रस्तुत इस अभिवादन के उत्तर में आगंतुक युवक का मुख भी एक सहज मुस्कान बिखेर उठा। साथ ही उसके कण्ठ स्वर में जैसे स्वाभाविक आत्मीयता का भाव सिमट आया। पूछने लगा—"क्यों मित्रवर कंचुक सब सकुशल तो है न ?"

भीमकाय दीखते प्रधान द्वारपाल का मस्तक इस प्रश्न के उत्तर में सौजन्य से और अवनत हो गया। उसका रोम-रोम जैसे कृतज्ञता का अनुभव कर उठा। बोला—"यह सब स्वामी की ही कृपा है आर्य कि रात्रि बिना किसी व्याघात के बीत गई।"

तनिक रुक वह फिर कुछ व्यथित हुए से कण्ठ स्वर में बोला—"किन्तु स्वामी देवी शिप्रा ने समूची रात्रि ही तो दुविधा में बिताई है।"

"भला क्यों कंचुक ?" आचार्य शिल्प के मुख से यह प्रश्न जैसे स्वतः निकल गया। किन्तु प्रश्न के साथ ही उसका मुख भाव जैसे कुछ विचलित हो उठा।

कंचुक ने उत्तर में अपने नेत्र पलक ऊपर उठा आचार्य शिल्प की ओर देखा। वह कुछ कहने को उद्यत भी हुआ कि उससे पूर्व स्वयं आचार्य शिल्प कह उठा—"कंचुक देवी शिप्रा की दुविधा से मैं अनभिज्ञ नहीं। उसकी यह मनोव्यथा स्वाभाविक ही है। तो भी कुछ अपना दायित्व तो समझना ही चाहिए।"

देवी शिप्रा की भला क्या दुविधा होगी और इस दुविधा के मध्य भी उसे अपना कौन-सा दायित्व समझना चाहिए, कंचुक भी उससे अनभिज्ञ नहीं था। तो भी वह उस समय मौन रहा। फिर स्वयं ही उस मौन को भंग कर, उल्लसित कण्ठ स्वर में बोल उठा— स्वामी आपके इस आगमन के समाचार को सुन देवी शिप्रा निश्चित

ही हर्षित हो उठेंगी अतएव मुझे संवाद निवेदन का आदेश करें।

आचार्य शिष्य की दृष्टि इस समय अट्टालिका पर केन्द्रित थी और उसका मन दुविधा ग्रस्त देवी सिप्पा की ही कुछ बात सोच रहा था। अतः वह अपनी उन्मन मनःस्थिति के कारण कंचुक के प्रश्न का तत्परता से उत्तर न दे सका। इसी मध्य कंचुक पुनः बोल उठा—"आर्य जब तक मैं स्वामिनी के पास संदेश पहुँचाने की कुछ व्यवस्था करूं, आप आम्रशालागार में पधार विश्राम करें। महाप्रभो इसमें आपको कोई कष्ट तो न होगा?"

प्रथम दृष्टि में ही दास कालीन दीखने वाले द्वारपाल के मुख से शिष्टाचार की यह भाषा सुन आचार्य शिष्य चकित हुए बिना न रहा। परन्तु आश्चर्य से भी अधिक उसके अंतर में आशा का संचार हो उठा और फिर साथ ही जैसे किसी की दयनीय स्थिति का ध्यान कर उसका हृदय टीस से कराह उठा। मन में अपने से ही बोला—"भगवान, मानव के अन्दर बैठी एकाधिकार की स्वार्थपूर्ण महत्त्वाकांक्षा ने देखो तो अपना ही रूप कैसा विकृत कर लिया है। एकाधिकार की इस घृणित महत्त्वाकांक्षा ने युद्ध की कैसी-कैसी भयावह विभीषिकाओं को जन्म दिया है। फिर भी वह उस पर लज्जित नहीं वरन् उल्टे उसे गर्व है, गर्व है इस बात पर कि उसने अपने ही स्वाभिमान को कुचल डाला है और वह एक ऐसी परम्परा का सूत्रपात करने में सफल हुआ है जिसमें उसकी आने वाली सभी पीढ़ियाँ भयाक्रान्त रहेंगी। फलस्वरूप वह अपने ही प्रति सशंकित हो उठा है। संदेह के वशीभूत हो कर वह एक दूसरे का गला घोंटने पर उतारू हो गया है। वास्तव में निरीह मानव ने जब युद्ध का सूत्रपात किया वह उस समय यही भूल गया कि उसकी विजय कोई स्थायी विजय नहीं है। किसी दिन वह स्वयं भी विजित हो सकता है और जैसे वह किसी को विजित कर उसे दास बना सकता है वैसे ही वह स्वयं भी इतिहास के क्रूर हाथों के कशाघात से दास बन सकता है और एकाधिकार का स्वामी बनने वाला जीवन के आधार मूल अधिकार से वंचित हो एक पशु का जीवन बिताने के लिए भी बाध्य हो सकता है।

अपने इस विचार प्रवाह में वह जैसे भटक-सा गया। उसको यथापूर्व गतिमान् देख वह पुनः अपने ही से बोला—"भगवान, इसका कोई अंत नहीं और यदि अन्त है तो तथागत का वह मार्ग है जो युद्ध-त्रस्त समूचे मानव समाज को सद्भाव की ओर आह्वान कर रहा है और अनुकरणीय है देवी आम्रपाली का वह त्याग जिसके फलितार्थ रूप में आज इस देवी सिप्पा का दर्शन हुआ है।

सहसा वह कंचुक की ओर दृष्टि कर बोल उठा—"निश्चय कंचुक, देवी आम्रपाली ने एक महान् त्याग कर वैशाली के जीवन में एक पुनीत परम्परा की स्थापना की है। देवी सिप्पा को उसने जो कुछ भी प्रदान किया है उसके फलस्वरूप वह निश्चित ही एक उज्ज्वल भविष्य की प्रतीक बन उठी है। देवी सिप्पा को इस संदर्भ में केवल मुस्काना ही शोभा देता है खिन्नता कदापि नहीं। कंचुक, देवी सिप्पा को एक दिन अपना यह दायित्व समझना ही होगा।"

कंचुक ने उत्तर में कुछ कहना प्रारम्भ ही किया था कि इसी मध्य एक वीर रथ आवेग दौड़ता उधर की ओर आ पहुँचा। कंचुक के मुख से निकले शब्द उसकी

थरथराहट में ही विलीन हो गए। वह सशंक दृष्टि से उस ओर देख उठा। रथ के रुकते ही उसमें से एक साथ कोई दस सशस्त्र व्यक्ति आवेग से नीचे कूद पड़े। उसकी दृष्टि बलात् भिक्षु में खड़े आचार्य शिष्य की ओर घूम गई। उसे निरस्त्र देख उसके मुख का भाव एक क्षीण पड़ गया। आचार्य शिष्य ने ग्राम सम्पदकों की बस्ती में क्या कुछ कहा था, वह उसे सुन चुका था और पराक्रमबाहु ने प्रतिशोध के वशीभूत दासी कन्या छाया की क्या दशा कर दी थी वह भी उसे विदित हो गया था और फिर देवी आम्रपाली ने भिक्षु संघ में प्रविष्ट होने से पूर्व उससे क्या कुछ कहा था ये सभी बातें तो उसके मस्तिष्क में एक साथ सजीव बन गईं। वह आचार्य शिष्य और देवी शिप्रा की रक्षा के लिए देवी आम्रपाली से वचन बद्ध था अतः वह इस समय जैसे भारी दुविधा में पड़ गया। आचार्य शिष्य को इस समय निरस्त्र देख वह खिन्न ही उठा। परन्तु इस समय न तो दुविधा का समय था और न ही खिन्न होने का।

रथ से उतरे सैनिक आवेग उसी दिशा में बढ़े आ रहे थे और इस समय तक सर्वथा निकट पहुँच चुके थे। उन्हें इस प्रकार सन्निकट देख धंधुक को तत्काल यह यही उपाय सूझा कि वह तत्परता के साथ अपने स्थान से हट आचार्य शिष्य के सम्मुख आ गया और उसे अपनी ओट में ले लिया। किन्तु स्वयं आचार्य शिष्य इस पर खिलखिला पड़ा। उसे इस प्रकार हँसते देख धंधुक कुछ असमंजस-सा गया पर वह आचार्य शिष्य से कुछ न कह सका। सम्मुख से आते सैनिकों को ही ललकार उठा। दूसरा खड्ग तो कोष से कभी का निकल ही चुका था। वह उसे ऊपर हवा में तानते हुए कुछ बड़बड़ा भी उठा, परन्तु इससे सैनिकों का बढ़ना नहीं रुक सका। वे उसी प्रकार आगे की ओर बढ़ते रहे। यह देख धंधुक का दैत्याकार रूप प्रचंड हो उठा। वह अपने ऊपर नियंत्रण न रख सका और इससे पूर्व कि वे कोई प्रहार करें आवेग उनकी ओर बढ़ने को उद्यत हो उठा। आचार्य शिष्य इस पर जोर से चिल्ला उठा—"मित्र धंधुक!" परन्तु धंधुक ने जैसे उसे अनसुना कर दिया। सम्मुख दिशा से आते सैनिक उसे इस प्रकार महारोषयुक्त हुआ देख वहीं रुक खड़े हो गए। केवल खड़े ही नहीं हो गए वरन् हतप्रभ भी हो रहे। आचार्य शिष्य पुनः चिल्ला उठा—"धंधुक तुम्हें सम्भवतः भ्रम हो गया है, ये पराक्रमबाहु के व्यक्ति नहीं वरन् अपने पक्ष के ही हैं।"

धंधुक यह सुन वहीं रुक गया। किन्तु उसके मुख पर आश्चर्य का भाव उभर उठा। उसने चकित दृष्टि से पहले तो आगन्तुक सशस्त्र सैनिकों की ओर देखा और फिर आचार्य शिष्य की ओर। सारे अनुमान लगाने के पश्चात् भी वह जैसे कुछ न समझ सका। इसी मध्य सैनिकों का वह अगुवा पुरुष आचार्य शिष्य का अभिवादन कर उठा।

धंधुक इस दृश्य को भी केवल चकित दृष्टि से देखता रह गया।

किन्तु आचार्य शिष्य ने अब और अधिक विलम्ब न कर उसे बताया—"मित्र धंधुक देवी शिप्रा की रक्षा का भार अब केवल तुम्हीं पर नहीं मुझ पर भी है और ये सभी सैनिक आज से जब तक नगर की स्थिति सामान्य नहीं हो जाती तुम्हारी इस कार्य में सहायता करेंगे।"

सैनिक दल का यह इस बार किंचित मुस्कान के साथ बोला— मित्र धंधुक तुम्हारा

आचार्य शिष्य इस समय कोरा आचार्य शिष्य ही नहीं बल्कि वैशाली का सुरक्षा प्रधान भी है और साथ ही..."

कंचुक इस संवाद को सुन प्रसन्न हो उठा। हर्षातिरेक में वह अपने एकाकी किन्तु भारी स्वर में आचार्य शिष्य का जय-जयकार भी कर उठा। किन्तु अगले क्षण न जाने किस बात का ध्यान आते ही उसके मुख का प्रफुल्ल भाव लुप्त हो गया। सुरक्षा प्रधान आचार्य शिष्य जैसे उसके कारण को तत्काल ताड़ गया। अतः वह कंचुक की पीठ को थपथपाते हुए बोला— भिक्षवर घबराओ नहीं, अट्टालिका के सुरक्षा-दायित्व पर तुम्हारा अभी भी एकाधिकार है ये सभी सैनिक तुम्हारे अधीन होंगे।"

इस घोषणा पर सभी उपस्थित सैनिक कंचुक का अभिवादन कर उठे। कंचुक का वक्षस्थल गर्व का अनुभव कर फूल गया। वह आचार्य शिष्य का अभिवादन कर नत मस्तक बोला— यह सब आर्य की ही कृपा है अन्यथा वैशाली में भला कभी कोई आर्य मत्स्य पुरुष किसी दास बालीक के अधीन रहा है।"

इसी मध्य सभी का ध्यान द्वार कपाट की ओर से आती थपथपाहट की ध्वनि को सुन उसी ओर आकृष्ट हो उठा। और उसे सुन कंचुक तो तत्परता से उसी ओर बढ़ लिया। छिद्र में से झाँक कर देखा तो विस्मित हो उठा। देवी विष्या रजत थालार पर अर्घ्य सामग्री लिए अट्टालिका की सभी परिचारिकाओं के साथ स्वयं द्वार पर आ उपस्थित हुई थी।

कंचुक के मुख पर हर्ष का प्रगाढ़ भाव छा गया। पर आचार्य शिष्य ने जब यह सुना तो वह संकोच एवं आनन्दोच्छ्वास का स्फुरण एक साथ ही अनुभव कर उठा। संकोचवश वह उस समय वहाँ से भाग खड़ा होना चाहता था किन्तु आनन्दोच्छ्वास से गुदगुदाता भाव जैसे यह स्वीकार न कर सका।

कंचुक ने कपाट खोल दिए। कपाटों के खुलते ही परिचारिकाओं से घिरी देवी विष्या आगे बढ़ने को उद्यत हुई। फिर आचार्य शिष्य भी खड़ा न रह सका। मधु पर्व वाले नृत्य के पश्चात् जिसे आचार्य शिष्य ने एक नहीं अनेक बार नेत्रकोरों से टटोलने का प्रयत्न किया था आज उसी के साक्षात्कार का वह जैसे साहस खो बैठा। संभवतः उच्छ्वसित हृदय और संकोच बोझिल पैरों से जब वह उधर की ओर चला तो नयन नत हो रहे और कपोलों पर कैसी आकर्ष लालिमा प्रगाढ़ हो उठी।

देवी विष्या दासी कन्या ने अपने ऊर्ध्व भाग पर इस समय झीने वस्त्र का उत्तरीय डाल रखा था और वह उत्तरीय शीष पर से जिसके नीचे नासिका तक उतर आया था जिसने सहज ही में अवगुंठन का रूप ले लिया। अवगुंठन की ओट में से झाँकता देवी विष्या का सौम्य रूप जैसे द्विगुणित हो उठा।

आचार्य शिष्य को सम्मुख देख देवी विष्या के नत नयन और अवनत हो रहे। पर आचार्य शिष्य का संकोचशील मन पथ का अनुभव कर उठा। किसी आत्मीय की कृपा कोर से जैसे मात्र अंतर्जगत गद्गद् हो नृत्य कर उठता है कुछ वैसा ही आभास इस क्षण आचार्य शिष्य को हो रहा। संकोच का स्थान उल्लासोच्छ्वास ने ले लिया। देवी विष्या का संकोच भाव और संकुचित हो अपने में सिमट बैठा। उसके मुख पर अभी भी दुविधा का सा भाव दीख रहा था। अस्तु किसी प्रकार साहस कर

उसने अर्घ्य थाल में रखे कुंकुम को अपने अंगूठे पर लगा उसे आचार्य शिष्य की ओर बढ़ा दिया। तत्क्षण आचार्य शिष्य ने अनुभव किया जैसे किसी देवी का कृपा पूर्ण हाथ उसकी ओर बढ़ा चला आ रहा हो। उधर, देवी शिप्रा को आभास हुआ जैसे उसके लघु हाथ ने ऊपर नभ में देदीप्यमान किसी नक्षत्र के स्पर्श का प्रयास किया हो। इस दृश्य को देख सभी गद्‌गद् कण्ठ से दोनों का जय जयकार कर उठे।

तत्पश्चात् आचार्य शिष्य ने घोषणा की—"देवी शिप्रा गणाध्यक्ष राजा चेटक ने एक आदेश कर मुझे कृतार्थ किया है। जानती हो देवी इस अकिंचन को आपका अभिभावक बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।"

उत्तर में देवी शिप्रा कुछ कहने को उद्यत हुई पर उसके हृदय से निकले शब्द केवल ओष्ठों में ही फड़फड़ा कर रह गए। विवशता से वह अपना माथा ठोकती रह गई, प्रकट में नहीं मन ही मन में।

किन्तु आचार्य शिष्य ने उसकी इस विवशता को भाँप लिया। फिर भी वह पूछ उठा—"क्यों देवी क्या आपको मेरा यह परम सौभाग्य स्वीकार है ?

देवी शिप्रा ने इस बार बड़े अपने अंतर का साहस बटोरने का प्रयास किया। पर वह शीघ्र ही नेत्रों में अश्रु-कण बन कपोल पर ढुलक रहा।

उसके मुख से भी एक निःश्वास निकल गया। फिर नत मस्तक हो सप्रयास बोली—"आचार्य शिष्य यह तो मेरे जीवन का दूसरा शुभगम प्रभात है, इस पर तो मैं जितना भी गर्व करू ।

उसके मुख पर पुनः संकोच विवशता एवं गर्व का मिश्रित भाव प्लावित हो उठा और सौम्यातिरेक में कपोलों की रक्तिमा अपार लालिमा में परिणत हो उठी।

और अभिभावक आचार्य शिष्य ?

वह केवल अपने सौभाग्य को ही सराहता रह गया।





आठ

गणसंवाहक ने जब यह समाचार सुना तो वह एक कड़वी घूंट पीकर रह गए। पर शेष अभिजात्य समाज उसे सुन उत्तेजित हो उठा। उनमें से अधिकांश गणसंवाहक के पास दौड़े-दौड़े भी आए। सावेग बोले— 'आर्यवर यदि शासन पक्ष का आप हर प्रहार इसी प्रकार सहन करते रहे तो वह अवश्य ही यह समझ बैठेगा कि हमने उसके सम्मुख आत्म समर्पण कर दिया है।" इस पर यथापूर्व सामन्त हँसे बिना नहीं रहे। बोले— "आयुष्मानो यदि वह ऐसा समझ ले फिर तो वह यही समझे कि हमारा मार्ग और भी प्रशस्त हो जाएगा। और विपक्ष जिस समय प्रमाद में होगा हम अवसर पा उस पर कोई ऐसा प्रहार करेंगे कि वह केवल देखता रह जाएगा। परन्तु आयुष्मानो यह निश्चित ही भूल होगी। राजा चेटक अथवा इस आन्दोलन के वास्तविक सूत्रधार सेनापति सिंह कोई कम नीतिपटु नहीं। आयुष्मानो विश्वास रखो सिंह सेनापति जितना उच्च कोटि का सैनिक है उतना ही वह राजनीति में भी दक्ष है।"

गणसंवाहक के मुख से सेनापति सिंह की इस प्रकार प्रशंसा सुन उनमें से कुछ क्षुब्ध हो उठे। सामन्त वीरभद्र कुछ उत्तेजित हो बोले—"आर्यवर, क्या अपने विपक्षी की इस प्रकार प्रशंसा करना हमारे लिए उचित है?"

गणसंवाहक एक दीर्घ निःश्वास के साथ बोले— आयुष्मन यह तो मैं भी मानता हूँ कि उचित नहीं। किन्तु विपक्षी का बल वास्तविकता से कम आँकना भी तो कोई बुद्धिमत्ता नहीं। किसी भी संघर्ष अथवा युद्ध के प्रांगण में विपक्षी को सदा अपने से अधिक बलवान समझ कर उतरना चाहिए, और जब उसमें एक बार कूद पड़े तो फिर केवल समान ही नहीं बल्कि उसे निर्बल समझे। ऐसा नीतिकारों ने कहा है, केवल नीतिकारों ने ही बरन् मेरा निज का भी तो यही अनुभव है।"

सभी उनके इस तर्क को सुन मौन हो गए। परन्तु गणसंवाहक उन्हें जैसे समझाते हुए फिर बोल उठे— 'अभी आयुष्मान आश्वस्त रहें अवसर आने पर युद्ध सामन्त कभी चूकने वाला नहीं है वह प्रहार करके ही रहेगा।

और इन बातों को अभी पूरा एक सप्ताह भी नहीं बीता होगा कि गण महानगरी में एक अन्य समाचार विद्युत लहर की भांति सर्वत्र फैल गया।

श्रेष्ठी पुत्र कम्पिल लगभग छः मास पूर्व शरद् ऋतु के प्रारम्भ में अपना सार्थ ले पश्चिम दिशा में गान्धार राष्ट्र की ओर गया था। यूं तो वह प्राय प्रतिवर्ष ही अपना सार्थ उधर ले जाता था परन्तु चार मास से अधिक का समय कभी भी न लगाता। अतएव उसके लौटने में इस प्रकार विलम्ब हुआ देख कोटिपतियों का चिन्ता-

ग्रस्त हो उठना स्वाभाविक था। शनैः-शनैः यह चिन्ता जैसे सभी वैशालिकों की चिन्ता बन गई।

इसी बीच पश्चिम दिशा से आए एक संवाद विशेष ने सभी पौर जनों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। सभी के मुख चिन्ता से मलिन हो उठे और यह संवाद विशेष था— गांधार देश से इधर गंगा के उस पार एक पूरी की पूरी वन्य जाति पश्चिमोत्तर मार्ग पर आते-जाते सार्थों को लूटने में व्यस्त हो उठी है। अतएव जिसने भी यह संवाद सुना वह इस प्रसंग विशेष से अत्यधिक चिन्तित हो उठा। कुल कन्याएँ तथा नव वधुएँ पूर्व कपाट स्थित यक्षेश मणिभद्र के चैत्य के सम्मुख जा अपना मस्तक नवा आर्द्र कंठ स्वर में श्रेष्ठीपुत्र कपिन के सुरक्षित महानगरी लौटने की याचना करने लगीं।

नव नियुक्त सुरक्षा प्रधान आचार्य शिष्य ने भी इस सम्बन्ध में विशेष तत्परता दिखाई। संवाद मिलते ही उसने पूरे बीस सशस्त्र अश्वारोहियों का एक दल महा जनपथ की ओर प्रस्थित कर दिया था। किन्तु पूरा एक सप्ताह बीत जाने के पश्चात् भी जब उस ओर से कोई संवाद नहीं आया तो जन साधारण और शासकवर्ग समान रूप से व्याकुल हो उठे। अभिजात समाज ने तो इस सम्बन्ध में उनसे भी अधिक व्याकुलता प्रकट की। केवल व्याकुलता ही नहीं वरन् वह अत्यंत व्यग्र भाव से नए शासन तथा विशेषरूप से सुरक्षा प्रधान आचार्य शिष्य की भर्त्सना में व्यस्त हो उठा। इधर इस प्रकरण ने वैशालिकों के सम्मुख एक और नई समस्या उपस्थित कर दी।

गण महानगरी की परम्परा थी कि व्यापार कार्य अथवा किसी अन्य अभियान पर गए किसी भी पौर जन के सम्बन्ध में यदि कोई दुविधापूर्ण संवाद मिलता तो उसी संध्या को तत्परता से स्थल मार्ग के संरक्षक देव यक्षेश मणिभद्र के चैत्य के सम्मुख विशेष नृत्य समारोह का अनुष्ठान किया जाता। यह आयोजन रात्रि पर्यन्त चलता रहता। अब तक इस नृत्य समाज का अनुष्ठान स्वयं कला पीठिका की अधिष्ठात्री गण कल्याणी देवी आम्रपाली सम्पन्न किया करती थी। परन्तु इस समय यह पद रिक्त था। देवी आम्रपाली एक प्रकार से अपनी ही एक शिष्या देवी दिव्या को उस के लिए सर्वथा योग्य घोषित कर गई थीं परन्तु उसके अभिषेक की दिशा में अभी न जाने कितनी बाधाएँ दीख रही थीं। अतः अधिष्ठात्री पद की यह रिक्तता इस समय सभी पौर जनों को बुरी तरह खटकने लगी। नागरिकों का यह असंतोष शासक वर्ग के लिए जैसे विशेष चिन्ता का कारण बन उठा। पर अभिजात समाज को जैसे एक स्वर्णिम अवसर ही हाथ लग गया।

प्रत्येक पौर जन की रक्षा का मुख्य दायित्व सुरक्षा प्रधान के ही कंधों पर था। अतएव इस समय सदैव उसके मुख पर चिन्ता की गहरी रेखा खिंची दिखाई देती। उसका मस्तिष्क प्रत्येक क्षण ही कोई युक्ति खोज निकालने में व्यस्त रहता। विपक्षी इस अवसर का लाभ उठा कहीं कुछ कर न बैठें इस ओर से भी उसे प्रति क्षण सावधान रहना पड़ता। वास्तव में अपने दायित्व भार को वह जिस तत्परता एवं कौशल से निभा रहा था उससे शासक वर्ग तो प्रसन्न हो ही उठा जनसाधारण में भी अधिकांश उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। परन्तु कुछ नागरिक जन अभिजात समाज के

स्वर में स्वर मिला सुरक्षा प्रधान पर अनुभव हीनता का आरोप लगा, उसकी कटु आलोचना करने में व्यस्त हो उठे। सुरक्षा प्रधान के साथ-साथ अब तो खुले तौर से समूचे शासक वर्ग की तथा उसमें विशेष रूप से महाबलाधिकृत सिंह सेनापति की निंदा होने लगी। इस प्रसंग में सिंह सेनापति पर केवल एक ही आरोप लगाया जाता। और वह था उसने एक अज्ञात-कुल युवक को प्रश्रय देने के लोभवश समूची वैशाली हित का ही परित्याग कर दिया है। जब जनसाधारण में भी कुछ को इस प्रकार सिंह सेनापति अथवा गणाध्यक्ष राजा चेटक की आलोचना करते हुए अभिजात समाज के सदस्यों ने सुना तो उनका मन प्रसन्न हो उठा। उनके मुख पर विजय की मुस्कान फैल गई।

परन्तु आचार्य शिष्य न तो अपनी प्रशंसा पर फूला और न ही आलोचना से क्षुब्ध हुआ। उसे तो केवल यही चिन्ता रहती कि अष्ठी-पुत्र कम्पिल किसी प्रकार सकुशल वापस लौट आए। अतः उसने इस बार तत्परता से वज्जि शासन में अथवा उससे बाहर नागरिकों के जितने भी गुप्तगामी अश्व थे उनका चयन कर उन पर विश्वस्त सैनिकों का एक अन्य दल उसी ओर भेज दिया।

और एक दिन वह स्वयं गणाध्यक्ष राजा चेटक के पास जा उनसे बोला—"आप की यदि स्वीकृति मिल जाए तो यह अकिंचन यशोधन मणिभद्र की उपासना की समुचित व्यवस्था का कुछ प्रयास करे।" इस पर गणाध्यक्ष ने उत्तर में कहा—"आयुष्मान् जो भी उचित समझें अवश्य करें, गणशासन पूर्णतः आपके साथ है। अभिजात समाज की ओर से हो रही आलोचना की ओर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। पर हाँ एक बात की ओर से मैं आयुष्मान् को अवश्य सावधान करना चाहूँगा और वह यह है आयुष्मान् कि वैशाली वैशाली क्या समूचे वज्जि संघ में जनमत का विशेष सम्मान होता है।" यह कह गणाध्यक्ष ने आचार्य शिष्य की ओर देखा। आचार्य शिष्य नत मस्तक हुआ गणाध्यक्ष की बात को पूरे ध्यान से सुन रहा था तथा साथ ही वह समझने का भी प्रयत्न कर रहा था कि कहीं वह कोई बात अप्रत्यक्ष में तो नहीं कह रहे। उत्तर में वह कुछ कहने को उद्यत हो उठा कि इसी बीच फिर गणाध्यक्ष बोल उठे—"परन्तु आयुष्मान राष्ट्र के जीवन में ऐसे क्षण भी आते हैं जब जनमत की अवहेलना तो नहीं हो उसका नव-निर्माण अवश्य करना होता है। क्या हम उसी संक्रमण काल में से नहीं गुजर रहे? और आयुष्मान् की तो यह अग्नि परीक्षा है ही।"

यह बात युवक सुरक्षा प्रधान का अंतरतम मानों किसी अदम्य साहस से स्फुरित हो उठा। नतमस्तक हो बोला—"आर्य की आज्ञा शिरोधार्य है। यह परीक्षा उत्साह भी प्रदान करे, इस समय बस मेरी यही एक इच्छा है।"

और फिर वह महाबलाधिकृत सेनापति सिंह के प्रासाद की ओर चल पड़ा। सेनापति सिंह ने उसे अत्यन्त आत्मीय भाव से समझाया—"आयुष्मान लेशमात्र भी धैर्य न खोएं। यही समय है जब हमें अपने आत्मविश्वास का परिचय दे पूज्यपाद आचार्य बहुलाश्व द्वारा इंगित मार्ग पर अग्रसर होना है सम्मुख जो प्रतिरोध दीख रहा है वह वायु के केवल एक झोंके के समान है अतः क्षणिक भी।"

आचार्य पुत्री देवी रोहिणी भी उस समय वहीं बैठी थी। उसने अपने पिता

शिष्य युवक की पीठ पर अत्यन्त दुलार से हाथ फेरते हुए कहा—"आयुष्मान् यह केवल आपकी ही नहीं वरन् हम सभी की जो एक महत्त्वपूर्ण कार्य में संलग्न हैं अग्नि परीक्षा है। विश्वास रखो एक दिन हम अवश्य सफल होंगे।"

परन्तु ये सभी आश्वासन एवं समर्थन प्राप्त करने के पश्चात् भी सुरक्षा प्रधान के सम्मुख एक विशेष समस्या प्रस्तुत थी और वह समस्या थी स्वयं देवी शिप्रा की ओर से।

देवी शिप्रा जितनी सौम्य-मुखी थी उतनी ही स्वभाव से गम्भीर थी अतः मित भाषिणी थी। हृदय में क्या कुछ है यदि यह उसका अन्तर्यामी भी जान लेता तो वह निश्चय ही अपने को धन्य हुआ समझता। परन्तु आचार्य शिष्य का अन्तर्यामी कुछ ऐसा अनुभव करता कि जैसे उसने देवी शिप्रा के मनोभावों को निश्चित ही कुछ-कुछ समझा है अतः वह मन ही मन गर्व का अनुभव कर उठता। इन दिनों अत्यधिक कार्य व्यस्त रहते हुए भी वह प्रायः प्रति दिन ही उसके प्रासाद का चक्कर लगा आता तथा उसे सकुशल देख वह मनस्तोष की साँस लेता परन्तु साथ ही यह अनुभव भी कर उठता कि उसके मौन के सम्मुख वह आज कल से भी अधिक पराजित हो लौटा है। देवी शिप्रा जैसे उसके निकट प्रति दिन ही अधिकाधिक रहस्यपूर्ण पहेली-सी बनती जा रही थी।

परन्तु वास्तव में वह उतनी रहस्यपूर्ण नहीं थी जितनी कि आचार्य शिष्य समझ बैठा था। उसके अभिभावक को इन दिनों क्या चिन्ता है, वह उससे न तो अनभिज्ञ थी और न उदासीन ही। वास्तव में उसे इस प्रकार निरंतर चिन्तातुर देख वह व्यथित हो उठी थी। परन्तु व्यथित हो कर भी वह आचार्य शिष्य के सम्मुख सहानुभूति का एक शब्द भी मुख से न निकाल पाती। यह उसका स्वाभाविक संकोच ही था जिस पर वह कभी-कभी अपने पर ही झल्ला उठती। परन्तु आचार्य शिष्य के वहाँ से प्रस्थान करते ही जैसे उसके संकोच का यह आवरण विलग हो उठता। श्रेष्ठी पुत्र के सम्बन्ध में आचार्य शिष्य के मुख से कोई शुभ संवाद न मिलता तो वह और भी व्यथित हो उठती तथा व्यग्र भाव से कला देवी की प्रतिमा के सम्मुख जा उपस्थित होती। प्रतिमा के चरणों पर अपना शीश रख याचना के से दीन स्वर में कहती—"क्यों आराध्य देवी क्या श्रेष्ठी-पुत्र के सकुशल लौटने के लिए तुम कुछ नहीं कर सकतीं ?" उसके नेत्र सजल हो उठते।

कभी-कभी वह अशोक मणिभद्र के चैत्य के सम्मुख मंगल कामना नृत्य के लिए भी उत्कंठित हो उठती। परन्तु फिर वैशाली की कलहपूर्ण स्थिति का ध्यान कर उसकी यह उत्कंठा स्वतः शान्त हो जाती। वह नहीं चाहती थी कि ऐसे चिन्ताग्रस्त क्षणों में इतने ज्वलंत प्रश्न को छेड़ा जाय। किन्तु साथ ही वह सोचती—'पर अब उससे बचना भी तो असम्भव है।

इसी मध्य अभिजात समाज ने जैसे अपना अन्तिम प्रहार किया। महानगरी के ओर छोर से टकराता सर्वत्र यह संवाद फैल गया कि देवी शिप्रा आज संध्या ही अशोक मणिभद्र के सम्मुख नृत्य करेगी। जन-साधारण को उसके नृत्य के प्रति कोई दुराग्रह नहीं था। वास्तव में दुराग्रह तो दूर की बात वह अब मन ही मन उसके नृत्य को देखने को उत्कंठित था। परन्तु जब उसने इस सम्बन्ध में एक अन्य प्रसंग को फैलते सुना तो

सभी मौन हो रहे। अभिजात समाज के सदस्य जनसाधारण में घूम-घूम प्रचार करते फिर रहे थे—"भला यह कैसे सम्भव है कि मंगल कामना नृत्य के लिए चैत्य के सम्मुख एक दासी कन्या प्रस्तुत हो। यह कोई साधारण नृत्य तो है नहीं उसमें तो समूचे नगर की कुल कन्याएं तथा नव वधुएं उपस्थित होती हैं। तो फिर क्या एक दासी पुत्री उन सभी की शीर्षस्थ बन आयोजन का संयोजन करेगी। नहीं बन्धुओ नहीं वैशाली में यह न कभी हुआ है न होगा और न होने ही दिया जायगा।"

देवी शिप्रा ने भी यह सब कुछ सुना। अभिजात समाज की ओर से क्या कुछ कहा जा रहा है उससे तो वह चिंतित नहीं हुई परन्तु हाँ उसे एक बात पर अवश्य आश्चर्य हुआ। मंगल कामना नृत्य के लिए वह आज सन्ध्या ही चैत्य के सम्मुख उपस्थित होने वाली है और स्वयं उसे इसका पता तक भी नहीं। उसे लगा आचार्य शिष्य ने यह अवश्य ही अत्यधिक आत्मविश्वास से काम लिया है। परन्तु मार्ग में जाते जाते जब कुछ नागरिकों ने कौतूहल से आचार्य शिष्य को टोक यह पूछा तो वह स्वयं आश्चर्य चकित हो उठा। वास्तव में चकित होने से भी अधिक वह क्षुब्ध हो गया। अपने से बोला—"अजयवर, माना कि तू देवी शिप्रा का कुछ भी न सही पर अभिभावक तो है ही। देवी शिप्रा को तुमसे अवश्य पूछना चाहिए था। चलो यदि पूछा नहीं तो कोई बात नहीं। फिर भी कम से कम अपने इस निर्णय की बात तो उसे सर्व प्रथम तुझे ही बतानी चाहिए थी।

यह सोचते-सोचते जैसे कोई उसके सारे अंतराल को झिंझोड़ गया। उसको मुख आभा खिन्नता से फीकी पड़ गई। उसे कुछ ऐसा आभास हुआ कि वह अनायास ही कुछ खो बैठा है। उसे कुछ घुटन का सा अनुभव हुआ और उसी के साथ उसने अपने अश्व की वल्गा को सावेग खींच लिया। अश्व भी अपनी ग्रीवा को घुमा पीछे की ओर मोड़ लिया। किन्तु, अश्व की पीठ पर एक थपकी लगाते-लगाते आचार्य शिष्य को सहसा कुछ ध्यान हो आया। बाहर निकलते निःश्वास के साथ वह अपने ही से कह उठा—"अजयवर। तू केवल अभिभावक ही नहीं सुरक्षा प्रमाण भी है।"

वह सचेष्ट हो उठा। साथ ही उसके खिन्न मुख पर प्रसन्नता का भाव भी छा गया। बोला—"अजयवर, चलो देवी शिप्रा नृत्य को किसी प्रकार उद्यत तो हुई, यह क्या कोई कम महत्वपूर्ण बात है।"

उसका अश्व फिर अट्टालिका की दिशा में सरपट दौड़ लिया। परन्तु उसे लगा जैसे केवल कुछ हो क्षणों के अंतर से वह पुनः पराजित हो उठा है। किसी और से नहीं वरन् अपने ही से अपने ही किसी मनोभाव से जिसे दबा कर भी वह उस पर वश नहीं पा सका था।

प्रधान द्वारपाल पंचुक सदा की भाँति द्वार पर उपस्थित था। आचार्य शिष्य के कामोज की पदचापें अब उसके कानों के लिए अपरिचित नहीं रह गई थीं। वह उन्हें दूर ही से सुन स्वागत के लिए सावधान हो रहता।

द्रुत गति से दौड़ता आ रहा आचार्य शिष्य का अश्व द्वार के सम्मुख पहुँच रुक रहा। जैसे उसके रुकने में भी उत्साह का आवेग था।

पंचुक ने सदा की भाँति नतमस्तक हो अभिवादन किया किन्तु आचार्य शिष्य

थे इस समय जैसे उस ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया। वह मयूर की ग्रीवा पर ही कस्था को फेंक तत्परता से मन्दर की ओर दौड़ लिया और अंशुक केवल चकित हुआ-सा उसकी ओर देखता रह गया।

देवी चित्रा आज भी लता मण्डप के पास वाले शिलाखण्ड पर बैठी थी। और दिनों उसका जो मुख भाव हुआ करता आज प्रत्यक्ष में उसमें किंचित भी तो परिवर्तन नहीं आया था। वह ऐसी बैठी थी जैसे उसने कुछ सुना ही नहीं। फिर क्या वह प्रकट में सोचती ही क्या ? किन्तु ऐसी बात नहीं थी। आज वह केवल कुछ सोच कर ही नहीं रह गई, वरन् विचारों के प्रवाह में उसका मन दूर दिगंत में पहुँच भटक भी गया था। तो भी आचार्य शिष्य जब उसके समीप पहुँचा तो उसके मुख से केवल यही भाव परिलक्षित हो रह गया कि जैसी वह कल थी आज भी है। आचार्य शिष्य को सम्मुख देख वह खड़ी हो गई और जब वह शिलाखण्ड पर बैठ गया तो वह भी उसके एक कोने पर बैठ रही। आचार्य शिष्य के अंतस्तल में उठते भाव भी जैसे शान्त हो बैठ गए। किन्तु उसके नेत्र कोर उसी की ओर निहारते रहे और वह कब सरक कर देवी चित्रा से सट बैठ गया इसका उसे भान तक भी नहीं हुआ। वह मगन मूक किए मौन ही जैसे कोई पाषाण मूर्ति हो बैठी रही।

आज केवल कुछ क्षणों पूर्व ही आचार्य शिष्य का मन उससे न जाने क्या कुछ पूछने को विद्रोह कर उठा था। वास्तव में उसने जब पुनः अट्टालिका की ओर मस्तक को मोड़ा था तो उस समय वह प्रकट में चाहे कुछ भी क्यों न सोचकर रह गया हो, पर मुख पर प्रसन्नता का भाव आने के पश्चात् भी उसके अन्तर के किसी गुप्त प्रान्त में एक-एक कर अनेक प्रश्न एक साथ उठ खड़े हुए थे। और प्रत्येक प्रश्न के साथ ही उसके मन का विक्षोभ अधिकाधिक होता चला था। किन्तु जब वह शिलाखंड पर बैठा तो उसे वे सभी निरर्थक प्रतीत हुए। उसे लगा जैसे कुछ भी तो नहीं हुआ था—'फिर मैं भला व्यर्थ ही मैं उस पर क्यों इतना क्षुब्ध हो गया।' वह जैसे अपने ही से यह प्रश्न कर उठा और फिर उसी के साथ आत्म-ग्लानि का सा अनुभव करने लगा। उसकी इच्छा हुई कि वह देवी चित्रा से इसके लिए क्षमा मांग ले किन्तु उसी समय उसने देखा, उसका हाथ देवी चित्रा की पीठ पर पहुँच गया है। जैसे पहुँच गया वह इस पर स्वयं चकित रह गया परन्तु उसीके साथ उसके अंतर में उठा प्रबल आत्मीयता का भाव जैसे उसे खींच देवी चित्रा के और अधिक निकट समेट लाया। उसका पीठ पर रखा हाथ देवी चित्रा को और अधिक समीप खींचने को आतुर हो उठा किन्तु प्रबल इच्छा होकर भी वह ऐसा नहीं कर सका। फिर उसकी इच्छा हुई कि वह उसके दूसरी ओर के अरुणिमोज्ज्वल कपोल पर अपना करतल रख उसके मुख को बलात अपनी ओर फेर ले किन्तु वह ऐसा करने में भी असमर्थ रहा। फिर उसके मन में हुआ कि वह शिलाखंड से उठ खड़ा हो और फिर उसके चिबुक को ऊपर उठा उसके नेत्रों में ही झाँक के देखे तो ऐसा उनमें क्या है, और क्या है उसके अंतर में जो उसके अंतराल में इस तरह बैठ गया है। परन्तु उसके लिए भी जैसे वह साहस बटोरने में असमर्थ रहा क्योंकि वह पाषाण मूर्ति की भांति मौन जो बैठी थी।

किन्तु, देवी चित्रा आज अधिक मौन नहीं रह सकी। आचार्य शिष्य को जब

ऐसा आभास हुआ कि उसके ओष्ठ खुल रहे हैं और इस ओट के हटते ही जैसे कोई संजोई निधि बिखर उठी है। आचार्य शिष्य का मन खिल उठा हर्षित होता शिष्य आंक से उठ अपने उत्तरीय के पल्ले को फैलाता देवी शिप्रा की दृष्टिछाया में आ बैठा।

परन्तु इस पर देवी शिप्रा के नेत्र न तो मुस्कराए और न वह हँसी ही। किन्तु आचार्य शिष्य ने इससे किंचित् भी हतोत्साहता का अनुभव नहीं किया उलटे उसके सौम्य रूप पर मुग्ध हो उठा। इसी मध्य जैसे देवी शिप्रा की भी माया स्पष्ट हो चली और उसने जो कुछ कहा आचार्य शिष्य के कान भी स्पष्ट सुनने में असमर्थ नहीं रहे। उसे सुन आचार्य शिष्य चौंका जैसे फिर अगले क्षण ही उसके मुख का ओर-छोर व्यंग्यता से ओत प्रोत हो गया। उसकी अंगुलि मंत्र गति से देवी शिप्रा के चिबुक के नीचे जा टिकी। फिर उसे बलात ऊपर उठा आचार्य शिष्य ने कातर प्राय स्वर में पूछा—"क्या कहा शुभे! गत रात्रि तुमने स्वप्न देखा था?"

देवी शिप्रा ने यह बात सर्वथा सहज ढंग से कही थी। किन्तु आचार्य शिष्य शंकित हो उठा। कदाचित् यह उसकी अपनी ही मन स्थिति थी जो श्रेष्ठी-पुत्र कपिल की इस प्रस्तुत समस्या को लेकर बनी हुई थी। अथवा यह उसके स्वभाव का ही अंग था। कुछ भी हो देवी शिप्रा द्वारा कही गई बात का उसके मन पर प्रतिकूल ही प्रभाव पड़ा। उसका मन अधीर हो उठा और अधीर मन तत्परता से स्वप्न जानने के लिए आतुर हो रहा था। उसके कंठ स्वर में स्पष्ट ही आतंक का प्रभाव था। पूछने लगा—"देवी शिप्रा! भला क्या स्वप्न था वह?"

किन्तु देवी शिप्रा आचार्य शिष्य को इस प्रकार आतंकित हुआ देखकर भी प्रकट में सर्वथा अविचलित रही। यथापूर्व नत दृष्टि रख उसने आचार्य शिष्य के प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया। वास्तव में उसने प्रश्न का सीधा उत्तर न दे जैसे अपने ही मन की किसी बात को आगे बढ़ाया। बोली—"आर्यरत्न आज मैंने एक निश्चय किया है।"

देवी शिप्रा के मुख से निकला 'निश्चय' शब्द आचार्य शिष्य के कानों में जैसे गूंज उठा। उसे ध्यान हो आया देवी शिप्रा के लिए तो कई निश्चय सम्भव हैं और उसका एक निश्चय-विशेष तो आसन्न-वर्ग को भीषण मँझधार तर्क में डुबा सकता है। अतएव वह पहले से भी अधिक अधीर हो उठा। पूछने लगा—"और वह निश्चय क्या है देवी शिप्रा?"

परन्तु देवी शिप्रा ने इस बारे में कोई सीधा उत्तर न दे केवल अपने ही मन में रखी किसी बात को आगे बढ़ाया। बोली—"श्रेष्ठी-पुत्र के सम्बन्ध में अब तक कोई भी संवाद प्राप्त नहीं हुआ है और इस पर मुझे विशेष चिंता हो उठी है आचार्य शिष्य!"

यह कहते हुए जैसे उसका कंठ स्वर अकुला गया। उसकी यह आकुलता आचार्य शिष्य के किसी अंतर्भाव को झिंझोड़-सी गई। साथ ही उसके मुख से श्रेष्ठी पुत्र तथा उसके प्रति व्यक्त चिंता के साथ 'विशेष' शब्द का सुन आचार्य शिष्य को कपाघात का सा अनुभव हुआ। उसके अन्तर में बैठी आत्मीयता का सहज आभिजात्य भाव स्वतः स्थिर हो गया। वह कराह उठा और उसी के साथ आचार्य शिष्य बोला

की ओर हट गया। किन्तु प्रथम क्षण ही आवेश आये वह उसने देवी सिप्पा के नेत्रों में झांकने का प्रयास किया। पर वह नयन नत किए ही बैठी रही।

आचार्य शिष्य क्रोधावेश में अपनी पूरी शक्ति के साथ जोर से चिल्ला उठा—"देवी सिप्पा!'

और उसके मुख से निकले इस उत्तेजनापूर्ण सम्बोधन की प्रतिध्वनि अधिका धिक वेग से उसी के कानों में गूंजती रही। उसका कण्ठ आक्रोश की तपस से शुष्क हो उठा। उसका मन हुआ इसी क्षण वहाँ से भाग खड़ा हो किन्तु दायित्व भार वैसे पुन उसका मार्ग रोक खड़ा ही गया।

किन्तु इतना सब कुछ होने पर भी देवी सिप्पा सर्वथा अविचलित रही। पूर्ववत् सहज भाव से वह पुन बोली—"आर्यरत्न देवी आम्रपाली ने अपनी इस क्षुद्र शिष्या पर जो दायित्व भार सौंपा है मैं उससे अनभिज्ञ नहीं और न ही उस ओर से उदासीन हूं। मुझे खेद है कि मैं अभी तक सार्वजनिक रूप से न तो गुरु वंदना कर सकी हूं और न कलादेवी की उपासना ही। यदि आप उचित समझें तो मैं आज ही संध्या वैशाली समाज के सम्मुख वंदना के लिए उपस्थित हुआ चाहती हूं।"

देवी सिप्पा अभी कुछ और कहा चाहती थी कि इसी मध्य आचार्य शिष्य उत्सुकता वश पूछ बैठा— "तो फिर क्या स्वयं देवी सिप्पा ने ही नगर में यह समाचार प्रचारित किया था?"

इसके उत्तर में भी देवी सिप्पा ने कुछ नहीं कहा। केवल नेत्र पलक उठाकर आचार्य शिष्य के मुख पर केन्द्रित कर दिए और आचार्य शिष्य इस पर जैसे आश्वस्त हो गया।

देवी सिप्पा पुन बोली—"आर्य रत्न! मेरा दूसरा अनुरोध है कि नृत्य का यह आयोजन यदि मगधेश मणिभद्र के चैत्य के सम्मुख ही हो तो न केवल श्रेयकर, वरन् उचित भी होगा ऐसी 'प्रवेशी पुस्तक' में स्पष्ट व्यवस्था है।" यह कह देवी सिप्पा शिलाखण्ड से उठ खड़ी हुई।

आचार्य शिष्य केवल उसकी ओर देखता रह गया। वह अभी कुछ ही आगे बढ़ी होगी कि आचार्य शिष्य भी उसकी ओर तत्परता से बढ़ लिया। उसका मार्ग रोक उसकी बाहुओं को अपने हाथों में दृढ़ता से पकड़ लिया। हृदय से उठी किसी एक भाव हिलोर के साथ सौम्य दीखती देवी सिप्पा को यथा-शक्ति झिंझोड़ता हुआ उल्लसित कण्ठ स्वर में बोल उठा—"देवी सिप्पा! देवी सिप्पा! सचमुच तुम हिमालय से भी ऊंची और महासागर से भी गहरी हो।" और फिर वह उसी भाव हिलोर की तरंग में देवी सिप्पा को छोड़ "हाटपाल कंचुक नायक अनिरुद्ध" की उच्च स्वर में रट लगाता मुख्य द्वार की ओर दौड़ लिया। उसके निकट जा पूर्व से भी अधिक उल्लसित कण्ठ स्वर में, किन्तु आदेश की दृढ़ता के साथ बोला—"कंचुक द्वार से तुरन्त पूर्व भाग हो।"

और फिर अपने सहायक अनिरुद्ध की दोनों बाहुओं को पकड़ हर्षोल्लास के उसे झिंझोड़ते हुए बोला— बन्धु अनिरुद्ध नगर के कोने-कोने में उसके पूरे जोर में घोषणा करवा दो, वैशाली के सौम्य जनो देवी सिप्पा आज इसी संध्या से पूर्व

समीप अरिष्टक के चैत्य वाले प्रांगण में देवी की उपासना के लिए उपस्थित होंगी।

अनिरुद्ध अपने प्रयास का यह आदेश सुन हर्षित हो चल पड़ा। किन्तु आचार्य सिंह ने उसे पुनः टोक कहा—"मित्र अनिरुद्ध उद्घोषकों से कहना कि वे कहें देवी दिव्या ने अभिजात समाज की चुनौती को स्वीकार कर लिया है और इस प्रकार वह उसी की प्रेरणा पर नृत्य के लिये प्रस्तुत होंगी।"

इस पर अनिरुद्ध ने अपना मस्तक नत कर कहा—"किन्तु बन्धुवर यह तो अपने को आर्यपक्ष देना हुआ। अभिजात समाज यह सुन एकदम ही तो उत्तेजित हो उठेगा। न जाने विकराल रूप भी ले ले।"

"किन्तु इससे क्या अनिरुद्ध ! उन्होंने ही तो यह प्रचार किया था। फिर हम ही उनके प्रहार को कब तक सहन करते रहेंगे ?"

और फिर वह तत्परता से अपने अश्व को ले आगे बढ़ लिया। अश्वारूढ़ होते-होते चंचुक की ओर दृष्टि फेर बोला—"मित्र चंचुक, महाशिविका की रक्षा का पूर्ण भार अब केवल तुम्हारे ही कंधों पर है।" फिर अनिरुद्ध की ओर देखते हुए बोला—"मित्र देखो देवी दिव्या का वाहन मार्ग पूरे बीस विश्वस्त सशस्त्र अश्वारोहियों से अनुरक्षित होगा।'

यह कह आचार्य सिंह ने अश्व को एक ओर की एड़ लगाई।

अश्व भी उसे ले द्रुत गति से आकाश की ओर दौड़ लिया और वह नगर पथ उसकी पदचापों से गूंज उठा।





नौ

यह कोई तीसरे पहर की बात होगी ।

गणसंवाहक सामन्त मंजुघोष इस समय महाश्रेष्ठी के ही प्रासाद में उपस्थित थे और उनके अतिरिक्त सामन्त कीर्तिकेय सामन्त वीरभद्र श्रेष्ठी धनंजय श्रेष्ठी मित्रविदक आदि भी वहीं आए हुए थे । सभी ने जब तूर्य नाद और तत्पश्चात् की घोषणा सुनी तो उनके मुख निस्तेज हो गए । विपक्ष के इस नव प्रहार पर खिन्न दृष्टि से वे एक दूसरे की ओर देखते रहे । कुछ समय तक कक्ष में केवल मौन छाया रहा । अन्ततः उसे भंग कर महाश्रेष्ठी बोले— "क्यों बंधुवर सामन्त भला अब क्या होगा ? फिर तो कार्तिकेय को भी कुछ कहने का साहस हुआ । कहने लगे— "आर्य यह तो निश्चित ही अब कठिन स्थिति बन गई है ।"

सामन्त वीरभद्र की खिन्नता इस समय तक स्पष्ट ही आवेश में परिणत हो चुकी थी । अतः वह बैठे नहीं रह सके । उठते हुए उत्तेजित स्वर में बोले— क्या आर्य अब भी अभिजात समाज को धैर्य ही से काम लेने का परामर्श देंगे । आर्य भले ही न मानें पर, मेरी तो यही निश्चित धारणा है कि विपक्षी को जब तक साहस कर कोई करारा उत्तर नहीं दिया जायगा वह इसी प्रकार प्रहार करता रहेगा और अंत में उसका परिणाम होगा हमारा समर्पण आत्म-समर्पण आर्य !"

किन्तु, इस रोष प्रदर्शन से भी गणसंवाहक का मौन भंग नहीं हुआ । उन्हें मौन देख श्रेष्ठी धनंजय कुछ खीझ से गए । बोले—"सामन्त श्रेष्ठ जब इस प्रकार निष्क्रिय ही रहना है तो फिर व्यर्थ में क्यों विरोध बढ़ाया जाए फिर विरोध भी उनसे जो सत्तारूढ़ हैं और एक प्रकार से शासक बने हुए हैं ।

इस बार गणसंवाहक मौन नहीं रह सके । बोले—"आयुष्मान् मैं यही तो सोच रहा हूं, सोच रहा हूं कि उन्हें सत्तारूढ़ किया किसने ? मैंने तुमने तथा जन साधारण सभी ने तो । और इस समय हमारा लक्ष्य भी यही है कि जन-साधारण को अपने पक्ष में किया जाए । आयुष्मान् श्रेष्ठी वैशाली में सशस्त्र प्रतिरोध की नहीं वरन जन-मानस पर अधिकार की आवश्यकता है और उसके सभी उपाय इस समय हमारे पास हैं समय हमारे साथ है ।"

"सो कैसे सामन्त श्रेष्ठ ?" श्रेष्ठी मित्रविदक ने उत्सुकता से पूछा । किन्तु गणसंवाहक ने श्रेष्ठी की इस उत्सुकता की ओर जैसे कोई ध्यान नहीं दिया । उनके मुख भाव से प्रतीत हुआ मानों वह किसी समस्या विशेष पर बड़े ही गूढ़ ढंग से सोच रहे हों । फिर, सहसा मौन भंग कर श्रेष्ठी कार्तिकेय की ओर अपनी दृष्टि करते हुए

बोले—"क्यों आयुष्मान् भला आयुष्मती ज्योत्सना की आयु इस समय क्या होगी ? अब तो वह निश्चित ही विवाह योग्य हो गई होगी।"

कहाँ वैशाली की एक ज्वलंत समस्या और कहाँ केवल पारिवारिक रुचि का यह प्रश्न। गणसंवाहक के मुख से यह सुन सभी को आश्चर्य हुआ यहाँ तक कि स्वयं उनके बाल-सखा महाश्रेष्ठी को भी। सोचने लगे—'यह तो निश्चित ही वृद्ध सामन्त पर वयस का प्रभाव प्रतीत होता है।" परन्तु वस्तु महानगरी में पारिवारिक कुशल क्षेम अथवा उससे सम्बन्धित कोई भी प्रश्न अत्यन्त आत्मीयता का द्योतक समझा जाता था। जिससे भी यह पूछा जाता वह उसे अपने लिए गौरव की बात मानता था। अतः श्रेष्ठी कार्तिकेय ने इस पर अनुग्रह का भाव प्रकट किया और फिर विनय एवं संकोच के मिश्रित स्वर में बोले—"हाँ आर्य हो तो गई है।" यह कहते हुए वह तनिक रुके। फिर जैसे मानस पटल पर सहसा कोई बात उभर आई हो। तत्क्षण वे बोले—"किन्तु आर्य वह अब पहले जैसी चपल नहीं रह गई है। आर्य को भला वह घटना कुछ याद है ?"

गणसंवाहक ने इस पर तनिक हर्ष प्रकट करते हुए अनुमोदन स्वरूप अपना शीर्ष हिलाया। फिर बोले—"हाँ आयुष्मान भली भाँति याद है ?" कहते हुए उन्होंने इस बार अपनी दृष्टि महाश्रेष्ठी की ओर की। बोले—"मंजुवर भला तुम्हें विदित है क्या हुआ था। एक दिन मैंने उसे गोद में बैठाया तो उसने मेरे श्मश्रुकेश ऐसे खींचे ऐसे खींचे कि मेरे मुख से 'चीं' निकल गई।"

गणसंवाहक के मुख से यह घटना सुन सभी हँस पड़े। महाश्रेष्ठी मणिरत्न भी हँसे परन्तु साथ ही यह भी सोचते रहे कि गणसंवाहक ने आखिर यह बात इस समय किस उद्देश्य से कही है। मन ही मन बोले—'यह सामन्त बड़ा कुटिल है। यह बिना किसी प्रयोजन के यह बात कहने वाला नहीं था। जब सभी को हँसी का क्रम समाप्त होता चला तो वह गणसंवाहक की ओर उत्सुकता से देख उठे। गणसंवाहक नेत्र कोरों से क्रमशः सभी की ओर देखते हुए मंद में गंभीर कण्ठ स्वर में बोले—"आयुष्मानों मेरा एक प्रस्ताव है।" यह सुन सभी उत्सुकता से उनकी ओर देखने लगे। गणसंवाहक तत्क्षण एक जैसे सहज भाव में बोले—"आयुष्मानो मेरा प्रस्ताव है कि यदि आयुष्मती ज्योत्सना का इस आचार्य शिष्य से "

उनके मुख से निकलती यह बात अधूरी ही रह गई। वह क्या कुछ कहने वाले हैं श्रेष्ठी कार्तिकेय इतने भर से ही भली भाँति समझ गए। वह उत्तेजित हो उठ इतने उत्तेजित कि क्रोध से उनका सारा गात कांप उठा। सावेग बोले—"हम आर्य का आदर करते हैं पर उसका यह अर्थ कदापि नहीं कि आर्य हमें इस प्रकार अपमानित करें।"

इस पर, शेष सभी स्तब्ध हो उठे। परन्तु स्वयं गणसंवाहक एक उच्च ठहाका दे, हँस पड़े। पर महाश्रेष्ठी मणिरत्न इस सब कुछ से भी सर्वथा अविचलित रह यथापूर्व उत्सुकता से उनकी ओर देखते रहे। श्रेष्ठी कार्तिकेय अभी भी क्रोध विभूत थे और उसके अतिरिक्त के कारण कुछ भी कहने में अपने को असमर्थ अनुभव कर रहे थे। गणसंवाहक बैठे से उठ खड़े हुए। श्रेष्ठी कार्तिकेय के कंधे पर हाथ धी



नौ

यह कोई तीसरे पहर की बात होगी।

गणसंवाहक सामन्त भंवरदेव इस समय महाश्रेष्ठी के ही प्रासाद में उपस्थित थे और उनके अतिरिक्त सामन्त कीर्तिकेय सामन्त वीरभद्र श्रेष्ठी धनंजय श्रेष्ठी मित्रविवक आदि भी वहीं आए हुए थे। सभी ने जब तूर्य नाद और तत्पश्चात् की घोषणा सुनी तो उनके मुख निस्तेज हो गए। विपक्ष के इस नव प्रहार पर खिन्न दृष्टि से वे एक दूसरे की ओर देखते रहे। कुछ समय तक कक्ष में केवल मौन छाया रहा। अंततः उसे भंग कर महाश्रेष्ठी बोले—"क्यों बंधुवर सामन्त भला अब क्या होगा?" फिर तो कार्तिकेय को भी कुछ कहने का साहस हुआ। कहने लगे—"आर्य यह तो निश्चित ही अब जटिल स्थिति बन गई है।"

सामन्त वीर भद्र की खिन्नता इस समय तक स्पष्ट ही आवेश में परिणत हो चुकी थी। अतः वह बैठे नहीं रह सके। उठते हुए उत्तेजित स्वर में बोले—"क्या आर्य अब भी अभिजात समाज को धैर्य ही से काम लेने का परामर्श देंगे। आर्य माने या न मानें पर, मेरी तो यही निश्चित धारणा है कि विपक्षी को जब तक साहस कर कोई करारा उत्तर नहीं दिया जायगा वह इसी प्रकार प्रहार करता रहेगा और अंत में उसका परिणाम होगा हमारा समर्पण, आत्म समर्पण मात्र!"

किन्तु इस रोष प्रकट से भी गणसंवाहक का मौन भंग नहीं हुआ। उन्हें मौन देख श्रेष्ठी धनंजय कुछ खीझ से गए। बोले—"सामन्त श्रेष्ठ जब इस प्रकार निष्क्रिय ही रहना है तो फिर व्यर्थ में क्यों विरोध बढ़ाया जाए फिर विरोध भी उनसे जो सत्तारूढ़ हैं और एक प्रकार से शासक वर्ग बने हुए हैं।"

इस बार गणसंवाहक मौन नहीं रह सके। बोले—"आयुष्मान् मैं यही तो सोच रहा हूँ सोच रहा हूँ कि उन्हें सत्तारूढ़ किया किसने? मैंने तुमने तथा जन साधारण सभी ने तो। और इस समय हमारा लक्ष्य भी यही है कि जन-साधारण को अपने पक्ष में किया जाए। आयुष्मान् श्रेष्ठी वैशाली में सशस्त्र प्रतिरोध की नहीं वरन जन-मानस पर अधिकार की आवश्यकता है और उसके सभी उपाय इस समय हमारे पास हैं समय हमारे साथ है।"

"तो कैसे सामन्त श्रेष्ठ?" श्रेष्ठी मित्रविवक ने उत्सुकता से पूछा। किन्तु गणसंवाहक ने श्रेष्ठी की इस उत्सुकता की ओर जैसे कोई ध्यान नहीं दिया। उनके मुख भाव से प्रतीत हुआ मानों वह किसी समस्या विशेष पर बड़े ही गूढ़ ढंग से सोच रहे हों। फिर सहसा मौन भंग कर श्रेष्ठी कार्तिकेय की ओर अपनी दृष्टि करते हुए

बोले—"क्यों आयुष्मान् भला आयुष्मती ज्योत्सना की आयु इस समय क्या होगी ? अब तो वह निश्चित ही विवाह योग्य हो गई होगी ।

कहाँ वैशाली की एक ज्वलंत समस्या और कहाँ केवल पारिवारिक रुचि का यह प्रश्न । गणसंवाहक के मुख से यह सुन सभी को आश्चर्य हुआ यहाँ तक कि स्वयं उनके बाल-सखा महाश्रेष्ठी को भी । सोचने लगे—'यह तो निश्चित ही वृद्ध सामन्त पर वयस का प्रभाव प्रतीत होता है ।" परन्तु गण महानगरी में पारिवारिक कुशल क्षेम अथवा उससे सम्बन्धित कोई भी प्रश्न अत्यन्त आत्मीयता का द्योतक समझा जाता था । जिससे भी वह पूछा जाता वह उसे अपने लिए गौरव की बात मानता था । अतः श्रेष्ठी कार्तिकेय ने इस पर अनुग्रह का भाव प्रकट किया और फिर विनय एवं संकोच के मिश्रित स्वर में बोले—"हाँ आर्य हो तो गई है ।" यह कहते हुए वह तनिक रुके । फिर जैसे मानस पटल पर सहसा कोई बात उभर आई हो । तत्परता से बोले—"किन्तु आर्य वह अब पहले जैसी चपल नहीं रह गई है । आर्य को भला वह घटना कुछ याद है ?'

गणसंवाहक ने इस पर तनिक हर्ष प्रकट करते हुए अनुमोदन स्वरूप अपना शीश हिलाया । फिर बोले—"हाँ आयुष्मान भली भाँति याद है ?" कहते हुए उन्होंने इस बार अपनी दृष्टि महाश्रेष्ठी की ओर की । बोले—"बंधुवर भला तुम्हें विदित है क्या हुआ था । एक दिन मैंने उसे गोद में बैठाया तो उसने मेरे श्मश्रुकेश ऐसे खींच ऐसे खींचे कि मेरे मुख से 'ची' निकल गई ।

गणसंवाहक के मुख से यह घटना सुन सभी हँस पड़े । महाश्रेष्ठी मणिरत्न भी हँसे परन्तु साथ ही यह भी सोचते रहे कि गणसंवाहक ने आखिर यह बात इस समय किस उद्देश्य से कही है । मन ही मन बोले—"यह सामन्त बड़ा कुटिल है । यह बिना किसी प्रयोजन के यह बात कहने वाला नहीं था ।' जब सभी की हँसी का क्रम समाप्त होता लगा तो वह गणसंवाहक की ओर उत्सुकता से देख उठे । गणसंवाहक नेत्र कोरों से क्रमशः सभी की ओर देखते हुए अंत में गंभीर स्पष्ट स्वर में बोले—"आयुष्मानो मेरा एक प्रस्ताव है ।" यह सुन सभी उत्सुकता से उनकी ओर देखने लगे । गणसंवाहक क्षणेक रुक जैसे सहज भाव में बोले—"आयुष्मानो मेरा प्रस्ताव है कि यदि आयुष्मती ज्योत्सना का इस आचार्य शिष्य से   ।

उनके मुख से निकलती यह बात अधूरी ही रह गई । वह क्या कुछ कहने वाले हैं श्रेष्ठी कार्तिकेय इतने भर से ही भली-भाँति समझ गए । वह उत्तेजित हो उठे इतने उत्तेजित कि क्रोध से उनका सारा गात काँप उठा । सावेश बोले—"हम आर्य का आदर करते हैं पर उसका यह अर्थ कदापि नहीं कि आर्य हमें इस प्रकार अपमानित करें ।"

इस पर, शेष सभी स्तब्ध हो उठे । परन्तु स्वयं गणसंवाहक एक उच्च ठहाका दे हँस पड़े । पर महाश्रेष्ठी मणिरत्न इस सब क्रम से भी सर्वथा अविचलित रह यथापूर्व उत्सुकता से उनकी ओर देखते रहे । श्रेष्ठी कार्तिकेय अभी भी क्रोधाभिभूत थे और उसके अतिरेक के कारण कुछ भी कहने में अपने को असमर्थ अनुभव कर रहे थे । गणसंवाहक बैठे से उठ खड़े हुए । श्रेष्ठी कार्तिकेय के कंधे पर हाथ धर

उनकी देखे हुए बोले—"आयुष्मान कुपित न हों मैं तो केवल यह देख रहा था कि यदि इस प्रकार की बात उस आचार्य शिष्य और महावीर श्रेष्ठी-पुत्र श्रेणिकरत्न की बाहिन मंजरिका के सम्बन्धों को लेकर यदि नगर में कोई बात फैलाई जाए तो भला उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी। नगर में कौन नहीं जानता कि आचार्य शिष्य एक अज्ञात कुल युवक है।

"परन्तु उससे हमें इस समय क्या लाभ होगा मधुकर ?" महाश्रेष्ठी ने प्रश्न किया।

गणसंचालक ने तत्परता से उत्तर में कहा—"लाभ ? उससे निश्चित ही हमारा लाभ होगा। महावीर श्रेणिकरत्न उसे सुनेंगे तो अवश्य ही क्षुब्ध उठेंगे। वह आचार्य शिष्य के प्रति उपेक्षा का भाव भी दिखाएंगे उपेक्षा का भाव ही नहीं चरम निंदा के भय से अपने आवास से भी निकाल देंगे और इस पर सेनापति सिंह अवश्य ही क्रुद्ध हो उठेंगे। फिर उनमें परस्पर कलह बढ़ जाएगा और यही तो हम चाहते हैं मधुकर। विपक्षी का सबसे बड़ा बल एकता तो ही है जिसे हम भंग करना चाहते हैं। और फिर उधर जन-साधारण भी तो अपना कुछ मत बनाएगा।" यह कहते हुए उन्होंने क्रमशः सम्मुख बैठे सभी सामन्त एवं श्रेष्ठी-जनों की ओर देखा।

सामन्त कार्तिकेय सबसे इधर की ओर बैठे थे। गणसंचालक की दृष्टि जब अन्ततः उन पर आ स्थिर हुई तो वह अपना मत प्रकट करते हुए बोले—'आर्य यदि राजनीति दूरदर्शिता पर ही आधारित है तो आपका यह प्रस्ताव अक्षरशः मान्य है, एवं हम सभी उसका पालन करें, यह भी अनिवार्य है। साथ ही अभी से यदि हम उसका प्रचार करें तो अवश्य ही उसका कुछ लाभ होगा। तो भी इस समय हमारे सम्मुख एक तात्कालिक समस्या है और उसका अभी इसी क्षण कोई निश्चित उपाय खोज निकालना नितांत आवश्यक है। वह समस्या है या तो उस दासी कन्या का अक्षय मणिभद्र के चैत्य के सम्मुख जाने से बलात रोका जाए अथवा फिर कोई दूसरा उपाय निकाला जाए।"

सामन्त कार्तिकेय की पहली वाली बात केवल सामन्त वीरभद्र के किसी और को नहीं जंची। कारण, गणसंचालक तो उसके कल्पनाओं का अनुमान तथा उसे विवेकपूर्ण नहीं समझते थे और महाश्रेष्ठी की उसमें स्वाभाविक अभिरुचि नहीं थी। फिर भी वे दोनों दोनों ही नहीं वरन उनके साथ श्रेष्ठी चित्रांगद समेत सम्पूर्ण श्रेष्ठी वर्ग एक बात के लिए तत्पर था। गृह-युद्ध की स्थिति में वे पूर्ण सहयोग को वचनबद्ध थे। किन्तु साथ ही प्रकट में आने को तैयार नहीं थे। उन्होंने यह बात कभी स्पष्ट तो नहीं कही तथापि गणसंचालक उससे अनभिज्ञ नहीं थे और न ही वह उनसे इससे अधिक की आशा रखना दूरदर्शितापूर्ण समझते थे। अतः इस सारी स्थिति को ध्यान में रख वह बोले—"आयुष्मानो अवश्य संघर्ष की बात को बार-बार कहना व्यर्थ है। उसके कारण स्पष्ट हैं। एक तो यही कि हमें वैशाली की पुनीत परम्परा का पालन करना है। आयुष्मानो वैशाली की पुनीत परम्परा है कि जब तक कोई उस पर स्पष्ट प्रहार न करे, वह स्वयं आगे बढ़कर ऐसा कदापि नहीं करती। जब हमारा बाहर वालों के साथ यह आचरण है तो फिर घर में भी हमारा यह व्यवहार क्यों न हो ? दूसरे आयुष्मानो,

थोड़ा थोड़ा करके काटता है हमें षड्यंत्र का षड्यंत्र से और नीति कौशल का केवल उसी से उत्तर देना है। इसी प्रसंग में मैं आयुष्मानो, अब यह भी कहना चाहूँगा कि अभिजात समाज को इसी समय एक ऐसी कला दक्ष एवं सुयोग्य कन्या की आवश्यकता है जो आज संध्या ही दासी कन्या के प्रत्युत्तर स्वरूप नृत्य मंच पर अवतरित हो सके। वास्तव में यह एक समस्या है जिसका समाधान करना ही होगा।"

यह सुन सभी स्तब्ध हो उठे। पर महाश्रेष्ठी का मुख ओज तो अकस्मात् ऐसा लुप्त हो उठा कि उनकी दशा शोचनीय प्रतीत होने लगी।

परन्तु गणसंवाहक ने जैसे उस ओर कोई ध्यान ही न दिया। उसी प्रसंग में वह आगे बोले—'आयुष्मानो, मेरे इस प्रस्ताव पर विशेष चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। आप कदाचित् पूछेंगे क्यों? इस प्रश्न के उत्तर में मुझे केवल इतना ही कहना है कि हमें प्रत्येक तथ्य को यथा रूप में स्वीकार करना चाहिए और यह एक सर्वथा जाज्वल्यमान तथ्य है कि महानाम कन्या आम्रपाली ने कला अधिष्ठात्री के पद को निश्चित ही गौरवपूर्ण बनाया है। उसने निःसंदेह ही उसे एक पुनीत स्वरूप प्रदान किया है अत एव यदि आज किसी भी अभिजात कुल की कन्या इस गौरवास्पद पद के लिए अग्रसर होती है तो उसमें प्रतिष्ठा की कोई हानि न होगी। संभव है, भविष्य में यह पद और भी अधिक गौरवपूर्ण हो उठे।"

परन्तु इसके पश्चात भी महाश्रेष्ठी मणिरत्न का खिन्न भाव यथापूर्व बना रहा। वास्तव में गणसंवाहक का लक्ष्य किधर है, वह उसे भली भांति समझ चुके थे अतः उस पर गम्भीरता से मनन कर रहे थे। मनन करते हुए यदि वह कभी क्षुब्ध हो उठते तो कभी अपने ही विचार प्रवाह से सिहर भी उठते। परन्तु सतत प्रयत्न के पश्चात् भी वह किसी निष्कर्ष पर न पहुँच सके। शेष अन्य भी इस समय जैसे इसी समस्या पर गम्भीरता से सोचने में व्यस्त थे। सहसा सामन्त वीरभद्र बोल उठे—"परन्तु आर्य क्या वैशाली में इतनी शीघ्र कोई योग्य कन्या सुलभ हो सकेगी?"

गणसंवाहक सामन्त मंजुदेव इस प्रश्न के उत्तर में आत्म विश्वास का सा भाव दिखाते हुए बोले—"क्यों नहीं आयुष्मान! भला ऐसा क्या है जो वैशाली में सुलभ नहीं। देवी आम्रपाली की कला पीठिका में केवल एक दासी कन्या ही तो नहीं थी अभिजात समाज की भी कई आयुष्मतियों ने उसकी कला की विधिवत दीक्षा ग्रहण की है और उनमें से कई को तो कला अधिष्ठात्री की प्रमुख शिष्याएं होने का भी श्रेय प्राप्त हुआ है।"

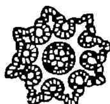
यह कह उन्होंने इस बार सर्वथा स्पष्ट रूप से अपनी दृष्टि महाश्रेष्ठी मणिरत्न के मुख पर केन्द्रित कर दी। बोले—'वस्तुतः महाश्रेष्ठी, यह वैशाली एवं उसकी परम्पराओं के जीवन-मरण का प्रश्न है और महाश्रेष्ठी ने उसके बनाए रखने में सदा ही महत्वपूर्ण योगदान किया है तो क्या अभिजात समाज आज अपने इस बार संकट के समय में महाश्रेष्ठी की ओर केवल असहाय अवस्था में देखता रह जायगा?"

गणसंवाहक ने जैसे इस बार महाश्रेष्ठी से कोई स्पष्ट प्रस्ताव किया। उसे सुन महाश्रेष्ठी अत्यधिक विचलित हो उठे। उत्तर में क्या कहें और क्या न कहें यह उन पर आश्रित रूप से इसी क्षण केवल एक क्षण में ही सोचने के लिए विवश हो

पड़े। सभी उनकी ओर उत्सुकता से देखते रहे। अन्त में महाश्रेष्ठी बोले—"बन्धुवर, आयुष्मती रत्नकमल केवल मेरी प्रपौत्री ही नहीं आपकी भी है, अतएव उसके भविष्य के सम्बन्ध में कोई भी बात सोचने का दोनों ही को समान रूप से अधिकार है। तो भी मेरा एक नम्र निवेदन है। आयुष्मान सुव्रत इस समय वैशाली से बाहर है। अत एव यदि वह आज के नृत्य में देवी शिप्रा को पराजित भी करदे तो उसे अधिष्ठात्री पद पर अभिषिक्त करने का प्रस्ताव आयुष्मान सुव्रत के आने तक स्थगित रहेगा और इस सम्बन्ध में उनका ही निर्णय अन्तिम होगा।"

महाश्रेष्ठी के मुख से यह बात सुन सभी "धन्य-धन्य" कह उठे। सामन्त वीर भद्र सोल्लास उच्च स्वर में बोले—"महाश्रेष्ठी आपसे समूचा अभिजात वर्ग उपकृत हुआ है। और फिर वह इसी की रट लगाते हुए कक्ष से बाहर की ओर दौड़ लिए।

महानगरी में यह समाचार भी विद्युत लहर की भांति फैल गया।





दस

कोई चार मास पूर्व की बात है। तब शरद् ऋतु रही होगी।

एक दिन मध्याह्न के केवल कुछ समय पश्चात् ही एक धूलि-धूसरित अश्वारोही ने गण महानगरी के एक विशाल प्रासाद की परिधि में प्रवेश किया और वाटिका पथ को पार कर मुख्य द्वार के सम्मुख आ कर खड़ा हो गया।

इसी प्रासाद के छज्जे पर बैठी शरद् की ढलती-मुड़ती धूप का आनन्द लेती दो आगत यौवनाओं ने उसे आते देखा पर चलो कोई आया होगा यह सोच वे फिर वार्ता-व्यस्त हो गईं।

आगंतुक अश्वारोही ने कुछ समय तो इधर उधर देखा, फिर अनायास उसकी दृष्टि ऊपर छज्जे ही की ओर चली गई। 'चलो-कोई है' इस बात पर वह मन ही मन प्रसन्न हो उठा। परन्तु मुख पर जमी धूलि के आवरण में उसका वह प्रसन्नता का भाव केवल अन्दर तक ही रह गया बाहर प्रकट नहीं हो सका। उसका कंठ स्वर उल्लसित हो उठा। सम्मुख बैठी युवतियों को देख वह बोला—"शुभे।"

किन्तु छज्जे पर बैठी उन दोनों ने कुछ ऐसा भाव दिखाया जैसे कुछ सुना ही नहीं।

अश्वारोही ने इस पर पहले से कुछ अधिक उच्च स्वर में पुनः पुकारा—"शुभे।"

उसका कण्ठ स्वर कुछ-कुछ क्लांत प्रतीत हो रहा था। परन्तु क्लांति में भी इस समय मृदुलता का पुट था। अतः इसने निश्चित ही उन दोनों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। तो भी उन्होंने आगंतुक के सम्बोधन का कोई उत्तर न दे केवल मौन रखा। वास्तव में मौन भी नहीं रखा वे खिलखिला पड़ीं। साथ ही उधर देखा और फिर मौन हो बैठ गईं।

इस समय तक उनका वार्ता क्रम भग हो चुका था।

आगंतुक को कुछ भी तो समझ में नहीं आया पर वह इतना अवश्य समझ गया कि हो न हो कोई बात उसी को लेकर है। तथापि उस ओर विशेष ध्यान न दे वह पुनः पूर्व से भी अधिक उच्च कंठ स्वर में बोला—"शुभे क्या महावीर मेखियरस्त का आवास यही है ?"

वे दोनों इस बार फिर हँसे बिना न रह सकीं और हँसते हुए दोनों एक साथ स्वर में स्वर मिलाती हुई बोलीं—"अभ्यागत यह हम अवश्य बताएँगी परन्तु उससे पूर्व हमें यह तो बताओ, क्या हम एक हैं अथवा दो ?"

अश्वारोही उनके इस उपहास का आशय समझ अपनी व्याकरण की भूल पर

मन ही मन हँसे बिना नहीं रहा। परन्तु साथ ही उसे स्वीकार करना उचित न समझ दोनों ही की ओर समान रूप से दृष्टि विस्फारित करता हुआ बोला—"सुभे जब स्वर समान हो तो अनेक भी केवल एक बनकर रह जाते हैं और फिर यदि शुभाकार दृष्टि छाया में आकर भी अगोचर अथवा मौन बना रहे तो वह भी अनंत होकर केवल एक ही है। तो सुभे क्या अब बताएँगी कि महावीर श्रेष्ठिवर रत्न का आवास यही है?"

दोनों की संभ्रम दृष्टि आगन्तुक पर टिक गई। उसके प्रश्न को सुन उनमें से एक तो कहने को उद्यत हो उठी—'हाँ अभ्यागत यही है, आओ।' किन्तु इसी समय दूसरी का कण्ठ स्वर सहसा ध्वनित हो कह उठा—"और अभ्यागत यदि यही अनंत सुलभ हो केवल दृष्टिछाया में ही न आ वरन् सर्वथा सन्निकट भी आ पहुँचे तो?"

अश्वारोही इस प्रश्न को सुन हतप्रभ हो गया पर साथ ही संयत हो बोल उठा—"सुभे यह निस्संदेह महोभाग्य है, स्वागत योग्य भी तो भी वह त्याज्य है क्योंकि यही तो मोह है। और सुभे मोह भेद का जनक है, भेद प्रभेद संघर्ष का कारण है संघर्ष घृणा का घृणा युद्ध का और युद्ध विनाश का। और फिर सुभे विनाश रूप-कुरूप का शुभ-अशुभ का समान रूप से संहार कर उठता है" कहते हुए उसने अपनी दृष्टि ऊपर उठा इस बार केवल उसी एक पर टिका दी। युवती ने उत्तर कर प्रश्न किया—"और अभ्यागत यदि विनाश को साकार मान लिया जाय तो? वह क्षणेक रुकी। फिर, स्वयं ही उत्तर देते हुए बोली—'भला उससे बड़ा समदृष्टि और कौन होगा? और अभ्यागत समदृष्टि तो स्तुत्य है।"

इस पर आगंतुक युवक अश्व पीठ पर बैठा न रह सका। अस्थिर हो वह उससे नीचे कूद हाथ की वल्गा को उसकी ग्रीवा पर फेंक अपने दोनों हाथों को ऊपर उठाते हुए प्रफुल्ल कंठ स्वर में बोला—"सुभे धन्य है सुभे सचमुच धन्य है यह ज्ञान तो मैं क्या बताऊँ, निश्चय ही आचार्य बहुलाश्व की विद्यापीठ में भी नहीं पा सका।"

इस पर युवती चकित रह गई। नैनों को विस्फारित करते हुए पूछा—"तो क्या अभ्यागत का इस समय तक्षशिला महाविद्यापीठ से ही पदार्पण हुआ है?"

आगंतुक ने नत मस्तक हो कहा—"हाँ सुभे वहीं से आना हुआ है। वहीं से मैं महाबलाधिकृत सिंह के यहाँ आया था और उन्होंने अब सुभे यहाँ माता वसुन्धरा की सेवा में उपस्थित होने का आदेश किया है।"

यह सुन दूसरी युवती वहाँ और अधिक बैठी न रह सकी। मुख्य द्वार पर अनुचर सिंह ने यहाँ से कोई अतिथि आया है उसकी सूचना देने वह प्रोत्साह अन्दर की ओर दौड़ सी।

जो गई वह श्रेष्ठी-पुत्री मधरिका थी और जो वहीं बैठी रही वह उसी की एक समवयस्का सखी चारुस्मिता थी आने वाला आचार्य शिष्य ध्वजधर था।

और आचार्य शिष्य ध्वजधर तभी से इसी आवास में है। सामन्तपुत्री चारुस्मिता भी पूर्व की भाँति यहाँ आती जाती रहती है। परन्तु आकर भी वह समझती है जैसे उसका आना नहीं हुआ क्योंकि नैनकोरों से मन के कुछ भावों के साथ वह जिसे ढूँढे जाती आती है वह उसे दीख नहीं पाता और यदि वह दीख भी गया तो फिर स्वयं उसके लिए वहाँ टिके रहना असम्भव हो जाता है। फिर भी वह मन ही मन एक

निश्चय किए बिना नहीं रहती। उसने निश्चय किया हुआ है कि यदि आचार्य शिष्य मिलें तो उनसे पूछे—'क्यों महाभाग कोई दृष्टिछाया में आकर भी क्यों सुखम नहीं हो पाता ? सुखम होना तो दूर की बात सान्निध्य लाभ से भी वह वंचित रह जाता है।' परन्तु दूसरे क्षण ही उसे ध्यान हो आता—'वैसी तो सभी मंजरिका सान्निध्य प्राप्त करने के पश्चात् भी केवल खिन्न चली आती है। तो फिर क्या जीवन में बाह्य रूप सौन्दर्य सान्निध्य निस्सार और दृष्टिछाया केवल भ्रम मात्र है।

उधर मंजरिका सोचती—'सखी चारुस्मिता भी कितनी महाभाग है। उसकी जीवन वाटिका में सामन्त पुत्र क्या आया मानों स्वयं ऋतुराज चला आया है। उस दिन झरोखे पर बैठी वह सखी सामन्त पुत्र की प्रशंसा कर न अघाती थी। तथा कौतुक अश्वारोही की ओर उसे देखने तक में आलस्य प्रतीत हुआ और यदि देखा भी तो परिहास कर बैठी। वह परिहास उल्लास ही तो था। और वह चारुतार्थ ?

आचार्य शिष्य मन ही मन अपने से पूछता—'भला वह सुख मुखी कौन थी जो दृष्टिछाया में आकर भी चली गई। प्रासाद में जब कभी भी वह आता तो उसका मन मानों उसे देखने के लिए आतुर हो उठता। केवल देखने के लिए ही नहीं बल्कि इसी मर्म भेद पर बातों के लिए मन आन्दोलित हो उठता। परन्तु साहस कर मंजरिका से कुछ पूछ न पाता। मंजरिका के ऐसा भाव से वह स्वयं को अनुगृहीत हुआ अनुभव करता था। पर संकोच वश उस भाव को भी प्रकट न कर पाता। मंजरिका इसे अपने प्रति आचार्य शिष्य का केवल उपेक्षा भाव ही समझती। अतः अन्तर में मर्म का अनुभव करते हुए भी वह प्रकट में केवल खिन्न रह जाती। प्रारम्भ में तो वह उसे आचार्य शिष्य का सहज-संकोच समझती रही पर कब तक अपने को ऐसे समझाती रहती अपने आप से कहती—'भला ऐसी क्या है वह देवी शिप्रा ?

अतः आज जब आचार्य शिष्य ने सोत्साह उल्लसित कण्ठ स्वर में उससे देवी शिप्रा के नृत्य आयोजन की बात कही और फिर साथ ही चलने को अनुरोध किया तो वह उस पर अन्तर में प्रसन्न होकर भी प्रकट में 'हाँ' न कर सकी।

"क्यों न कर सकी री ?" चारुस्मिता ने मंजरिका से प्रश्न किया। वास्तव में इसी समय वह वहाँ आ पहुँची थी और मंजरिका ने उसे सब कुछ बता दिया था।

मंजरिका सोचने लगी—'भला इसका क्या उत्तर ? और जो उत्तर है उसे क्या चारुस्मिता स्वयं नहीं जानती। जानती है फिर भी क्यों पूछ रही है ? अंततः उसने चारुस्मिता के उत्तरीय के पल्ले का सहारा लिया। उसे अपने हाथ में ले और फिर उसी के साथ नेत्रकोरों के इंगित से उसे खींचते हुए उसे कक्ष से बाहर लिवा लाई। चारुस्मिता भी मानों सहज भाव में खिंची चली आई। पर उससे अन्त में पूछे बिना नहीं रहा गया। खिसियाती हुई बोली—"जो कुछ कहना था वहीं क्यों नहीं कह दिया था री।"

मंजरिका ने धीमे से उसके कान में बताया—"वह अभी वहीं जो है !

अब तो चारुस्मिता को जैसे यह पूछने की भी सुध नहीं रही कि जब वह वहीं थे तो दिखाई क्यों नहीं दिए। मंजरिका के हाथ से पल्ला छुड़ा केवल भागते ही बना। परन्तु मंजरिका ने उससे भी अधिक तत्परता से लपक उसके पल्ले को कस कर

पकड़ लिया। कुछ संकोच कुछ हँसी और कुछ खीझ से बोली—"ऐसे नहीं जाने दूँगी।" "तो फिर कैसे जाने देगी?" कहते हुए चारुस्मिता ने जोर से अपना पल्ला खींचा। किन्तु वह मंजरिका के हाथ में ही रह गया। साथ ही उसकी केश राशि मुख पर अनायास बिखर उठी।

यह देख मंजरिका हँस पड़ी और उसी के साथ आचार्य शिष्य भी।

वह कब वहाँ आ खड़ा हुआ दोनों में से किसी को भी इसका पता न चला। अतः उसकी हँसी से एक बारगी दोनों सहम सी गईं। सहमी-सी खड़ी रहीं। आचार्य शिष्य हँसता भी रहा और नेत्र कोरों से उन दोनों की ओर देखता भी रहा। मंजरिका की ओर इस आशय से कि कहीं वह देख तो नहीं रही और चारुस्मिता की ओर इस प्रयोजन से कि तनिक अपनी दृष्टि ऊपर तो उठाओ सुमे मुझे तुम से बहुत कुछ कहना है।

किन्तु एक ही दृष्टि में जब दो-दो बातें साथ-साथ उभर आएं तो बाधा का उपस्थित हो उठना स्वाभाविक है। अतः मन की व्यथा को तनिक फेंकते हुए वह बोला—"सुमे जब सान्निध्य सुलभ होने पर भी कोई मौन रहे तो वह क्या है?"

मंजरिका को लगा आचार्य शिष्य ने यह प्रश्न अवश्य ही उसे लक्ष्य कर किया है। अतः वह सहज संकोच से अपने में सिमट गई। किन्तु अंतराल उतने ही वेग से मुखरित हो उठा। उत्सुक दृष्टि से उसने चारुस्मिता की ओर देखा और दुविधाग्रस्त चारुस्मिता को मानों अवलम्ब मिल गया। स्वर्णिम मुख आभा पर पड़ी श्यामल केश राशि को अरुणिम हाथों से हटाते हुए वह बोली—"आचार्य शिष्य, वह यदि एक ओर आत्मीयता के सहज विश्वास की पराकाष्ठा है तो दूसरी ओर अधिकार की महत्त्वाकांक्षा।"

आचार्य शिष्य बोला—"किन्तु सुमे महत्त्वाकांक्षा यदि एक पुनीत भाव है तो मन का विकार भी। यहीं वैशाली में देखो न एक महत्त्वाकांक्षा कुंवर बेसिम रत्न की है और दूसरी सामन्त पुत्र अलंकदेव की। परन्तु, दोनों की दिशाएं भिन्न हैं।"

प्रस्तुत बातों के प्रवाह में अकस्मात् ही सामन्त पुत्र अलंकदेव के नाम का उल्लेख को उठने से चारुस्मिता कुछ विचलित-सी हुई परन्तु अंदर ही अंदर। मंजरिका को भी कुछ दुविधा का अनुभव हुआ। उसने आचार्य शिष्य की ओर देखा किन्तु वह कुछ भी समझने में असमर्थ रहा। वास्तव में उसका उस ओर ध्यान ही नहीं गया। उत्तर के लिए केवल चारुस्मिता की ओर देखता रहा। चारुस्मिता संयत कण्ठ स्वर में बोली—"आचार्य शिष्य आप ठीक कहते हैं। महत्त्वाकांक्षा मन का पुनीत भाव भी है और मन का विकार भी। मंजरिका से मैं केवल यही तो कहती रही हूँ।" यह कहते हुए उसने मंजरिका और आचार्य शिष्य की ओर देखा।

मंजरिका उस दृष्टि के सम्मुख खड़ी न रह भाग उठी। चारुस्मिता उन्मुक्त भाव से खिलखिला पड़ी। किन्तु आचार्य शिष्य के साथ एकाकी रह जाने पर अपनी क्षण ही संकोच से अपने में सिमट रही।

आचार्य शिष्य अब भी हतप्रभ हुआ मंजरिका की ओर देख रहा था। फिर, अपनी दृष्टि सहसा चारुस्मिता के मुख पर केन्द्रित कर बोला—"देवी, उस दिन मैं

आपके विवेक पर चकित हो उठा था और आज मैं इस त्याग के सम्मुख नत मस्तक हुआ हूँ। विचारों और भावनाओं पर यह तो आप का समान अधिकार हुआ देवी!"

गौरवर्णा चारुस्मिता उत्तर में कुछ न कह सकी। हाँ उसके रक्तिम कपोलों पर अगाध लालिमा अवश्य फैल गई संकोच की सहज मुस्कान भी। तत्पश्चात् नत दृष्टि किए ही मृदुल कण्ठ स्वर में उसने पूछा—"आचार्य शिष्य देवी शिल्पा सकुशल तो हैं न?"

उसके मुख से यह प्रश्न सुन आचार्य शिष्य न जाने क्यों अभिभूत हो उठा। चलते हुए गद्गद् कण्ठ से बोला—"देवी! यह तो सचमुच देवी शिल्पा का सौभाग्य है और सामन्त पुत्री आप निस्संदेह महान हैं।'





ग्यारह

यद्यपि देवी शिप्रा वैशाली के एक व्यस्त विवाद की मुख्य भूमिका बनी हुई थी फिर भी वैशालिकों ने उसे अब तक केवल एक बार देखा था वह भी वसुपर्व के उत्सवपूर्ण अवसर पर, जबकि समूचा गण मन के ओर-छोर पर स्वयं देवी आम्रपाली पूर्ण रूप से छाई हुई थी। फिर देवी आम्रपाली ने उस दिन भी उसे बिना किसी पूर्व प्रस्तावना के ही मंच पर प्रस्तुत किया था। यूं सभी उसके नृत्य कौशल पर मुग्ध हो उठे थे तो भी मंच के अधिमान क्रम में व्यस्त दर्शकों में से किसी का भी उस ओर विशेष ध्यान नहीं गया। किन्तु, नृत्य की समाप्ति पर जब देवी आम्रपाली ने उसके अपनी कन्या होने की घोषणा की तो इस रहस्योद्घाटन पर सभी उपस्थित जन चकित हो गये। उत्सुक नेत्रों से सभी ने मंच की ओर देखा पर तब तक वह वहाँ से जा भी चुकी थी।

उसके पश्चात आज ही यह दूसरा अवसर आया था। अतः नागरिकों ने जब इस घोषणा को सुना तो वे सभी पूर्व दुराग्रहों को अपने मानस पटल से धकेल कौतूहलवश उसे देखने को लालायित हो उठे और फिर केवल कुछ समय पश्चात ही जब अभिजात समाज वाली घोषणा भी सुनी फिर तो जो उदासीन वर्ग था वह भी उत्कंठित हो उठा। यूं महाश्रेष्ठी मणिरत्न की प्रपौत्री कुमारी रत्न कमल के अपूर्व सौन्दर्य की सर्वत्र चर्चा थी पर किसी ने उसे कदाचित ही देखा था। जब देवी आम्रपाली यहाँ थीं तो कुमारी रत्न कमल नित्य उनकी कला वीथिका में नृत्य दीक्षा को जाती थी। पर वह कब कैसे और किस मार्ग से निकल जाती किसी को इसका पता तक भी न चलता और अब वही सार्वजनिक रूप से सबके सम्मुख नृत्य मंच पर अवतरित होगी यह सुन सभी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कलासंचालक आनन्द मंजरदेव के इस बुद्धि कौशल की सभी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा कर उठे। साथ ही गुरुवर प्रधान आचार्य शिप्र के साहस को भी सराहने लगे। कारण विपक्षियों की ओर से होते घोर प्रतिरोध के पश्चात भी उन्होंने देवी शिप्रा को इस प्रकार मंच पर प्रस्तुत करने का बारंबार प्रयास किया था।

इन्द्र-नृत्य के स्वरूप की कल्पना से एक बार तो समूची महासभा उल्लास के उन्माद से स्फुरित हो उठी। किन्तु साथ ही वैशालिकों के मन किसी आशंका से भी सिहर, खिन्न हो उठे। मानो उनके सम्मुख एक अस्पष्ट भविष्य का चित्र उभरता गया।

गुरुवर प्रधान आचार्य शिप्र ने अंत की ओर आते हुए मार्ग में इस घोषणा

को चुना था।

उसे सुन वह स्तब्ध हो उठा। पर, दूसरे ही क्षण कर्तव्य भावना से अनुप्राणित भी हो गया और उसका अश्व पूर्व से भी अधिक वेग से राजपथ पर दौड़ लिया।

देखते-देखते ही गण महानगरी की सुरक्षा व्यवस्था सुदृढ़ हो उठी और चैत्य दिशा में जाते सभी मार्गों पर जन-सागर लहराने लगा। आबाल-वृद्ध नर-नारी सभी उसी ओर प्रस्थान कर उठे। फलस्वरूप चैत्य प्रांगण का नृत्य मंडप अपार उल्लसित जन-सागर में एक द्वीप की भांति प्रतीत होने लगा। नृत्य मंडप के सन्निकट पहुंचने की होड़ में सभी नागरिक एक दूसरे को धकेलते-धकियाते जैसे प्रवाहित कर उठे।

और, इस अनुरक्त जन-सागर में इस समय सुरक्षा प्रधान सबसे अधिक चिंतित दीख रहा था। किन्तु चिंतित होकर भी वह सबसे अधिक गतिमान था। सारी सुध-बुध खोए वह व्यवस्था व्यस्त था। वह यदि अभी यहां दीखता तो अगले ही क्षण दूसरे छोर पर पहुंच रहता। इंगित से अपने अधीनस्थ सैनिकों को सावधान करता अथवा आदेश देता और फिर तत्परता से आगे बढ़ लेता। जन-समुदाय के इस अथाह सागर में कौन आ चुका है और कौन आ रहा है भला यह ध्यान देने को उसे इस समय कहां अवसर था। हां कभी-कभी स्वाभाविक रीति से अनायास ही उसकी उठी दृष्टि जन समुदाय के आकार प्रकार पर अवश्य फंस रहती। तब श्रेष्ठी पुत्री मंजरिका को लगता हो न हो आचार्य शिष्य ने उसे अवश्य ही देख लिया है। अतः वह मन ही मन संकोच का अनुभव कर अपने में सिमट-सी जाती। सामन्त पुत्री चारुस्मिता इस पर उसका हाथ खींच उधर ले जाने का प्रयास करती जिधर कि इस बार आचार्य शिष्य अग्रसर होता। मंजरिका उसे यथाशक्ति विपरीत दिशा में खींचती। खींचातानी का यह क्रम पर्याप्त समय तक चलता रहा किन्तु तो भी यथास्थिति ही बनी रही। कारण सुरक्षा प्रधान को उनके आने का कुछ पता नहीं था, और उन दोनों को उसके निकट जाने से भी अधिक इस खींचातानी में ही आनन्द आ रहा था। सहसा आनन्दो न्माद की उठी एक तरंग में मंजरिका ने अपना मुख चारुस्मिता के कानों के अत्यन्त समीप ले जा फुसफुसाते हुए कहा— सखी अब मैंने जाना कि तूने आज मुझे क्यों आहूत किया है।"

मंजरिका के उष्ण फुसफुसाते श्वास ने जब चारुस्मिता के कानों का स्पर्श किया तो उसे झुरझुरी सी हो उठी। उसके कानों का रंग गुलाबी हो उठा और पात कम्पन हुआ। झुरझुरी के साथ उसने किंचित मंजरिका की ओर देखा और फिर अत्यंत धीमे स्वर में बोली—"क्यों री तूने क्या जाना और मैंने तुझे कैसे आहूत किया?

'यही कि तू मेरे साथ चली आई। भला कहां सामन्त पुत्र का साथ और कहां इस मंजरिका का।"

चारुस्मिता की दृष्टि इस समय कहीं दूसरी ओर व्यस्त हो उठी थी। उधर देखते हुए ही उन्मन कण्ठ स्वर में बोली—"क्यों क्या किसी प्रणय-उन्मत्त सखी के साथ रहना कुछ कम आनन्द की बात है।"

यह कह उसके मुख पर चपलता की सहज मुस्कान खेल गई। उसकी ओर देखती हुई वह पुनः बोली—"क्यों मंजरिका मैंने इसमें कुछ अनुचित तो नहीं कहा?"

मंजरिका ने उसकी ओर देखते हुए कहा—"भला मेरी सखी कभी कोई अनुचित बात क्यों कहने लगी परन्तु सामन्त पुत्र भी तो यहाँ नहीं दीख रहे।

चारुस्मिता कुछ खीझ-सी गई। बोली— सखी! वह आजकल यहाँ हैं ही कहाँ जो आते।"

मंजरिका हँस पड़ी। फिर हँसी को रोकने का प्रयास करती हुई बोली—"तभी तो मैं देख रही हूँ कि सामन्त पुत्री कुछ खोई-खोई सी है। कहाँ गए हैं वे भला वह? या बिना बताए ही प्रिय परदेस गए।"

चारुस्मिता हँस पड़ी। बोली—"अच्छा श्रेष्ठी पुत्री आज तो तुम्हें भी कविता सूझ आई है।"

मंजरिका अपने अंतर के न जाने किस भाव वश इस समय अपनी इस विकट तम सखी के सम्मुख भी लजा गई। किन्तु अगले क्षण ही विहँस बोली—"मुझे इधर उधर न घुमा यह बता कहाँ गया है तेरा वह?"

अन्यमनस्क चारुस्मिता के मुख से अचानक निकल गया—"सखी वह राजगृह गए हुए हैं।'

मंजरिका यह सुन जैसे कुछ चौंक-सी गई। परन्तु प्रकट में सर्वथा संयत रह बोली—"वैशाली का यह आनन्द छोड़कर वह सामन्तपुत्र राजगृह गया है! और यह कहते हुए मंजरिका के नेत्र आश्चर्य से विस्फारित हो उठे। तनिक रुक फिर बोली—'सचमुच यह तो आश्चर्य है। या फिर वहाँ कोई राजपुत्री ! सखी तू तो सच-मुच बड़ी भोली है। जानती नहीं किसी राजपुत्री के प्रेमजाल में एक बार कोई फँसा नहीं कि फिर उसका बच निकलना एकदम ही असम्भव है।"

मंजरिका ने यह बात केवल विनोद में कही थी फिर भी वह जैसे चारुस्मिता के किसी मर्मस्थल का स्पर्श कर उठी। एक बारगी वह सिहर सी गई। किन्तु शीघ्र ही आत्मविश्वास के से दृढ़ स्वर में सगर्व बोली— सखी यह तेरा भ्रम है वह तो अपने किसी निजी काम से वहाँ गए हैं अकस्मात् कोई महत्त्वपूर्ण काम जो निकल आया था।"

"ऐसा क्या महत्त्वपूर्ण कार्य था भला? क्यों सखी तुम्हें वह क्या यह सब कुछ नहीं बताते?"

इस पर चारुस्मिता ने जैसे कुछ रिक्तता का सा अनुभव किया। वह गंभीर हो उठी। बोली—'मंजरिका अब तक तो नहीं बताते थे। परन्तु हाँ, अब कुछ ऐसा अनुभव कर रही हूँ कि भविष्य में उन्हें बताकर ही जाना होगा।"

मंजरिका ने तत्परता से प्रश्न किया— किन्तु सखी क्या हमें पुरुष से यह सब जानने का अधिकार है?

चारुस्मिता ने उत्तर से पूर्व मंजरिका की ओर देखा। फिर बोली— 'अबोध सखी अधिकार तो बनाने से बनता है अन्यथा—"

अभी वह कुछ और कह ही रही थी कि इसी बीच मंच की ओर से तूर्य निनाद हो उठा और उसकी ध्वनि कानों में पड़ते ही जन-समुदाय के मध्य से उठता कोलाहल शान्त हो गया। सभी के नेत्र उत्सुकता से मंच की ओर देख उठे। नृत्य-पुष्प ताल

साथ ही वस्त्रों को संभाल खड़े हो गए।

चारुस्मिता ने मंजरिका के हाथ को किंचित दबाया और फिर उसे झिंझोड़ते हुए नेत्रकोरों के इंगित से उसे कुछ दिखाने का प्रयास किया। आचार्य विष्य इस समय सारी सुध-बुध खोये मंडप की ओर ताक रहा था। मंजरिका अभी उस ओर देख ही रही थी कि इसी मध्य जन-समुदाय भारी हर्ष ध्वनि कर उठा। इस पर उसकी दृष्टि हठात् मंच की ओर घूम गई। और फिर, वहाँ उसने जो दृश्य देखा उससे वह मन ही मन किसी अनिष्ट की आशंका से सहम सी गई। चारुस्मिता ने उसके कंधे पर हाथ रख उसे दबोचते हुए कहा—'सखी भयभीत न हो सब कुछ ठीक हो जाएगा।"

किन्तु मंजरिका आश्वस्त न हो सकी। विक्षुब्ध कण्ठ स्वर में बोली—"चारु-स्मिता! आश्चर्य तो मुझे इस बात का है कि गणाध्यक्ष राजा चेटक और बन्धुल सिंह अथवा श्रेणिपरल कोई भी तो इस समय यहाँ उपस्थित नहीं। आचार्य विष्य को अकेले ही "

चारुस्मिता तरारता से बोली—"तो उससे क्या आचार्य विष्य केवल उन्हीं के बल पर तो सुरक्षा प्रधान नहीं बना उसकी अपनी भी योग्यता है।"

इस पर मंजरिका का कण्ठ स्वर सहसा तिक्त हो गया। बोली—"सामन्त-पुत्री क्या व्यंग के लिए तुझे केवल यही अवसर रह गया था।

यह कहने को वह कह गई, पर उस पर स्वयं ही चौंक भी उठी। चारुस्मिता ने उत्तर में केवल नेत्र तरेरते हुए उसकी ओर देखा। तब मंजरिका दीनता से बोली—"सखी भला मैं भी क्या कह गई। अरे, कहीं मैं विक्षिप्त तो नहीं हो उठी हूँ।"

चारुस्मिता इस पर हँसे बिना न रही। हँसी को रोक बोली—"श्रेष्ठी-पुत्री सचमुच वह व्यंग ही था और तू विक्षिप्त भी हो गई है।"

मंजरिका जैसे कुछ भी न समझ सकी। कुछ बोली भी नहीं। केवल आशंका से मंच की ओर देखती रही।

सुरक्षा प्रधान के मंच पर पहुँचते ही तूर्य निनाद बन्द हो गया और जनसमुदाय उसे देख पूर्व से भी अधिक वेग के साथ करतल ध्वनि कर उठा।

करतल ध्वनि का यह अतिक्रम जब पर्याप्त समय तक चलता रहा तो अंततः वयोवृद्ध गणसंवाहक सामन्त अंजबद्र ने सुरक्षा प्रधान की ओर देखा। फिर उसी की ओर देखते हुए वह कुछ मुस्कराए भी। इस पर सुरक्षा प्रधान ने नत मस्तक हो मौन भाव से उनका अभिवादन किया और फिर जन समुदाय के सम्मुख दृष्टि कर अपनी दोनों बाहुओं को ऊपर उठाया और उसी के साथ करतल ध्वनि का क्रम सहसा बन्द हो गया।

जन सागर के शान्त होते ही सुरक्षा प्रधान की उठी बाहुएँ भी नीचे गिर गईं। फिर दूर स्थित को प्रकम्पित करता मंगल सूचक शंख बज उठा और उसी के साथ-साथ घड़ियालों की झंकारपूर्ण ध्वनि से वह सारा प्रांगण अनुप्राणित हो गया।

जब यह सब कुछ भी समाप्त हो गया तो इस बार वयोवृद्ध गणसंवाहक ने जन समुदाय की ओर अपनी दृष्टि केन्द्रित कर ऊर्ध्व बाहु हो अपने स्वाभाविक गंभीर उच्च स्वर में कहा—"वैशाली के भद्र जनो! आयुष्मानो! आयुष्मतियो! सभी को

मंजरिका ने उसकी ओर देखते हुए कहा—"भला मेरी सखी कभी कोई अनुचित बात क्यों कहने लगी परन्तु सामन्त पुत्र भी तो यहाँ नहीं दीख रहे।

चारुस्मिता कुछ खीझ-सी गई। बोली— सखी! वह आजकल यहाँ हैं ही कहाँ जो आते।"

मंजरिका हँस पड़ी। फिर हँसी को रोकने का प्रयास करती हुई बोली—"अभी तो मैं देख रही हूँ कि सामन्त पुत्रों कुछ कोई-कोई सी है। कहाँ गए हैं वे भला वह? या बिना बताए ही पिय परदेश गए।"

चारुस्मिता हँस पड़ी। बोली—"अच्छा श्रेष्ठी पुत्री आज तो तुम्हें भी कविता सूझ आई है।"

मंजरिका अपने अंतर के न जाने किस भाव वश इस समय अपनी इन निकट तम सखी के सम्मुख भी लजा गई। किन्तु अगले क्षण ही विहँस बोली—"मुझे इधर उधर न घुमा यह बता कहाँ गया है तेरा वह?"

अन्यमनस्क चारुस्मिता के मुख से अनायास निकल गया— सखी वह राजगृह गए हुए हैं।'

मंजरिका यह सुन जैसे कुछ चौंक-सी गई। परन्तु प्रकट में तनिक संभल कर बोली—"वैशाली का यह आनन्द छोड़कर वह सामन्तपुत्र राजगृह गया है!" और यह कहते हुए मंजरिका के नेत्र आश्चर्य से विस्फारित हो उठे। तनिक रुक फिर बोली—"सचमुच यह तो आश्चर्य है। या फिर वहाँ कोई राजपुत्री ! सखी तू तो सच-मुच बड़ी भोली है। जानती नहीं किसी राजपुत्री के इन्द्रजाल में एक बार कोई ऐसा नहीं कि फिर उसका बच निकलना एकदम ही असम्भव है।"

मंजरिका ने यह बात केवल विनोद में कही थी फिर भी वह जैसे चारुस्मिता के किसी मर्मस्थल का स्पर्श कर उठी। एक बारगी वह सिहर सी गई। किन्तु शीघ्र ही आत्मविश्वास के से दृढ़ स्वर में सगर्व बोली— सखी यह तेरा भ्रम है, वह तो अपने किसी निजी काम से वहाँ गए हैं अकस्मात् कोई महत्त्वपूर्ण काम जो निकल आया था।"

'ऐसा क्या महत्त्वपूर्ण कार्य था भला? क्यों सखी तुम्हें वह क्या यह सब कुछ नहीं बताते?"

इस पर चारुस्मिता ने जैसे कुछ रिक्तता का सा अनुभव किया। वह गंभीर हो उठी। बोली—"मंजरिका अब तक तो नहीं बताते थे। परन्तु हाँ अब कुछ ऐसा अनुभव कर रही हूँ कि भविष्य में उन्हें बताकर ही जाना होगा।"

मंजरिका ने तत्परता से प्रश्न किया—"किन्तु सखी क्या हमें पुरुष से यह सब जानने का अधिकार है?"

चारुस्मिता ने उत्तर से पूर्व मंजरिका की ओर देखा। फिर बोली— 'प्रयोग सखी अधिकार तो बनाने से बनता है अन्यथा—"

अभी वह कुछ और कह ही रही थी कि इसी बीच मंडप की ओर से तूर्य निनाद हो उठा और उसकी ध्वनि कानों में पड़ते ही जन-समुदाय के मध्य से उठता कोला-हल शान्त हो गया। सभी के नेत्र उत्सुकता से मंडप की ओर देख उठे। नगर-पुरुष साथ

मान हो चरणों को समास खड़े हो गए ।

चारुस्मिता ने मंजरिका के हाथ को किंचित दबाया और फिर उसे झिंझोड़ते हुए भेमकारों के इंगित से उसे कुछ दिखाने का प्रयास किया। आचार्य शिष्य इस समय सारी धुन-धुन कोने मंडप की ओर भाग रहा था। मंजरिका अभी उस ओर देख ही रही थी कि इसी मध्य जन-समुदाय भारी हर्ष ध्वनि कर उठा। इस पर उसकी दृष्टि हठात् मंच की ओर घूम गई। और फिर, वहां उसने जो दृश्य देखा उससे वह मन ही मन किसी अनिष्ट की आशंका से सहम सी गई। चारुस्मिता ने उसके कंधे पर हाथ रख उसे झकझोरते हुए कहा— सखी भयभीत न हो सब कुछ ठीक हो जाएगा।"

किन्तु मंजरिका आश्वस्त न हो सकी। विक्षुब्ध कण्ठ स्वर में बोली— चारुस्मिता! आश्चर्य तो मुझे इस बात का है कि गणाध्यक्ष राजा चेटक और वज्रधर सिंह अथवा मल्लिपरत्न कोई भी तो इस समय यहाँ उपस्थित नहीं। आचार्य शिष्य को अकेला ही ”

चारुस्मिता तत्परता से बोली—'तो इससे क्या आचार्य शिष्य केवल उन्हीं के बल पर तो सुरक्षा प्रधान नहीं बना। उसकी अपनी भी योग्यता है।"

इस पर मंजरिका का कण्ठ स्वर सहसा तिक्त हो गया। बोली—"सामन्त-पुत्री क्या व्यंग के लिए तुझे केवल यही अवसर रह गया था।

वह कहने को यह कह गई, पर उस पर स्वयं ही चौंक भी उठी। चारुस्मिता ने उत्तर में केवल नेत्र तरेरते हुए उसकी ओर देखा। तब मंजरिका दीनता से बोली— 'सखी भला मैं भी क्या कह गई। अरे, कहीं मैं विक्षिप्त तो नहीं हो उठी हूँ।"

चारुस्मिता इस पर हँसे बिना न रही। हँसी को रोक बोली— श्रेष्ठि-पुत्री सचमुच वह व्यंग ही था और तू विक्षिप्त भी हो गई है।"

मंजरिका जैसे कुछ भी न समझ सकी। कुछ बोली भी नहीं। केवल आशंका से मंच की ओर देखती रही।

सुरक्षा प्रधान के मंच पर पहुंचते ही तूर्य निनाद बन्द हो गया और जनसमुदाय उसे देख पूर्व से भी अधिक वेग के साथ करतल ध्वनि कर उठा।

करतल ध्वनि का यह अतिक्रम जब पर्याप्त समय तक चलता रहा तो मंडप वयोवृद्ध गणसंचालक सामन्त मंजरेश ने सुरक्षा प्रधान की ओर देखा। फिर उसी की ओर देखते हुए वह कुछ मुस्कराए भी। इस पर सुरक्षा प्रधान ने नत मस्तक हो मौन भाव से उनका अभिवादन किया और फिर जन समुदाय के सम्मुख दृष्टि कर अपनी दोनों बाहुओं को ऊपर उठाया और उसी के साथ करतल ध्वनि का क्रम सहसा बन्द हो गया।

जन सागर के शान्त होते ही सुरक्षा प्रधान की उठी बाहुएं भी नीचे गिर गईं। फिर दूर दिगंत को प्रकम्पित करता मधुर गुंजक घन बज उठा और उसी के साथ-साथ वादियों की झंकारपूर्ण ध्वनि से यह सारा प्रांगण अनुप्राणित हो गया।

जब यह सब कुछ भी समाप्त हो गया तो इस बार वयोवृद्ध गणसंचालक ने जन समुदाय की ओर अपनी दृष्टि केन्द्रित कर ऊर्ध्व बाहु हो अपने स्वाभाविक गंभीर उच्च स्वर में कहा— वैशाली के भद्र जनो! आयुष्मानो! आयुष्मतियो! अभी कां

विदित है कि गण महानगरी की अपनी कुछ पुनीत परम्पराएँ हैं और अनुशासन का पालन प्रत्येक नागरिक का मुख्य दायित्व है। अतएव आयुष्मानों एवं आयुष्मतियो मैं आपके सम्मुख नत मस्तक हो एक साधारण नागरिक के रूप में ही कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। सुरक्षा पद पर मैंने आयुष्मान की नियुक्ति का किन्हीं विशिष्ट कारणों से विरोध किया है। तथापि उस पद के प्रति सर्वथा सम्मान भाव दिखाते हुए, तथा वह इस पद पर आरूढ़ हैं इस तथ्य को केवल तथ्य मात्र मानते हुए और सभी विरोधों को वर्तमान में स्थगित करते हुए, उन्हें आज के इस आयोजन का अधिष्ठाता स्वीकार कर, इंद्र-नृत्य के लिए अपने घनिष्ठतम मित्र महाश्रेष्ठी मणिरत्न की प्रपौत्री आयुष्मान सुमन की पुत्री आयुष्मती रत्न कमल को उनके समक्ष प्रस्तुत करता हूँ।

गणसंवाहक की इस घोषणा को सुन प्रांगण में उपस्थित समूचे जन समुदाय में हर्ष की लहर दौड़ गई। उत्साह आवेग में भारी करतल ध्वनि करता जन समुदाय यदि कभी गणसंवाहक का नाम ले उनका जय-जयकार कर उठता तो कभी सुरक्षा प्रधान का और फिर जब कुमारी रत्न कमल का उसने जयजयकार करना प्रारम्भ किया तो वह पर्याप्त समय तक अबाध गति से चलता रहा।

किन्तु इस सारी अवधि ही मंजरिका भय से काँपती रही। उसे हुआ, वृद्ध सामन्त की यह विनम्रता अथवा सहज स्वीकृति नहीं है वरन् किसी भीषण प्रहार की भूमिका मात्र है। मन ही मन वह अशेष महिमामय के सम्मुख कर-बद्ध हो बोली— हे महाप्रभु! तूने आज तक न जाने कितनों की रक्षा की है। आचार्य शिष्य को भी तूने ही यहाँ सकुशल पहुँचाया है। तो क्या फिर वह आज तेरे चैत्य के सम्मुख ही ।" उसका कण्ठ भर आया। किन्तु वह फिर भी आगे बोलती रही—"हे महाप्रभो! यदि आज मेरे ये आचार्य शिष्य सर्वथा सुरक्षित आवास लौट जाएँ तो मैं तुझे अपने कुल संचित कोष से पूरे दस सहस्र स्वर्ण कार्षापण अर्पित करूँगी।"

उधर करतल ध्वनि का क्रम अवरुद्ध होते ही गणसंवाहक ने पुनः ऊर्ध्वबाहु हो कुछ कहना प्रारम्भ किया। वह बोले—"सुरक्षा प्रधान आचार्य शिष्य आयुष्मती रत्नकमल का अभिभावक मैं हूँ। अभिभावक रूप में मैं उसे आपके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ। अतः अब से उसकी रक्षा का भार मुझ पर नहीं वरन् आप पर होगा। आयुष्मान को यह स्वीकार है?"

आचार्य शिष्य ने नत मस्तक हो कहा—"आर्य की आज्ञा शिरोधार्य है।"

इस पर वह विस्तृत प्रांगण पुनः भारी करतल ध्वनि से अनुप्राणित हो उठा। जब वह ध्वनि प्रवाह शान्त हुआ तो गण संवाहक पुनः ऊर्ध्वबाहु हो उच्च स्वर में बोले—

आयुष्मान् आजका यह इंद्र-नृत्य कितने महत्त्व का है यह किसी से छिपा नहीं। सभी चार प्रतिभागियों को ध्यान में रख मैं यह नितान्त आवश्यक समझता हूँ कि आज की इस अभूतपूर्व नृत्य प्रतियोगिता का निर्णायक कोई निष्पक्ष कला विशारद हो। अतः इस सम्माननीय पद के लिए मैं आर्य निपुण विनिश्चय अमात्य पुष्पगार आचार्य श्री धर्मरक्षित शर्मा का नाम प्रस्तावित करता हूँ।"

आचार्य शिष्य ने करतल ध्वनि के मध्य पुनः नत मस्तक हो कहा— 'आर्य का यह प्रस्ताव मुझे प्रीतिकर है।"

"केवल प्रीतिकर ही नहीं बल्कि उनका निर्णय भी मान्य होगा यह कहो आयुष्मान् ।" गणसंवाहक ने तनिक दृढ़ स्वर में कहा ।

गणसंवाहक का यह आदेशात्मक कथन आचार्य शिष्य को अरुचिकर प्रतीत हुआ । तो भी प्रकट में आवेश का कोई भाव न दिखा वह पूर्ववत नम्र भाव से वृद्ध सामन्त की ओर देखते हुए बोला— भद्रासन ! इस विनीत सेवक को पूज्यपाद आचार्यश्री बहुश्रुत का एक तुच्छ शिष्य होने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है । अतएव नियम क्या है और नियम के सम्मुख व्यक्ति का क्या स्वरूप है वह इसे भलि भाँति जानता है । फिर वैशाली में तो नियम का ही शासन है । आर्य इस आयोजन के अधिष्ठाता की आज्ञा क्या आदेश नहीं कर रहे हैं ?

अपेक्षित गणसंवाहक को यह आचार्य शिष्य की धृष्टता प्रतीत हुई । परन्तु साथ ही उसके साहस को देख वह चकित भी हो उठा । उसकी आपत्ति को सर्वथा उचित समझ, बोले— आयुष्मान क्षमा करें । वास्तव में यह वृद्ध सामन्त इस कला मंडप को भी गण संस्थागार समझने की भूल कर बैठा था ।"

इसी मध्य जन समुदाय के दक्षिण छोर पर हुए एक कोलाहल ने सभी का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया । महाश्रेष्ठी पुत्री रत्न कमल की शिविका की ओर जाते हुए सुरक्षा प्रधान आचार्य शिष्य ने भी जब उस ओर देखा तो उसके मुख पर एक सहज मुस्कान फैल गई । देवी शिष्या का वाहन आया देख गण पुरुष भी तूर्य निनाद कर उठे । जब निनाद को सुन कोलाहल शान्त नहीं हुआ वरन वह पुनः उच्च जय घोषों के भारी कोलाहल में परिणत हो गया ।

जय घोषों के मध्य देवी शिष्या अस्तुत वाहन से नीचे उतरी । उसे देख यह राजा जनसागर यथा स्थान खड़ा न रह सका उत्साह के आवेग में उत्सुक दृष्टि से उसी ओर भाग लिया । उधर आचार्य शिष्य ने कुमारी रत्नकमल की शिविका के अत्यन्त समीप पहुँच उस पर पड़े कौशेय वस्त्र को ऊपर उठाया और फिर नतमस्तक हो बोला—"आयुष्मती कला का मान दुर्लभ है । अतः कलाकार होना सचमुच परम सौभाग्य की बात है और जो अपने इस सौभाग्य पर संकोच का अनुभव करे, भला उससे बड़ा महाभाग कौन है ।" कहते हुए उसने शिविका की ओर अपना हाथ बढ़ाया । फिर बोला—"मुझसे इस आयोजन के अधिष्ठाता रूप में मैं आपका स्वागत करता हूँ । भुत्य देवी आप मंच पर पधारें यह जनसमुदाय न जाने कब से आपकी प्रतीक्षा में आतुर है ।"

इस पर महाश्रेष्ठी पुत्री ने नेत्रकोरों से आचार्य शिष्य की ओर देखते हुए उसके हाथ का अवलम्ब ले लिया । फिर संकोच से दबे स्वर में बोली— "आर्य की आज्ञा शिरोधार्य है । आर्य आज कुछ समय के लिए मेरे भी अभिभावक बने हैं इसे मैं अपना परम सौभाग्य मानती हूँ ।"

वह शिविका से उतर आचार्य शिष्य के हाथ का अवलम्ब लिए लिए ही संकोच चालित धीमी गति से मंच की ओर बढ़ ली । इसी मध्य देवी शिष्या भी वहाँ पहुँच चुकी थी । दोनों की उपस्थिति से न केवल नृत्य मंच वरन् सारा प्रांगण अनुप्राणित हो उत्साह से कल्लोल कर उठा ।

वे दोनों ही देवी आम्रपाली की प्रमुख शिष्या थीं अतएव दोनों में बड़

प्रतिस्पर्धा का उत्साह होते हुए भी उनके हृदय में एक दूसरे के प्रति स्नेह एवं समादर का भाव विद्यमान था। मौन खड़े-खड़े ही उन्होंने नेत्रकोरों से एक दूसरे की ओर देखा और इंगित ही इंगित में अभिवादन का आदान प्रदान भी किया। सम्मुख लहराते जन समूह को देख दोनों ही के अन्तर में उत्साह का संचार हो उठा और प्रस्तुत द्वंद्व का स्मरण कर उनके मुख कमल पर जो आत्म विश्वास का भाव परिलक्षित हुआ उसे देख अर्थ से यह कहना असम्भव था कि आज की विजयश्री का मेघ उनमें से किसको तिर सकेगा।

सहसा वाद्य वृन्द मुखर हो उठा। सुरक्षा प्रधान के अनुरोध पर आचार्यश्रेष्ठ धर्म रक्षित शर्मा भी इस समय तक निर्णायक का आसन ग्रहण कर चुके थे। दोनों करबद्ध हो मस्तक नत कर पहले तो उनका अभिवादन किया और फिर प्रांगण में लह राते जन समुदाय को।

और, जन समुदाय दोनों ही के प्रति स्वागत भाव लिए उनका सम्मान कर रे जय-जयकार कर उठा।

वीणा के तार झंकार उठे। उसकी झंकारों को सुन वेणा का भी कोमल कण्ठ स्वर फूट निकला। बांसुरी भी किसी के अधर के स्पर्श से रोमांचित हो गूंज उठी फिर उन सभी का स्वर एक दूसरे के सहयोग में अंतराल स्वर संचारता, सर्वत्र गूंजता अग्रसर हो लिया अग्रसर होता रहा कि मृदंग पर सहसा पड़ी एक थाप से विरक मंच पर सभी एक ठेक से ठिठक वह यथास्थान खड़ा ही गया। और जब पदाघात से ध्वनित किंकण भी शान्त हो गए तो देवी शिष्या ने अपनी दाईं ओर खड़ी कुमारी रत्न कमल की ओर नेत्रकोर से देख जैसे कोई प्रस्ताव किया। रत्न कमल ने भी उसी प्रकार अपने नेत्र कोर से उसके प्रस्ताव का मानों अनुमोदन कर दिया और फिर आचार्य शिष्य की ओर दृष्टिपात किया। आचार्य शिष्य भी उसके इंगित का आशय समझ उसके समीप आ खड़ा हुआ। देवी शिष्या ने अपनी दृष्टि शून्य में ही स्थिर रख कुछ कहा और फिर आचार्य शिष्य ऊर्ध्व बाहु हो बोल उठा—"भद्र जनो! देवी-शिष्याएं कहती हैं हम एक ही पीठिका की सहपाठिनी हैं और हम दोनों को एक ही अधि ष्ठात्री की शिष्याएं होने का समान सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अतः इस प्रकार सार्वजनिक रूप से हम एक दूसरे के विरुद्ध प्रतिद्वन्द्वी रूप में प्रस्तुत हों यह कला पीठिका की प्रतिष्ठा के सर्वथा प्रतिकूल है।"

यह सुन गणसंवाहक स्तब्ध रह गए। आवेशपूर्ण दृष्टि से उन्होंने समीप बैठे महाश्रेष्ठी की ओर देखा।

जन समुदाय भी निराशा की खिन्नता से मंच की ओर देख उठा।

आचार्य शिष्य केवल तटस्थ भाव से इस सारे दृश्य को देखता रहा। वह अभी *भी यथापूर्व ऊर्ध्वबाहु रह खड़ा हुआ था। किंचित मौन के पश्चात वह पुनः बोला—*
"सौम्य जनो! तो भी।

सभी अपनी सांस रोक उत्सुकता से उसकी ओर देखने लगे। गणसंवाहक की ओर तनिक देख वह आगे बोला—"देवी शिष्याएं इस प्रसंग में कुछ कहा चाहती हैं। वे कहती हैं कि एक दिन कला पीठिका में बड़ी ही विचित्र बात हुई। सभी देवी

शिष्याओं ने मिल बैठ अकस्मात् एक निश्चय किया। उन्होंने निश्चय किया कि आज संध्या ही देवी अधिष्ठात्री की उपासना की जाए। यह अपराह्न की बात है और बसन्त की ऋतु तो थी ही। वाटिका में प्रात: जो थोड़े बहुत पुष्प खिले थे उन्हें शिष्याओं ने शृंगार की उमंग में पहले ही तोड़ अपने-अपने जूड़ों में गूंथ लिया था। अब उपासना के लिए वाटिका में अब एक भी पुष्प नहीं रह गया था। तो फिर बिना पुष्प देवी अधिष्ठात्री की उपासना किस प्रकार हो? तो सौम्यजनो इस प्रकार सभी देवी शिष्याओं का उमगता उत्साह समस्या की महत्ता में उलझ गया।

"तब दो देवी शिष्याओं ने सहसा एक प्रस्ताव किया। वे बोलीं—चलो हम उपासना की वेला तक कहीं से पुष्प ले आती हैं, और फिर वे दृढ़ निश्चय कर वहाँ से प्रस्थान कर उठीं। यह उनका अनुपम पुष्प अभियान था। किन्तु खेद है कि उनमें से केवल एक ही अपूर्व लौट पाई। तो सौम्य जना अब वे देवी शिष्याएं आपके सम्मुख नाना नहीं पुष्प अभियान नृत्य प्रस्तुत करती हैं।

यह सुन गणसंवाहक का मुख खिल गया और जन समुदाय उत्साह से हर्ष ध्वनि कर उठा। वाद्य वृन्द भी झंकारता हुआ प्रारम्भ हो गया।

दोनों देवी शिष्याएं अब अपनी सजीव भाव भंगिमाओं द्वारा शेष सभी शिष्याओं से कह रही हैं— अरी ओ सुभगाओ आज तो तुमने देवी अधिष्ठात्री की उपासना का निश्चय किया था और तुमने पहले ही से सभी पुष्प चुन कर अपने इन जूड़ों में गूंथ लिए। वाटिका में एक भी पुष्प नहीं छोड़ा। अब बताओ भला उपासना के समय देवी अधिष्ठात्री के कोमल चरणों पर क्या अर्पित करोगी।" यह सुन सभी शिष्याएं ग्लानि विचलित हो उठती हैं। मंच पर केवल दो ही शिष्याएं हैं परन्तु दर्शकजनों को प्रतीत हुआ यहाँ अनेक शिष्याएं हैं और उन्हीं सभी के चिन्तित मुख दीख रहे हैं। तब वे दोनों शिष्याएं कहती हैं— 'चलो कोई बात नहीं हम कहीं का पुष्प ले आती हैं।" अब पर शेष सभी शिष्याओं के मुख कमल की भाँति खिल उठते हैं और वे मंगल कामना प्रकट करती हुई अपनी दोनों सखियों को विदा करती हैं।

पुष्प अभियान के लिए चलीं इन देवी शिष्याओं को दर्शकजन भी जय-जय कार करता हुआ उनको प्रोत्साहित कर उठा। किन्तु वे अभी चली ही थीं कि उनके पाँव मार्ग पर पड़े काँटों से बिंध गए। जन समुदाय भी पीड़ा से सी कर उठा। किन्तु वे वाणी मौन रखे ही अपनी मुख मुद्राओं के इंगित से परस्पर सम्भाषण करती हैं। एक कहती है—"प्रिय सखी अभियान में यदि ये बाधाएं न आईं तो फिर उसका उल्लास ही क्या हुआ। बिना बाधाओं के वह तो नीरस है।" दूसरी उत्तर देती है—"हाँ सखी तुम ठीक कहती हो। वे फिर चल पड़ती हैं। सो अब एक नदी ही आ गई और जनसमुदाय की उत्सुकता न जाने अभी और कितनी दूर है। फिर परस्पर ही कह उठती है—"चलो कितनी भी दूर हो अब वापस तो लौटा नहीं जा सकता।" और यह कहते हुए जब वे अपने अधोवस्त्र को संभालती संभल-संभल पग रखतीं नदी के जल की थाह लेती आगे बढ़ीं तो उस समय सभी के सम्मुख एक पर्वतीय नद का वास्तविक दृश्य उपस्थित हो गया। जन-समुदाय झिलमिला-सा मंच की ओर देखता रहा और दोनों देवी शिष्याएं नदी को पार कर आगे बढ़ निकलीं। मंच में

ऋतुराज की उपस्थिति पाती है। सर्वत्र हरी भरी और उसकी दूर क्षितिज तक फैली हरीतिमा पर पुष्प खिले हैं। इन पुष्पों को देख कुमारी रत्न कमल पत्रावली में उन्हें तोड़ने को उद्यत हो उठती है। परन्तु देवी चित्रा उसे टोक कहती है—"प्रिय सखी ये तो चोरी के पुष्प हुए। भला देवी अधिष्ठात्री के चरणों पर चुराए पुष्प चढ़ाएँगी!" 'हाँ ठीक कहती हो"—कहते हुए रत्नकमल ने अपना बढ़ा हाथ वापस समेट लिया। 'परन्तु अब क्या करोगी ?" कुमारी रत्नकमल ने फिर उत्सुकता से प्रश्न किया ? देवी चित्रा ने कहा—"चलो स्वयं ऋतुराज के पास चलती हैं।" फिर वे उसे खोजती खोजती-सी चल पड़ती हैं। 'पर यह क्या ! ऋतुराज तो समाधि लगाए बैठे हैं अब क्या होगा ? महाश्वेती-प्रश्नी ने प्रश्न किया। देवी चित्रा ने नेत्र इंगित से बताया—"प्रिय सखी अब तो केवल नृत्य ही उपाय है। किन्तु रत्नकमल प्रश्न करती है—'समाधि भंग होने पर ऋतुराज कहीं कुपित न हो जाएँ ? "नहीं प्रिय सखी ऋतुराज और वह नृत्य से कम्पित हो जाएँ !

इसी मध्य मृदंग पर सहसा एकाकी थाप पड़ी। दोनों अब नृत्य नृत्य के लिए प्रस्तुत हुईं। वाद्यवृन्द किंचित विश्राम के पश्चात पुनः प्रारंभ हो उठा। नृत्य-कुमारियों के पैरों के किंकण भी बज उठे। वाद्यवृन्द नृत्य के साथ और नृत्य वाद्यवृन्द के साथ गति लेता चला। सभी मंत्र मुग्ध हो उनकी गति को निहार उठे मन ही मन कहते थे—"क्या ही अबाध गति है।" चंचल गति का प्रवाह इतना वेगवान् हो उठा कि दर्शकों की दृष्टि में गति अदृष्ट हो उठी और केवल अनुभूति शेष रह गई। परन्तु नृत्य का प्रवाह अभी भी गतिमान था जैसे तीव्र-गति से निर्णायक क्षण की ओर अग्रसर हो उठा हो। सहसा देवी चित्रा को लगा कहीं से कुछ व्याघात उपस्थित हुआ है। वाद्य वृन्द के स्वर-ताल ठीक थे। फिर उसने कुमारी रत्न कमल के थिरकते पैरों की ओर देखा और फिर देखा नेत्रकोरों से उसके मुख की ओर। इंगित ही इंगित में उसको प्रोत्साहित किया। वह भूल गई कि उसके साथ नृत्य करती दूसरी उसकी कोई प्रतिद्वंद्वी है।

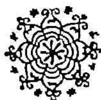
वयोवृद्ध निर्णायक अपनी दत्तचित दृष्टि से यह सब कुछ देखते रहे और वह और सावधान हो उठे।

कुमारी रत्नकमल की पद गति को देवी चित्रा के इंगित से कुछ बल मिला और वह पूर्व से भी अधिक उन्माद से नृत्य व्यस्त हो उठी। देवी चित्रा का साथ देती रही। परन्तु कब तक देती रहती। देवी चित्रा ने पुनः उसकी ओर देखा। स्वेद बूँदें देख कुछ खीझी थी। पर, उसकी खीझ में तिक्तता नहीं वरन् वह स्नेह भाव था जो प्रोत्साहित कर उठता है। निर्णायक ने यह देखा तो मन ही मन प्रसन्न हो रहे। किन्तु दूसरे ही क्षण अपने सम्मुख के दृश्य को देख वह भयभीत हो उठे। कुमारी रत्न कमल अचेत अवस्था में मंच पर पड़ी थी। गणसंनाहक की मुख आभा निस्तेज हो उठी और महाश्रेष्ठी व्याकुल हो उठे। किन्तु देवी चित्रा सखी का साथ छूट जाने पर भी नृत्य व्यस्त थी। वह नृत्य करती रही। सहसा मृदंग पर पड़ी एक थाप के साथ गति अवरुद्ध हो गई। जन समुदाय 'साधु-साधु' का उच्चारण करता जय घोष कर उठा। फिर करतल ध्वनि का जो क्रम प्रारंभ हुआ तो वह अबाध गति से चलता

रहा। जन समुदाय में उपस्थित कुमारियों और नववधुओं ने अपने जूड़ों में गुँथे पुष्प निकाल उसकी ओर फेंक दिए, और फिर इन पुष्पों को देख पुरुषों ने भी अपने-अपने शरीर से आभूषणों को उतार मंच पर फेंक दिया।

और इस सारी अवधि देवी दिव्या सभी के सम्मुख अपना आंचल पसारे खड़ी रही। अंतत: अपने आंचल में इन सभी अर्जित अर्पित पुष्पों एवं आभूषणों को समेट जन समुदाय की ओर से मुख फेर चैत्य के सम्मुख उपस्थित हो गई। नृत्य चलता रहा।

इसी मध्य वयोवृद्ध निर्णायक आचार्यश्री धर्मरक्षित शर्मा उठ खड़े हुए और ऊर्ध्व बाहु हो उन्होंने घोषणा की—"भद्रजनो! आयुष्मानो! परिणाम स्पष्ट है।"





बारह

अभिजात समाज अपनी इस पराजय पर अत्यंत खिन्न हो अन्ततः चीख उठा।

गणसंवाहक क्या स्वयं महाश्रेष्ठी का यह दृढ़ विश्वास था कि कुमारी रत्नकमल जब नृत्य मंच पर उपस्थित होगी तो उसे देख देवी चित्रा निश्चित ही हतोत्साहित हो उठेगी और फिर दर्शक गण ही भला एक अभिजात कन्या के सामने किसी दासी पुत्री में क्यों अभिरुचि दिखाने लगे। किन्तु कुमारी रत्नकमल ने मध्य नृत्य में अचेत हो उन सब की आशाओं पर ही तुषारपात कर दिया। इस पराभव पर महाश्रेष्ठी ने जैसे भारी आत्म ग्लानि का अनुभव किया। लज्जा से उनका सिर ही नहीं उठ पा रहा था वह कुछ बोल भी नहीं पा रहे थे। गणसंवाहक की मनःस्थिति भी अत्यन्त दुविधापूर्ण हो उठी। नेतृत्व के दायित्वभार के कारण जैसे कोई समस्या अब विकराल रूप ग्रहण कर उनके सम्मुख आ उपस्थित हुई। वह उसे देख विचलित तो नहीं हुए, परन्तु एक रिक्तता विशेष का अनुभव अवश्य कर उठे। उत्साह की शक्ति सहसा मन्द पड़ अवरुद्ध हो गई और श्रेष्ठी मित्रविदक को तो ऐसा लगा जैसे निराशा का कोई भारी पहाड़ सहसा उन पर आ गिरा हो। किन्तु सामन्त कार्तिकेय स्पष्ट ही उत्तेजित दीख रहे थे। सबके मलिन मुखों को देख वह और उत्तेजित हो उठे। बोले—"आर्यवर! अब इन सभी बातों का मोह छोड़ना ही हमारे लिए हितकर है अन्यथा आत्मसमर्पण अथवा विनाश निश्चित है।"

इस पर सामन्त वीरभद्र बोल उठे—"बन्धुवर! आपके मुख से आत्मसमर्पण की यह बात सुनकर मुझे तो अत्यन्त आश्चर्य हुआ है। अभी से आत्मसमर्पण की बात कहना क्या पराजय को स्वीकार करना नहीं हुआ? परन्तु हम पराजित हुए ही कहाँ हैं? संघर्ष की दिशा में यह पहला ही तो पग है उसके आधार पर कोई दूसरा मार्ग अपनाने की बात कहो तो उचित भी है।"

सामन्त कार्तिकेय ने पूछा—"और भला वह दूसरा मार्ग कौन सा है बंधुवर?"

दोनों ही सामन्तों के मध्य का यह वाद-विवाद किस दिशा विशेष में बढ़ना चाहता है श्रेष्ठी मित्रविदक उसे समझने में असमर्थ नहीं रहे। वह सावेश अपनी पीठिका से उठ, गणसंवाहक की ओर देखते हुए बोले—"क्यों आर्यवर, क्या आप इस ज्वलंत प्रश्न को गण संथागार के सम्मुख प्रस्तुत नहीं कर सकते?"

सामन्त मंगलदेव श्रेष्ठी मित्रविदक के इस प्रश्न का उत्तर देने को उद्यत ही हुए थे कि इसी मध्य कार्तिकेय जैसे फुफकार उठे। बोले—"आर्यवर! यह कायरों का प्रस्ताव है हमारा नहीं। सभी उपस्थित जन कान खोलकर सुन लें इस महत्त्वपूर्ण

प्रश्न का निपटारा गण संथागार में नहीं वरन् वैशाली के राज पथों एवं वीथियों में होगा उसका निपटारा तर्क वितर्क अथवा वाद-विवाद नहीं वरन् खड्ग करेगा। यदि गण महानगरी की वीथियां रक्त रंजित भी हो उठें तो हमें इसमें किंचित दुःख न होगा। क्यों बंधुवर वीरभद्र ! मैंने कुछ अनुचित तो नहीं कहा ?"

यह कह सामन्त कार्तिकेय ने सभी उपस्थित सामन्तों एवं श्रेष्ठीजनों पर दृष्टि पात किया। श्रेष्ठी मित्रविदक बोल उठे—"जानते हो मित्र सामन्त आपने अभी यह जो कुछ कहा है उसका क्या अर्थ हुआ ? उसका स्पष्ट ही अर्थ हुआ वज्जिसंघ की सत्तासम्पन्न वृहत् सभा के प्रति अविश्वास और उसके अधिकार को चुनौती। वैशालिक यदि उसके अधिकार को चुनौती दें तो वह निश्चित ही विद्रोह हुआ साधारण विद्रोह नहीं वरन् गणद्रोह।"

यह सुन सामन्त कार्तिकेय पहले से भी अधिक उत्तेजित हो बोल उठे—'श्रेष्ठिन् जो तुम कह रहे हो वह निश्चित ही कायरों की भाषा है गणद्रोह की बात कह, क्या तुम हमें भी हतोत्साहित कर भीरु बनाना चाहते हो ? परन्तु विश्वास रखो हम भीरु बनने वाले नहीं हैं गण सभागार में तुम इस प्रश्न को प्रस्तुत कर वर्षों के पीछे फेंकना ही तो चाहते हो और अन्ततः चाहते हो समस्या को स्थगित करवाना जब कि उसका तत्काल निपटारा होना चाहिए आज ही और अभी-अभी विशेषकर जब कि विपक्ष अपनी इस विजय पर हर्ष मना रहा हो। उसकी यह विजय और यह हर्ष भी यदि हमारे लिए चुनौती न बन सकी तो फिर ऐसा कौन-सा अवसर आएगा जब हम अपने खड्ग उठा उन्हें दंड के लिए ललकार सकेंगे।

सामन्त वीरभद्र जैसे कार्तिकेय के एक-एक अक्षर से सहमत थे। वह अपनी पीठिका से उठ गणसंवाहक की ओर दृष्टि केन्द्रित कर नतमस्तक हो बोले—'आर्य वर सामन्त कार्तिकेय जो कुछ भी कह रहे हैं उसे आप इनका केवल आवेश न समझें वह एक निश्चित प्रस्ताव है जो विचारणीय है विचारणीय ही नहीं वरन् उसके पक्ष में अभी निर्णय कर हमें दृढ़ संकल्प भी होना होगा

महाश्रेष्ठी इस वाद-विवाद को सुन अब तक जैसे सशंक हो चुके थे तो भी उन्होंने अभी मौन रखना ही उचित समझा। मौन रहे-रहे ही उन्होंने श्रेष्ठी मित्रविदक की ओर देखा। श्रेष्ठी मित्रविदक गणसंवाहक की ओर दृष्टि कर बोले— 'आर्यवर तो फिर मेरा भी दृढ़ मत है कि इस प्रश्न को सभागार में प्रस्तुत किया जाए। क्यों ? क्योंकि हमारा यह मुख्य दायित्व है। वैशाली की एक परम्परा की रक्षा के लिए उसकी ही एक दूसरी परम्परा की जो उससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण है इस प्रकार उपेक्षा करना न तो हमें शोभा देता है और न ही यह समूचे वज्जि संघ के हित में है। आर्यवर सामन्त कार्तिकेय इस समय आवेश में हैं इसी से ऐसा प्रस्ताव कर रहे हैं और उसके विनाशकारी परिणामों पर नहीं सोच रहे। क्या मैं बंधुवर सामन्त से पूछ सकता हूं कि विदेह की जनता ने अपने राजा के विरुद्ध विद्रोह कर, अपने यहां एकतन्त्र प्रणाली को समाप्त कर अन्ततः वज्जियों के इस संघ में सम्मिलित होना क्यों स्वीकार किया ? केवल इसीलिए तो कि यहां के सभी प्रजा जन इस सभागार से आकृष्ट हुए थे और यदि हम आज स्वयं ही उसकी इस प्रकार उपेक्षा करें तो सभा के क्या सोचेंगे ? और

साथ ही मगध काशी वत्स आदि के ये एजुल्से क्या कहेंगे ? वे सभी यही तो कहेंगे कि देख लिया देख लिया क्या गणों के इस बाज्यस्यमान आदर्श के प्रतीक को जो एक साधारण सी समस्या को भी सुलझाने में असमर्थ रहा। और इस प्रकार हमारी सभी आस्थाओं का केन्द्र बिन्दु सर्वत्र उपहास का विषय बनकर रह जाएगा। आर्यवर यह कदापि नहीं हो सकता।

महाश्रेष्ठी मणिरत्न श्रेष्ठी मित्रविदक के इस तर्क पर मन ही मन प्रसन्न हो उठे किन्तु सामन्त वीरभद्र उससे सहमत होकर भी उसे स्वीकार न कर सके। बोले—'आयुष्मन् दास-दासी पुत्र अथवा पुत्रियाँ आर्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार के अधिकारी हैं अथवा नहीं यह सर्वथा वैशाली का एक निजी प्रश्न है मागधों अथवा वत्सों का उससे क्या सम्बन्ध हम इस प्रश्न को जैसे चाहें निपटाएँ। इसमें भला वे क्यों हस्तक्षेप करें? आयुष्मन् यदि आप अपने मन में से भय को निकाल दें और साथ ही उस क्षोभ को भी जो आपको भयभीत बनाए हुए है तो आप भी निश्चित ही इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि बिना शस्त्र उठाए इस समस्या का समाधान असम्भव है। विपक्ष जब कुछ सशस्त्र हो तो फिर हमारे लिए और विकल्प रह ही क्या गया है ? जानते हो श्रेष्ठिन् आज जब यह समाचार दास कम्मकरों की बस्ती में पहुँचा होगा तो वे किस प्रकार प्रसन्न चित्त हो उठे होंगे ? क्या वे कल उद्दंड हो हमारा सामना नहीं करेंगे ? हमें ललकार भी उठें तो इसमें किंचित भी आश्चर्य न होगा। अतः हमारे लिए अब बस यही श्रेयस्कर है कि हम शस्त्र उठाएँ जो इस पक्ष में नहीं वे भले ही हमसे पृथक हो जाएँ।'

यह कह सामन्त कार्तिकेय अपनी पीठिका पर बैठ गए और उसी के साथ सामन्त वीर भद्र उठ खड़े हो गए। वह कुछ कहने ही गये थे कि इस बार गणसंवाहक बोल उठे। उन्हें कदाचित यह वाद-विवाद अरुचिकर लगा। तभी उनका कण्ठस्वर बोझिल हो उठा। कहने लगे—"आयुष्मानो ऐसा प्रतीत होता है कि आज की इस पराजय से आप सभी अत्यंत निराश हो उठे हैं। किन्तु क्या हमें इस प्रकार निराश होना शोभा देता है। निराशा से खिन्न हो अथवा खीझ कर यदि हम एक दूसरे पर इस प्रकार आक्षेप करेंगे अथवा केवल अपने ही मत को सर्वोपरि मान उस पर दृढ़ हो जाँयगे फिर तो गतिरोध का होना अनिवार्य ही है। और जब एक बार गतिरोध आ गया तो फिर तत्क्षण इस संघर्ष को समाप्त हुआ समझो। किन्तु तनिक यह भी तो सोचो कि हम यहाँ किस उद्देश्य के लिए एकत्रित हुए हैं। आयुष्मानो उद्देश्य महत्त्वपूर्ण है उद्देश्य ही के लिए संघर्ष है, संघर्ष के लिए उद्देश्य नहीं। और संघर्ष में कभी विजय है तो कभी पराजय भी किन्तु यदि हम उद्देश्य के प्रति आस्थावान् हैं और हमारा विश्वास दृढ़ है तो विश्वास रखो एक दिन हमारी विजय निश्चित है और जब विजय निश्चित है तो फिर अधीर होने की क्या आवश्यकता है ? आयुष्मानो इस प्रश्न को गण संथागार में प्रस्तुत किया जाए, मैं इस पक्ष में नहीं। यह किसी प्रकार भी बुद्धिमतापूर्ण नहीं ।"

गणसंवाहक की बात मध्य ही में रुक रही। कारण बाहर से आती किसी की पग आहट उनके कानों से आ टकराई थी।

सहसा एक मूक दासी ने कक्ष में प्रवेश किया। उसने सजग हो शेष कोनों से कक्ष खोजा और फिर वह महाश्रेष्ठी के सम्मुख एक पग रख तत्परता से बाहर

निकल गई। इस प्रकार एक पत्र आया देख सभी चकित हो उठे। सहसा कक्ष का वातावरण अत्यंत गंभीर हो उठा।

महाश्रेष्ठी पत्र को पढ़ते-पढ़ते ही अपने आसन से उठ खड़े हो गए और उनका मुख उदास हो गया।

उनकी यह परिवर्तित मनोदशा देख गणसंवाहक भी उठ उनकी ओर बढ़ लिए। उनके मुख पर भी व्यग्रता का भाव झलक आया। महाश्रेष्ठी के कंधे पर हाथ रख पूछने लगे—"क्यों मित्रवर सब सकुशल तो है न ?"

इस पर महाश्रेष्ठी का कण्ठ स्वर और बोझिल हो उठा। बोले—'मित्र गंगदेव ! आयुष्मती की दशा चिन्ताजनक हो गई है। अचेतावस्था में अब उसने न जाने क्या कुछ कहना प्रारंभ कर दिया है। यह पत्र देखो न।"

गणसंवाहक ने पत्र पढ़ा तो वह स्तब्ध रह गए। किन्तु केवल एक क्षण के अंतर से ही उनके मुख पर आवेश का भाव छा गया। बोले—क्यों बन्धुवर यह पत्र तो उसी आचार्य शिष्य ने भेजा है न ?

यह सुन, सभी सामंत अपनी-अपनी पीठिका से उठ खड़े हुए और प्राय: सभी एक स्वर में ही सविस्मय पूछ उठे—'आचार्य शिष्य ने ? और वह भी महाश्रेष्ठी के प्रासाद से ? आर्यवर, यह क्या ?"

फिर सामन्त कार्तिकेय का अकेला स्वर उस कक्ष में गूंज उठा। कहने लगे—"आर्यवर और यह दासी कन्या भी यदि इस समय वहीं उपस्थित हो तो कोई आश्चर्य नहीं।"

सामन्त वीरभद्र बोल उठे—'यह तो सचमुच आश्चर्य की बात हुई। उससे भी अधिक आश्चर्य तो यह है आर्यवर कि आचार्य शिष्य का वहाँ जाने का साहस कैसे हुआ या फिर उसके प्रवेश पर वहाँ कोई प्रतिबंध नहीं है।'

गणसंवाहक को लगा यह तो बातें मगध की आधार शिला ही खिसक पड़ी। तो भी उन्होंने प्रकट में निराशा का कोई भाव नहीं दिखाया। सामन्त वीर भद्र पर दृष्टि केन्द्रित कर वह बोले—"आयुष्मान्, महाश्रेष्ठी पर असावधानी का यह आक्षेप निराधार है। वह तो पुत्र समाप्ति के समय से ही हमारे साथ यहाँ मंत्रणा व्यस्त है। यह तो निश्चित ही उसी आचार्य शिष्य का दुस्साहस प्रतीत होता है जिसने महाश्रेष्ठी की अनुपस्थिति का लाभ उठाने की धृष्टता की है।

इस पर सामन्त कार्तिकेय बोल उठे—"तो फिर आर्यवर क्या हम उसके इस वार को भी निरुत्तर जाने देंगे ? हम सभी को इसी समय महाश्रेष्ठी के प्रासाद की ओर प्रस्थान कर उस मार्तण्ड पुत्र से पूछना होगा उससे कहना होगा—"क्यों रे तेरा यह दुस्साहस ! क्या तेरे आचार्य बहुश्रावक ने तुझे यही शिक्षा दी है कि जब किसी की अनुपस्थिति हो तो पीठ से उसके आवास पर ही धावा बोल दो। आर्यवर यह तो सचमुच दुस्साहस और निर्लज्जता की पराकाष्ठा है।"

उत्तर में गणसंवाहक बोल उठे—"निस्संदेह आयुष्मान् किन्तु उसके इस आचरण का एक पक्ष और भी तो है।"

"वह क्या आर्यवर ?" सामन्त कार्तिकेय प्रगाढ़ उत्सुकता का भाव दिखाते हुए



तेरह

आचार्य शिष्य जब अपने आवास में लौटा तो उस समय तक रात्रि के पूरे दो प्रहर बीत चुके थे। किन्तु इतनी रात्रि गए भी जब उसने अपने कक्ष में मंजरिका को उपस्थित पाया तो उसे आश्चर्य हुए बिना न रहा। वास्तव में उसे आश्चर्य से भी अधिक कुछ और अनुभव हुआ जो क्या था उसे वह स्वयं समझने में असमर्थ रहा। उसे लगा, मंजरिका ने इस समय उपस्थित हो उसे इस प्रकार अत्यधिक अनुग्रह भार से लादने का प्रयास किया है। उसे उसका यह प्रयास किंचित् भी रुचिकर न लगा और इस अनुग्रह विशेष के विरुद्ध जैसे उसका हृदय विद्रोह कर उठा। उसके मन में आया वह इसी क्षण कक्ष से बाहर निकल कहीं भाग खड़ा हो। साथ ही वह रात्रि के इस सिमटते स्वरूप में किसी आगत यौवना को इस प्रकार अपने अति निकट देख संकोच का अनुभव भी कर उठा। 'किन्तु' वह सोचने लगा—'यह आगत यौवना कोई अपरिचिता भी तो नहीं। पूर्व के न जाने किन अज्ञात संस्कारों वश परस्पर केवल साक्षात्कार होकर भी नहीं रह गया है। वैशाली में आने के समय से ही यह मेरी सेवा में व्यस्त रही है तो भी कुछ ऐसे मनोयोग से जैसे यह अपनी सारी शक्ति लगा किसी पूर्व जन्म के ऋण से मुक्त हुआ चाहती हो।' यह सोचते हुए आचार्य शिष्य मन ही मन अपने पर हँसे बिना नहीं रहा। किन्तु अगले क्षण ही उसका सारा अंतराल पीड़ा से कराह उठा। वह अपने से ही बोला—'अभयपद, तूने इस जीवन में न जाने कितनों को विनय की साकार मूर्ति बन नतमस्तक हो अपने को सगर्व अकिंचन कहते हुए सुना होगा। यह उनका अभिनय ही तो है और कदाचित् सभ्य समाज का सुस्थापित शील भी। पर, मेरे जीवन में तो यह केवल वास्तविकता ही बन कर रह गई है ऐसी वास्तविकता कि जिसने ।' आचार्य शिष्य जैसे आगे कुछ भी सोचने में असमर्थ रहा। हाँ अन्तर का व्यथा भाव अवश्य प्रगाढ़ हो उठा जो सहज ही में उसकी दृष्टि में भी उभर आया। उसकी व्यथा-बोझिल दृष्टि अनायास ऊपर उठ, सम्मुख खड़ी मंजरिका पर जा टिकी और मन जीवन के न जाने किस अस्पष्ट पन्ने को निस्संकोच भाव से उसे सुनाने को आतुर हो उठा भारी निःश्वास उसके मुख से निकल कंठ में फँस गया। और फिर वह किसी विवशता का अनुभव कर जैसे कठिन-सा हो उठा।

किन्तु मंजरिका को ऐसा लगा जैसे उसे जीवन में जो अब तक नहीं मिल सका था वह आज केवल कुछ क्षणों में ही अनायास प्राप्त हो गया। आचार्य शिष्य की व्यथित दृष्टि का स्पर्श कर उसका अंतराल एक स्पंदन अनुभव कर उठा और अनुभव कर उठा एक ऐसे अभूत भाव को जो यौवन भार से दबी संकोच से सिमटी और न

जाने किन ज्ञात एवं अज्ञात अभिप्रायों वश अपने को अकस्मात् दुर्बल समझने वाली नारी को उदात्तता का सहज आभास करा जाता है। मंजरिका ने आज अपने में सर्व प्रथम एक ऐसे ममत्व का अभ्युदय होते देखा था जो कोमलतम होकर भी सबल होता है। उसे लगा वह साधिकार अपने इन कोमल प्रतीत होते हाथों से भी व्यथित-हृदय आचार्य शिष्य को—जैसे वह एक अबोध बालक हो—अपने अंक में खींच फिर जी भर उसे समेटते हुए सांत्वना प्रदान करने की क्षमता रखती है वह मन का अनुभव कर रही। किन्तु फिर भी न जाने क्यों वह इस समय अपने इस नये प्राप्त अर्जित अधिकार का उपयोग न कर सकी। आचार्य शिष्य के हाथ से उत्तरीय को ले वह उसे सम्हालती रह गई। तो भी वह इतने भर में ही न जाने क्या कुछ अनुभव कर उठी। इस समय उसका समूचा अंतराल ही मुखरित था। किन्तु प्रकट में यथा गंभीर रह वह सहज ढंग से बोली—"आचार्य शिष्य वैशालिकों को अपनी एक बात का बड़ा गर्व था पर अब देखती हूँ उनका वह गर्व केवल निरर्थक ही था।"

आचार्य शिष्य समूचे दिन और रात्रि के बीते इन दोनों प्रहरों में जो निरन्तर व्यस्त रहा था अतः अब अंग प्रत्यंग में भारी क्लान्ति अनुभव कर रहा था। वास्तव में अंग प्रत्यंग से भी अधिक उसे अपना मस्तिष्क थका प्रतीत हुआ अतः केवल मौन रह विश्रान्त हुआ चाहता था। फिर भी उत्सुकता वश उसके मुख से जैसे अनायास स्वाभाविक, पर उन्मन भाव से निकल गया—"क्यों देवी ऐसी वह कौन-सी बात थी ?"

मंजरिका पूर्व के ही सहज ढंग में बोली—"आचार्य शिष्य वैशालिकों का अनुमान था कि उनकी अतुल महिमामयी वैशाली के राज पथ तो क्या वीथियाँ भी अत्यन्त सीधी और सरल हैं पर देखती हूँ जैसे आप तो उनमें भी भटक सकते हैं।"

यह कह मंजरिका के मुख पर एक गाढ़ी मुस्कान फैल गई कर्णरन्ध्र आरक्तिम हो उठी और दृष्टि ? उसमें जैसे कोई स्वप्न उभर आया। और उसने जो कुछ कहा था उस पर आचार्य शिष्य को जैसे हँसी आया चाहती थी। किन्तु उसे न जाने किस बात का सहसा स्मरण हो उठा। और फिर जैसे उसी के साथ किसी गुप्त भाव में भटकता कोई विषाद भाव भी उभर उभर उसके क्लांत निर्जन दीखते मुख पर छा गया। पर वह जैसे कण्ठ स्वर को किसी प्रकार संयत करने में सफल रहा। सप्रयास सहज ढंग में बोला—"श्रेष्ठी-पुत्री कुछ भी हो हूँ तो मैं अभी तक एक वैदेशिक ही।"

यह कह उसके मुख का अवशिष्ट विषाद भाव एक मुस्कान में बिखर गया। वास्तव में वह कुछ और कहने को भी उद्यत हो उठा। वह कहना चाहता था—'वैशाली में इस समय केवल दो ही तो वैदेशिक हैं—एक तो स्वयं मैं और दूसरी देवी विपाशा। देवी विपाशा का गूढ़ भाव कितना महत्त्वपूर्ण था फिर भी यहाँ न तो अमात्य राजा बैठक आए और न वंपुसर सिंह सेनापति ही और न ही महावीर पेंफिलस एक ! क्यों ?' परन्तु वह अपनी इस बात में न जाने क्या अनुचित समझ, केवल इतना ही कह कर रह गया।

और आचार्य शिष्य ने जितना कुछ कहा उतने मात्र से ही मंजरिका को लगा जैसे उस पर कोई वज्रप्रहार हुआ है। पर यह क्या वह वज्राघात का अनुभव करके भी उसे सहर्ष सहन कर गई, का ही नहीं गई, वरन् जैसे यह सब कुछ बिना

किसी प्रयास के ही केवल स्वाभाविक गति से होकर रह गया। और इसमें उसे कुछ-कुछ गर्व का भी अनुभव हुए बिना न रहा। सोत्साह बोली—"आचार्य शिष्य भटकने की बात तो मेरे मुख से यूं ही निकल गई। वस्तुतः मैं तो यह सोच रही थी कि क्या इस वैशाली में आपके लिए कोई और पथ नहीं रह गया था जो इतनी रात्रि गए तक भी विश्राम नहीं मिल पाता। और फिर, क्या महानगरी की अब ऐसी स्थिति बन गई है, उसे देख तो मेरे मन में न जाने कब से केवल एक ही प्रश्न उठता रहा है। मैं सोच रही हूं आचार्य शिष्य कि भला अब क्या होगा?

यह कहते हुए मंजरिका की मुख मुद्रा गंभीर हो उठी और साथ ही उस पर अगाध चिन्ता की गहनता छा गई।

किन्तु आचार्य शिष्य मंजरिका द्वारा व्यक्त इस अगाध चिन्ता को सकारण एवं उचित समझ कर भी इस समय न जाने क्यों ठहाका दे हँस पड़ा। यह देख मंजरिका कुछ लज्जित हो रही हतोत्साहित भी हो गई। पर आचार्य शिष्य अपने क्षण ही अपनी हँसी को रोक सहसा गंभीर हो उठा। बोला—"श्रेष्ठी-पुत्री भविष्य के प्रति चिन्ता का हो जाना स्वाभाविक है पर साथ ही निरर्थक भी। क्यों? क्योंकि वह अदृश्य है। उस पर यदि गर्व करो तो वह शोभास्पद नहीं और यदि उसके प्रति निराश होओ तो वह आत्मघात के समान है।"

मंजरिका को लगा जैसे उसे कोई अवलम्ब मिल गया। उत्साह का अनुभव कर तत्परता से बोल उठी—"किन्तु आचार्य शिष्य आने वाले कल की ओर से असावधान रहना भी तो कोई दूरदर्शिता नहीं।"

आचार्य शिष्य शय्या पर बैठ बोला—"श्रेष्ठी-पुत्री आप सत्य कहती हैं।" पर मुझे सत्य भला कभी तटस्थ रहा है? रहस्यपूर्ण शीलता उसका स्वरूप सदा ही तो परिवर्तन शील रहा है अपने को विकासोन्मुख कह सत्य ने कब किसको नहीं भटकाया है। आज ही की बात को ले लो न! यदि देवी शिखा के स्थान पर महाश्रेष्ठी अपनी विजयी घोषित कर दी जाती तो एक सत्य अदीप बन रह जाता और दूसरा सत्य मुखरित हो विजयश्री का किरीट धारण कर गर्व से अपना शीश ऊपर उठा कहता—"सुनो भद्रजनो! सत्य मैं हूं। श्रेष्ठी-पुत्री उचित अनुचित की बात मैं नहीं करता परन्तु यह तथ्य तो बनकर रह ही जाता। उसे न मैं अस्वीकार कर सकता था और न कोई अन्य ही।"

यह कह कर भी आचार्य शिष्य न जाने क्या कुछ सोचता-सा रह गया। उसकी उठी दृष्टि सम्मुख की एक दीप शिखा पर जा केन्द्रित हुई।

मंजरिका किंचित सोच बोल उठी—"और आचार्य शिष्य जब सत्य ही तटस्थ नहीं तो फिर जो सुन्दर है वह ही स्थायी कहां हुआ?"

यह सुन आचार्य शिष्य मौन ही रहा। मंजरिका भी उत्तर की प्रतीक्षा में मौन रह आचार्य शिष्य की ओर देखती रही देखती रही कि उसकी दृष्टि में ऐसा क्या स्थिर हो उठा है। किन्तु उसके ज्योतित नैनों को देख वह केवल अनुमान ही लगा सकी। किंचित मुस्कान के साथ बोली—"आचार्य शिष्य क्या देख रहे हो?"

आचार्य शिष्य ने दीपशिखा पर पूर्ववत् दृष्टि रख कहा—"देवी को देख रहा

हूँ यह अस्पष्ट है अतः रहस्यपूर्ण है।"

मंजरिका किंचित मुस्कान के साथ बोली—"आचार्य शिष्य हृदय के उदार हैं, कदाचित् इसी से उनकी दृष्टि में सब कुछ रहस्यपूर्ण है।"

आचार्य शिष्य मंजरिका की यह बात सुन हतप्रभ हुए बिना न रह सका। दीपशिखा से दृष्टि हटा उसने मंजरिका की ओर फेरी। और फिर विस्मय का सा भाव प्रकट करते हुए कुछ कहने को उद्यत हो उठा। किन्तु इसी समय मंजरिका हँस पड़ी। उसकी हँसी रिक्त नहीं थी उसे स्पष्ट ही उसका बोध हुआ। वह और भी अधिक विस्मय से उसकी ओर देख उठा देखता रहा। अंत में शय्या से उठ, उसकी ओर बढ़, बोला—"अष्टी-मुखी ठीक ही कहती है कि जो सुन्दर है, फिर वही रहस्यपूर्ण नहीं हुआ। किन्तु देवी उसका रहस्योद्घाटन कौतूहल है और कौतूहल आकर्षण।"

यह कह उसकी दृष्टि मंजरिका के मुख पर केन्द्रित हो गई। मंजरिका ने कुछ कहने की विधा में अपने पलक ऊपर उठाए तो वे बस उठे ही रह गए। आचार्य शिष्य चाहकर भी अपनी दृष्टि नत न कर सका। सहसा पूछ बैठा—"तो मुझे क्या उदारता सचमुच कोई दोष है?"

मंजरिका ने अपनी दृष्टि नत कर गम्भीर हो कहा—"आचार्य शिष्य मन की स्थिरता जीवन का अनुशासन है और समाज की एक व्यवस्था भी।"

"तो फिर दोष का संवरण क्या आस्था का हनन नहीं हुआ मुझे?" आचार्य शिष्य ने उलट कर, बड़ी आकुलता से प्रश्न किया। मंजरिका भी उतनी ही तत्परता से उत्तर में बोल उठी—"है आचार्य शिष्य अवश्य है किन्तु उसकी भी अपनी मर्यादाएँ हैं।"

आचार्य शिष्य ने जैसे इस बार अटल विश्वास की दृढ़ता से कहा—"देवी मुझे जितना स्मरण है, मैंने कम से कम मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। क्या मैं देवी से उच्छृंखल नहीं हुआ हूँ। मैंने निश्चित ही उपकार का उल्लंघन नहीं किया है, देवी उसके साथ विश्वासघात तो एक दूर की बात है।"

आवेग से आचार्य शिष्य का कण्ठ स्वर कुछ रुद्ध हो गया और क्लान्त मुख पर अवहेलना की कालिमा उभर आई। मंजरिका ने सहसा उसका हाथ पकड़ फिर उस पर अपना करतल रख कहा—"आचार्य शिष्य, कदाचित आवेशित हो उठे हैं। मर्यादा की बात मैंने स्वाधिकार के भ्रम वश कह दी थी किन्तु आचार्य शिष्य आपके मुख से उच्चरित हुआ 'तुम' तो मैंने अपने को निश्चित ही लांछित हुआ अनुभव किया है। मेरे आराध्य मैं इतनी कृतघ्न तो नहीं हूँ।"

मंजरिका जो कुछ कह रही थी आचार्य शिष्य उसे अत्यन्त ध्यान से सुन रहा था। किन्तु अन्तिम वाक्य को सुन कर तो वह जैसे स्तब्ध रह गया। उत्तर में क्या कहे क्या न कहे वह यह सोच ही रहा था कि मंजरिका तुरन्त उठ खड़ी हुई और सावेग कक्ष से बाहर निकल गई।

आचार्य शिष्य उसके पश्चात् कुछ भी सोचने में असमर्थ रहा किसी निष्कर्ष पर पहुँचना तो जैसे उसके लिए सामर्थ्य से बाहर की ही बात बन गई।

और, नित्य की भाँति अपनी सान्ध्य बेला में भी जब मंजरिका कक्ष में आई तो

आचार्य शिष्य को अपने नेत्रों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने समझा था कि श्रेष्ठी-पुत्री अब कभी भी यहाँ नहीं आएगी। अतः उसने सोचा था—'प्रात होते ही मैं स्वयं उसके कक्ष में जाऊँगा और उसके सम्मुख अपना निश्चय प्रकट करूँगा' उसने निश्चय किया था—मैं श्रेष्ठी-पुत्री से जाकर कहूँगा सौम्यमुखी इस सारी अवधि मैंने तुम्हें कष्ट ही कष्ट दिया है भला कब तक ऐसा करता रहूँगा क्या मैं यहाँ से कहीं अन्यत्र नहीं जा सकता। उसे विश्वास था कि श्रेष्ठी-पुत्री अवश्य ही कहेगी—आचार्य शिष्य भला मैं तुम्हें रोक भी किस प्रकार सकती हूँ। पर साथ ही वह सोच उठा क्या वह बस इतना ही कहकर रह जाएगी। वह निश्चित ही कहेगी—'आचार्य शिष्य मैं क्या यह तो कोई भी कह सकता है कि देवी शिल्पा की अट्टालिका जैसी सुविधा भला यहाँ कहाँ है। 'और यदि उसने वास्तव में ऐसा ही कहा' वह सोचता रहा 'तो मैं उससे स्पष्ट ही कहूँगा—देवी तुम्हें केवल भ्रम हुआ है और यदि ऐसी ही बात है तो फिर यह भी निश्चित समझो कि यह अवसर वैशाली में भी नहीं रहेगा जैसे एक दिन यह यहाँ आया था वैसे ही चला भी जाएगा उसने निश्चय किया कि यदि प्रातः होते ही मंजरिका न भी मिली तो मैं फिर स्वयं माता वसुंधरा से कह आऊँगा या फिर कह दूँगा बन्धुवर श्रेणियरत्न से। यह सुन वह अवश्य ही आश्चर्यचकित हो उठेंगे कदाचित कारण भी पूछेंगे पूछेंगे तो क्या हुआ? मैं उनसे नतमस्तक हो सविनय कहूँगा—'क्यों बन्धुवर, अकारण ही आपको जो इतना कष्ट दे बैठा क्या वह पर्याप्त नहीं? फिर बन्धुवर बिना कारण भी तो इस संसार में बहुत कुछ होता रहता है। परन्तु, इसी के साथ वह अपने निश्चय पर जैसे पुनर्विचार के लिए बाध्य हो रहा। अपने ही से बोला—'अपने इस निश्चय को मैं माता वसुंधरा अथवा बन्धुवर श्रेणियरत्न के सम्मुख प्रकट करूँ यह कुछ आवश्यक तो नहीं। वैशाली से जाने लगा तो क्या यह मैं बन्धुवर सिंह या देवी रोहिणी से कहने दूँगा और यह बात देवी शिल्पा से कहने की भी क्या आवश्यकता पड़ी है। किन्तु देवी शिल्पा का ध्यान आते ही वह सोचने लगा—'वैशाली से जाने की बात किसी से कहूँ या न कहूँ, देवी शिल्पा से तो कहनी ही होगी। क्यों कहनी होगी? वह इसका अपने से स्पष्ट उत्तर चाहता था केवल चाह कर ही नहीं रह गया वरन् आतुर हो उठा। उसे लगा देवी शिल्पा जैसे स्वयं ही उसके सम्मुख आकर खड़ी हो गई हो और उसकी इस दुविधा पर मुस्करा कह रही हो—'क्यों आचार्य शिष्य प्रश्न वहाँ समाप्त होता है क्या वहीं से उत्तर स्वतः आरम्भ नहीं हो जाता? विवेक के इस आडम्बर में तो उसके मर्म यूँ ही स्पर्श की चोट खड़ी कर दी है। आचार्य शिष्य देवी शिल्पा के मुख से यह सुन शय्या पर लेटे-लेटे ही जैसे नत मस्तक हो रहा उल्लसित भी हो उठा और जो कुछ उसने उसी के माध्यम से सहज रूप में कहलवा दिया था उस पर मनन करता रहा। मनन करते करते ही उसे एक हल्की-सी झपकी आ गई थी कि मंजरिका की पग आहट से वह भी भंग हो गई।

मंजरिका को सम्मुख देख कर भी आचार्य शिष्य को अपने नेत्रों पर विश्वास भले ही न हुआ हो परन्तु आश्चर्य अवश्य हो रहा। उसे इस बात का आश्चर्य हुआ कि इतनी रात्रि गए जाकर भी वह नित्य की भाँति नियमित समय पर कैसे उठ बैठी। केवल उठ बैठी ही नहीं वरन् यहाँ भी आ पहुँची जैसे कुछ भी तो नहीं हुआ।

किन्तु जब उसका नेत्र दृष्टि स्वतः हो उसके मुख पर जा टिकी तो वह केवल स्तब्ध रह गया। शय्या पर लेटा भी नहीं रह सका। उसके निद्रा बोझिल नेत्रों को देख विस्मय से बोला—"देवी क्यों क्या आज सारी रात्रि ही नहीं सोई ?"

मंजरिका आचार्य शिष्य के इस प्रश्न का जैसे तत्काल कोई उत्तर देने में असमर्थ रही। हाँ अन्तर की विवशता और खिन्नता सिमट कर एक फीकी मुस्कान के साथ मुख पर अवश्य फैल गई। और फिर मन में सहसा उठी किसी हिलोर के साथ नेत्र सजल हो उठे। वह कक्ष से चुप चाप निकली।

आचार्य शिष्य सत्येन्द्र तो किंकर्तव्यविमूढ़ रह उसी दिशा में देखता रहा और फिर वह भी जैसे हठात् उसी दिशा में आगे बढ़ा हुआ। तत्परता से बढ़ मंजरिका की बाहुओं को पकड़ वह उसका मार्ग रोकता हुआ खड़ा हो गया। उसका कण्ठ स्वर आर्द्र हो उठा। बोला—"देवी क्या तुम मुझे क्षमा नहीं कर सकतीं देवी विश्वास करोगी ? मैं इस समय अत्यन्त दुखी हूँ।"

मंजरिका जैसे इस बार भी उत्तर देने में असमर्थ रही। उसका विद्रोह करता मन विह्वल हो उठा। तो भी उसने कुछ कहने का प्रयास किया। किन्तु शब्द केवल कण्ठ तक ही आकर रह गए, अवरोध को पार नहीं कर सके। तो भी वह कुछ सोचती रही सोचती रही कि कह दूँ—'मेरे आराध्य यह तो आप मुझे कोई कठोर दण्ड दे रहे हैं।' परन्तु वह बस सोचकर ही रह गई।

इसी मध्य आचार्य शिष्य उसकी बाहुओं को झिंझोड़ते हुए पूछ उठा—"क्यों, देवी क्या तुम मुझे सचमुच क्षमा नहीं करोगी ?"

मंजरिका को हुआ वह पाव छुड़ा कर भाग जाए पर भागने की सामर्थ्य हो तभी तो ! न वह भाग ही सकी और न प्रश्न का उत्तर ही दे पाई। आचार्य शिष्य और व्यग्र हो उठा। इस बार बाहुपाश को छोड़ उसने मंजरिका के चिबुक का स्पर्श कर बलात् उसे ऊपर उठाया और फिर बोझिल कण्ठ स्वर में बोला—"मुझे इस जीवन में न जाने कब से उपकारों से ही लादा जाता जा रहा हूँ, इतने उपकारों से कि अब उनका और अधिक भार वहन करना मेरे वश की बात नहीं रही, फिर भी आज देवी एक और उपकार पाने की इच्छा बलवती हो उठी है। देवी कह दो कह दो कि आचार्य शिष्य तुम्हें क्षमा नहीं किया जा सकता।"

मंजरिका ने इस बार जैसे मंत्र प्रेरित हो अपनी दृष्टि तनिक ऊपर उठाई और आचार्य शिष्य की ओर देखा। क्या कहे और क्या न कहे यह सोचने का जैसे उसे समय ही नहीं मिला। उसके मुख से मानो हठात् निकल गया—"आचार्य शिष्य जीवन में मैं कभी उर्वर बनूँ, यह मेरी अभिलाषा कदापि नहीं रही और न ही यह अभिलाषा है कि अनुभूति के विपरीत आचरण करूँ और वह भी किसी ऐसे से [blank]।" सहसा उसका कण्ठ स्वर अवरुद्ध हो गया। आचार्य शिष्य उत्सुकता से उसकी ओर देखता रहा। [illegible] रुकने के पश्चात् मंजरिका ने मानों अपने अन्तर की सारी शक्ति एकत्र कर पुनः कहा—"क्या मैं कहूँगी आचार्य शिष्य क्या उस पर विश्वास करेंगे ?"

आचार्य शिष्य तत्परता से बोल उठा—"देवी विश्वास करो अविश्वास का यह [illegible] अपराध भी अब ऐसा साहस मैं कदापि नहीं कर सकता।"

मंजरिका तनिक पीछे हट, बोली—"आचार्य शिष्य तो फिर तुमने आपने मुख से उपहृत हुआ यह मेरे सौभाग्य पर ही तो लांछन लगाया है। क्या किसी का गर्व विस्मृत होकर भी मौन रह सकता है? आचार्य शिष्य मैं आपको सचमुच क्षमा नहीं कर सकती।"

आचार्य शिष्य को लगा जैसे उसे सचमुच उसका अभीष्ट मिल गया हो। हर्षातिरेक में वह मानों चिल्ला उठा—"देवी आज तो मैं सचमुच धन्य हो गया हूँ। सचमुच धन्य हुआ हूँ देवी।" यह कहते हुए कब उसके हाथ दूर खड़ी मंजरिका तक पहुँच गए और कब वे हाथों में उसे खींच पाशबद्ध कर वक्ष से चिपटा लिया इसका न उसे स्वयं पता चल सका और न मंजरिका को ही।





चौदह

गणसंवाहक सामन्त मंगदेव मध्याह्न का भोजन कर, अभी-अभी शय्या पर लेटे थे कि संदेशवाहक कपिल कक्ष में आ पहुँचा। नत मस्तक हो, वह सविनय बोला—"आर्य आस्थानागार में कोई वैदेशिक चित्रकार आया हुआ है।"

एक वैदेशिक चित्रकार के आने की बात सुन गणसंवाहक को कुछ आश्चर्य हुआ। उनके मुख पर कौतूहल का भाव भी फैल रहा। तो भी वह कुछ सोच बोले—"आयुष्मान्, तुम तो देख रहे हो आज प्रातः ही से मैं कितना व्यस्त हूँ क्या वह तीसरे प्रहर तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता?"

इस पर संदेशवाहक पूर्व से भी अधिक विनीत कण्ठ स्वर में बोला—"आर्यवर यह अनुरोध मैं उससे पहले ही कर चुका हूँ पर उसने तत्काल दर्शन का विशेष आग्रह किया है।'

यह सुन गणसंवाहक को और भी अधिक आश्चर्य हुआ। कौतूहल का भाव भी प्रगाढ़ हो गया। फिर भी मस्तक में कुछ उपेक्षा का सा भाव लिया वह मानों भारी मन से बोले—'अच्छा आयुष्मान् तो फिर अभी लिवा लाओ।

तत्पश्चात् वह स्वयं अपने ही को कुछ सुनाते हुए से बड़बड़ा उठे। संदेशवाहक कपिल ने कक्ष से बाहर निकलते हुए यह सब कुछ सुना किन्तु सुनकर भी अंततः कुछ समझने में असमर्थ रहा। बस अनुमान लगाता रह गया। वास्तव में आज अति प्रातः ही से प्रासाद में फिर जैसे किसी गंभीर मंत्रणा का क्रम गतिमान था और कम्मकरों की बस्ती से आए एक संवाद विशेष को सुन अभिजात समाज में भारी ज्वार आया हुआ था। फिर संदेशवाहक को उस बात का भी स्मरण हो आया जो दासी कन्या छाया ने उसे बताई थी। वह उस समय सचमुच कितनी घबराई हुई थी इस बात का ध्यान आते ही उसके मन में उसके प्रति इस समय भी कारुण्य का संचार हो उठा। संदेशवाहक फिर अपने ही से बोला—'दासी कन्या का घबरा उठना स्वाभाविक ही तो था। अभिजात समाज के उस निर्णय को सुन भला कौन आतंकित न हो उठेगा।

किन्तु गणसंवाहक के मन में इस समय कोई दूसरी ही दुनिया थी। वह सोच रहे थे कि यदि विशाखा ने कम्मकरों को भी कहीं शस्त्र सज्जित कर दिया तो फिर कोई भी ऐसी शक्ति नहीं जो वैशाली में गृह युद्ध की विभीषिका को रोक सके। 'और मंगदेव वह अपने ही से कह उठे 'यदि तू ने उसे रोकने का प्रयास किया भी तो ये सब सामन्त पुत्र तुझे भी अपने में से निकाल बाहर करेंगे। और कौन जाने मुझे

मंजरिका तनिक पीछे हट बोली—"आचार्य शिष्य तो फिर सुनो आपने मुझ से उपकृत हुआ कह मेरे सौभाग्य पर ही तो लांछन लगाया है। क्या किसी का गर्व तिरस्कृत होकर भी मौन रह सकता है? आचार्य शिष्य मैं आपको सचमुच क्षमा नहीं कर सकती।

आचार्य शिष्य को लगा जैसे उसे सचमुच उसका अभीष्ट मिल गया हो। हर्षातिरेक में वह मानो चिल्ला उठा—"देवी आज तो मैं सचमुच धन्य हो गया हूँ। सचमुच धन्य हुआ हूँ देवी।" यह कहते हुए कब उसके हाथ दूर खड़ी मंजरिका तक पहुँच गए और कब बड़े हाथों ने उसे खींच पाशबद्ध कर वक्ष से चिपटा लिया उसका न उसे स्वयं पता चल सका और न मंजरिका को ही।





चौदह

गण संवाहक सामन्त मंजरदेव मध्याह्न का भोजन कर अभी-अभी शय्या पर लेटे थे कि संधिवाहक कपिल कक्ष में आ पहुँचा। नत मस्तक हो वह सविनय बोला—"आर्य आस्थानागार में कोई वैदेशिक चित्रकार आया हुआ है।"

एक वैदेशिक चित्रकार के आने की बात सुन गणसंवाहक को कुछ आश्चर्य हुआ। उनके मुख पर कौतूहल का भाव भी फैल रहा। तो भी वह कुछ सोच बोले—"आयुष्मान्, तुम तो देख रहे हो आज प्रात: ही से मैं कितना व्यस्त हूँ क्या वह तीसरे प्रहर तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता?"

इस पर संधिवाहक पूर्व से भी अधिक विनीत कण्ठ स्वर में बोला—"आर्यवर यह अनुरोध मैं उससे पहले ही कर चुका हूँ पर उसने तत्काल दर्शन का विशेष आग्रह किया है।"

यह सुन गणसंवाहक को और भी अधिक आश्चर्य हुआ। कौतूहल का भाव भी अथाह हो गया। फिर भी प्रकट में कुछ 'उपेक्षा' का सा भाव दिखा वह मानों भारी मन से बोले—'अच्छा आयुष्मान् तो फिर अभी लिवा लाओ।'

तत्पश्चात् वह जैसे अपने ही को कुछ सुनाते हुए से बड़बड़ा उठे। संधिवाहक कपिल ने कक्ष से बाहर निकलते हुए वह सब कुछ सुना किन्तु सुनकर भी अरजस्त कुछ समझने में असमर्थ रहा। बस अनुमान लगाता रह गया। वास्तव में आज अति प्रात: ही से प्रासाद में फिर जैसे किसी गंभीर मंत्रणा का क्रम गतिमान था और कम्मकरों की बस्ती से आए एक संवाद विशेष को सुन अभिजात समाज में भारी ज्वार आया हुआ था। फिर संधिवाहक को उस बात का भी स्मरण हो आया जो दासी कन्या छाया ने उसे बताई थी। वह उस समय सचमुच कितनी घबराई हुई थी इस बात का ध्यान आते ही उसके मन में उसके प्रति इस समय भी कारुण्य का संचार हो उठा। संधिवाहक फिर अपने ही से बोला—'दासी कन्या का घबरा उठना स्वाभाविक ही तो था। अभिजात समाज के उस निर्णय को सुन भला कौन आतंकित न हो उठेगा।'

किन्तु गणसंवाहक के मन में इस समय कोई दूसरी ही दुविधा थी। वह सोच रहे थे कि यदि विरस ने कम्मकरों को भी कहीं एकत्र संगठित कर लिया तो फिर कोई भी ऐसी शक्ति नहीं जो वैशाली में गृह युद्ध की विभीषिका को रोक सके। और मंजरदेव वह मन ही मन कह उठे— यदि तू ने उसे रोकने का प्रयास किया भी तो ये उग्र सामन्त पुत्र तुझे भी अपने में से निकाल बाहर करेंगे। और, कौन जाने मुझे

अपने आर्य की आज्ञा समझ मेरा ही ।"

गणसंवाहक जैसे अपने ही विचार प्रवाह से भयभीत हो उठे। वह अपने नेत्रों पर हाथ रख तनिक विश्राम की साँस लिया ही चाहते थे कि प्रतिहारक अपरिचित आगंतुक चित्रकार को साथ ले कक्ष की ओर आता प्रतीत हुआ। गणसंवाहक सचेष्ट हो उठे। उन्हें अत्यंत निकट आया समझ शय्या पर उठ भी बैठे। और जब वे कक्ष में प्रविष्ट हुए तो वह शय्या से उठ अपने दोनों हाथों को पसार उल्लसित कण्ठ से बोले— "आओ आर्य आओ।"

और इतनी-सी देर में ही गणसंवाहक आगन्तुक को एक जिज्ञासापूर्ण की सी दृष्टि से आपादशीर्ष देख गए। आगंतुक इस बात को समझ गया तो भी उसने प्रकट में इस स्वागत पर भारी हर्ष ही प्रकट किया तथा तत्क्षण उसका मुख खिल उठा। गणसंवाहक का अभिवादन कर वह सविनय बोला— "आर्य ने मेरे विशेष आग्रह को स्वीकार कर मुझ पर निश्चित ही अति उपकार किया है। और, आर्य के इस विश्राम में मैं धृष्टतावश जो विघ्न डालने का अपराध कर बैठा हूँ आशा है आर्य इस अकिंचन को अवश्य ही क्षमा कर देंगे।"

आगंतुक के मुख से यह सुन गणसंवाहक के मुख पर सहज संकोच का भाव उभर आया। वह बोले—"आर्य भला इसमें अपराध की क्या बात हुई।" फिर सम्मुख रखी स्वर्ण पीठिका की ओर हाथ से संकेत कर कहने लगे—"आर्य इस पर विराजमान हों।" और यह कह वह स्वयं भी शय्या पर बैठ गए।

आगन्तुक ने जैसे अपने को उपकृत हुआ अनुभव किया। पीठिका पर बैठते हुए बोला—"आर्य का यह स्वागत भाव निस्संदेह उच्च कुल गौरव के अनुरूप ही है। फिर आप का कला प्रेम भी तो सर्व विदित है, तभी तो यह सेवक इतना साहस कर सका।"

"नहीं आर्य नहीं आपने यह तो मुझ पर अनुकम्पा की है किसी कलाकार का मैं स्वागत कर सकूँ यह तो मेरा परम सौभाग्य है।" यह कह गण संवाहक ने अपनी दृष्टि ऊपर उठाई अपरिचित चित्रकार की ओर देखा और फिर उसे सौविदाहक दपिम की ओर देखते हुए उसे वहाँ से जाने का संकेत किया।

आगंतुक चित्रकार इस मध्य उत्सुक दृष्टि से वयोवृद्ध सामन्त की ओर देखता रहा। गणसंवाहक भी उसकी ओर चित्रकारों से देखते रह विश्राम की इच्छा से शय्या पर लेट गए। और तत्पश्चात् उनकी दृष्टि जैसे स्वर्ण कक्ष की छत पर केन्द्रित हो रही। एक निश्वास भी उनके मुख से निकल कक्ष के मौन वातावरण पर छा गया। कक्ष में तत्पश्चात् जैसे गतिरोध का सा वातावरण बन गया।

अंत में इस गतिरोध को भंग किया स्वयं गणसंवाहक ने। पूछने लगे— 'आर्य वैशाली में कब आना हुआ? मगध में सब कोई कुशल से तो है न?'

उनके मुख से यह सुन आगंतुक चित्रकार चकित हुए बिना न रहा। परन्तु प्रकट में सर्वथा अविचलित रह विनय का भाव दिखाता नत मस्तक हो बोला— "आर्य की कृपा चाहिए।"

तत्पश्चात् सामन्त मंजुदेव उसी प्रकार अपनी दृष्टि छत की ओर केन्द्रित रख

बोले—"आर्य का कण्ठ स्वर पर्याप्त परिचित प्रतीत हो रहा है परन्तु आयु की ओर से मन में तनिक भ्रम है। फिर आर्य मेरी यह वृद्धावस्था ठहरी। स्मरण शक्ति का क्षीण हो जाना स्वाभाविक ही है। अतएव पूरी शक्ति लगा कर भी यह स्मरण नहीं कर पा रहा हूँ कि आर्य के कब और कहाँ दर्शन हुए थे?

सामन्त मंजदेव के इस कथन से आगंतुक मागध का रहा-सहा भ्रम भी दूर हो गया। तथापि वह सर्वथा संयत रहा। उत्तर में कुछ भी न कह उसने चित्रकार की भावकता से उनकी ओर एक चित्रफलक बढ़ाते हुए कहा—"आर्य के निश्चित ही कहीं दर्शन किए हैं तभी तो यह चित्रांकन संभव हो सका है।"

सामन्त मंजदेव ने लेटे-लेटे ही उस चित्रफलक को अपने हाथ में ले लिया। और फिर जैसे अध्ययन की सी व्यस्तता से उसे देखते रहे। अंततः एक निःश्वास के साथ बोले—"आर्य, चित्र तो निस्संदेह सुन्दर और वास्तविक बन पड़ा है तो भी मुझे एक आपत्ति है।"

"वह क्या है आर्य।" आगंतुक चित्रकार ने जिज्ञासा का भाव दिखा तत्परता से प्रश्न किया। उत्तर से पूर्व सामन्त मंजदेव शय्या पर उठ कर बैठ गए। फिर चित्रकार की ओर तनिक मुस्कान के साथ देख बोले— मागध चित्रकार ने जैसे रौद्र भाव में अपनी अगाढ़ आस्था दिखा अपने चित्र में मेरी आवेशपूर्ण मुखमुद्रा को ही प्रधानता प्रदान की है।"

गणसंवाहक की इस आपत्ति पर मागध चित्रकार कुछ ठिठका। पर साथ ही सर्वथा सहज ढंग में बोला— आर्य की आपत्ति सर्वथा उचित ही है। तो भी आर्य आप यह जानकर अवश्य प्रसन्न होंगे कि यह चित्र केवल दो दिन में ही बनकर तैयार हुआ है अतएव सामयिक है और विशेष महत्त्वपूर्ण भी।"

यह सुन गणसंवाहक के मुख पर किंचित उत्तेजना का भाव उभर आया। वह शय्या से उठ खड़े हो गए। फिर कक्ष में धारिका व्यस्त हो जैसे किसी गहन समस्या पर विचारने लगे। सहसा दृढ़ कण्ठ स्वर में बोले— "परन्तु यह एक वैदेशिक कलाकार— विशेषकर मागध का अधिकार कदापि नहीं हो सकता आर्य।"

आगंतुक कलाकार भी पीठिका से उठ खड़ा हुआ। गणसंवाहक के सम्मुख नत मस्तक हो वह बोला— "आर्य कलाकार सीमाओं की बाधा को स्वीकार नहीं करते।"

यह सुन सामन्त मंजदेव बोले—"आर्य, कलाकारों के इस विशेषाधिकार को मैं भी स्वीकार करता हूँ। परन्तु प्रस्तुत चित्र में तो अभिप्राय स्पष्ट झलक रहा है अतएव यह हस्तक्षेप है। यह कह वह तनिक रुके। फिर कुछ सोचते हुए से कण्ठ स्वर को संयत करने का सा प्रयास करते हुए बोले—"आर्य वैशाली में कलाकारों को निस्संदेह पूर्ण स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त है किन्तु उनका यह विशेषाधिकार तभी तक सुरक्षित है जब तक कि वे वज्जिसंघ की आंतरिक समस्याओं को अपनी तूलिका का विषय नहीं बनाते और इस प्रकार उनमें हस्तक्षेप नहीं करते। किसी वैशालिक चित्रकार को यह अधिकार भी प्राप्त है, किन्तु यदि कोई वैदेशिक चित्रकार यह चेष्टा करे तो जानते हो सम्भवतः उसका क्या परिणाम है?"

आगंतुक चित्रकार ने पुनः नत मस्तक हो सविनय कहा—"जानता हूँ आर्य उसके लिए वैशाली में प्राप्त दंड की व्यवस्था है परन्तु यह विनीत सेवक तो इस समय दूत रूप में प्रस्तुत हुआ है।"

"परन्तु किसी भी दूत के लिए क्या यह छद्म वेश किसी प्रकार शोभा देता है मागध अमात्य वर्षकार! फिर, वैदेशिक दूत का स्वागत करने का अधिकार अथवा दायित्व भी तो मेरा नहीं है। इसके लिए तो यदि आप महाध्यक्ष राजा चेटक के पास गए होते तो यह न केवल शोभास्पद वरन् उचित भी होता। आपने इस प्रकार यहाँ आ वैशाली में मेरी स्थिति और दुविधा पूर्ण बना दी है।"

मागध अमात्य उत्तर में बोला—"यह मैं जानता हूँ आर्य। किन्तु मैं आर्य की सेवा में एक विशेष प्रयोजन से उपस्थित हुआ हूँ। साथ ही मुझे एक बात और निवेदन करनी है।" यह कह उसने गणसंवाहक की ओर देखा। गणसंवाहक ने उसकी दृष्टि में छिपे आशय को भली भाँति समझ कहा—"आर्य आश्वस्त रहें।"

इस आश्वासन के पश्चात् भी मागध अमात्य ने गृह की सी सशंक दृष्टि से चारों ओर देखा। पूर्णतः सावधान हो बोला—"आर्य मगध साम्राज्य के राजप्रासाद में राज्य श्री की महत्त्वाकांक्षा को लेकर राजपुत्रों के मध्य परस्पर संघर्ष अनिवार्य है और इस संघर्ष में वैदेही पुत्र कुमार कौणिक की विजय भी निश्चित है। इस कार्य में यद्यपि उन्हें सभी पुरोहित कुलों की सहायता प्राप्त है तो भी उन्होंने आस्था रूप में गुप्त रूप से निर्ग्रंठ महाश्रमण वर्धमान महावीर का उपासक होना स्वीकार किया है, और तथागत के भिक्षु संघ को नष्ट भ्रष्ट करने के लिए उन्होंने इस समय उनके एक प्रधान शिष्य देवदत्त के साथ गुप्त संधि भी की हुई है। राज्यश्री पर पूर्णाधिकार प्राप्त करने की दिशा में उनकी प्राय सभी योजनाओं की सफलता निश्चित है, परन्तु उनको कार्य रूप देने से पूर्व वह आर्य की सहायता भी अनिवार्य समझते हैं। और वर्धमान महावीर के समान रूप से उपासक होने के नाते उन्होंने आप से इस सहायता की सहज अपेक्षा की है। अतएव आर्य को भी उचित समझें, सत्परामर्श प्रदान कर इस सेवक को अनुगृहीत करें।"

मगध आमात्य की बात को वह धैर्य से सुनते रहे। जो कुछ सुना उससे उनके गम्भीर मुख पर एक मुस्कान फैल गई। हर्ष का सा भाव प्रकट करते हुए बोले—"आर्य कुमार कौणिक ने अपने सहज स्वभाव वश मुझे जो अनायास ही इतना महत्त्व दे डाला है उसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। परन्तु आर्य एक बात विचारणीय है। मगध की राज्य श्री के प्रश्न को लेकर यदि राजगृह के राजपुत्रों में परस्पर कोई संघर्ष छिड़ता है तो भला कोई भी वैशालिक उसमें क्या योगदान कर सकता है! यह तो सर्वथा मागध प्रजा की आंतरिक समस्या है जिसमें किसी भी वैशालिक का हस्तक्षेप करना उचित नहीं। फिर आर्य वज्जिसंघ ने किसी भी भिन्न राष्ट्र के आंतरिक संघर्ष अथवा शांतिपूर्ण जीवन में हस्तक्षेप न करने की नीति अपनाई है, जिसका पालन करना प्रत्येक वैशालिक का पुनीत कर्तव्य है।

गणसंवाहक की यह बात सुन मागध अमात्य को कुछ हतोत्साह हुआ। परन्तु प्रकट में सर्वथा धैर्य भाव से बोला—"आर्य यह तथ्य मुझ से छिपा नहीं है, और न ही

किसी अन्य से। प्रत्येक वैशालिक गण संस्थागार के निर्णयों के प्रति कितना निष्ठावान है यह सर्व विदित है। किन्तु कुमार कोणिक ने यह सहायता वज्जिसंघ से नहीं वरन् स्वयं आर्य से माँगी है। वैशाली में दास वर्ग को मुक्त कर उसे प्रतिष्ठापित करने का जो प्रयत्न किया जा रहा है और उसका आर्य ने जो डटकर प्रतिरोध किया है उसका कुमार कोणिक ने न केवल समर्थन किया है वरन् भूरि-भूरि प्रशंसा भी की है। कुमार कोणिक इस प्रसंग में आर्य को पूरी सहायता देने को उद्यत हैं। और आर्य आप यह तो जानते ही हैं कि मगध साम्राज्य में चंप को मिलाने के बाद से सभा पर कुमार कोणिक का कितना प्रभाव हो गया है।"

मागध अमात्य का किस ओर संकेत था गणसंवाहक उसे भली भाँति समझ, तनिक सजग कर खड़े हो गए। फिर सहज ढंग में बोले—"आर्य सामन्त मंजदेव ने अपने जीवन के पूरे क्षण वसक एक सैनिक के रूप में बिताए हैं अतः वह बेचारा राजनीति की जटिल भाषा को क्या समझे। अतएव कुमार कोणिक का जो भी प्रस्ताव है आर्य उसे निस्संकोच भाव से स्पष्ट रूप में कहने की कृपा करें।"

उत्तर में अमात्य वर्षकार ने पहले जैसे अपना कण्ठ साफ किया फिर बोला—"किन्तु आर्य उससे पहले दूत को स्पष्टोक्ति का अधिकार मिलना चाहिए।" यह कह उसने गणसंवाहक की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। उनकी मुखमुद्रा पूर्ववत् गम्भीर थी किन्तु नेत्रों में उत्सुकता का स्पष्ट आभास मिल रहा था। बोले— "आर्य आश्वस्त रहें।"

तब मागध अमात्य ने उनके अत्यंत समीप जा गुप्त मंत्रणा के से धीमे स्वर में कहा—"आय कुमार कोणिक ने कहा है कि यदि गणसंवाहक सामन्त मंजदेव ।"

गणसंवाहक उत्सुकता दिखाते हुए बोले—"आर्य जो कुछ भी कहना चाहें निस्संकोच हो कहें।"

मागध दूत ने जैसे पुन कहने का प्रयास किया। बोला—"आर्य कुमार कोणिक ने यही कहा है कि यदि गणसंवाहक सामन्त मंजदेव वज्जाध्यक्ष राजा चेटक के दौहित्रों—हल-विहल्ल—की सहायता न कर मुझे सहयोग प्रदान करें तो उनका वज्जिसंघ के एक छत्राधिकार सम्पन्न राजा के रूप में अभिषेक किया जा सकता है और स्वयं मगध सम्राट् कोणिक अपने हाथों से उनका राज्याभिषेक करेंगे।"

गणसंवाहक ने जिस प्रकार के प्रस्ताव का अनुमान किया था ठीक वही उनके सम्मुख प्रस्तुत था। फिर भी उसे सुन बहुत देर ही मन चकित हो रहे। परन्तु प्रकट में ऐसा कोई भाव न दिखा अंतर में पर्याप्त समय से रुकी श्वास का भारी हुंकार के साथ बाहर छोड़ते हुए बोले—"आर्य कुमार कोणिक का प्रस्ताव निस्संदेह महत्वपूर्ण है और विचारणीय भी। परन्तु फिर भी एक बात मैं आय के सम्मुख स्पष्ट निवेदन कर देना चाहता हूँ और वह यह है कि वैशालिक अपनी शासन पद्धति के प्रति अत्यंत भावुक हैं अतः इस दृष्टि से कुमार कोणिक ने मेरी शक्ति का मूल्यांकन करने में अवश्य ही भारी भूल की है। वास्तव में मैं स्वयं यह समझने में असमर्थ रहा हूँ कि इस प्रसंग में मैं किस प्रकार उनकी सहायता कर सकता हूँ।"

मागध दूत ने तत्परता से कहा—"कुमार कोणिक ने यह भी उपाय

है आर्यवर।"

"वह क्या है, आर्य ?" प्रश्न के उत्तर की अभिलाषा से गणसंवाहक ने उत्सुक दृष्टि से मागध अमात्य की ओर देखा। मागध दूत ने भी उनकी ओर देखा। फिर अपने मुख को गणसंवाहक के कानों के अत्यन्त समीप ले जाते हुए वर्षकार ने कहा—"आर्य वैशाली की वर्तमान ज्वलंत समस्या गृह युद्ध के लिए पर्याप्त है। कुमार कौशिक का अनुरोध है कि आर्य इस अवसर का अवश्य लाभ उठाएं।

यह कह मागध दूत कुछ पीछे हटा। तनिक रुक पुन बोला— आर्यवर, कुमार कौशिक ने कहा है कि गणसंवाहक आश्वस्त रहें शेष स्थिति को मैं स्वयं सम्भाल लूंगा।'

दूत वर्षकार के मुख से कुमार कौशिक के इस प्रस्ताव को सुन गणसंवाहक पाषाण मूर्ति की भांति निश्चल खड़े ही रह गए। ध्यानस्थ हो मानो प्रस्ताव पर गम्भीरता से विचार कर रहे हों। और उनकी इस तात्कालिक मुद्रा विशेष को देख मागध दूत के लिए किसी भी निष्कर्ष पर पहुंचना कठिन प्रतीत हुआ। फिर भी उसने अनुमान लगाया कि गणसंवाहक इस समय अवश्य ही कोई निर्णय करने की स्थिति में पहुंच चुके हैं। अतएव अनुकूल अवसर समझ उसने प्रस्ताव को और आगे बढ़ाते हुए कहा—"आर्य आवश्यकता राजनीति की सबसे बड़ी दुर्बलता है और संकोच प्रगति में बाधक है। समय की गति के प्रवाह को रोकना सबसे बड़ा अविवेक है। आर्य समूचा आर्यावर्त इस समय एकछत्रात्मक शासन पद्धति की ओर अग्रसर है। केवल अग्रसर ही नहीं वरन् वह पवन के प्रबल झोंके के समान आगे बढ़ रहा है और उसकी गति को रोकना अब असम्भव है। और यदि किसी ने उसे रोकने का प्रयास किया भी तो आर्य आप भी जानते हैं समय की गति बड़ी बलवान है जिसके सम्मुख सभी को अंतत नत मस्तक होना पड़ता है। आर्य इस आर्यावर्त में अब केवल वज्जिसंघ और मल्लदेश ही तो ऐसे रह गये हैं जो अभी भी अपनी पुरानी घिसी-पिटी परम्परा से जूझ रहे हैं और इस प्रकार आर्यावर्त की अखण्डता के प्रति बाधा स्वरूप बने हुए हैं। आर्य विश्वास रखें एक सत्तात्मक प्रणाली ही ऐसी है जिससे इस समूचे जम्बू महाद्वीप का कल्याण एवं सुख समृद्धि सम्भव है अतएव आर्य यदि कुमार कौशिक के प्रस्ताव पर गम्भीरता से मनन करें तो अवश्य ही इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि उसमें न केवल आपका अपना वरन् वज्जिसंघ का भी केवल वज्जिसंघ का ही नहीं वरन् समूचे जम्बू द्वीप का कल्याण है। पश्चिमोत्तर की ओर से होने वाले विधर्मियों के आक्रमणों को देखते हुए भी यह सब कुछ नितान्त आवश्यक है। आर्य यह देश भक्ति की एक प्रबलतम मांग है और यह इसे अंततः स्वीकार करनी ही होगी।" यह कहते हुए वह तनिक रुका। फिर मानों कुछ सोचता-सा बोला—"आर्य विश्वास रखें वज्जिसंघ आप ही के पास रहेगा और उसके राज्य सिंहासन पर भी आप ही सुशोभित होंगे। आपके पश्चात् आयुष्मान् अरुणदेव उसका उपभोग करेंगे। ओह आर्य आयुष्मान् का भी क्या ही सुन्दर नाम है मानो समय की पुकार ने स्वयं उसका नामकरण किया हो।"

गणसंवाहक इस पर तनिक निराशा का भाव प्रकट करते हुए बोले—"परन्तु आर्य को कदाचित् यह विदित नहीं कि मैं आयुष्मान् अरुणदेव की ओर से कितना

उदासीन हूँ। तनिक रुक, एक निःश्वास के पश्चात् फिर बोले—"आर्य वास्तव में उसका कोई भी तो ऐसा आचरण नहीं जो वैधानिक या कहा जा सके अतएव उसकी ओर से निरंतर चिन्ता बनी रहती है।" यह कहते हुए वह कुछ खिन्न मन से शय्या पर बैठ गए।

मागध दूत बोला—"आर्य तो आयुष्मान् की ओर से व्यर्थ ही उदासीन हैं। आयुष्मान केवल महत्त्वाकांक्षी ही नहीं दूरदर्शी भी हैं। अतएव गणशासन पद्धति के प्रति वैशालिकों की आतुरता को वह केवल मूर्खता समझते हैं। यदि उनका वश चले तो वह एक क्षण में ही उसका समूल उन्मूलन कर उसके स्थान पर समय के आवश्यक प्रतीक—एकसत्तात्मक शासन को प्रतिष्ठापित कर दें। वह इस दिशा में प्रयत्नशील भी हैं आर्य से कदाचित् यह छिपा नहीं है। वह केवल उचित अवसर की ही प्रतीक्षा में हैं। आप चाहें तो उन्हें सहयोग प्रदान कर उनके भविष्य को उज्ज्वल बना सकते हैं। और आर्य उनका यह स्वप्न उनके उच्च कुल गौरव के अनुरूप ही तो है। उनकी धमनियों में क्षत्रियों का ही तो रक्त प्रवाहित है। यदि राज्य लक्ष्मी का उपभोग क्षत्रिय नहीं करेंगे तो भला क्या हम ब्राह्मण करेंगे?"

यह सुन गणसंवाहक की रक्त धमनियों में भी एक बारगी उत्साह का संचार हो उठा। परन्तु किस दिशा में यह अनुमान लगाना असम्भव था। उनके प्रदीप्त मुख एवं ज्योतित नेत्रों को देख मागध दूत ने समझा मानो अपना कार्य समाप्त हुआ। फिर भी वह कुछ समय तक मौन रह गणसंवाहक के मुख की ओर देखता हुए तथा साथ ही उनके मुख से परिलक्षित होते दृश्य-अदृश्य मनोभावों का अध्ययन करते हुए किसी निष्कर्ष बिंदु पर पहुँचने का प्रयास करता रहा। अन्त में पीठिका से उठ बोला—"आर्य अब इस सेवक को जाने का आदेश करें, पर्याप्त विलम्ब हो गया प्रतीत होता है।"

गणसंवाहक की मानों विचार तंद्रा भंग हुई। विहँसते हुए बोले—"आर्य को भला मैं किस अधिकार से आदेश करूँ मेरा अधिकार तो केवल अभ्यागत की सेवा करना है।"

मागध दूत ने नतमस्तक हो कहा—"आप के स्वागत भाव को देख मैं निश्चित ही गद्गद् हुआ हूँ। अतएव इसके लिए हृदय से आभारी हूँ।"

गणसंवाहक ने पूर्व की ही भाँति विहँसते हुए कहा—"यह मेरा सौभाग्य है आर्य।"

मागध दूत ने चलते चलते कहा—"आर्य के इस सहज शील स्वभाव को देख भला कौन हर्षित न होगा। मैं आप का अभिवादन करता हूँ।"

गणसंवाहक वहीं खड़े रह जाते हुए मागध दूत की ओर देखते रहे। उनके भीतर से बलात् एक उच्छ्वास बाहर फूट निकली जो पर्याप्त समय तक कक्ष में मानों मँडराती रही। एक बार तो वह जैसे निज के ही विचारों से भयभीत हो उठे। फिर अपने को ही सुनाते हुए बोले—"संभवतः मागध दूत ठीक ही कहता है समय वस्तुतः बड़ा बलवान है।"



पन्द्रह

अन्य दिनों की अपेक्षा आज आचार्य चित्य मध्याह्नोपरांत समय से कुछ पूर्व ही अपने आवास की ओर लौट लिया। उसका सुपरिचित अश्व—काम्बोज—नगर के मुख्य राजपथ पर सरपट दौड़ता चला आ रहा था। यूं उसके इस अश्व की गति तो अन्य दिनों भी प्रायः ऐसी ही होती थी परन्तु आज वह निश्चित रूप से असाधारण प्रतीत हुई। अतः राजपथ पर आते जाते नागरिक उसकी ओर केवल विस्मय से देखते रह गए।

ऊपर छज्जे पर बैठी मंजरिका ने भी अश्व की पद चापों को दूर ही से पहचान लिया। गति का अनुमान लगा वह कुछ चकित हो उठी। कभी-कभी उल्लसित भी हो उठती। वास्तव में अश्व की पड़ती हुई प्रत्येक पद चाप के साथ उसकी मनोदशा परिवर्तित हो रही थी। अंत में वह न जाने क्या कुछ सोच तत्परता से द्वार की ओर बढ़ ली।

आचार्य चित्य आज निस्संदेह उत्साह के आवेश में था। द्वार मंडप के सम्मुख पहुंच उसने अपने अश्व को वल्गा खींचते हुए रोका और उसके रुकते ही वह सावेग नीचे कूद पड़ा। वल्गा को भी अश्व की ही पीठ पर फेंक दिया फिर सस्नेह उसकी पीठ को कुछ थपथपाया भी। तत्पश्चात् उसी उन्माद आवेश में वह आधे आवास को पार कर लिया।

मंजरिका को सम्मुख देख वह उल्लसित कण्ठ स्वर में बोला—"सुभे ! सुना तूने देवी चित्या की महानायिका के प्रांगण में अब नित्य ही संध्या समाज जमा करेगा।"

यह कह वह एक बाल सुलभ हर्षोल्लास की सी उमंग में 'अजी नाचा करेगा नाचा करेगा' की रट लगाता ताल ठोकता ताली पीटता हुआ नृत्य करने को तत्पर हो उठा किन्तु ऐसा कर नहीं सका। उल्लास के आवेश में वह मंजरिका को भुजाओं में दबोच उठा। फिर उसे आनन्दपूर्वक झकझोरते हुए पूर्व से भी अधिक उमगते कण्ठ स्वर में बोला—"देवी देवी चित्या का नृत्य सचमुच अनुपम है। सभी ने तो उसे मुक्त कण्ठ से सराहा है। उसकी आज सर्वत्र चर्चा है और मंजरिके यह हमारी महान् विजय है।"

"और आप तो केवल सराह ही नहीं रहे, वरन् बौरा से भी गए हैं।" मंजरिका के मन में आया, साहस कर यह कह दे किन्तु इस समय केवल उसके नैन मुस्करा कर रह गए। पर मुख पर खिन्नता का भाव उभर आया। तो भी आचार्य

शिष्य जैसे पूर्व से भी अधिक उत्साह का अनुभव कर उसे झकझोर उठा। झकझोरते हुए पूछने लगा— 'क्यों शुभे आज तो तुम भी बनोगी न ?

मंजरिका का क्षुब्ध मन स्पष्ट रूप में दृढ़ता से कह उठा—'नहीं' —पर उसके मुख से जैसे बलात् निकल गया— अवश्य बनूँगी आचार्य शिष्य अवश्य बनूँगी आपकी देवी शिष्या का नृत्य और मैं न देखूँ भला यह कैसे संभव है ! '

मंजरिका के मुख से यह सुन आचार्य शिष्य का हृदय गुदगुदा पुलकित में हिलोर उठा उस हिलोर में वह झूम-सा गया। और, भावातिरेक में उसने मंजरिका को दृढ़ आलिंगन पाश में समेट लिया। उसे अपने सिर से भी ऊपर उठा उछालता सा बोला—"शुभे तुम सचमुच बड़ी अच्छी हो।"

और फिर उसी आवेग के साथ वह मंजरिका को अपने पास से मुक्त कर सोल्लास कक्ष की ओर दौड़ लिया।

कुछ समय पश्चात् जब आचार्य शिष्य स्नानागार से लौटा तो मंजरिका कक्ष में ही थी। आज उसने न केवल अपनी देह पर सुरुचिपूर्ण वस्त्र धारण किए थे वरन् आचार्य शिष्य के लिए भी अपनी ही रुचि के वस्त्र निकाले थे। उन्हें व्यवस्थित करते हुए उसने तनिक आचार्य शिष्य की ओर देखा फिर कहने लगी— महाप्रभो आपको कितनी बार कहा है कि न तो यह तक्षशिला है और न आचार्य बहुलाश्व की विद्या पीठ ही वैशाली है—वैशाली।"

वह अभी कुछ और कहना चाहती थी कि आचार्य शिष्य बीच ही में तत्परता से बोल उठा— 'क्यों शुभे भला यह कैसा गणित है ? पहली बार ही तो कहा है और कह रही हो कि कितनी ही बार कहा है।

मंजरिका ने किंचित मुस्करा कर कहा— यह गणित की भूल नहीं आचार्य शिष्य वरन् आपने सुना नहीं होगा। हर समय कहीं ध्यान जो भटका रहता है।"

'भला कहां ?" आचार्य शिष्य ने तमतमाता मंजरिका के मुख पर दृष्टि गड़ाते हुए मधुर कण्ठ स्वर में तत्परता के साथ पूछा। फिर तनिक रुक वह पुनः बोला—"शुभे तुमने कहा हो और मैंने न सुना हो भला यह सम्भव है ? ' फिर उसके ओष्ठों के पास अपना मुख ले जा अत्यन्त धीमे से कहा— 'अब समझा प्रिये तुमने अवश्य कहा होगा पर मन ही मन कहा था ना ?

आचार्य शिष्य के मुख से निकली सहज हल्के निश्वासों का स्पर्श पा मंजरिका के गोलगोल कपोलों का अरुणिम रंग लालिमा में परिणत हो उठा गात गुदगुदा-सा गया और समूचा अंतराल एक उच्छ्वास विशेष का अनुभव कर स्फुरित हो उठा। परन्तु साथ ही नैन जैसे लज्जा के भारी बोझ से नत हो रहे कपोलों का प्रवाह एक मादक फैल कर मुस्करा सा गया। उत्तर में उसने कुछ भी न कह केवल हल्के से सिर हिला दिया उसकी उन्मुक्त केश राशि मुख की ओर झुक सी गई। यह देख आचार्य शिष्य जैसे स्तम्भ हो उठा उसकी दृष्टि एक बार जो मंजरिका के मुख पर जाकर टिकी तो वह बस स्तंभित होकर ही रह गई। बसन्ता भी एक जैसे आत्मसात करने के लिए मचल सी गई। मंजरिका की गौर मुख आभा पर पड़ी श्यामल केशों की छाया उसे सौन्दर्य के इस मनिनिमेष जगत में एक अपूर्व संधि प्रतीत हुई ऐसी अपूर्व कि

जिसमें अनुभूति सारी हलचल का अनुभव करके भी बस ठगी-सी रह जाती है। एक साथ ही वह न जाने क्या कुछ कहने को अभिभूत हो उठा परन्तु कहीं उसके पश्चात् भी कहने से कुछ शेष न रह जाए, इस भय से वह उसे भी जो मन में आया था प्रकट न कर सका। अतः वह मौन रहा मौन रह ही सौन्दर्य की प्रस्फुटित होती किरणों को मानों अन्तर में उतारता रहा।

अन्ततः वह उठ खड़ा हुआ। उसकी अंगुलियाँ अनायास ही मंजरिका के मुख पर पड़ी केश-रेखाओं में उलझ, उन्हें हटाने में व्यस्त हो उठीं। मंजरिका के बोझिल पलक भी उठ रहे केशों की झीनी श्यामल ओट में से उसके नेत्र जैसे अनायास निश्छल कोष भाव से झांक उठे। उसकी पुलित-स्थिर दृष्टि के सम्मुख आचार्य शिष्य का धैर्य सभी कुछ परास्त होकर रह गया। परास्त कण्ठ स्वर में वह धीमे से पूछने लगा—'प्रिय, सच बताना मन ही मन मझा कितनी बार कहा था कभी मुझसे स्पष्ट क्यों नहीं कहा ?

मंजरिका अब आह्लाद का अनुभव करके भी संकोच से सिमटी जाती थी। किन्तु इस बार आचार्य शिष्य के मुख से जिज्ञासा परिलक्षित करते प्रश्न को सुन उसके मुख पर किंचित् चपलता का सा भाव खेल उठा। फुसफुसाते से कंठ स्वर में वह बोली—"एक बार भी तो नहीं कहा यह तो यूँ ही मुख से निकल गया था।"

आचार्य शिष्य को जैसे इस पर विश्वास नहीं हुआ। परन्तु यह ऐसा अविश्वास था जिस पर उसे सहज ही में विश्वास नहीं हो सका उलटे मन पर छाया कोई भाव विक्षेप और प्रगाढ़ हो सघन हो उठा। आचार्य शिष्य की मुख आभा मलिन नहीं वरन् प्रदीप्त हो उठी। उल्लसित कण्ठ स्वर में वह कह उठा—"झूठ देवी एक दम ही तो झूठ कहती हो।"

मंजरिका के मन में आया कि वह जोर से खिलखिला हँस पड़े और हँसती रहे पर वह हँसी नहीं। अपनी मुख मुद्रा को गम्भीर बना जैसे साभिनय सहज भाव से बोली—"आचार्य शिष्य विश्वास करो मैं झूठ नहीं बोल रही।'

आचार्य शिष्य उसके नेत्रों में झांक उठा। बोला—'देवी यदि इस बार वाली बात सत्य है, तो फिर पहली वाली निश्चय ही झूठ हुई। यह असंभव है कि दोनों सत्य अथवा झूठ हों।'

मंजरिका के सुख की चंचलता और प्रगाढ़ हो गई और वह जमने को उद्यत हो उठी। किन्तु आचार्य शिष्य ने उसका हाथ पकड़ उसे बरबस रोक लिया। उल्लसित विह्वल वह बोला—"अच्छा देवी तुने जो कहा मैंने वही मान लिया है।"

मंजरिका भी आगे न बढ़ यत वहीं खड़ी हो गई।

सहसा आचार्य शिष्य को ध्यान आया कि उसे तो तुरन्त ही देवी शिप्रा की अट्टालिका की ओर लौटना था। अतः कुछ व्यग्र हो उठा। बोला—"अरे यह तो विलम्ब हो गया देखो! देखो तो भला, देवी शिप्रा क्या कहती होंगी!

यह सुन मंजरिका जैसे किसी बाधा का अनुभव कर उठी। उसके अंतर का सारा उन्माद-प्रवाह छिन्न हो उठा। अंग-प्रत्यंग शिथिल हो गए तथा मुख आभा निस्तेज हो गई। विक्षुब्ध हृदय से उसने बहुत कुछ कहना चाहा किन्तु स्पष्ट भाषा

के अभाव में बस मौन ही रह सकी। पर वह मौन भी अधिक देर न टिक सका। बोली —"आचार्य शिष्य अभी तो मुझे कुछ समय और लगेगा अतः तब तक आप प्रस्थान करें।"

यह सुन आचार्य शिष्य भी कुछ खिन्न हो उठा। बोला— 'मुझे विलम्ब अवश्य हो रहा है देवी परन्तु इतना नहीं। तुम्हें आज मेरे साथ चलना ही होगा। या फिर यदि कोई अन्य संकोच हो तो वह दूसरी बात है।"

मंजरिका उत्तर में कहना चाहती थी—'आचार्य शिष्य भला और संकोच क्या होता और जो संकोच है वह मैं कह भी तो नहीं सकती। इसी मध्य उसके मुख से मानों अनायास निकल गया—"आचार्य शिष्य मैंने तो केवल विलम्ब के कारण ऐसा कहा अन्यथा समाज तो अब प्रति दिन ही लगेगा अतः मैं किसी और दिन हो चला चलूंगी।"

आचार्य शिष्य उसकी ओर देखते हुए बोला— 'और देवी मेरी मनोकामना है कि आप आज ही चलें विलम्ब होता हो तो होने दो।"

मंजरिका का मन जैसे खिल उठा।

किंचित् समयोपरान्त गरुड़ ध्वज लहराता पुरुष सुरक्षा प्रदान का रथ जब श्रेष्ठी प्रासाद से निकल, बाहर राजपथ पर आया तो उसने अपने को सघन जन प्रवाह के मध्य पाया।

वैशाली में अब कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति रहा होगा जो आचार्य शिष्य को न पहचानता हो सभी उसका जय-जयकार कर उठे और वह खुले रथ में सब का अभिवादन स्वीकार करता खड़ा हो गया। उसके मुख पर इस समय यथोचित सौमीर्य विद्यमान था जो नागरिकों के जयघोषों के मध्य जैसे खिल उठा। साथ ही बैठी मंजरिका इस दृश्य पर मन ही मन मुग्ध हो गर्व अनुभव करती रही पर उसके नेत्र जन-दृष्टि के सम्मुख उठ न सके। कारण सभी नागरिक उसकी ओर विस्मयरित नैनों से देख रहे थे और फिर उसी दृष्टि से आचार्य शिष्य की ओर भी। गण महानगरी के इस नए प्रमी-युगल को देख सभी के नैन नवोल्लास से दीप्त हो उठे, उनके अंतस में कौतूहल जाग उठा।

आचार्य शिष्य भी नागरिकों के इस भाव विशेष को समझने में असमर्थ नहीं रहा। अतः अभिवादन के आदान प्रदान में पूर्णतः व्यस्त होकर भी उसके नेत्रकोर अवसर पा यदा-कदा मंजरिका की ओर देख लेते। उसके मुख पर इस समय कुछ आह्लाद कुछ मद और कुछ संकोच का अद्भुत मिश्रित भाव व्याप्त था। पर, कभी कभी आचार्य शिष्य के मन में उठी एक शंका भी उसे सहसा झिंझोड़ सी जाती। तब वह सोचने लगता—'पता नहीं कुंवर सिंह को यह सब कुछ कैसा लगे। संभव है वह रुष्ट भी हो बैठें और कहने लगें।

सेनापति सिंह आचार्य शिष्य के अग्रज तुल्य बंधु थे और इस नाते वह उनका अत्यंत आदर करता था। साथ ही उसे उनके सम्मुख अत्यंत संकोच का भी अनुभव होता था। अतः जब भी यह शंका उसके मन में उदित होती वह सिहर-सा उठता। सम्भवतः उसे प्रतीत होता जैसे कुंवर सिंह उसके सम्मुख खड़े उसे धिक्कार रहे हों और कह रहे हों—'क्यों आयुष्मान यह विश्वासघात नहीं तो और क्या है? उनकी

यह प्रताड़ना सुन वह कल्पना ही कल्पना में उनके सम्मुख विनीत भाव से नतमस्तक हो उठता और कहता—'आप क्षमा करें, किन्तु विश्वास रखें मैंने स्वयं इसमें कुछ नहीं किया यूं समझें, बस अनायास ही हो गया है।

यह सब कुछ सोचते विचारते हुए ही वह आगे बढ़ा जा रहा था। उसका रथ जैसे स्वतः संचालित सा उसके साथ लिए आगे बढ़ा जा रहा था और उसी के वेग में वह एक असहाय की भांति यह सब कुछ सोचता विचारता आगे बढ़ा जा रहा था। किन्तु राजपथ के गतिशील जन प्रवाह ने उसे विचार तन्द्रा में नहीं डूबने दिया। अन्तर में त्रस्त होते हुए भी वह सावधान हो उनका अभिवादन स्वीकार करता रहा।

वास्तव में पौरजनों ने फिर से नियमित नृत्य समाज सजने की घोषणा क्या सुनी जैसे उस महानगरी का कोई खोया वैभव ही लौट आया। राजपथों एवं वीथियों में नव जीवन का संचार हो उठा और मुख्य राजपथ पर? उस पर तो जैसे कोई समारोह स्वयं सजधज कर धूमधाम के साथ हर्षोल्लास और उत्साह के आवेग में बढ़ा चला आ रहा हो। सावेग दौड़ते रथों की गड़गड़ाहट, सरपट भागते अश्वों की टाप पूर्ण पदचाप तथा पैदल चलते नागरिकों का सोत्साह वार्तालाप और फिर उस पर छाया हुआ एक नहीं अनेक प्रेमी युगलों का मदमाता उन्मुक्त हास-परिहास और उसमें से यदा कदा गूंजते अल्हड़ हंसी के ठहाके इन सबको देख आचार्य शिष्य मन ही मन गर्व का अनुभव कर उठा और हर्षित हो उठा यह देख कि आज अंततः महानगरी के कम्मकर भी साहस कर तटबन्धों से कद इस गतिमान प्रवाह में सहसा उतर आए हैं। स्वेद जल से लथपथ उनके शरीर पर इस समय भी जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों को देख तथा यह देख कि उनके मुख पर झिझक का भाव व्याप्त है उसका हृदय भारी टीस से कराह उठा। और अन्य पौरजन कम्मकरों के इस प्रवेश पर विस्मित हुए बिना न रहे। किन्तु वे केवल विस्मित होकर ही रह गए, उन्होंने कोई प्रतिरोध नहीं किया। और कोठारों पर भाटों को ढोते हुए कम्मकरों ने जब इस घोषणा को सुन एक दूसरे के कान में कुछ फुसफुसा उत्साह का सा भाव दिखाया तो श्रेष्ठी भित्तिविक्रक उन्हें ललकारता हुआ सावधान कर उठा। श्रेष्ठी धनञ्जय की कर्मशाला में भी ठीक वैसी ही स्थिति बन आई। कर्मान्ती पर कार्य व्यस्त कम्मकरों को यह सूचना कुछ देर से मिली और तब तक अभिजात समाज के सामन्त जन अपने चर्म कशोदों को हाथ में सम्हाल उन्हें फटकारते अश्वारूढ़ हो वहां पहुंच चुके थे। किन्तु कम्मकर आज जैसे कुछ सम्पन्न थे। हवा में सनसनाते कशोदों की आतंकित करती कर्कश ध्वनि सुनकर भी उनका उत्साह मंद नहीं हो सका वरन पिछली रात्रि में ही आचार्य शिष्य के द्वारा कही गई कोई बात उनके अंतस्तल में अधिकाधिक वेग के साथ गूंज उठी और अंततः ध्वनित हो उठी वही उनके मुख से भी। उनका मुख आज सर्व प्रथम रूप से अपने अपने स्वामियों के सम्मुख कुछ साहस कर कह उठा—"स्वामी यदि शास्त्रों के इस महाराज्य में भी हमारे अन्दर सोया मानव न जाग सका तो फिर भला हमारा और कहां उद्धार हो सकेगा?

और वीथी-मुख के इस ओर मुख्य राजपथ पर इस समय की चहल पहल का क्या कहना। जन प्रवाह वहां अन्दर हो सघन हो उठा। और इस सघनता में

यदि यत्र-तत्र छिटके प्रेमी-युगल अपनी विभिन्न भाव भंगिमाओं के कारण आकर्षण के पात्र बने हुए थे तो दूसरी ओर दासी कन्याएं, जो पर्याप्त दिनों पश्चात् चैत्र अपने उद्यम के कारण आशा से उल्लसित हो उठी थीं। यथा सामर्थ्य रंग बिरंगे वस्त्र धारण कर वे ओजनोत्साह से भरे कण्ठ स्वर में पुकार पुकार इधर आते जाते नागरिकों का ध्यान आकर्षित कर उन्हें अपनी ओर समेटने में व्यस्त थीं। यद्यपि एक-एक को कई-कई उच्छृंखलित प्रेमी युगल घेरे खड़े थे तो भी जैसे उन्हें संतोष नहीं था।

जूही बेला चमेली हरसिंगार आदि आदि के खिले पुष्पों एवं उनकी भीनी-भीनी सुवास से दासी कन्याओं की प्रतिभा महमा सी उठी। अपने नेत्र इंगित से वे दूर खड़े दुविधा ग्रस्त युगल को अपनी ओर खींचने का प्रयास करतीं मुख से पुष्प-जूड़ा अथवा मालाओं का भाव ताव करतीं और यदा-कदा प्रेमी युगल के पुरुष पात्र के किसी परिहास का विहंसती भाव भंगिमाओं से उत्तर भी दे उठतीं।

आचार्य शिष्य ने भी नेत्रकोरों से इस सजीव दृश्य को देखा। मन में एक हिलोर-सी भी उठी। हिलोर की एक तरंग ने जैसे बलात् उसे उस ओर धकेलने का प्रयास किया। वह मंजरिका का हाथ पकड़ रथ से नीचे कूदने को उद्यत हो उठा परन्तु तभी यथोचित गाम्भीर्य ने उसे जैसे बरबस रोक लिया। उसने मंजरिका की ओर देखा। उसे लगा जैसे वह अपना कोई क्षोभ संवरण नहीं कर पा रही है। अतः भारी मन से वह आगे बढ़ता रहा। अंत में वयस की स्वाभाविक गति ने यथोचित गाम्भीर्य पर विजय पाई, रथ भी सहसा रुक गया और वह मंजरिका का हाथ पकड़ नीचे उतर लिया। रथ क्या रुका भीड़ ने उन दोनों को घेर लिया।

आर्य अवरुद्ध हो उठा।

आचार्य शिष्य अपने को इस प्रकार विनोदोन्मत्त उत्साही भीड़ से घिरा देख व्यग्रता का अनुभव कर उठा और साथ ही संकोच का भी। किन्तु, उसके मुख पर जैसे बरबस एक मुस्कान फैल गई। जन समुदाय में होते हास-परिहास पर मन ही मन मुस्कराते हुए उसने अपना हाथ मंजरिका के कन्धे पर टिका दिया।

मंजरिका का गात गरिमा-सा गया।

वह एक साथ ही न जाने कितने संकेतों का अनुभव कर उठी और एक वन-वनिता की भांति वह उमगते पैरों से आगे बढ़ ली। आचार्य शिष्य भी मानों उसी के सहारे एक दासी कन्या की ओर बढ़ता रहा। दासी कन्या एक युगल के साथ इतनी भीड़ को आते देख आश्चर्य-चकित हो उठी। कदाचित् वह इस समय आचार्य शिष्य को पहचानने में असमर्थ रही। कारण आज उसने मंजरिका के विशेष अनुरोध पर वैतालिकों का उष्णीष धारण किया था और उसमें उसके प्रस्तर केश तो ढक ही गए थे मुख भी कुछ-कुछ परिवर्तित हुआ सा दीख रहा था। और मंजरिका तो एक प्रकार से उसके लिए अपरिचिता थी ही। इससे पूर्व यदि वह अपने किसी प्रेमी के साथ आई होती तो पहचान भी लेती। अधिकांश नागरिक भी कदाचित् उसे पहचानने में असमर्थ रहे। किन्तु केवल कुछ दिन पूर्व ही अभिजात समाज द्वारा नगर में प्रचारित एक समाचार विशेष के आधार पर उन्होंने अनुमान लगा लिया हो। न हो यह महावीर योधेय रत्न की बहिन मंजरिका ही है। कुछ भी हो पर, यह युगल सुन्दर बन पड़ा है

नागरिक मन ही मन कह उठे। वे केवल अपने से ही यह कह कर सन्तुष्ट नहीं हो गए, वरन् संकेतों में उन्होंने यह एक दूसरे से भी कहा। वैशाली में किसी भी नए प्रेमी युवक को चाव से देखना और उस पर अपना मत अभिव्यक्त करना, जैसे एक परम्परा बन चुकी थी।

और इस समय सभी एक दूसरे को चपल भाव से हाथ की कोहनी मार मानों सावधान करते सम्मुख के एक दृश्य को देखने में व्यस्त थे। आचार्य शिष्य के मुख पर संकोच का भाव अगाध हो उठा आकर्ण सारा भाल अरुण हो गया। फिर भी वह सप्रयास निज इंगित का अवलम्ब ले मंजरिका से कुछ कह रहा था। वह क्या कह रहा था उसे मंजरिका क्या सभी समझ रहे थे। यह देख भीड़ में से कोई, सहसा सोत्साह कण्ठ स्वर में कह उठी— 'क्यों सखी क्या तुम्हारे इन्होंने आज मौन व्रत धारण किया है जो बोलते नहीं।'

यह कह वह अज्ञात यौवना अपने आस पास की भीड़ को चीर बलात् अकेले उसी ओर बढ़ ली। ,किन्तु तब तक मंजरिका प्रफुल्ल पुष्पों से ग्रथित एक जूड़े पर अपनी अंगुली रख चुकी थी। श्याम वर्णा दासी कन्या ने उसे उठा आचार्य शिष्य की ओर बढ़ा दिया। और, प्रणय नियमों से सर्वथा अपरिचित आचार्य शिष्य ने उसे ले ससंकोच मंजरिका की ओर बढ़ा दिया।

सभी उपस्थित जन इस पर खिलखिला उठे। उन्मुक्त हास्य की इस ध्वनि से आचार्य शिष्य भौंचक्का-सा रह गया। मंजरिका अवश्य समझ गई परन्तु समझकर भी जब उसने जूड़े को अपने केशपाश पर बाँधने के लिए हाथ उठाया तो पास ही खड़ी उस अज्ञात यौवना ने मुस्करा बलात् उसे रोक दिया। बोली—"सखी यह क्या? यदि यह सुरक्षा प्रधान है तो क्या हुआ? प्रणय पर भी क्या अब उनका आदेश चलेगा?"

इस हस्तक्षेप से मंजरिका का हृदय धुकधुका उठा आचार्य शिष्य कुछ सहमा सा गया। अज्ञात यौवना ने इस बार आचार्य शिष्य की ही ओर दृष्टि फेर सोल्लास कहा—"सौम्य युवक! यह आचार्य बहुलाश्व की विद्यापीठ नहीं वरन् वैशाली है वह वैशाली जिसमें प्रणय के अपने नियम हैं। क्यों जी श्रेष्ठीपुत्री के केश पर जूड़ा बाँधने में आपको संकोच क्यों हो रहा है?"

आचार्य शिष्य उत्तर में केवल मुस्करा दिया। और फिर मंजरिका के हाथ से जूड़ा ले उसके केशपाश पर बाँध दिया। सभी उपस्थित जन इस हास्यपूर्ण दृश्य पर करतल ध्वनि कर खिलखिला उठे।

इसी मध्य आगत यौवना के साथ आया प्रेमी युवक हँसते हुए बोल उठा— 'आचार्य शिष्य वैशाली में सुरक्षा प्रधान के पद का भार वहन करना अत्यन्त सरल है परन्तु इनकी यह सीमा तो बस अपरम्पार ही समझो।' यह कहते हुए वह उसके समीप ही पहुँच गया। फिर बोला— 'घबराकर इसमें अधीर होने की कोई बात नहीं धैर्य रखो शनैः शनैः सब अभ्यस्त हो जाओगे।'

आचार्य शिष्य इस पर तनिक मुस्करा बोला— प्रिय बन्धु जब आप जैसा उदार सहायक वैशाली में विद्यमान हो तो भला अधीर होने की क्या आवश्यकता है।

यह कह उसने एक बार मेघकोरों से उसके साथ आई आगत यौवना को देखा और फिर मंजरिका की ओर दृष्टि फेर बोला—"देवी कम से कम तुम्हें इनका धन्यवाद तो करना ही चाहिए। देखो तो मुखमुद्रा में सौन्दर्य और चपलता का क्या ही अद्भुत मिश्रण है!"

यह सुन, वह आगत यौवना लजा गई। मंजरिका भी ससंकोच मुस्करा उठी। और दासी कन्या अभी भी हतप्रभ हुई आचार्य शिष्य की ओर देख रही थी। फिर कुछ गर्व का सा अनुभव कर उठी। वास्तव में उनके साथ होते इस हास-परिहास से कैसे उसे यह संकेत मिल चुका था कि यही वह महामान्य आचार्य शिष्य हैं।

संभवतः आचार्य शिष्य मंजरिका को साथ ले चल पड़ा। दासी कन्या कुछ चुप-चुप सी खोई उन्हीं की ओर ताकती रही। सहसा उसे ध्यान आया कि मुरला प्रभात ने मुझ तो बुलाया ही नहीं। जो युवक केवल थोड़ी देर पूर्व ही परिहास कर रहा था वह उसके इस भाव को भाँप गया। पहले तो उसने अपने साथ आई प्रेयसी को नेत्र इंगित से कुछ बताया और फिर वहीं खड़ा-खड़ा ओर से चिल्ला उठा "अरे ओ बन्धु और आपको वह दासी कन्या तो स्मरण करती ही रह गई है।"

आचार्य शिष्य को युवक का यह परिहास भोंडा-सा लगा परन्तु जब उसे वास्तविकता का ध्यान आया तो बस हक्का-बक्का रह गया। कारण वह अपने साथ एक भी कार्यांगिनी नहीं लाया था। व्यग्रता से इधर उधर देखने लगा और फिर खिन्न दृष्टि से मंजरिका की ओर देखा। मंजरिका उसकी इस व्यग्रता को देख कर भी मौन तटस्थ बनी रही।

यह नाटकीय दृश्य उपस्थित हुआ देख सभी उत्सुकता से आचार्य शिष्य की ओर देख उठे देखने रहे कि देखो अब समस्या का किस प्रकार समाधान होता है। इसी मध्य उस युवक ने इंगित ही इंगित में उस दासी कन्या को भी उकसा दिया और वह तत्परता से आचार्य शिष्य के समीप आ खड़ी हुई। परन्तु निश्चित ही उसका इस समय अभिप्राय मुख्य सेवा नहीं वरन् आचार्य शिष्य को और दुविधा में डालना था। यह उसके मुख पर इस समय छाई चपलता युक्त मुस्कराहट से स्पष्ट परिलक्षित हो रहा।

और आचार्य शिष्य इस समय लज्जा से भी अधिक अपमान का अनुभव कर रहा था।

अंत में सभी ओर से निराश हो उसने सहायता की सी कातर दृष्टि से मंजरिका की ओर देखा। और मंजरिका? वह भी सभी के साथ इस समय आचार्य शिष्य के साथ होते परिहास का मन ही मन रस ले रही थी। दासी शिष्या का हाथ अभी भी उसी की ओर बढ़ा हुआ था। मंजरिका ने उसकी ओर देखा तो दासी कन्या ने अपनी चरम दृष्टि के इंगित से मानों कहा— नहीं, अभी रहने दो।"

आचार्य शिष्य के मुख पर खेद-मय उभर आए। वह परास्त हुआ सा बोला—"क्यों शुभे क्या तुम भी अपने साथ कोई कार्यांगिनी नहीं लाईं?"

मंजरिका उत्तर में कहा चाहती थी—"हाँ मैं तो लाई हूँ पर आप क्यों नहीं लाए?" परन्तु इससे पूर्व ही उस युवा वाली युवती ने उसका हाथ पकड़ कहा—

"देवी इससे पहले यह तो पूछो कि फिर कभी तो ऐसी भूल नहीं करोगे ?"

आचार्य शिष्य को इस पर कुछ संकोच का अनुभव हुआ परन्तु साथ ही समस्या को सुलझा समझ उसकी दुविधा भी लुप्त हो रही। हँसकर बोला—"देवी इसके सम्मुख तो नहीं परन्तु हाँ आज तुम्हारे सामने अवश्य कान पकड़े लेता हूँ।" फिर उस युवक की ओर दृष्टि करते हुए बोला—"बन्धुवर, भला इसके साथ तुम्हारा कैसे निर्वाह होता होगा !

वह युवक हँस उठा। फिर बोला— निर्वाह हो न हो परन्तु करना तो होता ही है आचार्य शिष्य।"

इसी मध्य मंजरिका ने आँचल से एक स्वर्ण कार्षापण निकाल आचार्य शिष्य की ओर बढ़ा दिया और आचार्य शिष्य ने जब उसे लेने को अपना हाथ पसारा तो सभी करतल ध्वनि कर उसका परिहास कर उठे। परन्तु इस परिहास से वह तनिक भी चिढ़ा नहीं न ही क्षुब्ध हुआ उल्टे उसे एक आनन्दोच्छ्वास का अनुभव हुआ और इस आनन्दोच्छ्वास में उसे लगा जैसे मंजरिका उसके और निकट आ गई है। वह प्रफुल्ल हो मन ही मन कह उठा—"आखिर, वैशालिकों का यह हास-परिहास नहीं स्नेह है वह स्नेह है जो ।

और, जब तक उसने कार्षापण ले दासी कन्या की ओर मुख किया तो देखा वह वहाँ से चली गई है और अपने स्थान ही से खड़ी खड़ी कह रही है—"आर्य मैं ऋण में लिया कार्षापण नहीं लेती जब कभी अपना बने तो दे जाना।

किन्तु आचार्य शिष्य नहीं माना। कार्षापण को उसकी ओर फेंक तनिक हँस कर बोला—"कोई बात नहीं शुभे। कभी-कभी अपने व्रत को तोड़ देने का भी विशेष आनन्द है। आज यही कर देखो।

यह सुन दासी कन्या का सारा गात सुर-सुरा उठा। हृदय न जाने क्या कुछ अनुभव कर रह गया।

और आचार्य शिष्य का रथ तत्परता से देवी शिल्पा की अट्टालिका की ओर बढ़ लिया।





सोलह

सन्ध्या होते-होते कला-तीर्थ सप्त-भवनीय अट्टालिका का विस्तृत प्रांगण आगंतुकों की भीड़ से लहलहा उठा। इधर प्रांगण जन-समुदाय से ओत-प्रोत था और उधर मुख्य द्वार में से उमड़ते आ रहे नर-नारियों का प्रवाह भी गतिमान था जैसे कोई महासागर अपनी लहरों को तोड़ चारों ओर जल प्लावन कर उठा हो।

चारों ओर उत्साह का सागर उमड़ता देख अट्टालिका का कण कण भी अति अधिक मुखर हो उठा। अट्टालिका की परिचारिकाओं का भला आज क्या कहना। उनके लिए मानों भोर की नई स्वर्णिम किरण फूटी हो और फिर उसी के साथ जीवन ने भी एक नई करवट ले ली हो। उत्साह के आवेग में उनके पैर भूमि पर नहीं पड़ पा रहे थे वरन् तरंगित हो तैरते से प्रतीत हुए। सभी के मुख कमल की भाँति खिल उठे।

इस समय उनकी गतिविधियों का भी कोई एक निश्चित क्रम नहीं था। विभिन्न दलों में विभक्त हो वे अलग-अलग क्षीण मंद गति से सभी आवश्यक कार्यों को निपटाने में व्यस्त हो उठीं। उनका एक चंचल पुञ्ज द्वार पर खड़ा अपनी लम्बी-लम्बी भुजाएँ फैला आगंतुकों पर सुवासित जल-कण फुहार रहा था और एक दूसरा दल अपने हाथों पर टिकाए अर्घ्य सामग्रियों युक्त रजत थालों को ले जन-समुदाय के मध्य घूम रहा था। सभी के ललाट पर चन्दन का आलेप कर वे प्रसन्नता से फूली नहीं समा रही थीं।

इसी मध्य परिचारिकाओं का एक अन्य दल सोत्साह मुट्ठियाँ भर-भर, हरा लाल अबीर फेंकता उधर आ निकला और सन्ध्या का मुख रक्तिम हो उठा। आमोद-प्रमोद के इस वातावरण में प्रेमी युगलों के लिए किसी एक स्थान पर बैठे अथवा खड़े रहना जैसे असंभव था। अपने ही मस्त ठाठ किसी प्रणय के प्रवाह में चहलकदमी करते-करते वे प्रांगण के ओर-छोर का स्पर्श कर कब कहाँ खो रहते उन्हें स्वयं इसका पता नहीं चल पाता। कोई उनकी ओर देख भी रहा है इसकी भी उन्हें जैसे कोई सुध नहीं थी। पर, वृद्ध सभी उन्हें देख मन ही मन कह उठते—'अरे यही वैभवी तो जीवन है!' परन्तु उनका जीवन केवल इसी तक सीमित नहीं था। वहाँ सामने—लता कुंज के पास एक प्रेमी युवक उत्साह से उचक-उचक कर लता मुख पर खिले पुष्प को तोड़ने का प्रयत्न कर रहा था। और फिर पुष्प टूटने पर दोनों ही किस प्रकार खिलखिला पड़े। प्रेयसी अपने प्रेमी से अप्रत्याशित भाव से केश पाश में इसी पुष्प को लगवा उमग उठी। उनके इस समय के उस आह्लाद एवं गर्व का क्या कहना और क्या कहना उस

"देवी, इससे पहले यह तो पूछो कि फिर कभी तो ऐसी भूल नहीं करोगे ?"

आचार्य शिष्य को इस पर कुछ संकोच का अनुभव हुआ परन्तु साथ ही समस्या को सुलझा समझ, उसकी दुविधा भी लुप्त हो रही। हंसकर बोला—"देवी इनके सम्मुख तो नहीं परन्तु हां आज तुम्हारे सामने अवश्य कान पकड़े लेता हूं।" फिर उस युवक की ओर दृष्टि करते हुए बोला—"बन्धुवर, भला इनके साथ तुम्हारा कैसे निर्वाह होता होगा !"

वह युवक हंस उठा। फिर बोला—"निर्वाह हो न हो परन्तु करना तो होता ही है आचार्य शिष्य।"

इसी मध्य मंजरिका ने आंचल से एक स्वर्ण कार्षापण निकाल आचार्य शिष्य की ओर बढ़ा दिया और आचार्य शिष्य ने जब उसे लेने को अपना हाथ पसारा तो सभी करतल ध्वनि कर उनका परिहास कर उठे। परन्तु इस परिहास से वह तनिक भी खिन्न नहीं न ही क्षुब्ध हुआ उल्टे उसे एक आत्मसंतोषक्षमास का अनुभव हुआ और इस आत्मसंतोषक्षमास में उसे लगा जैसे मंजरिका उसके और निकट आ गई है। वह प्रफुल्ल हो मन ही मन कह उठा—"बन्धुवर, वैशालिकों का यह हास-परिहास नहीं स्नेह है वह स्नेह है जो ।

और जब तक उसने कार्षापण ले दासी कन्या की ओर मुख किया तो देखा वह वहां से चली गई है और अपने स्थान ही से बड़ी-बड़ी कह रही है—"आर्य मैं भ्रूण में लिया कार्षापण नहीं लेती जब कभी अपना बने तो दे जाना।

किन्तु आचार्य शिष्य नहीं माना। कार्षापण को उसकी ओर फेंक तनिक हंस कर बोला—"कोई बात नहीं शुभे ! कभी-कभी अपने व्रत को तोड़ देने का भी विशेष आनन्द है। आज यही कर देखो।"

यह सुन दासी कन्या का सारा गात पुलक-पुलक उठा। हृदय न जाने क्या कुछ अनुभव कर रह गया।

और आचार्य शिष्य का रथ तत्परता से देवी शिम्पा की अट्टालिका की ओर बढ़ लिया।





सोलह

सन्ध्या होते-होते कमल-दीप सप्त-खण्डीय अट्टालिका का विस्तृत प्रांगण आगंतुकों की भीड़ से महमहा उठा। इधर प्रांगण जन-समुदाय से ओत-प्रोत था और उधर मुख्य द्वार में से उमड़ते आ रहे नर-नारियों का प्रवाह भी गतिमान था, जैसे कोई महासागर अपने तटबन्धों को तोड़ चारों ओर जल प्लावन कर उठा हो।

चारों ओर उत्साह का सागर उमड़ता देख अट्टालिका का भव्य रूप भी अधिकाधिक मुखर हो उठा। अट्टालिका की परिचारिकाओं का भला आज क्या कहना। उनके लिए मानों भोर की नई स्वर्णिम किरण फूटी हो और फिर उसी के साथ जीवन ने भी एक नई करवट ले ली हो। उत्साह के आवेग में उनके पैर भूमि पर नहीं पड़ पा रहे थे वरन् तरंगित हो तैरते से प्रतीत हुए। सभी के मुख कमल की भाँति खिल उठे।

इस समय उनकी गतिविधियों का भी कोई एक निश्चित रूप नहीं था। विभिन्न दलों में विभक्त हो, वे यत्र-तत्र फैल अबाध गति से सभी आवश्यक कार्यों को निपटाने में व्यस्त हो उठीं। उनका एक घटदल मुख्य द्वार पर खड़ा अपनी लम्बी-लम्बी भुजाएं फैला आगंतुकों पर सुवासित जल-कण फुहार रहा था और एक दूसरा दल अपने हाथों पर टिकाए अर्घ्य सामग्रियों युक्त रजत थालों को ले जन-समुदाय के मध्य घूम रहा था। सभी के ललाट पर चन्दन का आलेप कर वे प्रसन्नता से फूली नहीं समा रही थीं।

इसी मध्य परिचारिकाओं का एक अन्य दल सोत्साह मुट्ठियां भर भर, हरा लाल अबीर फेंकता उधर आ निकला और सन्ध्या का मुख स्वर्णिम हो उठा। आनन्दोल्लास के इस वातावरण में प्रेमी युगलों के लिए किसी एक स्थान पर बैठे अथवा खड़े रहना जैसे असंभव था। अपने ही मध्य छिड़े किसी प्रसंग के प्रवाह में चारिका करते करते वे प्रांगण के ओर-छोर का स्पर्श कर कब कैसे लौट रहते उन्हें स्वयं इसका पता नहीं चल पाता। कोई उनकी ओर देख भी रहा है इसकी भी उन्हें जैसे कोई सुध नहीं थी। पर, शेष सभी उन्हें देख मन ही मन कह उठते—अरे यही वैभवी तो जीवन है! 'परन्तु उनका जीवन केवल इसी तक सीमित नहीं था। वहीं सामने—लता कुंज के पास एक प्रेमी युवक उत्साह से उचक-उचक के लता गुल्म पर खिले पुष्प को तोड़ने का प्रयत्न कर रहा था। और फिर पुष्प टूटने पर दोनों ही किस प्रकार खिलखिला पड़े। प्रेमी अपने प्रेमी से मदमस्त भाव से कैसे पाता में उसी पुष्प को अपना उमग पड़ी। उनके इस भाव के उस आह्लाद एवं गर्व का क्या कहना और क्या कहना उन

रसिक युवक का जो मन उसके चिबुक को ऊपर उठा उसके नेत्रों में झांक जीवन अथवा किसी रहस्य को या उस बाला के सौन्दर्य-मर्म को विस्फारित नेत्रों से निहार रहा था।

सहसा सिंह द्वार की ओर से तूर्य निनाद हो उठा। जब वहाँ यह विदित हुआ कि स्वयं गणाध्यक्ष राजा चेटक पधारे हैं और साथ ही महाबलाधिकृत सिंह सेनापति आचार्य-पुत्री रोहिणी महावीर मेण्डिय रत्न और विजित शत्रु अमात्य रिपु दमन भी आए हैं तो सारे जन समूह में उत्साह की अगाध लहर दौड़ गई। सभी उस ओर भाग से लिए। आचार्य शिष्य भी तमक मंजरिका का हाथ पकड़ उस ओर बढ़ने को उद्यत हुआ किन्तु मंजरिका ने उसे बलात् पीछे की ओर खींच लिया। आचार्य शिष्य कुछ हतोत्साहित हो पूछ उठा— "क्यों क्या बात है, शुभे ?"

मंजरिका की दृष्टि नत हो रही। फिर धीरे साहस कर उसने अपने नयन ऊपर उठाए, उन्हें आचार्य शिष्य के मुख पर स्थिर करने का सा प्रयास करती हुई वह बोली— "आर्यपुत्र के सम्मुख जाते हुए लज्जा सी आती है और फिर, देवी रोहिणी के विनोदी स्वभाव से तो आप भी परिचित हैं ही।"

आचार्य शिष्य के मुख पर एक अजीब मुस्कान खेल उठी बोला—"तो फिर क्या हुआ, शुभे ! एक दिन तो यह रहस्योद्घाटन होना ही है फिर आज ही क्यों न हो ।"

मंजरिका सगर्व कुछ मुस्करा-सी गई किन्तु मुख दीप्त हो उठा कर्णपटी लालिमा गई। फिर धीमे से बोली—"अब होगा स्वयं हो जाएगा।"

आचार्य शिष्य इसके पश्चात् भला और क्या कहता। उसके मुख से केवल 'अस्तु' निकल गया।

इसी मध्य नृत्य मंच की ओर से वाद्य-वृन्द परस्पर स्वर ताल मिलाता झंकार उठा। उसकी सरसता से मंजरिका अभिभूत हो उठी और संध्या का धूमिल रूप भी प्रखर हो उठा। आनन्दोच्छ्वास से तरंगित होते जन समूह के मध्य मंजरिका ने कब आचार्य शिष्य के हाथ का अवलम्ब ले लिया यह उसे स्वयं विदित नहीं हो सका। वह खो सी गई। उधर मंच की ओर अग्रसर होते-होते आचार्य शिष्य का हाथ भी धीरे स्वतः मंजरिका के कटि प्रदेश पर जा पड़ा। फिर उसे वहीं रख वह उसके सहारे से मंजरिका को आगे की ओर ले बढ़ा। मंजरिका इस पर कुछ ठिठकी परन्तु साथ ही कोई प्रतिरोध भी नहीं कर सकी।

दोनों आगे बढ़ते रहे और इसी के साथ बढ़ता रहा आचार्य शिष्य के मस्तिष्क में कोई विचार प्रवाह भी। उसी के साथ बालिका की गति भी तेज होती चली इतनी तेज कि मंजरिका का उसका साथ चलना असम्भव हो गया। परन्तु मन की उमंग का ठहरी वह चलती गई किन्तु आचार्य शिष्य के अंतर में उठ किसी भाव-द्वन्द्व ने एक बारगी उसकी सारी चिंतन चेतना को झिंझोड़-सा दिया। वह सोचने लगा—"क्या सोचूं क्या न सोचूं।" वह न जाने क्यों यह कुछ विचलित-सा हो उठा। भावों के बाताल कर को देख उसका विवेक झनझना उठा और झनझना उठा उसके अंतर में प्रवाहित होता कोई पुण्य भाव मानों वह अपने तटबन्ध तोड़ प्रलय मचा देना चाहता हो। मंजरिका

के कटि प्रदेश पर रखा उसका हाथ कँपकपा उठा। मंजरिका भी सिहर उठी। कातर स्वर में वह धीरे बोल पड़ उठी—"स्वामी!"

आचार्य शिष्य सचेष्ट हो उठा। अपने शिथिल हाथ को दूर करता हुआ-सा क्षिप्र कण्ठ स्वर में बोला—"देवी क्षमा करना। वैसे ही मन कहीं दूर दिगंत में भटक गया था।"

परन्तु जो कुछ उसने कहा उससे वह अपने को तो क्या मंजरिका को भी आश्वस्त नहीं कर सका। वह खिन्न हो उठी।

इसी समय परिचारिकाओं के दल दलों ने इधर-उधर सतर्क आ दण्डाधारों पर रखे दीपों को प्रदीप्त कर दिया और वह सारा प्रांगण आलोकित हो उठा।

और दीपशिखाओं के इस ज्योतित प्रकाश में वे दोनों न तो आगे बढ़ पाए और न पीछे ही हट सके। जहाँ खड़े थे बस वहीं बैठ गए।

नाद-नृत्य का झंकारता परिक्रम यथापूर्व चलता रहा और सन्ध्या धीरे-धीरे रात्रि में परिणत होती चली। किन्तु पर्याप्त अवधि बीत जाने के पश्चात् भी जब देवी शिप्रा मंच पर उपस्थित न हुई तो नृत्य प्रेमी जनों के उतावले मन अधीर हो उठे। एकाएक जनसमुदाय के पृष्ठ भाग में कुछ-कुछ कोलाहल-सा गुनगुना उठा।

वयोवृद्ध गणाध्यक्ष राजा चेटक ने दृष्टि फेर मानो कुछ खोजते हुए से इधर उधर देखने लगे और अंततः निकट ही में बैठे महाबलाधिकृत सिंह सेनापति के मुख पर केन्द्रित हो रहे। इस पर सिंह सेनापति सैनिक की सी तत्परता से उठ गणाध्यक्ष के सम्मुख आ खड़े हुए। तत्पश्चात् अपना शीश नत कर बोले—"आप आज्ञा करें सेवक प्रस्तुत है।"

गणाध्यक्ष कुछ पदोचित अपने ओजस्वी कण्ठ स्वर में पूछ उठे—"क्यों आयुष्मान् सिंह क्या आज के इस महोत्सव के अभिनेता आयुष्मान तत्पर नहीं हैं?"

महाबलाधिकृत सिंह ने गणाध्यक्ष के इस प्रश्न पर जैसे कष्ट सा अनुभव किया। परन्तु प्रकट में सर्वथा शान्त रह वह विनीत भाव से बोले—"महाराज! यद्यपि यह निश्चित ही आयुष्मान का दायित्व है और कर्तव्य के प्रति उनकी इस उदासीनता को देख मैं अवाक् हो लज्जा का अनुभव कर रहा हूँ आर्यवर।"

इस पर गणाध्यक्ष आत्मीय भाव से बोले—"आयुष्मान को इसमें लज्जित होने की किंचित् भी आवश्यकता नहीं। आयुष्मान स्वयं अपने की दृष्टि से अपने दायित्व के प्रति कहीं अधिक जागरूक हैं अतएव यह निस्संदेह गर्व का विषय है। वास्तव में मैं तो उनकी अनुपस्थिति से चिंतित हो रहा हूँ। नगर की स्थिति तो आयुष्मान से भी नहीं छिपी है।"

निकट में ही बैठे महावीर मेगिन्दरत्न और देवी रोहिणी का भी इस समय ध्यान इधर ही था। दोनों ने जब यह सुना तो उनके मुख भी चिंता से मलिन हो रहे। देवी रोहिणी तो व्याकुल ही हो उठीं। मणिरत्न व्यग्र भाव से बोले—"वत्सवर सिंह आर्य की चिंता अकारण अनुचित नहीं हो सकती अतएव इस दिशा में तत्काल कोई उपाय अनिवार्य है।"

देवी रोहिणी जैसे असहाय दृष्टि से अपने पति सिंह की ओर देख उठीं। मन

ही मन सोचती रही—'महाप्रभु करें कुछ भी अनिष्ट न हो और यदि कुछ हो गया तो हम किसी प्रकार भी पितृवर को मुँह दिखाने योग्य नहीं रह सकेंगे। वह हमें निश्चित ही धिक्कारते हुए कहेंगे—क्यों आयुष्मती क्या इसी आशा से हमने अपना एक प्रिय शिष्य तुम्हारी सेवा में भेजा था ?

यूँ महाअमात्य सिंह भी कोई कम चिन्तित नहीं हुए थे। फिर भी उन्होंने अपना धैर्य नहीं खोया था। अवसर यहाँ आकर भी मंच पर उपस्थित न हो यह उन्हें सर्वथा असम्भव प्रतीत हुआ। परन्तु हताश व्यक्ति कहाँ क्या कुछ नहीं टटोलता। उनकी दृष्टि हठात् एकत्र जन समुदाय पर स्थिर हो गई। विहंगम दृष्टि डालते हुए उन्होंने चारों ओर देखा। फिर उनकी दृष्टि किसी एक स्थान विशेष पर क्षणेक के लिए स्थिर हो रही। उनके मुख पर फैली सहज मुस्कान को देख देवी रोहिणी ने भी उधर ही देखा तो वह चकित हो उठी साथ ही विमुग्ध भी हो रही। उसके मुख पर एक मुस्कान फैल गई। वह तत्परता से उठ उसी दिशा में चली दौड़-सी ली।

आचार्य शिष्य अभी भी विचारों में खोया सा मानों सभा ओर से बेसुध हुआ बैठा था। प्राय वैसी ही दशा मंजरिका की भी थी परन्तु वह इस समय उदास अधिक थी। देवी रोहिणी ने जब उन्हें दोनों ही को इस मनोदशा में देखा तो वह हतप्रभ हो उठी। क्षणेक कुछ सोच वह मंजरिका का स्पर्श कर बोली— क्यों री तुम दोनों यहाँ बैठे हो और वहाँ तुम्हारी खोज हो रही है।

देवी रोहिणी की शब्द ध्वनि कानों से टकराते ही आचार्य शिष्य चौंक-सा गया और मन ही मन कुछ लज्जित भी हो रहा। पर देवी रोहिणी ने जैसे उस ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया। किंचित् मुस्कान के साथ वह बोली—"क्यों आयुष्मान आज तो कदाचित् तुम यही भूल गए कि इस महोत्सव का अभिव्यक्ता कौन है ?"

देवी रोहिणी ने यह सब कुछ सर्वथा विनोद के ढंग में कहा और उसकी सरलता से आचार्य शिष्य के मस्त ओर का स्पर्श भी किया फिर भी वह मन ही मन आत्म-ग्लानि का सा अनुभव कर उठा। तो भी जैसे विवश हो वह मंच की ओर दौड़ लिया। उसके सोपान पर चढ़ते चढ़ते वाद्य वृन्द सहसा रुक रहा और जब वह मंच पर पहुँचा तो समूचा आँगन भारी करतल ध्वनि से गूँज उठा।

और निकट ही ओट में खड़ी देवी शिप्रा के प्रतीक्षा आतुर मुख पर भी तन्मय मुस्कान की रेखा खिले बिना न रह सकी। परन्तु उसकी इस मुस्कान को न तो आचार्य शिष्य ने देखा और न मंजरिका ही देख सकी। कदाचित कोई भी उसे न देख सका और जैसे वह केवल स्व में ही सिमट कर रह गई।

मंजरिका देवी रोहिणी के अनुरोध के पश्चात् भी यथा स्थान ही बैठी रही। उत्सुकता से मंच की ओर निहारती रही। उसने देखा आचार्य शिष्य के ऊपर हाथ उठाते ही जन सागर के मध्य से बहता करतल ध्वनि का प्रवाह सहसा रुक गया है। यह देख वह मन ही मन बोली—"सचमुच आचार्य शिष्य ने इतनी सी अल्पावधि में जन-मन पर कितना अधिकार कर लिया है।

वह सब कुछ भूल एक बार फिर गर्व का अनुभव करने को जैसे बाध्य हो गई।

उधर करतल ध्वनि के शान्त होते ही आचार्य सिंह ने कर बद्ध हो मस्तक नवाते हुए अत्यन्त विनीत भाव से कहना प्रारम्भ किया—"सभासद गणाध्यक्ष और सौम्य जनो, अब मैं एक महा नगरी वैशाली के सभी नृत्य प्रेमियों की ओर से देवी शिप्रा से अनुरोध करता हूँ कि वह आज की इस सन्ध्या बेला में अपनी कला के अनुपम कौशल से हम सभी को प्रभावित करें।"

उपस्थित नागरिक भारी हर्ष ध्वनि कर जैसे इस अनुरोध का अनुमोदन कर उठे। वाद्य-वृन्द बज उठा। साथ ही नेपथ्य की ओर से किंकिणि-ध्वनि के मध्य जब देवी शिप्रा अपने शुभ्र परिधान में मंथर गति से मंच पर अवतरित हुईं तो सभी को लगा—'यह तो सचमुच वैशाली के क्षितिज पर कोई नयी कला किरण मुदित हो, उदित हुई है।





सत्रह

यह एक प्रातः बेला की बात है।

वृत्ताकार दीखती हरीतिमा आच्छादित पर्वतमाला की विस्तृत गोद में बसी एक वैभव शालिनी नगरी इस बेला में भी मस्त हुई सी दीख रही थी और उसके पूरे ओर छोर पर श्मशान का सा सन्नाटा व्याप्त था। पवन भी साँय-साँय कर उसके पूरे आकार प्रकार को बेधता सा प्रतीत हुआ। किन्तु इसी नगरी की उच्च अट्टालिकाओं से कुछ दूर पर्वत वृत्त के मध्य ही पड़े एक गृध्रकूट शिखर पर एक व्यक्ति मानो ध्यानस्थ हुआ इस सारे मस्त वातावरण को जैसे तटस्थता के शान्त भाव से देख रहा था। उदयाचल से उभर देव आदित्य भी नगरी के इस सूने वातावरण में झाँक उठा किन्तु उसकी इस प्रदीप्त मुख आभा को भी मगध साम्राज्य का भव्य राजप्रासाद और उच्च अट्टालिकाओं का समूचा विस्तार केवल उचाट दृष्टि से देख सका।

सहसा गृध्रकूट शिखर पर बैठे व्यक्ति ने अपना ध्यान भंग किया और वह वहीं विश्राम की गति से चारिका व्यस्त हो गया। उसने एक बार नीचे की ओर भी झाँक कर देखा किन्तु यह देख कि आज गिरिपाद पर कोई भी व्यक्ति नहीं आया है, वह अपनी दृष्टि को पुनः अन्तर में ही समेट ध्यानस्थ हुआ या चारिका व्यस्त हो गया। देव आदित्य की स्वर्णिम रश्मियों का स्पर्श पा उसके मुख की आभा और प्रदीप्त हो उठी। सहसा शिखर के ही एक कोने में बैठा एक विशाल पक्षी जोर से अपने पंखों को फड़फड़ा उठा। उसकी इस फड़फड़ाहट को सुन नीचे वाली कन्दरा में बैठा एक व्यक्ति न केवल भयभीत हो उठा वरन् उसमें से बाहर की ओर भाग खड़ा भी हुआ। साथ ही उसका त्रस्त कण्ठ स्वर सहायता की सी पुकार करता उच्च ध्वनि में 'तथागत तथागत' और फिर 'शास्ता-शास्ता' की रट लगा उठा।

तथागत-शास्ता की इस सहायता पूर्ण पुकार को सुन शिखर-शीर्ष पर चारिका व्यस्त व्यक्ति हँस पड़ा। किन्तु उसकी यह हँसी उपहास की नहीं आश्वासन की सी प्रतीत हुई, जिसे सुन नीचे कन्दरा मुख के सामने खड़े भीरु कातर व्यक्ति के मुख की घबराहट पर लज्जा का सा भाव फैल गया। इसी मध्य शिखर शीर्ष पर से नीचे की ओर झाँकते हुए ऊपर वाला व्यक्ति अपने ओजपूर्ण कण्ठ स्वर में पूछ उठा— क्यों आयुष्मान मोग्गलायन क्या हुआ?

इस पर मोग्गलायन ने अपना मस्तक नत कर ऊपर वाले व्यक्ति को नमस्कार किया फिर नत मस्तक रहे ही अपना वाम हाथ फैला उधर की ओर इंगित किया जिधर गृध्र बैठा था। उसके मुख पर पश्चाताप की खिन्नता फैल गई। धीमे से बोला—"शास्ता!

समाधि भंग हुई है अत अब दुष्कर्म के बोध से पीड़ा का अनुभव हुआ है।"

"क्या पश्चात्ताप का भी आयुष्मान्। तथागत ने अपने गुरु-गम्भीर कण्ठ स्वर में पूछा।

मोग्गलायन ने पूर्व से भी अधिक धीमे स्वर में कहा—"हाँ शास्ता यह भी हुआ है।"

तथागत ने क्षणेक मौन रह फिर कहा—"यह तो विकार में से विकार उत्पन्न हुआ आयुष्मान्! विकारों का कोई अन्त नहीं केवल समाधि की तटस्थता ही निर्विकार है।"

यह कह वह तनिक रुके। फिर पूछने लगे—"आयुष्मान् मोग्गलायन अब अन्तर में है अथवा बाहर?"

"शास्ता अब केवल अन्तर में व्याप्त है।"

"और ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्माण्ड में दृष्टिगोचर होने वाला उसका चर-अचर मय रूप।"

'यह भी अन्तर में ही व्याप्त है अन्तर्मुख हो, मैं उसी में ही तो लीन था, शास्ता!"

"तो क्या यह भय नहीं है आयुष्मान्।"

"शास्ता यह भय भी है किन्तु अन्तर के भय को देख यह अन्तर्धान हो गया है।"

इस पर, तथागत ने अपने दाएँ हाथ को ऊर्ध्व कर पूछा—"आयुष्मान्, यह क्या है?

मोग्गलायन ने अपनी दृष्टि ऊपर उठाए बिना ही कहा—"शास्ता! यह हाथ है और उसकी अंगुलियाँ अलग होने के कारण बिखरी इन्द्रियों के समान।"

"और अब क्या है?

"शास्ता अंगुलियों के परस्पर निकट आने पर इन्द्रियों ने भी अपने अलग अलग व्यापार को समेट लिया है।"

"और अब क्या है, आयुष्मान्?"

"मोग्गलायन ने नत मस्तक रहे ही कहा—"शास्ता कनिष्ठिका समेत दो अंगुलियाँ ऊर्ध्व मुख हो शून्याभिमुख है और तर्जनी ने अपने अग्रभाग को त्याग अंगुष्ठ के साथ संधि की है। संधि से चित्त एकाग्र हुआ है और अब ध्यानस्थ हुआ चाहता है।"

"क्यों आयुष्मान्?"

"क्योंकि अब उसने आकार का आभास पाया है।"

तथागत बोले—"तब आयुष्मान् आकार का ही लाभ करो, भय के विकार से उसकी हानि न होने दो। अकल्पित अध्यात्म के सम्मुख तो मार के सौ दस वार भी निरर्थक हो रहते हैं। आयुष्मान् मोग्गलायन तथागत ने बोधिसत्व से तब उसने मार को केवल अभ्यास से ही निरस्त किया था।"

यह सुन मोग्गलायन तथागत के दिव्य रूप को नमस्कार कर पुनः अपनी कन्दरा

में प्रविष्ट हो रहा और तथागत भी पुनः विश्राम की मुद्रा में शारिका व्यस्त हो चैत्य प्रशस्त में लीन हो गए।

किन्तु, साम्राज्य नगरी की उच्च अट्टालिकाएं कदाचित् अपने गर्व के कारण तथागत के इस करुणा मर्म को समझने में असमर्थ रहीं। उनकी दृष्टि केवल अपने भौतिक स्वरूप पर ही स्थिर रही। अतः उनके पूरे आकार प्रकार पर भी मद का विकार विद्यमान रहा।

सूर्योदय की रश्मियाँ अन्य दिनों की भाँति आज भी उच्च अट्टालिकाओं पर आकर स्थिर थीं परन्तु उनका उष्ण स्पर्श पाकर भी वे प्रफुल्ल नहीं हो सकीं। प्रभात के इस छटा पूर्ण आलोक में भी जैसे उन्होंने अन्तर की निराशा वश अमावस्या की गहन-तिमिर युक्त कालिमा ओढ़ रखी थी। उनके गौरवशाली विशाल स्वर्ण रजत कलशों पर विषाद की एक गहन रेखा सी खिंची प्रतीत हुई।

और दिनों इसी राज नगरी के जो विस्तृत राजपथ सूर्योदय पूर्व ही से अभिजात जनों के विलास वाहनों की घड़घड़ाहट अश्वों की पद चापों एवं पैदल चलते प्रजाजनों की आहट से गुंजायमान हो उठते थे वे इस समय केवल सूने दीख पड़े। और दिनों प्रभात की इस मनोहारी वेला में जब कोई व्यक्ति इन राजपथों पर से होकर चलता था तो वह सामन्तों एवं श्रेष्ठियों की वैभवशाली अट्टालिकाओं के गवाक्ष छिद्रों में से प्रस्फुटित होती सुमधुर वीणा की झंकारों मृदंग पर पड़ती हुई तालपूर्ण थापों अथवा किसी कोकिल कण्ठी के मुख से नवोदित देव आदित्य के स्वागत स्वरूप निकले सरस मंगल गान को सुन भाव विभोर हो उठता था। परन्तु आज न इन अट्टालिकाओं अथवा प्रासादों के गवाक्ष छिद्रों से वह संगीत लहरी ही प्रस्फुटित हो रही थी और न राजपथ पर सुनने वाला कोई पथिक ही था। हाँ यदा कदा ये सूने राजपथ कतिपय अश्वारोहियों के आते-जाते इनके दुलके ग्रुम से अवश्य सघन्न हो उठते। परन्तु सुगठित अश्वों की पदचापों से राजपथों के अन्तर में से जो प्रति ध्वनि निकलती उससे जैसे वह स्वयं ही आतंकित हो उठती। गवाक्षों के छिद्रों में से झाँकती युवतियाँ कौतूहल के कारण इस दृश्य को देखे बिना भी नहीं रहतीं और जब देखतीं तो फिर भय से सिहुर अपने विष्टर पर जा बैठतीं। कोई सामन्त अथवा श्रेष्ठी जब इस दृश्य को देखता तो वह सहसा ही पर्याप्त समय तक यहीं और देखता रह जाता और उसके मस्तिष्क में एक साथ कई अनुमानों का प्रवाह गतिमान हो उठता। अन्त में वह दुविधा के झकोरों से युक्त आरोह-अवरोह में कन्दुक की भाँति अस्थिर हो उठा। घटना चक्र के इस भयंकर प्रवाह में किसी के प्रति भी अपना मन्तव्य प्रकट करना वह अपने लिए केवल किसी संकट को ही भूमिका समझता। उधर साधारण प्रजाजन राज नगरी के किसी अतिथि व घटना चक्र को केवल तटस्थ भाव से देख में ही निज का कल्याण समझ रहे थे।

वास्तव में शस्त्रस्थ सैनिकों के गतिशील एवं उग्र रूप के सम्मुख इस समय समूची राजनगरी विवशता से मौन थी।

इधर नगर के उत्तर और दक्षिण दोनों ही द्वारों के बाहर दूर-दूर तक दीर्घ उपवन आम्रकुंज तथा आराम सैनिकों से घिरे थे। दूर दिगंत से आए रास्तों पर दृढ़ पहरा

था तथा सभी सार्थवाह चिंतित अथवा व्याकुल दीख रहे थे। दिन भर की विकट यात्रा से थक विश्राम की इच्छा से जो यात्री नगर-उद्यान के निकट किसी भी आस्थानागार में गत रात्रि ठहर गया था उसने प्रातः होते ही अपने को बंदी जैसी अवस्था में पाया। आस्थानागारों पर भी इस समय सशस्त्र सैनिकों का सुदृढ़ पहरा था। यू प्रत्यक्ष में कोई भी बंदी नहीं था किन्तु फिर भी किसी को इस समय बाहर न निकलने की कठोर आज्ञा थी। वास्तव में मध्य रात्रि को ही जब सार्थवाह अथवा यात्री निद्रा मग्न थे तभी उन्हें सावधान कर एक राजाज्ञा सुना दी गई थी और वह राजाज्ञा थी कि जब तक कोई अन्य घोषणा हो तब तक कोई भी अपने स्थान से न हटे अन्यथा वह मृत्युदंड का भागी होगा। सभी वैदेशिक रात्रि के उस तिमिर में इस आदेश को सुन आशंका से सिहर उठे और उनका अन्तस्थल प्रकम्पित हो उठा।

परन्तु इस आतंकपूर्ण सशंक एवं दुविधाग्रस्त वातावरण में भी मुख्य राज प्रासाद की अभेद्य प्राचीर पर मगध साम्राज्य की सिंहांकित रक्तिम पताका सदैव की भांति आज भी सोत्साह लहरा जैसे इस बात का बोध करा रही थी कि कुछ भी तो नहीं हुआ। तथापि राजप्रासाद का मुख्य अंतःपुर पर्याप्त समय तक चीत्कार करते-करते अब कुछ क्षीण हो चुका था। यूं उसका अंतर अभी भी कभी-कभी चीत्कार कर उठता। परन्तु उसकी ध्वनि केवल अन्दर में ही टकरा कर रह जाती, क्योंकि निरन्तर रोदन करते-करते उसका कण्ठ अब तक अवरुद्ध हो चुका था और फिर इस समय बाहर सिंहनाद सैनिकों का भी दृढ़ पहरा था। चेटक-पुत्री वेल्लना देवी वासवी महाराज दुहिता क्षेमा पद्मावती तथा पट्ट महिषी कोशल देवी यूं ये सभी शोकातिरेक से बेहाल थीं परन्तु जो दशा इस समय कोशलदेवी की थी उसे देख कर तो कोई पाषाण हृदय भी व्यथित हुए बिना न रह पाता। वह भावातिरेक में विलाप करती हुई दौड़ती-दौड़ती मुख्य द्वार तक जाती परन्तु सिंहनाद सैनिक बलात् उसे रोक देते। तब अन्य रानियां उन्हें कुछ समझाने का प्रयास करतीं पर उनका यह प्रयास केवल विफल हो रहता। उधर, देवी वासवी का शीर्ष आत्मग्लानि से एक बार जो झुका तो फिर वह ऊपर उठ ही नहीं सका। उसकी दशा इस समय विक्षिप्त जैसी थी और निरन्तर विलाप से उसका कण्ठ स्वर भी पूर्णतः अब विकल हो चुका था। अपना मुख नत किए हुए ही वह अनर्गल रूप में कह रही थी—"कुमार कोणिक तुझे जन्म देकर मैं आज सचमुच कितनी लज्जित हूँ। अरे देख ये सभी मुझे किस प्रकार धिक्कार रही हैं।"

परन्तु अंतःपुर के अन्दर होता हुआ यह रोदनयुक्त प्रलाप केवल उसी की चार दीवारी तक टकरा कर रह जाता। उसका एक भी शब्द बाहर नहीं जा पा रहा था जैसे बाहर खड़े सिंहनाद सैनिकों की क्रूर मुखाकृति को देख वह भी आतंकित हो लौट पड़ता। अंतःपुर पर नियुक्त विकराल-मुख सिंहनाद सैनिकों को उनके स्वामी का दृढ़ आदेश था कि जब तक उन्हें अपना आगामी आदेश प्राप्त हो किसी को भी यहाँ तक कि पट्टमहिषी कोशलदेवी को भी मगध राज बिम्बसार से न मिलने दिया जाए।

और मगध साम्राज्य का यशस्वी संस्थापक श्रेणिय बिम्बसार इस समय राज

प्रासाद के किसी सज्जित प्रकोष्ठ अथवा कक्ष में नहीं वरन् मुख्य प्रान्तर से कुछ दूर वाले एक तप्त कारागार की अन्धकारपूर्ण कोठरी में बन्द था और इस कोठरी पर इस समय कुमार कौणिक के विश्वस्ततम सशस्त्र सैनिकों का दृढ़ पहरा था।

प्रात: सूर्योदय के साथ ही जब राजा बिम्बसार की मूर्छा भंग हुई तो उन्हें विदित हुआ कि वह इस समय अपने वैभवशाली राज प्रासाद की विलास सामग्रियों युक्त किसी कक्ष में नहीं वरन् तप्त कारागार की एक काल कोठरी में हैं। परन्तु इस वस्तु-स्थिति को समझने के पश्चात् भी वह लेशमात्र को विचलित नहीं हुए। इस वृद्धावस्था में भी उनके स्वस्थ मुख पर ओजपूर्ण स्वर्णिम कांति व्याप्त थी नियति के इस क्रूर प्रहार के पश्चात् भी वैसे वह अक्षुण्ण ही बनी रही।

मूर्छा भंग होने के पश्चात् भी वह कुछ क्षणों तक कोठरी में पड़े एक शिला खंड पर ही शान्त भाव से बैठे रहे। फिर सहसा जैसे उन्हें कुछ ध्यान हो आया और वह शिलाखंड से उठ कोठरी के एक मात्र वातायन की ओर बढ़ लिए। उनके शिथिल पैरों में गति का संचार हो उठा। मुख पर मनस्तोष का भाव छा गया किन्तु नेत्र जैसे कुछ देखने को लालायित हो उठे। वातायन के निकट पहुँच वह अपने पंजों के बल उचक कर खड़े हो गए। फिर वातायन में से झाँकते हुए, मस्तक नत कर कर-बद्ध हो सोल्लास अपने ही से कह उठे— बिम्बसार देखा तुमने तथागत गृध्रकूट पर्वत पर आज इस समय भी चारिका-व्यस्त हैं, वह इसलिए चारिका व्यस्त हैं कि उनका एक उपासक कहीं दर्शनों से वंचित न रह जाए। धन्य हैं, महाप्रभो।

उनका कण्ठ गद्-गद् हो गया और मन प्रसंग में भातंदोल्लास का भाव त्वरित हो उठा। उनके मुख पर भी प्रफुल्लता का प्रगाढ़ भाव फैल गया। कुछ क्षणों के पश्चात् वह उसी ओर दृष्टि केन्द्रित रख पुनः बोल उठे— 'भगवान् विश्वास रखो मैं किंचित भी विचलित नहीं हुआ हूँ। केवल शारीरिक बल पर गर्व करने वाले "

बन्दी सम्राट् के मुख की कोई बात कोठरी के खुलते द्वार कपाटों की घर्रनाद पूर्ण ध्वनि को सुन जैसे स्वतः रुक गई। किन्तु सम्राट् ने उस ओर देखे बिना ही अनेक क्षणों के पश्चात् पुनः कहना प्रारम्भ किया—"भगवान तथागत! किसी दिन मैंने भी अपने इस शारीरिक बल पर अभिमान किया था विजयोन्मत्त वाहिनियों को देख मन फूल उठा था और साम्राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा से "

बन्दी सम्राट् के मुख से निकलते शब्दों की ध्वनि इस बार जैसे तीव्र पदाघातों की कर्कशापूर्ण धपधपाहट में विलीन हो रही। किन्तु इस पर वह किंचित भी विचलित नहीं हुए पूर्ववत् ध्यानस्थ रह गृध्रकूट पर्वत शिखर पर चारिका-व्यस्त तथागत की दिव्य देह को निहारते रहे। सूर्य की प्रखरतर होती रश्मियों से जैसे उनकी देह का कुंदन वर्ण और प्रदीप्त हो उठा। उनके मुख सौम्य को देख बन्दी सम्राट् इस बार गद्‌-गद् कण्ठ से कह उठे— 'तथागत! आपके दर्शन कर मैं सचमुच धन्य हो गया हूँ।"

आगंतुक युवक जैसे इस बार अत्यन्त व्यग्रता के साथ अपने पैरों को पटकता उठा। उसने घुटनों तक ऊँचे चरत्राण पहन रखे थे और वाम ओर एक लम्बा खड्ग लटक रहा था। उसके मुख पर व्यग्रता तो व्याप्त थी ही पर साथ ही उसमें से प्रति शोध का भाव भी मानो उपतम रूप में प्रतिबिम्बित हो उसकी समस्त मुख मुद्रा को

कठोर बनाये हुए था। उनके पैरों की पदचाप आहट जब इस बार भी सम्राट् का ध्यान आकृष्ट करने में असफल ही तो उसके कठोर मुख पर सहसा पराभव की खिन्नता सी फैल गई। उसे आज जैसे अपने जीवन में प्रथम बार यह बोध हुआ कि एक विवश निरस्त्र बन्दी व्यक्ति भी यदि चाहे तो अपने दृढ़ निश्चय और उपेक्षा भाव से किसी समर्थ विजयोन्मत्त व्यक्ति को पराजय का अनुभव करा सकता है। उसे अपने में एक दुर्बलता का अनुभव हो उठा। परन्तु साथ ही अपने अंतर में बैठी किसी क्रूरात्मा की प्रेरणा से वह तुरन्त सावधान भी हो रहा। फिर भी उसका कण्ठ स्वर कुछ-कुछ कर्कश-सा रहा। बोला—"महाराज क्यों क्या आप मौन ही रहेंगे ?"

इस बार सम्राट् बिम्बसार ने सिंह-ग्रीवा सदृश दीखने वाली मुखाकृति को तनिक घुमाया। फिर सर्वथा अविचलित भाव से आगे बढ़ आगंतुक के सम्मुख आकर खड़े हो गए। आगंतुक उनकी इस अविचलित मुख आभा के सम्मुख अपनी दृष्टि ऊपर उठाने का भी साहस भी न कर सका। दृष्टि नत किए ही खड़ा रहा। उसके राज कुलोचित तेजस्वी स्वरूप पर विषाद की एक गहरी रेखा उभर आई और वह जैसे उसे छिपाने का निष्फल प्रयास करता रह गया। अन्त में सम्राट् ने अपना मौन भंग किया। बोले—"राजपुत्र दीर्घावधि से इस महाराज सम्बोधन को सुनते-सुनते उसके प्रति अरुचि हो गई थी और अब उससे ऊबने-सा लगा था। किन्तु दैवयोग से आज एक आत्मज की कृपा से यह अवसर प्राप्त हो सका है कि कोई मुझे अरे ओ बिम्बसार' तो कह पुकार सके। फिर वत्स ! किसी अपराधी को वह भी एक ऐसे जघन्य अपराधी को जिसे तप्त कारागार की काल कोठरी की यातना का भोगी बनना पड़ा हो, महाराज सदृश सुमर्यादापूर्ण शब्द से सम्बोधित करना उचित भी तो नहीं। यह शब्द तो अब किसी और को हो किसी और को क्यों केवल तुम्हें ही शोभा दे सकता है।"

यह कह सम्राट बिम्बसार शिलाखंड पर बैठ गए। बोले—"क्षमा करना वृद्ध हूँ इसलिए आपके सम्मुख बैठने की यह धृष्टता कर बैठा हूँ।"

आगंतुक इतना कुछ सुनकर भी मौन खड़ा रहा। उसे मौन देख सम्राट की दृष्टि उसके मुख पर केन्द्रित हो रही। जब आगंतुक युवक पर्याप्त समय तक भी कुछ न बोल सका तो सम्राट पुन कुछ आत्मीयता के से कण्ठ स्वर में बोले—"कुमार कोणिक कदाचित् तुम कुछ कह रहे थे नहीं तो पूछ रहे थे न कि मैं मौन क्यों हूँ। किन्तु मैं मौन तो नहीं। अरे हाँ मैं भूल गया, उस समय मैं अवश्य ही मौन था। परन्तु पुत्रवर विश्वास रखो मैं किसी आत्मग्लानि अथवा पश्चाताप अथवा क्षोभ के कारण मौन नहीं था वरन् अपने आराध्य देव तथागत भगवान को करबद्ध हो प्रणाम कर रहा था। अहा क्या ही भव्य मूर्ति है वह ! वत्स यदि तुमने कभी भूले भटके भी उस आराध्य के सौम्य स्वरूप का सान्निध्य प्राप्त कर लिया होता तो तुम्हारे सम्मुख अवश्य ही एक महान् रहस्य का उद्घाटन हो जाता। कोणिक तुम अवश्य ही अनुभव करते कि जिस महत्वाकांक्षा के वशीभूत हो आज तुम उसके पीछे-पीछे भाग रहे हो वह मात्र मृग-तृष्णा है और कुछ भी तो नहीं।"

सम्राट् बिम्बसार के मुख से इस बार यह सुन आगंतुक का मौन भी भग हुआ। किंतु कुछ कहे उससे पूर्व ही उसके मुख पर आवावेश की सी लालिमा उभर

भाई। बोला—"परन्तु महाराज तथागत का यह मार्ग किसी राजपुत्र के लिए भला किस प्रकार श्रेयस्कर हो सकता है ? यह तो जीवन से पलायन है कर्तव्य की ओर उपेक्षा है तथा समाज के प्रति दायित्वहीनता का परिचायक है। महाराज तनिक यह भी तो सोचें कि यदि सभी युवराज अपने-अपने राज्य का त्याग कर उस शाक्यपुत्र के संघ में सम्मिलित हो जाएँ तो माता वसुंधरा के इस प्रसाद—शासन भार—को कौन वहन करेगा ?"

कुमार कौणिक के इस प्रश्न को सुन सम्राट् तत्परता के साथ सिंहासन से उठ खड़े हुए। फिर कोठरी की सीमित परिधि में ही चारिका करते हुए वह जैसे अपने विचारों को शृंखला बद्ध करने मे व्यस्त हो गए।

इस मध्य उस कोठरी में मौन छाया रहा।

कुछ क्षण पश्चात् उस मौन को सहसा भंग कर सम्राट् एक दीर्घ श्वास बाहर छोड़ते हुए बोले—"कुमार कौणिक यह प्रश्न उतना जटिल नहीं जितना तुम समझ बैठे हो। वैशाली गणराज्य ही को क्या न लो वहाँ के सभी प्रजाजन समान रूप से ही तो शासन का भार वहन करते हैं। उसकी व्यवस्था मगध से किसी भी प्रकार हीन नहीं बल्कि अधिक शक्तिशाली ही है। यही दशा मल्ल गण राज्य की भी है। इन दोनों को छोड़ो स्वयं तथागत के संघ को ही क्यों नहीं लेते वहां किसी का भी कोई शासन नहीं परन्तु सभी अनुशासन बद्ध हैं। क्यों क्या इस अभिनव प्रयोग को हम अपने निज के जीवन में भी नहीं उतार सकते ? फिर कोई एकाकी व्यक्ति शासन को चला भी तो नहीं सकता। उसको सभी के सहयोग की आवश्यकता होती है। यहाँ तक कि उन प्रजाजनों के सहयोग की भी जो राज्य की शक्ति के सम्मुख नितान्त निरीह होते हैं। जो यह समझता है कि इस सारे शासन का भार मैं एकाकी वहन कर रहा हूँ उसका यह केवल भ्रम है और साथ ही दम्भ भी।"

कुमार कौणिक को सम्राट् का यह तर्क सर्वथा असंगत प्रतीत हुआ। वह तत्परता से बोल उठा—"परन्तु महाराज यह अभिनव प्रयोग समय के प्रवाह के सर्वथा प्रतिकूल होगा। आज इस देश को एक अखण्ड एवं एकच्छत्र राज्य की आवश्यकता है और उसके लिए कोई चक्रवर्ती सम्राट चाहिए।"

सम्राट् बिम्बसार भी तत्परता से बोल उठे—"और उसकी आवश्यकता पूरी भी हो गई क्यों कुमार कौणिक ? यही न ?" यह कह, वह एक ठहाका दे हँस पड़े। फिर सहसा हँसी को रोक गंभीर हो बोले—"परन्तु कुमार, यह तुम्हारी नहीं उस ब्राह्मण पुत्र वर्षकार की महत्त्वाकांक्षा है या फिर उस क्षत्रिय पुत्र देवदत्त की जो तथागत के संघ को नष्ट भ्रष्ट कर उसकी महंताई के स्वप्न देख रहा है। परन्तु कुमार कौणिक, क्या तुमने कभी यह सोचा है कि इस सारे प्रपंच जाल में तुम्हारा निज का क्या अस्तित्व है ? क्या तुम उस ब्राह्मण पुत्र और इस क्षत्रिय कुमार के हाथों के दास नहीं ? वे तुम्हें एक कठपुतली की भांति जिधर जैसा चाहते हैं नचा देते हैं और तुम भी सहर्ष क्यों गर्व के साथ नाच रहे हो। फिर उस पर तुम्हारा यह दम्भ है कि जैसे तुम्हीं इस सारे प्रपंच में सर्व शक्तिमान हो। कितना थोथा दम्भ है यह !" यह कह सम्राट् बिम्बसार पुनः एक ठहाका दे हँस पड़े। उनके ठहाके से

बंदी गृह का वह एकान्त-कक्ष गूंज उठा। कुमार कौणिक इस समय अपने को कुछ अपमानित हुआ अनुभव कर रहा था अतः उसके मुख पर उत्तेजना उभर आई। केवल यही नहीं सम्राट् बिम्बसार के मुख से निकली एक-एक बात उसके अन्तस्तल को बुरी तरह कचोट उठी। तो भी प्रकट में उसने सर्वथा शांत रहने का प्रयास किया। वास्तव में यहाँ आने से पूर्व वह भावावेश में कई बार उग्र रूप धारण कर चुका था। यह देख मगध अमात्य वर्षकार ने उसे एक परामर्श दिया था, और वह परामर्श था कि तुम बंदी सम्राट के पास अपना अभिप्राय सिद्ध करने जा रहे हो न कि उनकी हत्या के लिए। वह तुम्हें निश्चय ही उत्तजित करेंगे परन्तु देखो किसी भी स्थिति में इस समय उनकी हत्या करना केवल संकट को आमंत्रण देना है। अतएव उसने अमात्य वर्षकार के परामर्श पर मन ही मन मनन कर, इस समय केवल अपना अभिप्राय प्रगट करना ही उचित समझा। अधिकारोचित कण्ठ स्वर में उसने सम्राट् के सम्मुख अपना प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए कहा—"महाराज मगधराज का ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते मैं युवराज पद का अधिकारी हूँ। यदि आप मगध साम्राज्य के सम्राट् पद पर मुझे आसीन करना स्वीकार कर लें तो आपको इस बंदीगृह की यातनाओं से मुक्त कर मुझे अतिशय प्रसन्नता होगी।"

"परन्तु मगध के राज सिंहासन पर किसे आसीन करना है यह निश्चय करना तो मेरा अधिकार नहीं कुमार।" सम्राट ने तत्परता से उत्तर दे जैसे उसका कोई भ्रम निवारण करने का प्रयत्न किया हो। इस पर कुमार कौणिक भी वैसी ही तत्परता से बोला—"यदि यह अधिकार महाराज का नहीं तो और फिर किसका है ?"

"कुमार, यह निश्चित ही तुम्हारा भ्रम है। यह अधिकार महाराज का नहीं वरन् सभासदों का है। मुझे सभासदों को उनके इस पुनीत अधिकार से वंचित करने का कोई अधिकार नहीं और यदि मैं ऐसा करता हूँ तो यह अपने गौरवशाली पद का सर्वथा दुरुपयोग ही होगा। यह मगध राज की केवल स्वेच्छाचारिता होगी।" यह कह सम्राट् बिम्बसार तनिक रुके और फिर एक दीर्घ निश्वास छोड़ बोले—"और कुमार कौणिक अधिकांश सभासद कुमार सिलव को इस पद पर आसीन करना चाहते हैं।"

सम्राट् के मुख से यह सुन कुमार कौणिक पुनः भारी अपमान का अनुभव कर उठा। किंतु शीघ्र ही वह जैसे गर्व का अनुभव कर, बोला—"परन्तु कुमार सिलव तो अब नहीं रहे महाराज।"

कुमार कौणिक के मुख से यह सम्वाद सुन महाराज मानों स्तब्ध रह गये। तथापि प्रकट में प्रकृतिस्थ रह उन्होंने सरोष दृढ़ कण्ठ से प्रश्न किया—"क्यों, तो क्या वह भी तुम्हारे इन क्रूर हाथों का आखेट बन चुका है ?"

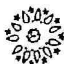
वृद्ध सम्राट् के मुख पर निराशा एवं उत्तजना का भाव एक साथ फैल उठा। किन्तु कुमार कौणिक के मुख पर छाया हुआ गर्व का भाव और प्रगाढ़ हो उठा नैनों में जैसे विजयोन्माद उमड़ आया। मानों वाग्मिता नत मस्तक हो बोला—आखेट बन ही रहा था कि इसी मध्य मोग्गलायन ने आकर उसकी रक्षा कर ली, महाराज। और मोग्गलायन के इस उपकार स्वरूप वह सद्धर्म में दीक्षित भी हो चुका है।"

यह सुन राजा बिम्बसार कुछ समय तक मौन ही खड़े रहे। कुमार कोणिक भी कुछ समय तक मौन रहने के बाद पुनः बोला—"और महाराज कुमार हल्ल विहल्ल सेचनक गजराज को ले वैशाली के लिए भाग खड़े हुए हैं और कुमार नंदिसेन तो आपके सम्मुख पहले ही निर्ग्रंथ धर्म के अनुयायी हो चुके थे। और रहा वह गणिका पुत्र अभय वह भी आम्रपाली समेत भिक्षु संघ को धावा हुआ देख बौद्धिम पुत्र का अनुयायी हो गया है महाराज।"

कुमार कोणिक के मुख से अभय के सम्बन्ध में गणिका पुत्र का सम्बोधन सुन क्रोध से सम्राट् का रक्त खौल उठा तथा भृकुटी तन गई। उस बंदी कक्ष में होकर भी उनका मुख क्रोधातिरेक से तमतमा उठा। तत्पश्चात् वह दृढ़ कण्ठ स्वर में बोले—"कुमार मैं इतना जानता था कि तुम क्रूर हो ढीठ हो यह भी मैंने उस दिन समझ लिया था जिस दिन तुम मध्याह्न में विश्राम कक्ष में मेरी हत्या करने के प्रयास से आए थे। तो भी मैंने तुम्हें अपनी उदारता वश राजगृह को छोड़ समूचे राज्य का स्वामी बना दिया था। फिर भी तुम संतुष्ट नहीं हुए, और लिप्सा के पीछे-पीछे भागते रहे। तुमने आज उसके उपकार स्वरूप स्वयं मुझे ही इस कारागार में डाल दिया है और अब मेरे ही सम्मुख तुम एक राजपुत्र की माता को जो तुम्हारे लिए भी माता तुल्य है, गणिका कह कर पुकार रहे हो। कुमार कोणिक तुम्हारे इस दौस को धिक्कार है।

यह कहते हुए सम्राट् के नेत्र आग्नेय हो उठे और ओष्ठ फड़फड़ाते रह गए। परन्तु कुमार कोणिक ने इस धिक्कार पर न तो लज्जा का अनुभव किया और न ही वह उत्तेजित हुआ बल्कि एक अट्टहास की भाँति विजयोन्माद की हँसी हँस उठा जिससे एक बार तो वह सारी कोठरी प्रकम्पित हो उठी। सहसा हँसी को रोक वह साक्षेप बोला—"महाराज यहाँ मैं प्रताड़ना के लिए नहीं बल्कि राज्य सिंहासन के लिए आया हूँ मुझे राज्य चाहिए।

राजा बिम्बसार उत्तर में न केवल मौन हो रहे बल्कि अपना धैर्य भी नष्ट कर लिया। कुमार कोणिक भी बाहर जाने के लिए उद्यत हो उठा। परन्तु जाते-जाते वह सहसा रुक फिर बोल उठा—"महाराज अभी भी समय है आप अपना विचार बदल लें। वह यह कहते आशान्वित दृष्टि से उनकी ओर देखा। परन्तु महाराज शिला खण्ड पर नत दृष्टि किए ही मौन हुए बैठे रहे। उनका इस प्रकार मौन रहे देख यदि कुमार कोणिक किसी भारी दुविधा में उलझ गया। किन्तु उसके मुख पर यह दुविधा भाव अधिक समय तक न टिक सका। वास्तव में उसकी मुखाकृति कठोरतम हो उठी।





अठारह

इस समय तक कुछ भी नहीं तो पूर्वाह्न का कोई डेढ़ प्रहर बीत चुका होगा।

परन्तु, राजगृह के उत्तर द्वार के वाम ओर वाले एक विस्तृत सघन आम्र कुंज में अभी भी अमावस्या की रात्रि का सा गहन तिमिर व्याप्त है। सर्वथा निर्जन प्रतीत होते इस आम्रकुंज में किसी एकाकी व्यक्ति का आना कोई कम साहस की बात नहीं थी। तो भी इस समय वहाँ विशाल वृक्षों की ओट में पड़े एक शिलाखंड पर कोई व्यक्ति विद्यमान है, और वह एकाकी व्यक्ति अत्यन्त व्यग्र भाव से किसी की प्रतीक्षा करता प्रतीत हो रहा है। वयस की दृष्टि से उसकी प्रौढ़ावस्था भी संभवतः अवसान वेला में है। परन्तु वैसे आयु की इस दीर्घावधि ने उसकी सुगठित देह पर कठोर प्रहार करने के पश्चात् भी अपने विशेष चिह्न नहीं छोड़े। उसका विस्तृत ललाट सघन कुंज के इस अन्धकार में भी देदीप्यमान है तथा उन्नत नासिका एवं ज्योतित नेत्रों युक्त उसकी मुखाकृति पर जो आभा व्याप्त है, उसे देखकर सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है कि वह अवश्य ही कोई राजकुलोत्पन्न है। परन्तु, उसने इस समय भिक्षु के काषाय चीवर धारण किए हुए थे। उसके हाथ में एक भिक्षा पात्र भी था। परन्तु मुख पर याचना का विनय अथवा कोमल भाव नहीं वरन् प्रतीक्षा की व्यग्रता थी और रह रह कर अन्तर में से उठा कोई कठोर भाव सहज ही में उस पर छा उठता और उसी के साथ उसके नेत्रों में एक महत्त्वाकांक्षी के स्वप्न का सा स्वरूप भी प्रतिबिम्बित हो उठता। कुल मिलाकर उसके मन की गति इस समय अति चंचल थी, और मुख पर दुर्भाव स्पष्ट झलक रहा था।

जब वह प्रतीक्षा करते-करते अत्यन्त अधीर हो उठा तो वह शिलाखंड पर से उठ वहीं के आसपास में चारिका में तल्लीन हो गया। परन्तु उसकी दृष्टि अब भी कुंज के मार्ग पर स्थिर थी और जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा था वैसे-वैसे ही उसकी चारिका की गति भी तेज होती जा रही थी। मानों इस चारिका में बीतता प्रति क्षण उसे एक प्रहर के समान प्रतीत हो रहा था।

समय की गति के इस मान-दंड के अनुसार जब पर्याप्त समय व्यतीत हो गया तो अन्त में उसके कानों में उसी ओर दौड़ते आ रहे एक अश्व की पदचाप की ध्वनि आ टकराई। उसे सुन उसके मुख पर छाया नैराश्य भाव लुप्त हो गया और सहसा प्रफुल्लता से खिल उठा। परन्तु अगले ही क्षण उसके नेत्रों में अन्तर का सन्देह भाव सिमट आया तथा उसी के साथ वह तत्परता से निकट ही खड़े एक विशालकाय वृक्ष की ओट में खड़ा हो गया। फिर अत्यन्त सावधान हो उसी ओर देखने लगा।

अश्वारोही इस समय तक उसके अत्यन्त समीप आ चुका था। उसे देख उसके प्रतीक्षा व्यस्त मुख पर किंचित क्रोध का भाव उभर आया परन्तु शीघ्र ही वह स्वागत की मुस्कान में भी परिणत हो उठा।

प्रतीक्षातुर श्रीयत चीवर धारी व्यक्ति भिक्षु देवदत्त के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं था तथा आगंतुक अश्वारोही स्वयं कुमार कौणिक ही था। कुमार कौणिक की मुख मुद्रा इस समय अत्यन्त व्यस्त प्रतीत हुई। उस पर कुछ-कुछ चिन्ता एवं दुविधा का सा मिश्रित भाव भी अवश्य झलक रहा था। उसका यह मुख-भाव देवदत्त की सूक्ष्म दृष्टि से छिपा नहीं रह सका। यह देख वह चकित हो उठा और एक बारगी अन्तस्तल में निराशा भी छा गई। व्यग्र कण्ठस्वर में पूछने लगा—"क्यों कुमार, सब सकुशल तो है? सारा कार्य योजनाबद्ध तो चल रहा है न? कहीं कुछ व्याघात तो नहीं? सम्राट् के बन्दी बना लिए जाने पर तो अब अपना मार्ग प्रशस्त हुआ ही समझो। फिर भला मुख पर यह चिन्ता क्यों?" वह यह सब कुछ एक साँस में ही कह गया। उसकी सधक दृष्टि कुमार कौणिक के मुख पर आ टिकी।

इस समय तक कुमार के मुख से चिन्ता का भाव लुप्त हो चुका था। परन्तु, साथ ही मन की किसी भारी दुविधा ने उसका स्थान ले लिया। देवदत्त की दृष्टि से यह भी छिपा नहीं रह सका। परन्तु वह मौन रह, केवल उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा।

कुमार कौणिक उत्तर में कुछ कहने के लिए उद्यत हुआ परन्तु साथ ही मानों किसी के कड़े आदेश ने उसे बलात् रोक दिया। अतएव प्रवाह को बदलते हुए उसने तत्क्षण स्वयं ही देवदत्त से कोई प्रश्न करना उचित समझा। बोला—"आर्य संघ में देवी आम्रपाली पहले से ही उपस्थित थी और अब उसका पुत्र कुमार अभय भी वहाँ पहुँच चुका है। अतएव यदि उस ओर से किसी भी क्षण कोई संकट उपस्थित हो उठे तो आश्चर्य की बात नहीं होगी।" यह कहते हुए उसने अपनी दृष्टि तनिक ऊपर उठाई। उसने देखा देवदत्त के मुख पर हल्की-सी मुस्कान उभर आई है जिसमें कुटिलता का कर्कश भाव स्पष्ट दीख रहा था। यह देख उसका हृदय व्यग्र हुए बिना न रहा। मन ही मन बोला—"कौणिक जिस कार्य को तूने अत्यन्त सरल समझा था वह तो सचमुच उतना ही जटिल निकला। और उसी के साथ उसके मन में मगध राज द्वारा कही गई बात प्रतिध्वनित हो उठी। उसे स्पष्ट अनुभव हुआ कि इस समय वह वास्तव में ही अमात्य वर्षकार एवं भिक्षु देवदत्त के हाथों की कठपुतली बना हुआ है। अतएव उसे अपने निज के प्रति आत्म ग्लानि का सा अनुभव हुआ परन्तु साथ ही उसने देखा कि वह इस समय ऐसी स्थिति में पहुँच चुका है जिससे पीछे हटना और भी संकटपूर्ण है। परन्तु उपकार के आदेश इस समय उसे आगे बढ़ने से भी रोके हुए थे। कदाचित् इसी कारण उसकी मनःस्थिति अधिकाधिक दुविधापूर्ण होती जा रही थी। अतः अन्तर में प्रवाहित इन द्वन्द्वपूर्ण विचारों के साथ उसके मुख की दुविधा और अगाढ़ हो उठी। भिक्षु देवदत्त की सूक्ष्म दृष्टि कुमार कौणिक के मन में क्षण-क्षण के अन्तर से उठते हुए प्रत्येक भाव को भली भाँति ताड़ रही थी। अपने मुख के कृत्रिम भाव को अन्तर में ... गम्भीर हो वह बोला—"आयुष्मान् संघ की ओर से होने वाले किसी भी

अमात्य के समूल उन्मूलन की ओर से तुम पूर्णतः आश्वस्त रहो। परन्तु वास्तविक बाधा तो स्वयं मन की दुविधा है अन्यथा सिंहासन आरूढ़ होने की दिशा में अब इससे श्रेय स्कर प्रशस्त मार्ग तुम्हें अब और क्या मिल सकेगा? सिंहासन के सभी उत्तराधिकारियों में से एक-एक को चुन तुम मार्ग से दूर कर चुके हो और उधर मगध राज की भी ।" भिक्षु देवदत्त कुछ आगे कहना ही चाहता था कि इसी मध्य कुमार कौशिक ने मुख पर अंगुली रख, श्री ई करते हुए उसे रोक दिया और सशंक दृष्टि से इधर-उधर देखते हुए वह बोला—"आर्य यह न भूलें कि मैं वृक्ष के पत्ते नहीं बल्कि पशुओं के कान हैं तथा उनके मध्य से बहता हुआ वायु का हल्का-सा झोंका भी हमारे मुख से निकला प्रत्येक शब्द कहीं से कहीं पहुँचा सकता है।" तनिक रुक इस बार नत मस्तक हो वह पुनः बोला—"भन्ते! अमात्य वर्षकार का कहना है कि अभी इस समाचार को सम्य भीतर तक सर्वथा गोपनीय ही रखना है।

कुमार कौशिक का कथन अभी समाप्त भी नहीं हुआ था कि इसी मध्य वह सघन कुंज एक निर्मम हँसी के ठहाके से गूँज उठा उसे सुन वृक्ष पल्लव जैसे काँपते रह गए। यह ठहाका किसी अन्य का नहीं बल्कि स्वयं भिक्षु देवदत्त का ही था जिससे एक बार को क्रूर स्वभावी कुमार कौशिक का हृदय भी आशंकित हो सहम कर रह गया। परन्तु अपनी इस दुर्बलता पर उसे स्वयं लज्जा का अनुभव हुआ। हँसते समय भिक्षु देवदत्त की मुखाकृति पर वास्तव में कुछ ऐसी बीभत्सता आ गई थी जिससे किसी का भी भयभीत हो उठना स्वाभाविक था। सहसा हँसी को रोक देवदत्त ने दृढ़ स्वर में कहा—"आयुष्मान्, तुम इस समय कुमार कौशिक नहीं वरन् मगधपति हो। यह सारा राज्य तुम्हारा है। इस राज्य के सभी प्रजाजन तुम्हारे सेवक हैं और अमात्य वर्षकार भी तुम्हारा केवल एक दास है। अतिएव पुत्र तुम्हें उसके आदेश पर नहीं चलना बल्कि उसे तुम्हारी आज्ञा का पालन करना है। किन्तु, उसके विपरीत मैं देख क्या रहा हूँ आयुष्मान् कि तुम इस निर्जन आम्रकुंज के पल्लवों को भी संदिग्ध दृष्टि से देख रहे हो। यहाँ कोई भी तो सुनने वाला नहीं किन्तु तुम फिर भी भयभीत हो और अपने मन की दुविधा को भी प्रकट करने में संकोच का अनुभव कर रहे हो। क्यों? क्योंकि मुझ पर विश्वास भी नहीं। क्या आयुष्मान्, मैंने ठीक कहा न?" यह कह वह पुनः एक उच्च ठहाका दे हँस उठा।

देवदत्त ने कुछ भी असत्य नहीं कहा था, तो भी उनके मुख से यह सुन कुमार कौशिक मन ही मन व्याकुल हो उठा। अंतस्तल भय से सिहर गया। नत मस्तक हो बोला—"आर्य विश्वास रखें ऐसी कोई बात नहीं है। परन्तु राजगृह की इस समय की स्थिति है उसमें यह सावधानी अनिवार्य ही है। राजगृह में यूँ इस समय सर्वथा मौन है और सर्वत्र शान्ति है परन्तु यह शान्ति किसी भयंकर तूफान की भूमिका भी तो हो सकती है। उसने एक बार करवट बदली नहीं कि आर्य फिर निश्चय मानिये इस भयंकर तूफान के चलने वाले प्रबल झोंकों के सामने हम सभी का टिकना असम्भव हो जाएगा। भन्ते एक-एक कर सभी राजकुमार अवश्य चले गए हैं परन्तु किसी को क्या विदित कि वे सभी किसी षड्यंत्र के ताने-बाने में ही व्यस्त हों। इन्द-विद्रोह का वैशाली की ओर प्रसारण अवश्य ही किसी न किसी भयंकर संकट का रूप ग्रहण करेगा।

मगधराज के बंदी बना लिए जाने का संकेत यदि हल्ल-विहल्ल को मिल गया तो फिर यह समझे रहना कि वैशाली चुप बैठी रहेगी नितान्त मूर्खता होगी। मगध पर गृध्र दृष्टि लगाए चंड प्रद्योत ही कैसे इस अवसर को हाथ से जाने देगा और कोशल नरेश भी भला कैसे हाथ पर हाथ रखे बैठा रहेगा। हमें अवश्य ही सब ओर से सावधान रहना होगा अन्यथा यह प्रमाद होगा और अपने इस प्रमाद के बदले में हमें न जाने क्या मूल्य चुकाना पड़ जाए। और फिर भन्ते जीवक कुमार भृत्य भी तो एक राजकुमार ही हैं। आर्य आप कदाचित इस तथ्य को भूल रहे हैं। केवल सभासदों में ही नहीं इतर जनों में भी वह कितना लोक प्रिय है यह तथ्य भी किसी से छिपा नहीं है। आर्य सभी राजा उसके चिकित्सा-कौशल से उपकृत हैं। केवल उसके इंगित मात्र पर एक नहीं, अनेक वाहिनियाँ मगध पर अभियान कर हमारी इस सारी योजना को निष्फल कर सकती हैं और हमारे महाबलाधिकृत सुनीधि का भी तो अभी कोई निश्चित मत प्रगट नहीं हो सका है। उनके अभी आश्वासन कौन जाने अन्त में केवल प्रपंचमात्र ही सिद्ध हों जैसे अब वह किसी अवसर की घात में बैठे हों। कौन जाने वह भी इस समय जीवक कुमारभृत्य के मन्तव्य से सोटने की ही प्रतीक्षा में हों।" कहते-कहते वह सहसा रुका और फिर सचेष्ट दृष्टि से उसने चारों ओर देखा। इसी मध्य भिक्षु देवदत्त ने तनिक आश्चर्य का भाव प्रगट करते हुए कहा—"आयुष्मान् जीवक कुमार भृत्य भी एक राजपुत्र है, यह तथ्य तो सचमुच आज मेरे सम्मुख सर्वथा नया ही है। परन्तु कैसे ?"

कुमार कोणिक ने उत्तर में बताया—"आर्य यह तथ्य मुझे भी अभी-अभी विदित हुआ है। मगध राज के अतिरिक्त केवल दो ही व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें यह तथ्य विदित है। उनमें से एक तो स्वयं अमात्य वर्षकार हैं तथा दूसरे महाबलाधिकृत सुनीधि। भन्ते ! कूड़े के ढेर पर राजमाली के पुत्र अभय को जो एक दिन अनायास ही एक नवजात शिशु मिला था वह राजनर्तकी सालवती का पुत्र था। तब उसने अपने कौमार्य को अक्षुण्ण घोषित रखने के लिए ऐसा किया था परन्तु उसके पश्चात् जब उसके मन में भी महत्त्वाकांक्षा बलवती हुई तो उसने यह तथ्य मगधराज के सम्मुख प्रकट कर दिया जो मगधराज को भी स्वीकार करना पड़ा। फिर जीवक कुमार भृत्य कुमार अभय के प्रति कितना स्नेह है यह तो सर्व विदित ही है। अतएव जब वह यह सुनेगा कि कुमार अभय कोणिक के भय से संघ में प्रविष्ट हुआ है तो आप समझ सकते हैं कि स्थिति कितनी भयावह बन सकती है। फिर उधर हल्ल विहल्ल भी तो अभय का साथ देने के लिए तैयार थे। यह कहते हुए उसने समस्याओं के भार से दबे दबे किंचित निराश दृष्टि से भिक्षु देवदत्त की ओर देखा। भिक्षु देवदत्त की मुखाकृति इस समय अत्यन्त गम्भीर हो उठी तथा नेत्र दृष्टि जैसे समस्या के समाधान के लिए शून्य में कुछ टटोलती हुई सी उसी में स्थापित हो रही। अन्ततः एक दीर्घ निःश्वास के साथ उसके मुख से एक गम्भीर हुंकार फूट निकली। कुछ सोचता हुआ-सा बोला—"क्यों आयुष्मान्, अमात्य वर्षकार को जब यह भेद पहले ही से विदित था तो फिर उन्होंने यह भेद आज ही क्यों प्रगट किया ?"

कुमार कोणिक उसके इस प्रश्न का उत्तर देने को उद्यत ही हुआ था कि तभी

मध्य कुंज में कहीं निकट ही में सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट से दोनों चौंक से उठे। सतर्क दृष्टि से उन्होंने उस ओर देखा तो दोनों ही के विस्मय की सीमा न रही। स्वयं वर्षकार अपने मुख पर कुटिल हास्य लिए इधर आ रहा था। किसी प्रत्यक्ष मार्ग से उसे आता हुआ न देख उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे वह भूगर्भ में से प्रकट हुआ हो। परन्तु गुप्त मार्ग से आ वह कब से उनकी बातें सुन रहा है इस आशंका से उनके मन अन्दर ही अन्दर प्रकम्पित हो उठे। अमात्य वर्षकार इस मध्य उनके अत्यन्त समीप आ खड़ा हुआ। उसके मुख का कुटिल हास्य भी इस समय तक लोप प्रायः हो चुका था। उसने पहले जैसे सावधान दृष्टि से कुमार कौणिक की ओर देखा तथा फिर अपनी दृष्टि भिक्षु देवदत्त पर केन्द्रित करते हुए कहा— "भन्ते! राजनीति के दाव-पेंच इतने सहज नहीं कि उन्हें जब चाहो जिसके सम्मुख प्रगट कर दो। रहस्य का दूसरा नाम ही राजनीति है एवं प्रतीक्षा उसका सबसे बड़ा अस्त्र है।" यह कहते हुए उसने अपनी दृष्टि फिर कुमार कौणिक की ओर फेरी तथा क्षणेक मौन के पश्चात् बोला— "कुमार कौणिक तुम्हें अभी तत्काल वैशाली की ओर प्रस्थान करना होगा।"

अमात्य वर्षकार के मुख से सहसा यह निश्चय सुन कुमार कौणिक को तो आश्चर्य हुआ ही परन्तु भिक्षु देवदत्त के मुख पर तो भारी निराशा ही छा गई। वास्तव में देवदत्त तो भयभीत हो उठा। उसे लगा कि कुमार कौणिक की अनुपस्थिति में तो वह एकदम असहाय हो जाएगा अतएव उसने अत्यन्त करुण भाव से कुमार कौणिक की ओर देखा। कुमार कौणिक भला क्या आश्वासन देता वह स्वयं इस समय दुविधा में पड़ा हुआ था। उसी दुविधा के निराकरण की आशा में उसने अमात्य की ओर देखा। फिर बोला—"क्या ऐसे ही एकाकी आर्य।"

अमात्य वर्षकार ने तनिक हँसते हुए उत्तर दिया— "नहीं कुमार भला यह कैसे सम्भव है। मगध के भावी सम्राट् के साथ पूरी चार वाहिनियों का सैन्य बल होगा।" यह कह वह तनिक रुका। फिर जैसे कुछ सोच बोला—"तुम्हारे लिए चार सैनिकों में से जिस किसी को जो भी कार्य सौंपा गया है वह निर्विघ्न चलता रहेगा। उस ओर से तुम सर्वथा आश्वस्त रहो। हाँ तुम्हें वैशाली जाकर उस गण प्रधान चेटक से केवल इतना कहना है कि वह सेचनक गजराज समेत आए अपने दौहित्रों—कुमार हल्ल-विहल्ल को वापस लौटा दे अन्यथा फिर युद्ध अनिवार्य है।"

यह सुन वे दोनों ही आतंकित से हो उठे। अमात्य वर्षकार ने जो कुछ कहा था उसमें उसका दृढ़ निश्चय बोल रहा था तथा कहीं भी लेश मात्र को शिथिलता नहीं थी। उसने एक साथ चार-चार वाहिनियों को वैशाली की ओर अभियान करने के लिए तथा अन्ततः उसे युद्ध की चुनौती देने के लिए किस प्रकार तैयार कर लिया इस पर कुमार कौणिक का आश्चर्य चकित हो उठना स्वाभाविक ही था। मन ही मन वह अमात्य से एक प्रश्न पूछने के लिए उद्यत हो उठा परन्तु उससे पूर्व ही अमात्य ने उससे कहा— "मगध से चार ही नहीं वरन् अन्य कई सेनापति भी पूर्णतः तुम्हारे साथ हैं। अब इसमें महासेनापति के पद की कोई चिन्ता नहीं रह गई, कुमार।"

यह सुन कुमार कौणिक का मुख खिल उठा। परन्तु भिक्षु देवदत्त के मुख पर अभी भी निराशा व्याप्त थी। कुमार कौणिक वैशाली की ओर प्रस्थान करे, उससे पूर्व

स्वयं ही शान्त भी हो रहे। इस समय मगधराज सेचनक कुमारों के अन्तर में उठते भावों तथा विचारों के वेग से भी अधिक तीव्रगति के साथ वन्य प्रदेश के ऊबड़ खाबड़ मार्ग पर दौड़ता चला जा रहा था और उसी के आगे पीछे राजकुमारों के अश्वारूढ़ विश्वस्त अनुचर भागे चले जा रहे थे। राजगृह से निकले इन सभी को अब तक दो प्रहर से भी अधिक समय बीत चुका होगा। इस सारी अवधि ही तो सेचनक इसी गति के साथ भागता रहा था तो भी उसने अब तक लेशमात्र को भी क्लांति का भाव नहीं दिखाया था। उल्टे प्रात के प्रकाश मे मार्ग जब स्पष्ट दीखने लगा और अनुगंता अश्वों की गति तीव्र हो उठी तो वह भी उनके पीछे-पीछे और अधिक गतिमान हो उठा। जैसे इस प्रकार भागते देख हल्ल को लगा सेचनक को भी अवश्य ही हमारे पलायन का रहस्य विदित हो गया है तभी तो वह आज अपनी स्वाभाविक उन्मत्त चाल को छोड़ सारी सुध-बुध खो हत परास्त हुआ सा दौड़ रहा है वह तो कुछ ऐसे दौड़ रहा है जैसे हमने नहीं वरन् स्वयं उसने पलायन किया हो। सेचनक के विषय में यह सब कुछ सोचते-विचारते हल्ल का मन कुछ भारी-सा हो उठा और उसी के साथ उसे ध्यान हो आया कि राजा ने जब एक दिन प्रसन्न हो पुरस्कार स्वरूप उसे यही गजराज दिया था तो तब कुमार कौशिक कितना क्षुब्ध हो उठा था। उस समय उसके गले में पड़े बहुमूल्य मणि-मुक्ताहार को तो वह निश्चय ही लालायित दृष्टि से देखता रह गया था। मणि मुक्ताहार का ध्यान आते ही वह कुछ हड़बड़ा सा गया और उसी हड़बड़ाहट में उसने पास के स्थान को कुछ टटोला-सा। मुक्ताहार को अपने ही पास सुरक्षित समझ उसने भारी संतोष की सांस ली। उधर, विहल्ल इस सारी अवधि मौन रह अंतर में उठते भावों के प्रवाह के साथ सोचता विचारता न जाने कहाँ दूर विगत में पहुँच चुका था। परन्तु उसकी दृष्टि प्रकट में आते-जाते ग्रामीणों पर टिकी थी जो इन सभी की ओर विस्मय की-सी दृष्टि से देख रहे थे मन ही मन संभवत कुछ अनुमान भी लगा रहे थे।

क्या अनुमान लगा रहे होंगे विहल्ल ने इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। वह तो केवल अपने से कोई अपनी ही बात कहता जा रहा था। वह अपने से कह रहा था—'विहल्ल हम से तो ये ग्रामीण ही कहीं अच्छे। कम से कम निर्द्वन्द्व तो हैं। इधर हमें देखो कहने को राजकुमार हैं किन्तु ऐसे भयभीत हो भाग रहे हैं जैसे हमने कोई जघन्य अपराध किया हो। और वह अपराध क्या हो सकता है? सहसा उसके मस्तिष्क में यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ। और फिर न जाने कितने समय तक उसका सारा ध्यान केवल इसी एक प्रश्न पर केन्द्रीभूत हो रहा। दत्तचित्त हो वह उत्तर को खोजता रहा किन्तु तत्काल कोई भी निष्कर्ष निकालने में असमर्थ रहा और यदि कोई बात आई भी तो केवल यही कि 'हम राजपुत्र हैं। वह सोचने लगा—'इसके अतिरिक्त और कोई भी तो अपराध हमने नहीं किया न हमने किया और न ही बन्धुवर अभिमेन ने किया था और बन्धुवर सिलव ने ही भला ऐसा कौन सा अपराध किया था जो कुमार कौशिक को वह तनिक भी तो नहीं सुहा सका। परन्तु इन सब कुछ के पीछे क्या कारण अथवा रहस्य था यह बात वह नहीं सोच सका। वास्तव में वह जैसे इसकी कोई आवश्यकता भी नहीं समझता था।

कारण यद्यपि वह हल्ल से केवल एक प्रहर ही छोटा था परन्तु उसे अपने अग्रज हल्ल से निरन्तर जो अगाध स्नेह मिलता रहा था उसने उसे उसके सम्मुख जैसे कई वर्ष छोटा बना दिया था। विहल्ल के मन में हल्ल के प्रति कोई आदर भी कम नहीं था अतएव जब उसके अन्तर में यह भाव विशेष ओत प्रोत होता तो वह उसके सम्मुख संकोच का भी अनुभव किए बिना न रहता। यही कारण है कि पर्याप्त समय से अपने मस्तिष्क में उठी एक बात को वह हल्ल के सम्मुख प्रकट नहीं कर सका। अंततः जैसे उसने अपना सारा साहस लगाया। बोला— क्यों बन्धुवर क्या राजपुत्र होना सचमुच अभिशाप नहीं है।'

वास्तव में वह जो बात कहने लगा था वह इस बार भी रह गई। उसने नेत्रकोरों से अपने अग्रज की ओर देखा उसे लगा कि वह जैसे उसी की बात पर पूरे मनोयोग से विचार रहे हैं। फिर तो जैसे वह मन में छिप रही बात भी कहने को प्रोत्साहित हो उठा। बोला—"बन्धुवर, वास्तव में अभिशाप वाली बात तो यूं ही मुख से निकल गई जो बात कहने लगा था वह संकोचवश रह गई।"

अपने अनुज के मुख से संकोच की बात सुन हल्ल के मुख पर स्नेह-सिक्त आत्मीयता का भाव सहज रूप में खेल उठा और विचारों अथवा दायित्व भार के कारण उसके मुख पर पहले जो एक गाम्भीर्य विशेष छाया हुआ था वह भी जैसे उसी में विलीन हो गया।

विहल्ल उसकी ओर नेत्रकोरों से देखते हुए आगे बोला—"बंधुवर, भला वह नीतिकार कौन था जिसने कभी कहा था कि राजपुत्र हिंसक भेड़िये के समान होते हैं। क्यों बन्धुवर, क्या उसने उचित नहीं कहा था ?"

अटपटापूर्ण प्रस्तुत प्रसंग में विहल्ल के मुख से निकली उक्त बात को सुन हल्ल मन ही मन उसे स्वीकार कर उठा। तो भी वह प्रकट में हंस पड़ा। बोला—"आयुष्मान् वह नीतिकार अवश्य ही कोई ब्राह्मणपुत्र रहा होगा। तभी तो उसने किसी अपवाद मात्र को ही अपनी दृढ़ धारणा बना उसे अंततः अपने सिद्धान्त के सांचे में ढाल दिया और फिर अत्यन्त आत्मविश्वास से स्वयं उसकी ऐसी ढोंडी पीट दी कि जैसे उसने प्रकृति के किसी बड़े महत्वपूर्ण रहस्य को खोज निकाला हो। पर आयुष्मान् मुझे तो ऐसा लगता है कि उस ब्राह्मण पुत्र ने अवश्य ही कुमार कर्णिक को देखा होगा और बस उसी को देखकर अपनी धारणा बना ली होगी। और जब तक उसकी विलक्षण दूरदर्शी दृष्टि के सम्मुख बन्धुवर शिलव आए होंगे तो उस समय तक वह अपने किसी आराध्य देव का ध्यान कर अवश्य ही समाधि लगा बैठा होगा।

इस पर विहल्ल तत्परता से बोल उठा—"महाशय जब राजपत्र हो इतने महत्वाकांक्षी हो उठें तो फिर भला उसमें किसी ब्राह्मण पुत्र का क्या दोष हो सकता है! उसने अवश्य ही कुछ ऐसा देखा होगा तभी तो उसने यह कह दिया। इतने बड़े व्यापक तथ्य को किसी ब्राह्मण पुत्र ने बिना किसी प्रमाण अथवा आधार के कह दिया होगा ऐसा कम से मुझे संभव प्रतीत नहीं होता।"

हल्ल तनिक विहंस बोला—"आयुष्मान्, तो फिर मैं कहूंगा कि सभी राजपुत्र

तुम्हारी भाँति केवल भोले होते हैं।"

तनिक रुक हल्ल कुछ सोचता हुआ फिर बोल उठा—'मुझे लगता है आयुष्मान्, जैसे एक तथ्य की ओर से तुम अभी तक अंधकार में ही हो।

"और वह कौन-सा तथ्य है बन्धुवर," विहल्ल ने उत्सुकता से पूछा।

हल्ल को अपने मन से निकली बात पर जैसे कुछ पश्चात्ताप का सा अनुभव हुआ। मगध राज्य की व्यसंत राजनीति के जिस रहस्यपूर्ण विचार को वह गत कई वर्षों से अपने इस अबोध अनुज से छिपाता आ रहा था वैसे वह आज बलात् ही उसके मुख से प्रकट होने को उद्यत हो उठा। परन्तु अब उससे और अधिक छिपाना भी उसे उचित न लगा। वह सोचने लगा—'मैंने उसे अब तक अकारण ही इन सभी बातों की ओर से अंधकार में रखा। फिर भी वह अब भी मन ही मन एक निश्चय कर उठा और उसका वह निश्चय था—'सम्राट के बन्दी बना लिए जाने की बात मैं उसके सम्मुख बिल्कुल ही तो प्रकट नहीं करूँगा उसका संकेत भी नहीं दूँगा अन्यथा वह अत्यन्त शोकाभिभूत हो उठेगा या फिर क्रोधावेश में राजगृह की ओर ही लौट लेगा। मुझ पर विश्वासघात का आरोप अलग लगायेगा?' अतः पुनः प्रसंग के मुख्य प्रवाह की ही ओर बढ़ वह बोला—'आयुष्मान् वास्तव में मैं तो अपने ही राजप्रासाद की इस उथल-पुथल के सम्बन्ध में कुछ पूछ रहा था। पूछ रहा था कि क्या तुम्हारी दृष्टि में यह सारा प्रपंच केवल कुमार कौणिक का ही है?

कुमार विहल्ल के अन्तर में बैठी दृढ़ धारणा जैसे स्वतः ध्वनित हो उठी। वह तत्परता से बोला—"सो तो सर्वविदित है बन्धुवर! क्या अब इसमें भी कोई विचारने की बात शेष रह गई है?"

'तो फिर मैं यह कहूँगा आयुष्मान् तुमने निश्चित ही अपने अन्दर एक बहुत बड़े भ्रम को पाल रखा है।" यह कह हल्ल एक हल्का सा ठहाका दे हँस उठा किन्तु फिर शीघ्र ही उसकी मुख मुद्रा गंभीर हो उठी। वह बोला—"तो सुनो आयुष्मान् उत्तराधिकार की दृष्टि से मगध के राज सिंहासन पर बैठने का केवल कुमार कौणिक को ही अधिकार है। परन्तु हुआ क्या? अमात्यवर वत्सकार मिलकर भी समय के राज सिंहासन पर आसीन करने के पक्ष में थे। कारण उन सभी की दृष्टि में कुमार कौणिक क्रूर है। यद्यपि कुमार कौणिक ने अंग सदृश शक्तिशाली राज्य को परास्त कर अपने उत्तराधिकार की योग्यता का परिचय दे दिया था। किन्तु योग्यता और बात है और स्वभाव दूसरी। अंग विजय पर सभासदों ने निश्चय ही भारी हर्ष प्रकट किया था और कुमार कौणिक की मुक्त कण्ठ से सराहना भी की थी किन्तु साथ ही वे मन ही मन एक और बात को देख भयभीत भी हो उठे। कदाचित् इसी भय के कारण सभासदों ने सम्राट को एक परामर्श दिया और वह परामर्श था कि कुमार कौणिक को अंग का राज्यपाल बना दिया जाए। जानते हो सभासदों के इस परामर्श में क्या रहस्य गर्भित था? वह रहस्य था कुमार कौणिक को राजगृह के राजनीतिक मंच से हटाना और उस पर बन्धुवर क्षिमक को लाना। कुमार कौणिक संभवतः प्रारम्भ में इस बात को नहीं समझ सके तभी तो सहर्ष वहाँ चले गए।"

विहल्ल इन सभी बातों को बड़े ध्यान से सुन रहा था। प्रसंग को मुख्य प्रवाह

से कुछ समय हटते देख वह जैसे हड़बड़ा कर उत्सुकता के साथ पूछ उठा—"बन्धुवर किन्तु आप यह बताना तो भूल ही गए कि सभासद राजगृह के रंगमंच से कुमार कोणिक को क्यों हटाना चाहते थे और कुमार कोणिक का वह कौन-सा दूसरा स्वरूप था जो उनकी योग्यता के साथ-साथ प्रकट हो उठा।"

हल्ल जैसे कुछ सोच बोला—"आयुष्मान् उस स्वरूप को जानने से पूर्व एक अन्य बात का जान लेना भी आवश्यक है। वास्तव में साम्राज्य विस्तार के प्रति उत्साह प्रजा का नहीं होता वरन् वह स्वयं राजा की ही महत्त्वाकांक्षा होती है। और उसकी इस महत्त्वाकांक्षा के क्रियान्वय का सबसे अधिक भार जानते हो किस पर पड़ता है?

हल्ल के इस प्रश्न के उत्तर में विहल्ल मौन रह केवल कौतूहल से उसकी ओर देखता रहा। हल्ल ने अपने प्रश्न का आप ही उत्तर दे उसे बताया—"आयुष्मान् साम्राज्य विस्तार का सबसे अधिक भार निरीह प्रजा पर पड़ता है और वह करों के भारी बोझ से कराह उठती है।

"क्यों बन्धुवर?" विहल्ल के मुख से प्रश्न निकल गया। हल्ल आत्मीयता की सी हँसी हँसते हुए बोला—किसी राज्य को जीतना कोई सरल बात नहीं आयुष्मान्, उसके लिए अधिकाधिक संख्या में सैनिक रखने होते हैं उन्हें वेतन देना होता है और सच पूछो तो उन्हें जामाताओं की तरह दुलार कर पालना होता है। फिर शस्त्रों पर होने वाला भारी व्यय। किसी भी राज्य को आत्मरक्षा के लिए जितने शस्त्रों की आवश्यकता होती है आक्रमण के लिए उनकी आवश्यकता कई गुनी बढ़ जाती है। फिर हाथी अश्व सभी कुछ तो चाहिएँ। अतः प्रजा स्वभावतः साम्राज्य विस्तार की विरोधी होती है और अपनी इसी विरोध पूर्ण भावना के साथ जब वह देखती है कि मानवीय मान्यताओं का भी अतिक्रमण किया जा रहा है तो वह क्षुब्ध हो उठती है। कुमार कोणिक ने मत के राज प्रासाद में कुछ ऐसा ही किया था, मगधराज बिम्बक की नृशंस हत्या जो की ही गई थी उसकी एकमात्र पुत्री के साथ भी ।"

असमंजस भाई यह बात हल्ल के कण्ठ तक ही आकर रुक गई। मुख से नहीं निकल सकी। विहल्ल को यह सब कुछ जानने की भी जिज्ञासा हुई परन्तु जैसे संकेत ही से वह सब कुछ समझ गया। हल्ल फिर बोल उठा—तो आयुष्मान् कुमार कोणिक ने मगध की यद्यपि इतनी सेवा की फिर भी वह सभासदों को प्रभावित करने में असमर्थ रहा। वास्तव में सभासद उसके प्रति शंकित हो उठे। उनकी धारणा बन गई कि कुमार कोणिक सिंहासन आरूढ़ होते ही स्वेच्छाचारी हो उठेगा। और स्वेच्छाचारी राजा क्या अपनी ही प्रजा पर अनाचार नहीं कर सकता। अतः वे सभी कुमार शिलक को उसके स्थान पर बैठाना चाहते थे।"

यह कह हल्ल जैसे पुनः कुछ सोचने में व्यस्त हो गया। विहल्ल को लगा मानो उसने प्रसंग को जैसे मंझधार ही में छोड़ दिया है। उसके मुख पर उत्सुकता का भाव प्रगाढ़ हो उठा। पूछने लगा—"और फिर क्या हुआ बन्धुवर?"

हल्ल ने तनिक विहल्ल की ओर देख कहा—"आयुष्मान् फिर इस राज के मध्य मगध के राजनीतिक मंच पर एक नए पात्र का आगमन हुआ। जानते हो वह कौन है?" फिर स्वयं ही उसका उत्तर देते हुए हल्ल बोल उठा—"और आयुष्मान् वह पात्र

कोई अन्य नहीं वरन् स्वयं आचार्य वर्षकार ही है !"

किन्तु वह तो राज्य की सेवा में न जाने कब से है बन्धुवर।" विहल्ल ने जिज्ञासा का सा भाव प्रकट करते हुए कहा।

हल्ल किंचित मुस्कान के साथ बोला—"आयुष्मान् मेरे ऐसा कहने का यह तात्पर्य नहीं कि उससे पूर्व वह था ही नहीं। वह था परन्तु जिस प्रकार किसी नाटक के पात्रों का महत्त्व केवल तभी प्रकट होता है जब कि वे मंच पर आते हैं, उसी प्रकार इस प्रस्तुत घटना प्रवाह में उसका विषय स्वरूप अभी सम्मुख आ सका है। वस्तुतः यदि इस सब का सूत्रधार उसे ही कहा जाए तो किंचित भी अतिशयोक्ति न होगी। उसने सोचा कि यदि कुमार कौशिक को उत्तराधिकार से वंचित कर कुमार सिलक को उसके स्थान पर बैठाया गया और वह भी सभासदों के कहने से तो यह राजतन्त्र की सुस्थापित परम्परा में सर्वथा एक नया मोड़ होगा। वह निश्चित ही वैशाली के गणतन्त्र और राज तन्त्र के मध्य की ही कोई दिशा होती। फिर उसे एक दूसरा भय और भी तो था और उसका वह भय यह था कि शासन सत्ता का सारा सूत्र पुरोहित कुलों के हाथ से छिन सभासदों के हाथों में पहुँच जायगा और इस प्रकार पुरोहित कुल प्रभाव हीन हो रहेंगे। अतः वह कुमार कौशिक को सचेष्ट कर उठा और सावधान कर उठा उसे पितृवर की एक नई आस्था की ओर से। आयुष्मान् जानते हो पितृवर की यह नई आस्था क्या थी ? यह आस्था थी बौद्ध-संघ की ओर पितृवर का आकृष्ट होना और फिर अपने राजतन्त्र की ओर से उदासीन हो गणतन्त्र की ओर अग्रसर होना। सभासदों के परामर्श पर सिलक को सिंहासन पर बैठाया निश्चित ही उसी दिशा में एक पग था। और फिर इसी मध्य इस घटना प्रवाह में एक अन्य व्यक्ति का उदय हुआ और वह है महात्मा बुद्ध का एक प्रमुख शिष्य—देवदत्त।"

यह कह हल्ल कुछ रुक-गया। विहल्ल चकित हुआ सा उसकी ओर देखता रहा और सोचता रहा कि आखिर इस सारे ज्वलंत विवाद में स्वयं बन्धुवर हल्ल किस पक्ष विशेष के प्रतिपादक है। किन्तु इस बार उसके मुख से देवदत्त का नाम सुन उसका कौतूहल और प्रगाढ़ हो उठा। पूछने लगा—"और फिर क्या हुआ बन्धुवर ?"

इस पर हल्ल बोला—"आयुष्मान् राजनीति में कभी भी स्पष्ट कुछ नहीं होता उसका तो अनुमानों के बल पर बस विश्लेषण किया जा सकता है और इस समय मैं वही विश्लेषण कर रहा हूँ। और मैं जो कुछ भी विश्लेषण कर सका हूँ उसके आधार पर सहज ही में कहा जा सकता है कि वर्षकार और देवदत्त इस सारे प्रसंग में एक दूसरे के पूरक बन उठे तथा उन दोनों के मध्य कुमार कौशिक निमित्त मात्र बन कर रह गए हैं"।

"वह कैसे ?" विहल्ल कौतूहलवश तत्परता से प्रश्न कर उठा। हल्ल कहता गया—"वह इस प्रकार आयुष्मान्, कि जिस कार्य को वर्षकार परिस्थितियों वश नहीं करा पा रहा था वह देवदत्त ने आ कुमार कौशिक से सहज ही में करा लिया। वर्षकार के लिए अब पितृवर सर्वथा असह्य थे तो भी वह उन्हें मार्ग से हटाने का कोई उपाय नहीं सोच पा रहा था। उसने कुमार कौशिक को विश्वास पूर्णतः अपने विश्वास में ले लिया था फिर भी एक पुत्र को पिता की हत्या के लिए प्रेरित करना कोई सहज

बात नहीं अतएव यह बात उसके मन में होने पर भी वह कह नहीं सका । फलस्वरूप उसकी योजना में प्रतिरोध का सा वातावरण बनता बनता और इसी प्रतिरोध को दूर किया देवदत्त ने आकर । उधर, देवदत्त के आते ही वर्षकार प्रकट में कुमार कौणिक से कुछ हट गया और महाराज की देवदत्त की सभी योजनाओं के विरुद्ध सावधान कर उनका विश्वास पात्र बना रहा । आयुष्मान् स्मरण है तुम्हें वह घटना जब एक दिन मध्याह्न में कुमार कौणिक को पितृवर की हत्या के प्रयास में पकड़ लिया गया था और फिर साथ ही उन्हें मुक्त करा दिया गया था । यही नहीं वर्षकार ने महाराज को पता नहीं है राजगृह को छोड़ शेष सभी राज्य कुमार कौणिक को भी दिलवा दिया था ।"

विहल्ल को यद्यपि इन सभी बातों पर विश्वास नहीं हो पा रहा था । उसे ये केवल कौतूहल पूर्ण ही प्रतीत हुईं । परन्तु चूंकि यह सभी कुछ स्वयं अपने अग्रज और वह भी एक ऐसे अग्रज के जिनके प्रति उसके मन में अगाध आस्था भाव था सुन रहा था अतः विश्वास होता चला । तो भी वह उत्सुकतावश पूछ ही उठा— 'और यह भी कैसी अद्भुत बात है कि वर्षकार एक ओर तो कुमार कौणिक को उकसा रहा है और दूसरी ओर जब वह महाराज की हत्या कर उसी के लक्ष्य की सिद्धि का मार्ग प्रशस्त करने के लिए उद्यत हुआ तो उसने यह भेद महाराज पर ही प्रगट कर दिया ?'

हल्ल ने इस पर तनिक हँसते हुए कहा—"आयुष्मान् बस यही तो राजनीति है । वास्तव में अमात्य वर्षकार का लक्ष्य राजसिंहासन पर कुमार कौणिक को प्रतिष्ठित कर एकच्छत्र राज्य की कल्पना को साकार करना है और उसके लिए यह आवश्यक है कि मगध का राज्य सर्वथा अखण्ड बना रहे । पर यह तभी संभव है जबकि सभासदों एवं प्रजाजनों की ओर से प्रत्यक्ष में कोई विरोध न हो अन्यथा तनिक-सी भूल पर विद्रोह तक भी हो सकता है । इन सभी कुछ से बच निकलने के लिए वर्षकार का यह प्रयास है ।"

"परन्तु अब तो विद्रोह की स्थिति स्पष्ट ही सम्मुख है ।" विहल्ल ने जैसे तर्क प्रस्तुत किया ।

हल्ल ने कहा—"कैसी भी भयंकर स्थिति क्यों न बने, वर्षकार पर प्रत्यक्ष में कोई दोष आना असंभव है । वह सारा दोष देवदत्त के ही तो सिर पर मढ़ देगा और वह अपने को ही नहीं वरन् अपने साथ में कुमार कौणिक को भी सुरक्षित रूप में बचा ले जाएगा । यही कारण है कि वर्षकार देवदत्त का घोर विरोधी होते हुए भी उसके प्रति सहिष्णु है । क्यों ? क्योंकि उसकी दृष्टि में वह अनिवार्य है, और वह एक प्रकार से उसी की योजना को आगे बढ़ा रहा है ।"

इसी मध्य सहसा मार्ग में आए एक नद ने सेचनक की गति को अवरुद्ध कर दिया । उधर विहल्ल को कुछ क्षुधा पीड़ा भी अनुभव हुई । अतएव उसने हल्ल से कहा—"बंधुवर, अब तो कुछ खाने को मिलना चाहिए क्षुधा पीड़ा अधिकाधिक असह्य होती जा रही है ।" हल्ल ने समस्या के समाधान स्वरूप इधर-उधर देखा तथा तत्पश्चात् विहल्ल को सांत्वना देते हुए कहा—"आयुष्मान् बस तनिक और धैर्य धारो । इस नद को पार करने के पश्चात् कोई चार कोस पर एक और वन आयगा उसमें प्रविष्ट होते ही एक अश्वारोही को विहार सैनिकों पर दृष्टि रखने के लिए

छोड़ हम कोई आखेट कर लेंगे।"

क्षुधा पीड़ा से विहल्ल के मुख पर नैराश्य-सा छा गया था किन्तु हल्ल के आश्वासन से वह पुनः प्रदीप्त हो उठा। और साथ ही विद्युत गति से उसके मस्तिष्क में एक प्रश्न और आकर टकरा गया। परन्तु वह तत्क्षण उसे पूछ नहीं सका।

सेचनक जब मध्य प्रवाह में पहुँच सहसा खड़ा हो गया तो हल्ल को लगा वहाँ जल अधिक गहरा है। यह देख उसकी मुख मुद्रा चिन्ता ग्रस्त हो उठी। विहल्ल का मुख भी पूर्णतः निस्तेज हो गया और साथ में आए अश्वारोही भी निःसहाय से दीखने लगे। इसी मध्य उनके कानों से किसी की ध्वनि आ टकराई जिससे पुनः सभी जैसे सचेष्ट हो उठे। किन्तु सेचनक केवल सचेष्ट होकर ही नहीं रह गया वह जल पर तैरता-सा दिखाई दिया। महावत भी तत्परता से अम्बारी पर आ राजकुमारों के ही साथ बैठ गया। उधर तट पर खड़े अश्वारोही तत्परता से जल प्रवाह में कूद पड़े और फिर न जाने वे सभी किस प्रकार उस प्रवाह में से निकल दूसरी ओर आ पहुँचे। वह ध्वनि और अधिकाधिक निकट आती प्रतीत हो रही थी किन्तु अब जैसे उनमें से किसी के लिए भी चिन्ता का कोई कारण शेष नहीं रह गया था। तो भी सेचनक अब सीधा मार्ग छोड़ भिन्न पथ पर सरपट दौड़ लिया।

विहल्ल के मस्तिष्क में जो प्रश्न उठा था उसे अब वह पूछने का साहस नहीं कर सका। किन्तु हल्ल के मानस पटल पर एक प्रश्न अवश्य उठ खड़ा हुआ। वस्तुतः उसके सम्मुख इस समय राजगृह के स्थान पर वैशाली की आन्तरिक स्थिति आ उपस्थित हुई थी। उस स्थिति पर मनन कर, वह जैसे संदिग्ध हो उठा। उसे लगा भविष्य निश्चय ही अदृष्ट है यदि हम वहाँ सकुशल पहुँच भी गए तो उस समय तक स्वयं वैशाली न जाने क्या स्वरूप ग्रहण कर ले। उसका क्षितिज भी तो आज गृह युद्ध के काले मेघों से आछन्न है।

और, कुमार कोणिक स्वयं अपनी वाहिनियों को ले वैशाली की ओर प्रस्थान भी कर चुका है इस समय हल्ल इसकी कल्पना तक भी न कर सका।





इधर, उस दिन वैशाली के कला प्रांगण में देवी चिप्पा का नृत्य अविराम गति से मध्यरात्रि के पश्चात् भी पूरे एक प्रहर तक चलता रहा था। ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी का चन्द्रमा अपना स्वाभाविक निर्मल सुहास्य छिटकाता छिटकाता अब प्राची से पश्चिम दिशा में पहुँच गया दर्शक समुदाय को इसका भान तक भी नहीं हुआ। रात्रि का यह लगभग ढाई प्रहर मानों एक पल के समान उनके शीश पर से उतर गया पर वैसे उसके पश्चात् भी वे देवी चिप्पा के नृत्य के प्रति लालायित ही बने रहे।

मध्य रात्रि तक तो सौम्य मुखी देवी चिप्पा सर्वथा सामान्य गति से नृत्य करती रही परन्तु उसके पश्चात् उसे किंचित क्लान्ति का अनुभव होने लगा। अतएव वह जब 'पुनः-पुनः' के अनुरोध पर इस बार फिर मंच पर दर्शकजनों के सम्मुख उपस्थित हुई तो उसने मन ही मन यह अनुमान लगाया था कि आज के आयोजन का सम्भवतः यही अन्तिम नृत्य होगा परन्तु उसके समाप्त होते-होते पहले तो "धन्य धन्य" के उच्चारण से सारा प्रांगण गूँज उठा तथा तत्पश्चात् "पुनः-पुनः" का अनुरोध साकार रूप में उसके सम्मुख आ उपस्थित हुआ। और विनयातिरेक से नतमस्तक देवी चिप्पा को दर्शकों का यह अनुरोध भी स्वीकार करना पड़ा।

और जब इस बार का नृत्य भी समाप्त हुआ तो दर्शकगण जैसे यही भूल गए कि उन्होंने पहले भी कोई अनुरोध किया था। अतएव फिर वही हुआ। और पुनरावृत्ति का यह क्रम सहज ही में एक प्रहर का समय और खींच ले गया।

अन्त में गणाध्यक्ष के इंगित पर देवी चिप्पा के अभिभावक आचार्य शिल्प ने अंतर के विनय भाव से नत मस्तक हो दर्शक जनों से और अनुरोध न करने की याचना की। दर्शक जनों ने आचार्य शिल्प का अनुरोध तो स्वीकार कर लिया परन्तु उनमें से अधिकांश ने बड़े ही निस्संकोच भाव से प्रस्ताव किया—"आर्य यदि अब यह आयोजन नित्य सन्ध्या ही हुआ करे तो हम सभी निज का अहोभाग्य समझेंगे।" तत्पश्चात् प्रायः सभी ने मुक्तकण्ठ से इसका समर्थन कर प्रस्ताव को जो बल प्रदान किया तो आचार्य शिल्प ने समुत्सुक नेत्रकोरों से देवी चिप्पा की ओर देख उसकी अनुमति चाही और अनुमति स्वरूप देवी चिप्पा के नतांत प्रायः मुख पर भी एक मौन मुस्कान व्याप्त हो उठी।

परन्तु देवी चिप्पा के नृत्य कौशल के प्रति दर्शक जनों के इस उत्साह को देख गणाध्यक्ष चेटक के हृदय में एक भिन्न भावना ही आकर सिहर गई और वह

दर्शक जनों के अधिकाधिक उत्साह को देख अगाध होती चली। घूँघट में वे भी अन्य की भाँति देवी शिप्रा के नृत्य को मन्त्र-मुग्ध हुए देखते रहे परन्तु उनके अंतर के किसी कोने में बैठा हुआ अन्यमनस्क भाव यदा-कदा अपना शीर्ष उठा उस विशिष्ट आसन की ओर देख लेता जिस पर कि कभी देवी आम्रपाली के नृत्य समाज में गण संवाहक सामन्त मंजदेव आकर बैठा करते थे। उन्हें गणसंवाहक की अनुपस्थिति अत्यन्त खल रही थी जो कभी-कभी सहज हृदय में व्यथा में परिणत हो उठती।

सुरक्षा प्रधान आचार्य शिप्र तो आयोजन की सफलता पर भारी गर्व का ही अनुभव करता रहा। परन्तु इसी मध्य उसकी दृष्टि किसी प्रकार उचट एक दृश्य विशेष पर जो पड़ी तो वह मन ही मन व्याकुल हुए बिना न रह सका। जहाँ वह बैठा था वहाँ से केवल कुछ अन्तर पर ही मानों उसी की पुष्टि बना एक युवक बैठा था जिसे उसने भली भाँति पहचान लिया। उनमें से एक तो स्वयं कुमारी चारुस्मिता ही थी जिसका मुख सौष्ठव उसे अब भी बरबस अपनी ओर खींच रहा था। परन्तु इसी के साथ जब उसने उसके साथ बैठे युवक को देखा तो उस पर जैसे एक विद्युताघात होकर रह गया। और इस प्रकार आहत हुआ उसका हृदय आर्तनाद कर उठा। वास्तव में कुमारी चारुस्मिता के साथ गणसंवाहक सामन्त मंजदेव का पुत्र मदनदेव आया था। इससे पूर्व प्रांगण में विचरणशील युवकों को देख उनका हृदय जितना प्रसन्न हुआ था इस युवक विशेष को देख उसका हृदय उतना ही हाहाकार कर उठा। उसका मन हुआ कि वह किसी प्रकार अवसर निकाल उस सहज हृदया कुमारी चारुस्मिता को सावधान कर आए। परन्तु किस अधिकार से? तत्काल उसके मस्तिष्क में यह प्रश्न आ टकराया। प्रश्न के उत्तर में वह विवशतावश मौन हो बैठा रहा। परन्तु फिर भी यदा कदा अन्तर के किसी गुह्यभाग से उठ एक आशंका भाव स्थूल रूप ग्रहण कर उसके सम्मुख आ उपस्थित होता जिससे वह बुरी तरह सिहर उठता।

नृत्य की परिसमाप्ति के पश्चात् जब मंजरिका रथारूढ़ हो आचार्य शिप्र के साथ अपने प्रासाद की ओर प्रस्थित हुई तो उसके मुख पर एक खिन्न भाव था जिसे आचार्य शिप्र ने तत्क्षण उसका केवल निद्रालस्य समझ, उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया। परन्तु वह कब तक उस ओर से उदासीन बना रहता। देवी शिप्रा के यहाँ से मार्ग मध्य में लौटते हुए और जनों की भीड़ में से इस समय उनका रथ होकर जा रहा था। भारी भीड़ थी अतएव मार्ग में पग-पग पर अवरोध था जिस कारण उनका वाहन भी अत्यन्त मंद गति से रुक-रुक कर ही चल पा रहा था। परन्तु उसने जनों का इस समय जैसे इस अवरोध की ओर तनिक भी ध्यान नहीं था और इस समय उस ओर उनका ध्यान आकर्षित करना भी व्यर्थ था। कारण देवी शिप्रा के नृत्य का रसास्वादन कर वे जिस परिणाम में भाव-विभोर हो उठे थे उसी के प्रभाव में आकृष्ट हुए वे वार्ता व्यस्त थे जिसे आचार्य शिप्र अत्यन्त मनोयोग से सुन रहा था। रथ रुक रुक कर चल रहा था अतएव वे जो कुछ भी अपना मंतव्य प्रगट कर रहे थे उन्हें वह स्पष्ट सुन पा रहा था। परन्तु वैशालिकों में इस समय पारस्परिक वार्तालाप की जो सीमा निर्धारित की हुई थी उस पर उसे मन ही मन आश्चर्य हुए न रहा। वे देवी शिप्रा के केवल नृत्य कौशल को ही अपने वाद-विवाद का

विषय बनाए हुए थे। यदि कोई उसकी भाव भंगिमाओं पर अपना मत प्रकट करता तो दूसरा उसके अंग-चालन की गति को अपने मतव्य का मुख्य विषय बनाए हुए था। कोई-कोई उसकी सुगठित स्थूल देह पर ही टीका टिप्पणी कर उठता और फिर उसकी देवी आम्रपाली की कमनीयता से तुलना करता कोई उसके अत्यधिक संकोच भाव का एक भयकर त्रुटि बताए बिना न रह पाता। परन्तु तभी के प्रत्युत्तर स्वरूप उसके साथ चलता हुआ कोई अन्य व्यक्ति सहसा प्रश्न कर उठता— और उसके विनय भाव के सम्बन्ध में भला तुम्हारी क्या धारणा है, बन्धुवर ?" तब इसके उत्तर में पहले वाले व्यक्ति को विवश हो कहना पड़ता—"बन्धुवर निस्संदेह प्रशंसनीय है।" और फिर प्रश्नकर्ता मुख से यह सुन प्रश्नकर्ता हँसे बिना न रहता। परिहास सिक्त सौहार्द से वह कहता— अरे बन्धु, तुम फिर यह क्यों भूले जा रहे हो कि यदि संकोच न होता तो यह विनय कहाँ से आता।" इस पर पहले वाला टिप्पणी कर्ता जैसे परास्त हो रहता।

आचार्य दिव्य देवी शिल्पा के नृत्य कौशल के प्रति जन-मानस की इस सजगता को देख मन ही मन प्रसन्न हो उठा। अपने से बोला—"वैशाली समाज की कदाचित यही वह सजीवता है जिसे देखने के लिए ही सम्भवतः पूज्यपाद आचार्य बहुलाश्व ने मुझे यहाँ भेजा हो।" सहसा ध्यान भंग कर उसने नेत्रकोरों से मंजरिका की ओर देखा। वह उसी पूर्ववत उपेक्षा भाव से मूर्छित हो मानों रथ में खिंची चली जा रही थी अथवा रात्रि के इस प्रहर में भी जनोत्साह से सहराते उस राजपथ पर वह रथ स्वयं ही उसे खींचे ले जा रहा था। उसे इस जड़-रूप में देख आचार्य दिव्य गम्भीर हो उठा और अन्तर में एक साथ ही कई प्रश्न उठ उसके मानस से टकराने लगे। और उसका विवेक सजग हो आत्मविश्लेषण में तल्लीन हो रहा परन्तु किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व ही अन्तर के किसी गुह्य प्रान्त से उठा एक प्रश्न साकार रूप में उसके नेत्रों के सम्मुख आ उपस्थित हुआ। उसने देखा कि उसी के रथ के पीछे-पीछे एक ही वाहन में बैठे श्रेष्ठिपुत्र यतिश रत्न एवं उसके पुत्र बन्धु सेनापति सिंह तथा आचार्य पुत्रिका देवी रोहिणी सभी तो चले आ रहे हैं। फिर भी किसी प्रकार साहस कर उसने मानों सभी की दृष्टि बचा कुमारी मंजरिका का हाथ अपने हाथ में ले लिया। किन्तु कुमारी मंजरिका पूर्ववत मौन रह, बाहर की ओर ही दृष्टि गड़ाए बैठी रही। तो भी उसकी इस भाव मुद्रा से आचार्य दिव्य किंचित भी हतोत्साहित नहीं हुआ। वह धीरे-धीरे कुमारी मंजरिका के हाथ को सहलाने में व्यस्त हो उठा। वास्तव में जो प्रश्न वह मंजरिका से किया चाहता था वह मन ही मन उसकी भूमिका का प्रतिपादन कर रहा था। परन्तु किसी भी स्थिति में उसकी विचार शृंखला परिपक्व हो निस्संकोच प्रश्न का रूप ग्रहण नहीं कर सकी। अतएव विवशता से उसने प्रवाह को तनिक बदलते हुए धीमे से कहा— "शुभे !"

वह यह उसने इस बार अत्यन्त ध्यान से मंजरिका की ओर देखा।

परन्तु मंजरिका उत्तर में पूर्ववत मौन ही रही। अतएव आचार्य दिव्य ने निष्पाप ध्यान मुद्रा से उसकी ओर पुनः देखा और फिर किसी अन्तःप्रेरणा से प्रेरित हो मंजरिका को सम्बोधित कर कहा—"सौम्ये !"

मंजरिका इस बार भी मौन ही रही, अतएव इस प्रकार गतिरोध की स्थिति उत्पन्न हुई देख उसे पराभव का सा अनुभव हुआ जिससे मुख पर खिन्नता का भाव व्याप्त हो उठा। परन्तु दूसरे ही क्षण अपने मुख पर मृदुहास्य का भाव ला, वह बोला—"सुभे! तक्षशिला में एक बार क्या हुआ कि मेरे एक सहपाठी ने, जो सौभाग्य से मेरा अन्यतम मित्र भी था अत्यन्त मनोयोग से एक प्रस्तर मूर्ति बनाई। केवल कुछ दिन पूर्व तक जिस पाषाण खण्ड की ओर किसी का ध्यान तक नहीं जाता था, और यदि जाता भी तो उससे क्या निकलता था वही मेरे मित्र के हाथों से कट-कट कर इतना सुंदर उठा कि बरबस सभी का ध्यान उस ओर हो जाता। केवल छात्र ही नहीं गुरुजन भी एकाग्र चित्त हो उसकी ओर देखते रह जाते और सभी मुक्त कण्ठ से उसकी प्रशंसा कर मेरे मित्र के कला कौशल को भी सराहते। मैं भी विस्मय से दाँतों तले अंगुली दबा उसकी ओर निष्पलक हुआ देखता रहता। परन्तु एक दिन न जाने क्यों सभी की उपस्थिति में उस मूर्ति को देख मुझे हँसी-सी आ गई।" यह कह आचार्य शिष्य सहसा रुक गया। परन्तु इसी मध्य जिज्ञासा वश मंजरिका के मुख से मानों बलात प्रश्न निकल गया— हँसी क्यों आ गई आचार्य शिष्य?"

आचार्य शिष्य ने इस पर किंचित् भी प्रफुल्लता अथवा किसी भाव विशेष को प्रकट न कर सर्वथा सहज ढंग से कहा—"श्रेष्ठीपुत्री वास्तव में मुझे उसे हँसते देखकर हँसी आ गई थी।"

इस पर मंजरिका ने तनिक विस्मय का भाव दिखाते हुए कहा—"आचार्य शिष्य भला यह कैसे सम्भव हो सकता है? कहीं प्रस्तर मूर्ति भी हँस सकती है?"

उत्तर में आचार्य शिष्य तुरन्त बोल उठा—"क्यों इसमें विस्मय की क्या बात है। क्या प्रस्तर मूर्ति हँस नहीं सकती? मैंने उसे सचमुच ही हँसते हुए देखा था।" आचार्य शिष्य के मुख पर जैसे आत्म-विश्वास की सी दृढ़ता उभर आई। परन्तु मंजरिका को उस पर लेशमात्र भी विश्वास नहीं हुआ। वह अधिकार के भावावेश में बोल उठी—"आचार्य शिष्य या तो असत्य बोल रहे हैं अथवा आपको तब भ्रम हुआ होगा।"

इस पर आचार्य शिष्य ठहाका दे हँस उठा तथा फिर सहसा हँसी को रोकते हुए बोला—"वास्तव में श्रेष्ठीपुत्री का कथन उचित ही है। मैं असत्य भी बोल रहा हूँ और भ्रम भी हुआ था।" यह कहते हुए उसने किंचित भेदपूर्ण मृदुस्मित दृष्टि से उसकी ओर देखा। मंजरिका के मुख से जो कुछ अनायास ही निकल गया था उसने अब तक एकदम उसके मुख भाव को ही बदल दिया था। वह जो कुछ कह गई थी उस पर उसे स्वयं आश्चर्य हो रहा था। अतएव मन ही मन कुछ-कुछ पश्चाताप मिश्रित लज्जा का सा अनुभव कर रही थी। परन्तु साथ ही मौन भी न रह सकी। नेत्रकोरों से आचार्य शिष्य की ओर देखती हुई बोली—'आचार्य शिष्य! पर यह तो स्पष्ट ही असंगति हुई। भला असत्य के साथ भ्रम का मेल किस प्रकार सम्भव है?"

आचार्य शिष्य प्रत्युत्तर में तत्परता से परन्तु सर्वथा सहज ढंग में बोल उठा—"सम्भव है श्रेष्ठीपुत्री यह भी ठीक कहती हों परन्तु इस तथ्य को तो अस्वीकार नहीं करेंगी कि असत्य के कारण भ्रम भी हो सकता है।"

यह कह आचार्य शिष्य ने सायास दृष्टि से मंजरिका की ओर देखा। मंजरिका

अभी भी उस ओर देख रही थी अतएव दृष्टि-संधि हो रही। परन्तु पराजय के सहज संकोच भाव से मंजरिका को अपनी दृष्टि शीघ्र ही नीचे करनी पड़ी। हाँ किसी अन्तर भाव विशेष से उसके वक्षस्थल का स्पर्श अवश्य हुआ वह अगाढ़ लालिमा से रक्त हो उठा। आचार्य शिष्य ने भी इस बार उसके हाथ को तनिक दबाते हुए कहा—"सुभे मंजरिके हम इस संसार में इन खुले नेत्रों से जो कुछ देखते हैं वह सदा ही सत्य हो यह अनिवार्य तो नहीं सत्य तो केवल प्रतीक्षा है।" यह कहते हुए उसने मंजरिका के हाथ को पूर्व से भी अधिक आत्म-विश्वास के साथ दबा दिया और फिर सहसा उसे उन्मुक्त कर अपनी सारी देह समेट उसके और निकट हो लिया। मंजरिका के कपोलों की लालिमा और अगाढ़ हो उठी रोम रोम में स्पंदन का संचार हो उठा। परन्तु साथ ही वह संकोच भाव से दबी-दबी प्रतिक्षण अधिकाधिक स्वयं में सिकुड़ती जा रही थी। उसके मन में आया वह आचार्य शिष्य से क्षमा माँग ले परन्तु इसी मध्य रथ सहसा रुक गया। वह राजपथ से जब प्रासाद के सिंह-द्वार में प्रविष्ट हुआ और फिर जब द्वार मण्डप में आ पहुँचा इसका उसे पता ही नहीं चला। परन्तु, आचार्य शिष्य इस ओर से सर्वथा अवगत था अतएव वह मंजरिका की इस अज्ञानता पर एक मीठी चुटकी ले हल्के से हँस पड़ा।

मंजरिका रथ से उतर आचार्य शिष्य के हाथ का अवलम्ब ले अपने अन्तर में प्रस्फुटित उत्साह की तत्परता से सोपान पर अभी केवल दो पग ही रख पाई थी कि इसी मध्य द्रुत गति से आता हुआ एक भव्य वाहन भी सहसा द्वार मण्डप में आ रुका। उसकी ध्वनि सुन दोनों ही हतप्रभ हो रहे। यहाँ तक कि उन्हें एक दूसरे की ओर देखने का भी अवसर नहीं मिल सका। मंजरिका ने तत्परता से आचार्य शिष्य का हाथ छोड़ दिया और वह उससे तनिक दूर हट खड़ी हो गई। वह अब भी विस्मित हो द्वार मण्डप की ओर देख रही थी तथा आचार्य शिष्य तो संकोचवश अपने में सिमटता ही जा रहा था कि इसी मध्य रथ से उतर तीन भव्य आकृतियाँ स्मित वदन उनकी ओर हो लीं। आचार्य शिष्य भी सोपान की ओर से मुड़ कर उनकी ओर बढ़ लिया तथा उनके समीप जा अभिवादन स्वरूप नतमस्तक होता खड़ा हो गया।

वे तीनों राजरथ पर पीछे-पीछे आते महावीर प्रियदर्शी रत्न सेनापति सिंह तथा उनकी पत्नी देवी रोहिणी के अतिरिक्त और कोई नहीं थे। देवी रोहिणी के मुख पर अभी भी मुस्कान खेल रही थी तथा वह सदा की अपेक्षा पर्याप्त उत्साही प्रतीत हो रही थी। मंजरिका के अत्यन्त समीप जा उसने अत्यन्त आत्मीयता के सौहार्द भाव से पूछा—"क्यों कुमारि प्रसन्न तो हो?" मंजरिका उनके प्रश्न का आशय समझ अपने में और संकुचित हो रही तथा उसी संकोच भार से उसके ओष्ठ और किंचित मुस्कान से प्रसारित हो रहे। किसी प्रकार साहस कर उसने अत्यन्त धीमे स्वर में जिसे कदाचित् वह स्वयं भी न सुन सकी हो उत्तर दिया—"हाँ देवी की कृपा है।"

मंजरिका के इस उत्तर से देवी रोहिणी के मुख की हल्की मुस्कान भी कुछ अगाढ़ हो रही। फिर उसने आचार्य शिष्य की ओर मुड़ कर अत्यन्त उसी आत्मीय भाव से पूछा—"क्यों आयुष्मान्, वैशाली में अब मन तो लग गया न?"

आचार्य शिष्य प्रश्न के आत्मीय भाव का स्पर्श कर पुलकित हो उठा। नत मस्तक

हो भाव भाई कण्ठ से बोला—"देवी यहाँ सभी का जो सहज स्नेह प्राप्त हुआ है उसके सम्मुख तो देवलोक की कृपा भी तुच्छ है।"

परन्तु इसी मध्य महावीर अभिमरल्ल ने परिहास के से ढंग में कहा— "बन्धु वर सिंह, बन्धु भ्यजसर तो अपने कार्य में इतने दत्तचित्त हो उठे हैं कि दर्शन भी दुर्लभ हो गए हैं।"

आचार्य शिष्य अपने स्वाभाविक संकोच भाव में उसका उत्तर देने को उद्यत ही हुआ था कि इसी मध्य सेनापति सिंह ने गर्व से ग्रीवा ऊपर उठा समुस्कान कहा— "परन्तु, मधुकर मेणिम तुम यह क्यों भूल जाते हो कि यह भी तो आचार्य बहुलाश्व का ही एक शिष्य है।"





इक्कीस

सुरस हृदय गणाध्यक्ष राजा चेटक देवी चिल्ला के नृत्य कौशल एवं उसके प्रति भारी जन उत्साह को देख अत्यधिक उल्लसित हो उठे। देवी आम्रपाली ने एक उपेक्षिता ग्राम दासी कन्या को कला में इस प्रकार दीक्षित कर, वैशाली समाज के परम्परागत जीवन में जो यह अभिनव प्रयोग किया था उसे इस परिमाण में फलीभूत होते देख नृत्य की समूची अवधि में वह मन ही मन उस देवी रूपकला के प्रयास को सराहते रहे और साथ ही सोचते रहे कि उपेक्षित दासों के उत्थान के सम्बन्ध में आयुष्मान् सिंह देवी रोहिणी एवं महावीर अग्निशर्मा प्रारम्भ ही से जो अपनी धारणा व्यक्त करते आ रहे थे वह निस्संदेह अक्षरशः साकार रूप में आ प्रकट हुई है। साथ ही उन्हें इन सभी की यह युक्ति भी सर्वथा तर्क संगत ही प्रतीत हुई कि मगध की बढ़ती हुई साम्राज्य लिप्सा को देखते हुए वज्जिसंघ की जन-शक्ति का नये सिरे से संगठन किया जाना न केवल वांछनीय वरन् अत्यन्त अनिवार्य भी है। परन्तु यह तभी सम्भव है जबकि दास वर्ग के रूप में नष्ट-विनष्ट होती हुई इस अपार जनराशि को सामान्य समाज में प्रविष्ट कर लिया जाए। संथागार के बर्बर नाविक बेड़े को नवजीवन प्रदान कर सेनापति सिंह ने एक दिन जब वज्जिसंघ के गणमान्य कर्णधारों की अनौपचारिक मंत्रणा के मध्य सहसा यह विचार प्रकट किया था तो उसे सुन सभी अवाक रह गए थे। कुछ को तो जैसे अपने कानों पर ही विश्वास नहीं हुआ और कुछ ने जैसे हतप्रभ हो सन्देह की दृष्टि से सेनापति सिंह की ओर देखा। अन्य की बात छोड़ो सिंह सेनापति के विचारों का सदा ही स्वागत करने वाले स्वयं गणाध्यक्ष को भी यह प्रस्ताव नहीं रुचा था और उसे सुन वह भारी दुविधा का अनुभव कर उठे थे। तो भी वह अपने उच्च पदोचित गम्भीर भाव से उस समय केवल मौन ही बैठे रहे। गणवाहक सामन्त मंजरीक की तनी हुई भृकुटी की ओर देखने का भी जैसे उन्हें साहस नहीं हो सका। गोष्ठी कक्ष में उपस्थित अन्य सामन्तों एवं श्रेष्ठी जनों की भी यही दशा हुई। उनकी मुख मुद्रा को देख तो तब कुछ ऐसा लगा जैसे कोई उन्हें अनायास ही चपोट गया हो और उस पर वे अत्यधिक उत्तेजित हो उठे हों। पर सिंह सेनापति अपने विचार विशेष को प्रकट कर अत्यन्त धैर्य भाव से मस्तक नत कर ऐसे बैठे रहे जैसे उन्होंने कुछ भी तो अप्रत्याशित नहीं कहा।

मंत्रणा गोष्ठी के विशिष्ट उच्चासन पर उस समय स्वयं गणाध्यक्ष ही आसीन थे परन्तु सभी उपस्थित जनों के उस गम्भीर रूप को देख वह किसी से उस विचार-विशेष पर निज का मंतव्य प्रकट करने का अनुरोध न कर सके। अतएव

हो आया भार कण्ठ से बोला—"देवी यहाँ सभी का जो सहज स्नेह प्राप्त हुआ है, उसके सम्मुख तो देवलोक की कृपा भी तुच्छ है।"

परन्तु इसी मध्य महावीर श्रेणियरत्न ने परिहास के से ढंग में कहा— 'बन्धुवर सिंह बन्धु व्यवहार तो अपने कार्य में इतने दत्तचित्त हो उठे हैं कि दर्शन भी दुर्लभ हो गए हैं।"

आचार्य शिष्य अपने स्वाभाविक संकोच भाव में उसका उत्तर देने को उद्यत हो हुआ था कि इसी मध्य सेनापति सिंह ने गर्व से ग्रीवा ऊपर उठा समुस्कान कहा—"परन्तु बन्धुवर श्रेणिय तुम यह क्यों भूल जाते हो कि यह भी तो आचार्य बहुलाश्व का ही एक शिष्य है।"





इक्कीस

सरल हृदय गणाध्यक्ष राजा चेटक देवी शिप्रा के नृत्य कौशल एवं उसके प्रति भारी जन उत्साह को देख अत्यधिक उल्लसित हो उठे। देवी आम्रपाली ने एक उपेक्षित-प्राय दासी कन्या को कला में इस प्रकार दीक्षित कर, वैशाली समाज के परम्परागत जीवन में जो यह अभिनव प्रयोग किया था उसे इस परिमाण में फलीभूत होते देख नृत्य की समूची अवधि में वह मन ही मन उस देवी रूपकन्या के प्रयास को सराहते रहे और साथ ही सोचते रहे कि उपेक्षित दासों के उत्थान के सम्बन्ध में आयुष्मान् सिंह, देवी रोहिणी एवं महावीर श्रेष्ठिरत्न प्रारम्भ ही से जो अपनी आस्था व्यक्त करते आ रहे थे वह निस्संदेह महत्त्व साकार रूप में आ प्रकट हुई है। साथ ही, उन्हें इन सभी की यह युक्ति भी सर्वथा तर्क संगत ही प्रतीत हुई कि अथाह की बढ़ती हुई सामान्य विपन्नता को देखते हुए परिवर्तन की जन-शक्ति का नये सिरे से संगठन किया जाना न केवल वांछनीय वरन् अत्यन्त अनिवार्य भी है। परन्तु यह तभी सम्भव है जबकि दास वर्ग के रूप में अष्ट-विनष्ट होती हुई इस अपार जनराशि को सामान्य समाज में प्रविष्ट कर लिया जाए। संथागार के जर्जर नाविक बेड़े को नवजीवन प्रदान कर सेनापति सिंह ने एक दिन जब वज्जिसंघ के गणमान्य कर्णधारों की अनौपचारिक मन्त्रणा के मध्य सहसा यह विचार प्रकट किया था तो उसे सुन सभी अवाक् रह गए थे। कुछ को तो जैसे अपने कानों पर ही विश्वास नहीं हुआ और कुछ ने जैसे हतप्रभ हो सन्देह की दृष्टि से सेनापति सिंह की ओर देखा। अन्य की बात छोड़ें, सिंह सेनापति के विचारों का सदा ही स्वागत करने वाले स्वयं गणाध्यक्ष को भी यह प्रस्ताव नहीं रुचा था और वे पुन वह भारी दुविधा का अनुभव कर उठे थे। तो भी वह अपने उभय पराजित गम्भीर भाव से उस समय केवल मौन हो बैठे रहे। गणउपनायक आयुष्मान् [illegible] की तनी हुई भृकुटी की ओर देखने का भी जैसे उन्हें साहस नहीं हो सका। गोष्ठी कक्ष में उपस्थित अन्य सामन्तों एवं श्रेष्ठी जनों की भी यही दशा हुई। उनकी मुख मुद्रा को देख तो तब कुछ ऐसा लगा जैसे कोई उन्हें अनायास ही चपेट लगा हो और उस पर वे अत्यधिक उत्तेजित हो उठे हों। पर सिंह सेनापति अपने विचार-विषय को प्रकट कर अत्यन्त धैर्य भाव से मस्तक नत कर ऐसे बैठे रहे जैसे उन्होंने कुछ भी तो अप्रत्याशित नहीं कहा।

मंत्रणा गोष्ठी के विशिष्ट उच्चासन पर उस समय स्वयं गणाध्यक्ष ही आसीन थे परन्तु सभी उपस्थित जनों के उस गम्भीर रूप को देख वह किसी से उस विचार-विशेष पर निज का मंतव्य प्रकट करने का अनुरोध न कर सके। अतएव

सभासदों से युक्त वह कक्ष पर्याप्त समय तक मौनाक्रान्त ही रहा। हाँ यदा-कदा कोई सामन्त अथवा श्रेष्ठीजन क्षोभाभिमुख मिश्रित तिरस्कार की दृष्टि से सेनापति सिंह की ओर अवश्य देख उठता।

अंत में एक वृद्ध परन्तु ओजपूर्ण कण्ठ स्वर ने कक्ष में छाए मौन को भंग किया। यह कण्ठ स्वर स्वयं गणसंवाहक का था। वह गणाध्यक्ष के समीप ही आसीन थे। सहसा उनके कण्ठ स्वर को सुन सभी अपनी दृष्टि ऊपर उठा उत्सुकता से उनकी ओर देख उठे। अपने उच्चपदोचित गम्भीर स्वर को संयत करने का सा प्रयास करते हुए वह बोले— "आयुष्मान् सिंह, तुम्हारा यह प्रस्ताव तो सर्वथा दायित्व हीनता का परिचायक है। इसे सुन मुझे तो कुछ *ऐसा भ्रम हो रहा है कि कहीं महाबलाधिकृत सदृश* गौरवशाली पद के लिए किसी अन्य योग्य व्यक्ति की ही खोज न करनी पड़ जाए।"

गणसंवाहक के मुख से यह सुन स्वयं सिंह तो सर्वथा अप्रभावित रह, प्रकृतिस्थ ही रहे परन्तु शेष सभी हतप्रभ हुए बिना न रह सके। उन्हें लगा सिंह का प्रस्ताव तो अप्रत्याशित था ही किन्तु गणसंवाहक ने तो जैसे यह स्पष्ट चुनौती ही दे डाली। किसी आशंका से वे सिहर से उठे और चिंता से उनकी मुख आभा मलिन हो रही। कारण सिंह ने तक्षशिला विद्यापीठ से वापस आ वज्जि सैनिकों का जिस ढंग से संगठन किया था उसे सभी ने मुक्त कण्ठ से सराहा था। और मगध साम्राज्य लिप्सा को देखते हुए अब उस ओर से जो निरन्तर संकट दीख रहा था उस स्थिति विशेष में उनकी सेवा केवल अनिवार्य बनकर रह गई थी। फिर वह एक निर्वाचित पद था। अतएव उससे निश्चित ही एक नया संकट उत्पन्न होने की आशंका बन उठी। इसके अति-रिक्त सिंह ने एक अन्य नया प्रयोग भी किया था। मगध के गत आक्रमण के समय वैशाली की महिलाएं भी आहत रोगियों की सेवा-सुश्रूषार्थ परिचारिकाओं के रूप में युद्ध शिविर में प्रविष्ट हो चुकी थीं। वैशाली के जीवन में यह भी सर्वथा अभिनव प्रयोग था जिस पर आरम्भ में सभी ने नाक-भौं सिकोड़ी कुछ उत्तेजित भी हो उठे थे। परन्तु युद्ध रत होने के कारण उस समय कोई कुछ नहीं बोल सका था। और युद्ध समाप्ति के पश्चात् जब सभी ने इस प्रयोग की उपयोगिता को देखा तो उसे केवल स्वीकार करते ही बना। और, देवी रोहिणी के नेतृत्व में अब वैशाली में पृथक् से एक परिचारिका विभाग की स्थापना हो चुकी थी जिसमें अधिकांश लिच्छवी महिलाएं सोत्साह योग प्रदान कर रही थीं। अतएव इन सभी विशिष्ट कारणों से गण शासन में सिंह सेना पति का उपस्थित रहना अनिवार्य प्रतीत होने लगा।

सिंह का विचार सभी को अरुचिकर प्रतीत हुआ था और उस पर वे उत्तेजित भी हो उठे थे। परन्तु किसी ने यह स्वप्न में भी अनुमान नहीं लगाया था कि गणसंवाहक उस पर अपना विरोध भी प्रगट करते हुए इस सीमा तक भी पहुँच जाएँगे। अतः वे दुविधा वश मौन हो रहे। परन्तु सेनापति सिंह मौन न रह सके। अत्यन्त विनय भाव से पूर्व से भी अधिक नत-मस्तक हो वह बोले—"आर्य अग्रज हैं। जितनी मेरी आयु है उससे भी कहीं अधिक वर्षों तक उन्होंने सदा संकट-ग्रस्त इस गण-शासन का न केवल गौरवपूर्ण मार्ग-दर्शन किया है वरन् यशोगान से लहराती कीर्तिमान वज्जि-सिंह-पताका भी उनके दृढ़ हाथों में सुरक्षित रही है, अतएव उनके सम्मुख मैं विनय से केवल नत

मस्तक हो रहूँ मेरे लिए यही शोभास्पद है। उनके आदेश की अवज्ञा कर भला यह साहस मुझ किस प्रकार हो सकता है।' यह कहते हुए उन्होंने अपनी दृष्टि तनिक ऊपर उठा सामन्त मंजरदेव की ओर देखा तथा तत्पश्चात् पुनः मस्तक झुका मौन हो बैठ गए।

सिंह सेनापति के इस विनय भाव से सभी सभासद अत्यन्त प्रभावित हुए और उत्सुकता से सभी ने अपनी दृष्टि पुनः वयोवृद्ध सामन्त मंजरदेव की ओर फेर ली। स्वयं सामन्त मंजरदेव भी उनके इस विनय भाव से प्रभावित हुए बिना न रहे। परन्तु साथ ही सिंह सेनापति ने परोक्ष रूप में सहर्ष पद मुक्त होने का जो संकेत किया था उससे उनकी मुख मुद्रा गम्भीर हो गई। कुछ समय तक तो वह ध्यानस्थ हुए स्थिति पर मनन करते रहे फिर पूर्ववत् ओज तथा कुछ-कुछ रोष युक्त कण्ठ स्वर में जिसमें अनु ग्रह का सा पुट भी विद्यमान था बोले—"परम्पराओं के हित में आयुष्मान् यदि अपना विचार वापस ले लें तो यह निश्चय ही श्रेयस्कर एवं स्वागत योग्य होगा।

महाबलाधिकृत सिंह सामन्त मंजरदेव के प्रस्ताव का उत्तर देने को उद्यत ही हुए थे कि इसी मध्य गणाध्यक्ष के बाम ओर वाले आसन पर आसीन एक देवी स्वरूपा का कण्ठ-स्वर सभी का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर उठा। सर्वथा सहज ढंग से वह बोली—"आर्य विचार कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे एक बार अभिव्यक्त कर पुनः स्वेच्छा से लौटा लिया जाए। गुलतन्त्र वैशाली की एक पुनीत परम्परा है कि सभी अपना मत व्यक्त करने के लिए स्वतन्त्र हैं और उसको स्वीकार करना अथवा न करना सभासदों का निज का अधिकार है सामान्य अधिकार नहीं वरन् आधार मूल है। अतएव बन्धुवर सिंह ने सभी के सम्मुख जो विचार प्रस्तुत किया है उसे केवल दायित्व हीनता का परिचायक कह उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। उस पर अवश्य ही विचार होना चाहिए और यदि हमने ऐसा नहीं किया तो यह गौरवशाली गणतन्त्र की सुस्था पित स्वस्थ परम्परा के विरुद्ध आचरण होगा।

यह कह वह तनिक रुकी और फिर गणाध्यक्ष की ओर देखते हुए पूर्व से भी अधिक सहज ढंग में बोली—'वन्दनीय आर्य वैशाली में आदेश का नहीं वरन् पारस्परिक परामर्श एवं विचार मंथन के फलस्वरूप निकले नवनीत सदृश निष्कर्षों का शासन है।" और यह कहते हुए उसने अमुस्कान नेत्रकोरों से सामन्त मंजरदेव की ओर देखा।

दस वर्ष से भी अधिक पूर्व का यह गोष्ठी चित्र गणाध्यक्ष चेटक के नेत्रों के सम्मुख आ स्थिर हो रहा। परोक्ष रूप में सिंह सेनापति के विचार का अनुमोदन कर, तथा तत्पश्चात् देवी त्रिप्ला के रूप में उसे साकार बना उसने जब वैशाली समाज के सम्मुख अत्यन्त नाटकीय ढंग से जो स्थिति उत्पन्न कर दी थी उसके गत्यावरोधपूर्ण स्वरूप को देख एक बार तो वह रात्रि के एकाकी वातावरण में सिहर से गए। यह बात नहीं कि वह इस सारी स्थिति से अनभिज्ञ रहे बल्कि कालान्तर में सिंह सेनापति द्वारा प्रस्तुत तर्क को वह सभ्य रूप में स्वीकार कर उसे एक प्रकार से मान्यता भी प्रदान कर चुके थे। उधर इस सम्बन्ध में विचारों की पुष्टि से सिंह को महावीर भौतिक गण तथा कई अन्य सामन्तों एवं श्रेष्ठिजनों का भी समर्थन प्राप्त हो चुका था। तो वे इस दिशा में गणाध्यक्ष के तत्परामर्श पर समर्थ को टालते आ रहे थे। स

है वे किसी उचित अवसर की प्रतीक्षा में उसे और भी टालते रहते परन्तु उद्यम से अनुप्राणित हो सहसा बौद्ध संघ में प्रविष्ट होकर देवी आम्रपाली ने उसे सर्वथा सन्नि-कट ही ला उपस्थित कर दिया। अब उसकी उपेक्षा भी असम्भव थी। तथापि वा मन ही मन व्यग्र भाव से किसी उचित युक्ति की खोज में व्यस्त हो उठे।

नृत्य से लौटने पर रात्रि का अवशिष्ट रहा पूरा एक प्रहर उन्होंने अपने पर्यं पर केवल करवटें बदलते ही बिताया। इस मध्य एक-एक कर अनेक विचार उनके मस्तिष्क में आए, टकराए और चले गए और वह उन्हें एक तटस्थ दर्शक की भांति बस देखते भर रहे। तत्काल कोई भी ऐसी युक्ति नहीं सूझ पड़ी जो समस्या का समा-धान कर सके। इस मध्य एक-एक कर कई सौम्य मुखी परिचारिकाएं बारी-बारी से अ-ति आत्मीय भाव से अपने वयोवृद्ध स्वामी की कुशल क्षेम पूछ गईं। परन्तु उनमें से किसी की भी उपस्थिति से वह न तो सान्त्वना का अनुभव कर सके और न उन्हों किसी बाधा का ही अनुभव किया। पर वे सभी उन्हें अपने पितामह तुल्य समझती थीं, अतः उनकी इस मनोदशा को देख उन सभी का चिंतित हो उठना स्वाभावि ही था।

गणाध्यक्ष जब अपने अनवरत विचारों के भार को लेटे-लेटे सहन नहीं कर सके तो वह पर्यंक से उठ उस कक्ष की सीमित परिधि में ही चारिका व्यस्त हो रहे। परन्तु फिर भी विचारों का प्रवाह उग्रतर होता चला। अन्त में विवश हो वह अपने दुर्ग की वाटिका के शुभ्र वातावरण में आ पहुंचे। वहां इस समय तक अभ्यागत प्रत्यूष वेला के स्वागत में वृक्षों पर पक्षी-कलरव प्रारम्भ हो चुका था। उसे सुन वह कुछ सचेष्ट हो उठे। समय का अनुमान कर उन्होंने सेवक छंदक को पुकारा। छंदक तो मानों छाया की भांति ही न जाने कब से उनके साथ लगा हुआ था। वह तत्काल ही उनके सम्मुख आ उपस्थित हुआ और स्वामी के आदेश को शिरोधार्य करने की इच्छा से नत-मस्तक हो निश्चल भाव से खड़ा हो गया। परन्तु महामान्य आदेश से पूर्व अपने किसी निश्चय पर पुनर्विचार करने में तल्लीन हो गए। अन्ततः उन्होंने आदेश किया—"छंदक वाहन प्रस्तुत करो।"

छंदक को स्वामी के आदेश पर कुछ आश्चर्य हुआ पर वह कह भी क्या सकता था। जब वह चला गया तो गणाध्यक्ष ने एक बार और अपने निश्चय के औचित्य पर मानों दृढ़ता से विचार करने लगे। अन्त में वह अपने को ही सुनाते हुए बोले—"ओह! अब इसके अतिरिक्त कोई और उपाय भी तो नहीं। गणाध्यक्ष का यह पद जितना गौरवपूर्ण है उसका निर्वाह उतना ही कठिन है।"

गणसंचालक सामन्त मंजरीय इस प्रातः वेला में भी अपने विशाल प्रकोष्ठ में अन्य कई सामन्तों एवं श्रेष्ठि जनों से घिरे मंत्रणा व्यस्त थे। देवी शिष्या ने जब प्रति दिन ही सन्ध्या समाज के आयोजन का निश्चय किया है, जब से उन्हें यह संवाद मिला है तभी से मन में उठा एक उग्र भाव उन्हें अन्दर ही अन्दर कचोटे जा रहा है। अतएव वह तभी से विरोधी पक्ष के सारे प्रयत्नों को निष्फल करने के लिए जैसे दृढ़ संकल्प हो उठे। इस समय भी वह महाश्रेष्ठी मणिपल्ल तथा अन्य सामन्त व अष्टीजनों से घिरे कदाचित इसी सम्बन्ध में विचार विनिमय व्यस्त थे कि मणिपल्लक कपिल ने आकर

सूचना दी—"आर्य गणाध्यक्ष राजा चेटक प्रासाद में पधारे हैं।"

सभी को यह संवाद अप्रत्याशित जैसा लगा और वे हतप्रभ हो उठे। यही मनो दशा स्वयं गणसंवाहक की भी हुई। वास्तव में कई उपस्थित जन तो सन्धिवाहक की इस सूचना पर विश्वास ही नहीं कर पा रहे थे। सामन्त वीरभद्र ने अविश्वास का सा भाव प्रकट कर कहा—"आर्य मुझे तो इसमें कुछ सन्देह प्रतीत होता है। सम्भव है, गणाध्यक्ष के रूप में कोई छद्मवेषी ही चला आया हो। अतएव आर्य उनका स्वागत करने एकाकी न जाएं।" सामन्त कार्तिकेय ने सामन्त वीरभद्र के संदेह का समर्थन कर, कहा —"आर्यवर, विरोधी पक्ष अपनी सफलताओं पर अवश्य ही गर्व का अनुभव कर उठा है। सिंह एवं श्रेष्ठिमणिरत्न अपनी इस अभूतपूर्व सफलता पर अत्यधिक आत्म विश्वास का अनुभव कर निश्चित ही दम्भी हो गये हैं, अतः यदि वे कोई ऐसा पग उठा भी लें तो कोई आश्चर्य नहीं।"

परन्तु गणसंवाहक सामन्त मगदेव ने उन सभी संशयों का निराकरण करते हुए गम्भीर स्वर में कहा—"नहीं आयुष्मानो ऐसा कदापि नहीं हो सकता। भला सामन्त मंगदेव के यहाँ इस प्रकार कोई छद्मवेषी भी आने का दुस्साहस कर सकता है।' यह कह उन्होंने जैसे सगर्व अपने शीर्ष को ऊपर उठाया। फिर बोले—"आयुष्मानो, एक बार मैंने कहा था न कि गणाध्यक्ष को एक दिन अवश्य ही अपनी इस भयंकर भूल पर पुनर्विचार करना होगा और वह कदाचित् इसी उद्देश्य से आज गणसंवाहक के प्रासाद में उपस्थित हुए हैं।"

और यह कह उनके मुख पर जैसे किसी अभूतपूर्व विजय का हर्ष भाव सजीव हो उठा।

गणसंवाहक के इस मन्तव्य को सुन सभी उस पर जैसे गम्भीरता से मनन करने लगे। किन्तु श्रेष्ठी चित्रविरक्त तत्परता से कह उठे—"आर्य का यह अनुमान ठीक ही प्रतीत होता है। पर मेरा एक नम्र निवेदन है कि गणाध्यक्ष के सम्मुख हम सभी का यहाँ इस प्रकार उपस्थित रहना उचित नहीं। सम्भव है हम सभी को देख वह संकोच वश अपना अभिप्राय प्रकट ही न कर सकें।" यह कह, उन्होंने साथ सभी की ओर देखा। परन्तु अन्य सभी श्रेष्ठी के इस प्रस्ताव का वास्तविक आशय समझ, ठहाका दे हँस पड़े। श्रेष्ठी चित्रविरक्त जैसे अपने अन्तर की ही किसी दुविधा से कुछ व्यग्र हो रहे।

महाश्रेष्ठी मणिरत्न तो इस सारी अवधि मौन ही रहे।

गणाध्यक्ष को सामन्त मंगदेव के प्रासाद में प्रविष्ट हुए अभी कुछ पल ही बीते होंगे कि इसी मध्य उनके आगमन का समाचार विद्युत गति से सर्वत्र फैल गया। इस प्रातः वेला में जब कतिपय व्यक्तियों ने उनके रथ वाहन को त्वरित गति से राजपथ पर जाते हुए देखा तो वे विस्मय से उसकी ओर देखते रह गए। परन्तु रात्रि का पहरा देकर लौटते हुए गण-पुरुषों ने जब गणाध्यक्ष का रथ इस प्रकार अंगरक्षकों के बिना ही जाते देखा तो वे अपने दायित्व भार की ओर से उदासीन न रह सके। उनमें से कुछ तो राजा के ऊपर ही छोड़ दिया। वे दौड़ लिए तथा शेष अपने प्रधान को इस स्थिति विशेष से सचेष्ट करने के लिए महावीर श्रेष्ठिमणिरत्न के प्रासाद की ओर प्रस्थान कर उठे।

सन्ध्या प्रधान आचार्य शिष्य भी अभी अभी पर्यंक त्याग प्रासादोद्यान के एक शिलाखंड पर आ कर बैठा था। उसके निद्रा-अलस नेत्रों को देख सहज ही में यह अनुमान लगाया जा सकता था कि उसने भी रात्रि का अवशिष्ट प्रहर बिना सोए ही बिताया है। मंजरिका से विदा ले जब वह अपने कक्ष की ओर गया था तो वह तभी उसके अन्तर में व्याप्त किसी भाव विशेष को ताड़ गई थी अतः वह कई बार अपने पर्यंक से उठ, नभमण्डल से प्रस्फुटित होती सस्मित ज्योत्सना की दृष्टि बचा आचार्य शिष्य के निकट जा उसकी कुशल क्षेम पूछने गई, परन्तु आचार्य शिष्य ने प्रत्येक बार ही उससे कहा—"देवी आश्वस्त रहें मेरा मन सर्वथा स्वस्थ है।" और इस उत्तर को सुन जब मंजरिका लौटती तो उसका मन हर बार ही असन्तोष एवं नैराश्य से बोझिल हो उठता। उसे यह दृढ़ विश्वास हो गया कि आचार्य शिष्य इस समय अवश्य ही किसी गम्भीर समस्या में ग्रस्त हैं परन्तु साथ ही वह उसे प्रकट भी नहीं किया चाहते। वह इस समय भी आचार्य शिष्य के निकट खड़ी थी। यूं प्रकट में उसकी दृष्टि एक पुष्प एवं उस पर मंडराते भ्रमरों पर केन्द्रित थी परन्तु वास्तव में वह नैनकोरों से आचार्य शिष्य के मुख पर निरन्तर उभरते एवं विलीन होते भावों को देख रही थी। उसकी इस समय की मुख मुद्रा को देख वह कोई प्रश्न करने का भी साहस नहीं कर सकी।

अंत में आचार्य शिष्य ने मौन भंग कर मंजरिका की ओर दृष्टि करते हुए कहा—"मुझे यदि बता सको तो एक बात पूछूं?"

सहसा यह प्रश्न सुन मंजरिका का मन न जाने क्यों आशंकाग्रस्त हो उठा। परन्तु, दूसरे ही क्षण वह प्रश्न का स्वरूप जानने को उतावली न रह उठी—"यदि बताने की क्षमता हुई तो अवश्य बताऊंगी आचार्य शिष्य!"

"परन्तु यह 'यदि' क्यों मुझे? तुम्हें बताना ही होगा।"

आचार्य शिष्य ने यह किंचित मुस्कराते हुए कहा था। मंजरिका भी उसी प्रकार समुस्कान बोल उठी—"इसलिए आचार्य शिष्य कि आप ने स्वयं 'यदि' कह मेरी क्षमता में अविश्वास को प्रकट किया है।"

आचार्य शिष्य मंजरिका का यह उत्तर सुन हंसे बिना न रह सका। आचार्य शिष्य की इस सरल उन्मुक्त हंसी को देख मंजरिका भी हंसे बिना न रही। इस हंसी के मध्य दोनों ही ने एक-दूसरे की ओर देखा। अन्त में मंजरिका ने अपनी पराभूत दृष्टि नत कर ली। इस पर आचार्य शिष्य ने उसकी दोनों बाहुओं को पकड़ तनिक विनोद के से भाव में कहा—"मैं यह जानता हूं कि श्रेष्ठी-पुत्री अत्यन्त सावधान है परन्तु वह इतनी सावधान है यह तो मुझे आज ही विदित हो सका है।"

मंजरिका ने अपनी इस प्रशस्ति के उत्तर में मौन रह आचार्य शिष्य को बैठे उचक कर, कहा—आचार्य शिष्य कदाचित् कुछ पूछ रहे थे?"

इस पर आचार्य शिष्य की मुख-मुद्रा पुनः गंभीर हो उठी। बोला—"मुझे मैं कुछ पूछ नहीं रहा था वरन् यह कह रहा था कि कल्पना करो तुम एक वाटिका में हो और तुम्हें उसके एक सघन कुंज से दूसरे कुंज की ओर जाना है और जाना भी अनिवार्य है परन्तु मार्ग में एक बाधा आ उपस्थित हुई है।"

आचार्य शिष्य की इस बात को सुन मंजरिका को हंसी आया चाहती थी।

उसकी गम्भीर मुख मुद्रा को देख वह हँसने का साहस न कर सकी। उल्टे उसके नेत्रों में कुछ कौतूहल का सा भाव उभर आया। इसी मध्य आचार्य शिप्य ने पुनः आगे कहना प्रारम्भ किया—"और वह बाधा यह है देवी कि हम दोनों के मध्य जो सता द्वार है उस पर मधु-मक्खियों का छत्ता है। अब बताओ तुम क्या करोगी ?

आचार्य शिप्य का प्रश्न समाप्त होते ही मंजरिका जैसे सोल्लास बोल उठी—"आचार्य शिप्य भला यह भी कोई समस्या हुई, यह तो बड़ी सरल-सी बात है कि मधु मक्खी के उस छत्ते को हटा दिया जायगा।

"और उस छत्ते के हटाने से जानती हो क्या होगा शुभे ?"

'जानती हूँ, आचार्य शिप्य, वह भी जानती हूँ यही न कि मधु मक्खी प्रहार कर उठेंगी।"

"देवी यह तुमने उचित ही कहा। पर शुभे उससे पहले की एक बात तो तुम भूली ही जा रही हो।"

"वह क्या आचार्य शिप्य ?" मंजरिका ने उत्सुकता से पूछा। उसकी दृष्टि-रेखा आचार्य शिप्य के मुख पर टिक गई। आचार्य शिप्य ने अपने पलक ऊपर उठाते हुए कहा—"प्रणय-व्यस्त मधु मक्खियों का विछोह जो हो जाएगा हमें उस ओर भी तो कुछ ध्यान देना होगा।"

आचार्य शिप्य के मुख से यह सुन मंजरिका स्तब्ध रह गई परन्तु साथ ही हँसे बिना भी न रह सकी। उन्मुक्त कण्ठ स्वर में बोली—"ओह, तो आचार्य शिप्य अब सुरक्षा प्रधान से कवि बन रहे हैं धन्य है धन्य है।" यह कहते हुए मंजरिका का समूचा अन्तराल कुहुक उठा मन-वीणियाँ झूल सी गईं और समूचा गात पसरा-सा गया।

परन्तु आचार्य शिप्य इस समय इस सब कुछ ही की केवल उपेक्षा कर रह गया। उसकी मुख मुद्रा गम्भीर हो उठी। तत्पश्चात अत्यन्त व्यग्र भाव से बोला—"शुभे यदि कोई हो तो उससे वाहन प्रस्तुत करने को कहो मुझे अभी तुरन्त कम्बुवर सिंह के यहाँ जाना होगा।"

मंजरिका यह सुन अवाक रह गई।

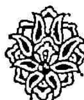
इसी मध्य दो सशस्त्र यक्ष-पुरुष सैनिक अभिवादन कर सुरक्षा प्रधान के सम्मुख आ खड़े हुए। उनके मुख पर व्यग्रता का भाव देख सुरक्षा प्रधान ने उत्सुकता से पूछा—"क्यों आयुष्मान क्या हुआ ?"

इस पर उनमें से एक सैनिक ने उसे सारी बात कह सुनाई। आचार्य शिप्य उसे सुन चौंके और अधिक दुविधा में पड़ गया। वास्तव में वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि पहले यक्षसंवाहक के आगार की ओर जाया जाए अथवा कम्बुवर सिंह के यहाँ। परन्तु जब मंजरिका ने आकर कहा—"आचार्य शिप्य रथ प्रस्तुत है।" तो फिर, उसे तत्परता से एक निश्चय करना ही पड़ा। एकाएक ही उसने उनमें से एक सैनिक को निकट आने का संकेत किया और उसे आदेश दिया—"नगर द्वार पर जो भी इस समय नियुक्त हो उससे कहो, सुरक्षा प्रधान का आदेश है कि कपाट तुरन्त बन्द कर लिए जाएँ और सुनो, जब तक उसे कोई दूसरी आज्ञा मिले तब तक वह उन्हें बन्द ही रखे।" सैनिक यह सुन तत्परता से अभिवादन कर नगर की ओर दौड़ने को उद्यत ही हुआ था

कि आचार्य शिष्य उसे टोक पुनः कह उठा—"और देखो तब तक तुम्हें भी बा
रहना होगा। जो भी तुम्हारे साथ हैं सभी यहीं के लिए तत्काल प्रस्थान करें और।
देखो कोई कुछ भी क्यों न कहे नगर द्वार किसी के लिए भी न खुले यहाँ तक
स्वयं गणाध्यक्ष के लिए भी नहीं।"

मंजरिका यह सुन घबरा-सी गई परन्तु सैनिक यह सब कुछ सुन जैसे अत्यधि
सुस्पष्ट ही उठा और अब प्रत्येक कर्त्तव्य के निष्ठा भाव से दृढ़ हो रहे। किन्तु एक
दूसरा सैनिक आचार्य शिष्य के संकेत पर वहीं खड़ा था। उसे सम्बोधित कर आचार्य शि
ने कहा—"और तुम तत्काल गणसंघाध्यक्ष के प्रासाद की ओर प्रस्थान कर, सभी सैनि
से सजग रहने को कहो।"

मंजरिका इन आदेशों को सुन स्तब्ध हो उठी और तत्काल कुछ भी समझ
में असमर्थ रही। हाँ इतना अवश्य समझ गई कि कदाचित नगर की स्थिति अप्रत्य
शित रूप में अति गम्भीर हो उठी है अन्यथा नगर द्वार को इस प्रकार बन्द करने क
आदेश कदापि न दिया जाता और न ही गणसंघाध्यक्ष के प्रासाद की ओर इस प्र
कोई सैनिक भेजा जाता। गणाध्यक्ष भी वहाँ गए हुए हैं यह बात सुनने के बाद चौंक
पड़ गई थी। और आचार्य शिष्य के आदेश से जब सावेग बाहर की ओर प्रस्थान कि
तो वह आशंका से एक बारगी आपाद शीर्ष प्रकम्पित हो उठी। उसे इस समय केव
एक बात ही सूझी। वह शीघ्र ही अन्तःपुर मणिमहल के कक्ष की ओर दौड़ सी।





बाईस

गणाध्यक्ष राजा चेटक का भद्र वाहन जब सामन्त भंवदेव के प्रासाद से बाहर निकला तो पर्याप्त दिन चढ़ चुका था। परन्तु इतनी देर तक हुई वार्ता अथवा मन्त्रणा का अन्ततः निष्कर्ष क्या निकला? इसका गणाध्यक्ष के मुख से कैसे स्पष्ट आभास मिल रहा था। वह कुछ कुछ क्या वास्तव में अत्यन्त उन्मन प्रतीत हुए।

यूं गणसंचालक स्वयं ही उनके स्वागत को आस्थानागार में दौड़े आए थे। उन्होंने उनके आगमन पर भारी हर्ष भी प्रगट किया था और फिर अति उत्साह से वह उन्हें अपने निजी कक्ष में भी लिवा ले गए थे। और अन्त में जब गणाध्यक्ष चलने लगे तो सामन्त भंवदेव उनके साथ न केवल द्वार मण्डप तक आए, वरन् उनका रथ जब तक दृष्टि से ओझल न हुआ वह वहीं खड़े रह उनकी ओर देखते रहे। किन्तु, राजपथ पर आते ही गणाध्यक्ष रथ के सहारे अपनी पीठ टेक पीछे की ओर जैसे लुढ़क से गए। उसी प्रकार लेटे रह न जाने क्या कुछ सोचते रहे। अन्ततः उनके मुख से निकला भारी निश्वास रथ के अन्तः भाग में फैल रहा साथ ही उनकी विचार तन्द्रा भंग हो उठी। नेत्र उठा बाहर की ओर झांका तो दृष्टि जैसे सचेष्ट हो रही मस्तिष्क में भी कोई विचार कौंध सा-गया। उद्विग्न हुए से कण्ठ स्वर में बोले—"छंदक रथ महाबलाधिकृत के प्रासाद की ओर ले चलो।"

स्वामी के मुख से आज सिंह सेनापति के लिए 'महाबलाधिकृत' शब्द को सुन छन्दक को कुछ आश्चर्य हुआ। कारण वह उन्हें सदा ही आयुष्मान् सिंह कह, सम्बोधित किया करते थे। अतः, वह सोचने लगा—'वैशाली के घटना प्रवाह ने अवश्य ही कोई गम्भीर मोड़ ले लिया है तभी तो ।'

रथ कभी का उनके पूर्व वाले मार्ग को पीछे छोड़ चुका था। अतः छंदक ने तत्परता से अश्वों की वल्गा खींच उसे पीछे की ओर मोड़ लिया। गणाध्यक्ष फिर रथ का सहारा ले पीछे की ओर लेट से रहे। और इसी के साथ उनके विचारों ने भी जैसे एक निश्चित प्रवाह का रूप ग्रहण कर किसी विशेष निष्कर्ष पर पहुंचने का अन्तिम प्रयास किया।

आचार्य शिष्य अजपर ने स्पष्ट हृदय एवं विवेकपूर्ण ढंग से अन्तर और बाह्य दोनों प्रकार की स्थिति का विश्लेषण कर, जब सिंह सेनापति की ओर दृष्टि उठाई तो उसे लगा जैसे उसके मन का कोई भारी भार स्वतः हल्का हो गया है। सन्तोष की सांस ले वह कुछ क्षणों तक सिंह की ओर ही देखता रहा। उसे कुछ ऐसा आभास हुआ कि उसके अग्रज गुरुबन्धु के मुख पर गर्व का सा भाव उभर आया है। वह देख

और भी अधिक सन्तोष का अनुभव हुआ। सिंह सेनापति कुछ समय तक तो उसका मौन रह पुन: गत दिवस ही स्वजयर द्वारा प्रस्तुत समस्या एवं उसके विश्लेषण पर गम्भीरता से मनन करते रहे। तत्पश्चात् उन्होंने सहसा अपनी दृष्टि उठा स्वजयर के मुख पर केन्द्रित कर दी। स्वजयर की दृष्टि नत हो रही। पर, साथ ही वह अपने अग्रज गुरुबन्धु का मन्तव्य सुनने के लिए उत्सुक हो उठा। सिंह सेनापति कुछ क्षणों तक तो अपने प्रमुख गुरुबन्धु के विस्तृत ललाट उन्नत नासिका विवेकालोकित मुखकान्ति तथा उसमें से झलकते उसके सौम्य-रूप को देखते रहे। तत्पश्चात् सहसा मौन भंग कर वह स्नेह सिक्त कण्ठ स्वर में बोले—'आयुष्मान स्वजयर! आयुष्मती मंजरिका का मन्तव्य केवल विचारणीय ही नहीं है वरन् उसका पालन भी होना चाहिए।" तनिक रुक वह फिर बोले—"आयुष्मान् राजगृह की इन घटनाओं की ओर से भला हम असावधान रह भी कैसे सकते हैं?

इसके पश्चात् वह कुछ सोचते हुए से मौन हो रहे। स्वजयर भी कुछ न बोला। परन्तु वह मन ही मन मंजरिका की कुशाग्र एवं व्यावहारिक बुद्धि का यथाय सराहता रहा। इसी मध्य किसी की पग आहट दोनों ही का ध्यान आकर्षित कर उठी। स्वजयर जैसे उपेक्षित हो सविनय तत्परता के साथ विश्रामासन से उठ खड़ा हुआ। किन्तु सिंह सेनापति को जैसे अनायास ही कोई बात स्मरण हो आई। देवी रोहिणी की ओर दृष्टि कर वह पूछने लगे—"क्यों आचार्य दुहिता क्या तुम्हें कुछ स्मरण है। जब तुम तक्षशिला से वैशाली आई ही थी तो भला उस समय मंजरिका की क्या आयु रही होगी?"

सिंह सेनापति के मुख से यह प्रश्न सुन स्वजयर विस्मय संकोच का अनुभव कर उठा। पर रोहिणी के मुख पर किंचित हर्ष का भाव छा गया कुछ मधुरता का सा भी। बोली—"क्यों आर्यपुत्र क्या मैं कभी आयुष्मती मंजरिका को भी भूल सकती हूँ?" तनिक रुक वह फिर कहने लगी—"जब मैं तक्षशिला से आई थी तो यहाँ वैशाली में आपकी माताम् तो थी नहीं। पर, देवी स्वरूपा माता वसुन्धरा ने यदि एक दिन को भी तो मुझे उनका अभाव नहीं खटकने दिया। तब मंजरिका केवल चार वर्ष की ही तो थी और उसकी उस समय की वे सभी बाल सुलभ क्रीड़ाएं मुझे ऐसे याद हैं, जैसे कल की ही तो बात हो।"

यह कह देवी रोहिणी ने जैसे साश्रु दृष्टि से उन दोनों की ओर देखा। स्वजयर पर अभी भी नत-मस्तक हुआ खड़ा था। दोनों के मध्य मंजरिका के सम्बन्ध में छिड़े इस प्रसंग विषय को सुन वह इस समय और भी अधिक संकोच का अनुभव कर उठा। उसे इस प्रकार संकोच से सिमटते देख सिंह सेनापति ने जैसे तत्काल प्रसंग को बदल, कहा—"देवी रोहिणी, आज एक बात को सुन न जाने क्यों मुझे आत्मिक गर्व का अनुभव हो रहा है।"

यह कहते हुए उन्होंने तनिक वाली दृष्टि से देवी रोहिणी की ओर देखा फिर जैसे किसी विचार में खो से गए।

देवी रोहिणी ने समझा स्वामी निश्चय ही उस वाली बात के प्रसंग में कुछ कहना चाहते हैं। वास्तव में वह उन पर अभी तक मौन ही थे पर वह इस सम्बन्ध उनका मन्तव्य-विशेषकर स्वजयर की ही उपस्थिति में जानने को उत्सुक हो उठीं।

सोत्साह वह पूछने लगी—"यह क्या बात है स्वामी ?"

सिंह सेनापति की दृष्टि उपट भ्रमर के मुख पर केन्द्रित हो गई। उन्हीं की ओर देखते हुए वह बोले—"देवी ! आयुष्मान् भ्रमर ने इस अल्पकाल में ही जिस कर्तव्य परायणता का परिचय दिया है उससे उन्होंने सचमुच ही प्रातः वन्दनीय आचार्य पाद बहुलाश्व का नाम सार्थक कर दिखाया है। तुम तो यह जानती ही हो देवी कि वैशाली में सुरक्षा प्रधान सदृश जटिल पद के दायित्व भार का निर्वाह कर ले जाना कितना असम्भव-प्राय कार्य है, परन्तु आयुष्मान ने प्रथम प्रहरी के रूप में नगर की केवल सुरक्षा व्यवस्था को ही सुदृढ़ नहीं किया है वरन् मगध की अस्थिर राजनीति का वैशाली पर क्या दुष्प्रभाव पड़ सकता है, उसका भी उन्हें पूरा बोध है। आयुष्मान् ने न केवल इस बात का ध्यान रखा है कि उस दिन बिम्बसार के छद्मवेश में मगधसंवाहक सामन्त मंजरेव के यहाँ जो व्यक्ति आया था वह कौन था वरन् वह यह भी भली भाँति जानते हैं कि सामन्त पुत्र मधव्य देव की अभी हाल की राजगृह-यात्रा का क्या अभिप्राय था। केवल वैशाली के ही नहीं वरन् राजगृह में इन दिनों द्रुत गति से चल रहे घटनाचक्र पर भी उसकी दृष्टि है और अब जिस रूप में उन्होंने सारी स्थिति का विश्लेषण कर मेरे सम्मुख जो चित्र उपस्थित किया है उसे सुन मैं तो केवल आश्चर्य चकित रह गया हूँ। और उससे भी अधिक आश्चर्य की बात तो यह है देवी, कि अपने इस कार्य कौशल एवं व्यवहार पटुता से उन्होंने अपने अधीनस्थ भद्र पुरुषों तथा सामान्य नागरिकों, दोनों ही वर्गों का समान रूप से विश्वास प्राप्त कर लिया है। यह सचमुच ही इनकी अद्भुत सफलता है।"

यह कह, सिंह सेनापति ने सगर्व देवी रोहिणी की ओर देखा। अपने पिता आचार्य बहुलाश्व के एक शिष्य की इस प्रकार प्रशंसा होते सुन देवी रोहिणी भी गर्व का अनुभव कर उठीं। भ्रमर ने भी गर्व का अनुभव किया परन्तु उससे भी अधिक उसे सन्तोष का और सन्तोष से भी अधिक कृतज्ञता का अनुभव हुआ। सप्रयास दृष्टि ऊपर उठा रोहिणी की ओर देखते हुए वह बोला—"देवी आचार्यपाद का शिष्य होना एक गौरव की बात है। यदि यह अकिंचन अपना सर्वस्व देकर भी उनके उज्ज्वल नाम को थोड़ा सा भी सार्थक कर सका तो मैं उसे निश्चय ही अपना सौभाग्य समझूँगा। और देवी उनके वरद हस्त ने तो मेरा वह उद्धार किया है कि ।"

यह कहते हुए भावुक शिष्य भाव-विह्वल हो उठा और हृदय से निकलती आने की कोई बात केवल कण्ठ तक आकर रुक गई। उसके नेत्र सजल हो उठे। परन्तु फिर भी जैसे वह भाव अपने मन की कोई व्यथा व्यक्त करने को आतुर हो उठा। स्खलित कण्ठ-स्वर में बोला—"और देवी इस कृतदास को तो देवों को गुरुदक्षिणा के लिए पौन दर्शन भी नहीं जुटा सका।"

यह कह उसके ओष्ठ फड़फड़ाते रह गए और नेत्रों से सहसा अश्रुधार फूट निकली। उसकी यह मनोदशा देख सिंह सेनापति जैसे कुछ आशंकित हो उठे। किन्तु देवी रोहिणी ने सहसा उसे अपनी ओर खींच अपने वात्सल्य पाश में समेट लिया। वह उसे सान्त्वना दिया चाहती थी परन्तु इस समय उसके मुख से भी कुछ नहीं निकल सका। इस आत्मीय मिलन को देख सिंह सेनापति भाव विभोर हो उठे किन्तु, प्रकट में उन्होंने

संयत कण्ठ स्वर में बोले—"आचार्य दुहिता न जाने कितने दिनों से मेरे मस्तिष्क में एक प्रश्न घूम रहा है। कई बार मन में आया भी कि तुमसे उस सम्बन्ध में कुछ पूछूं पर वह प्रश्न चूंकि एक नहीं दो परिवारों से सम्बन्धित है, इसलिए कुछ असमंजस-सा रहा।"

देवी रोहिणी उत्सुकता से अपने स्वामी की ओर देख उठीं। आचार्य शिष्य अभी भी अपनी भाव विह्वलता से पूर्णत: मुक्त नहीं हो सका था। अत: वह अपने अग्रज गुरुबन्धु का बात पर विशेष ध्यान न दे सका। सिंह सेनापति नेत्रकोरों से उसी की ओर देखते हुए आगे बोले—"देवी रोहिणी यह बात वास्तव में हमारे और बन्धुवर मेणियप्पल के परिवारों के मध्य की है।"

इतना कह सिंह सेनापति फिर रुक गए। वह क्या कुछ कहना चाहते थे देवी रोहिणी जैसे उसका आभास पा चुकी थी। परन्तु वह केवल आधी बात ही क्यों कह पाए इसलिए उसे कुछ दुविधा-सी हो गई। केवल दुविधा ही नहीं वरन् कुछ-कुछ शंका भी हुई। अत: वह इस बार अपने को न रोक सकी। अधीर हो पूछ उठी—"ऐसी वह क्या बात है आर्यपुत्र ?"

देवी रोहिणी की इस दुविधा को देख सिंह सेनापति के नेत्र मुस्करा उठे। उसकी ओर देखते हुए वह बोले—"देवी आशंका की ऐसी कोई बात नहीं। क्यों क्या कल रात आयुष्मती मंजरिका को आयुष्मान के साथ देख तुम स्वयं प्रसन्न नहीं हुई थीं ?"

स्वामी के मुख से अपनी ही किसी आकांक्षा के अनुरूप यह बात सुन देवी रोहिणी का मुख खिल उठा। चमकते कण्ठ स्वर में वह कहने लगी—"आर्यपुत्र मेरी बात छोड़ो मैं तो न जाने कब से से यही सोच रही थी, पर आप अब तक क्यों मौन रहे ?"

इसी मध्य धनंजय कुछ व्यग्रता के साथ पूछ उठा—'आर्य अब आप मुझे अमर हार के सम्बन्ध में कोई आदेश करें। उसे बन्द रखना कुछ अनुचित तो न होगा ?"

यह कह उसने दृष्टि उठा सवेग सेनापति सिंह की ओर देखा। सिंह सेनापति कुछ कहने को उद्यत ही हुए थे कि इसी मध्य आचार्य शिष्य ने पुन: अपना शीर्ष झुका सविनय कहा—"आर्य, यदि आप इस सम्बन्ध में भी कुछ स्पष्ट आदेश दे दें तो श्रेयस्कर रहेगा।"

देवी रोहिणी धनंजय के इन दोनों ही प्रश्नों को सुन हतप्रभ हो उठीं। वह उन दोनों की ओर देखती-सी रह गईं। सिंह सेनापति की मुख मुद्रा भी जैसे अकस्मात् अभिप्रेत हो गम्भीर हो उठी। और दृष्टि ? वह किसी समस्या में उलझ, निर्णय का प्रयास करती प्रतीत हुई। उत्तर में वह कुछ कहने को उद्यत ही हुए थे कि इसी मध्य गणाध्यक्ष का रथ तीव्रगति से प्रासाद-परिधि में प्रविष्ट हो गया। उन्हें इस प्रकार अप्रत्याशित रूप में आया देख सभी जैसे विस्मित हो उठे। किन्तु साथ ही वे उनका अभिवादन करते उनकी ओर बढ़ लिए। आचार्य शिष्य तो और भी अधिक तत्परता दिखा उनके रथ की ओर जैसे दौड़-सा लिया। गणाध्यक्ष भी उसके कन्धे का सहारा ले सम्हलते हुए से रथ से नीचे उतरने लगे। भूमि पर पैर रखते ही गणाध्यक्ष का हाथ आचार्य शिष्य के कन्धे को जैसे दृढ़ता से पकड़ने को उद्यत हो उठा। कन्धे पर हाथ रखते हुए वह बोले—"आयुष्मान् सिंह, वैशाली ने आयुष्मान् धनंजय को गुप्ता

प्रधान के पद पर नियुक्त कर ठीक ही किया। आज उसकी सफलता को देख मैं तो चमत्कृत दंग रह गया हूँ।"

यह कहते हुए वृद्ध गणाध्यक्ष के प्रसन्नता-मंडित नेत्रों में कुछ-कुछ गर्व का सा भाव उभर आया। और सिंह सेनापति गणाध्यक्ष के मुख से यह सुन संतोष का अनुभव किए बिना न रहे। नत मस्तक हो, सविनय बोले—"आर्य यह सब आपका ही आशीर्वाद है।"

इसी समय देवी रोहिणी कुछ व्यग्र कण्ठ स्वर में कह उठीं— आर्य आज तो आप अत्यधिक थके हुए प्रतीत हो रहे हैं अतः आप सीधे विश्राम कक्ष की ही ओर चलें।"

गणाध्यक्ष देवी रोहिणी के मुख पर छाए उस चिंता भाव को देख आत्मीयता का सा अनुभव कर उठे। पर, साथ ही उनके मुख पर एक खिन्न मुस्कान भी फैल गई। मन में न जाने कब से रुकी श्वास बाहर छोड़ते हुए वह व्यथित कण्ठ स्वर में बोले—"सौभाग्यवती तुम ठीक ही कहती हो। निःसंदेह आज यह वृद्ध बहुत थका हुआ है परन्तु वह विश्राम भी तो नहीं कर सकता। पुत्री जानती हो....।" यह कहते हुए जैसे उनका कण्ठ किसी भारी रोष से रुध सा गया। फिर सप्रयास बोले— पुत्री रोहिणी इस समय तो मुझे भी उस चिंताकक्ष की ही ओर चलने दो।"

चिंताकक्ष की ही दिशा में बढ़ते हुए वह पुनः बोल उठे— 'आयुष्मान् सिंह जानते हो आज प्रातः क्या हुआ? आज प्रातः मैं एकाकी ही राजकुमार मंजदेव के प्रासाद की ओर चला गया इस आशा से कि....।'

गणाध्यक्ष के मुख से निकलती कोई बात पुनः मध्य ही में रुक गई। फिर जैसे सहसा उन्हें कुछ स्मरण हो आया। सचेष्ट होते हुए से बोले—' हाँ तो आयुष्मान्, भला मैं क्या कह रहा था?"

सिंह सेनापति को लगा आर्य आज किसी बात पर निश्चित ही अत्यधिक उद्विग्न हैं। उनकी यह मनोदशा देख वह भी कुंठित हो उठे। परन्तु प्रकट में सर्वथा संयत रह बोले—"आर्य, आप कह रहे थे कि आज आप एकाकी ही आज मंजदेव के प्रासाद की ओर चले गए।"

और गणाध्यक्ष सिंह सेनापति के मुख से यह सुन कुछ ऐसे प्रसन्न हो उठे जैसे कोई खोई शृंखला मिल गई हो। और, कहीं वह फिर न खो जाए, इस भय से तत्परता के साथ बोल उठे—"भला आयुष्मान् वहाँ मुझ ऐसा क्या संकट था तो भी इसी मध्य आयुष्मान व्यवहार में जिस सजगता एवं दायित्व-परायणता का परिचय दिया वह केवल प्रशंसनीय ही है।"

सिंह सेनापति सविनय बोल उठे—"आर्य आयुष्मान स्वयं वैशालिकों को मोहित कर सका इस पर मुझे अत्यधिक हर्ष है भला इससे बढ़कर मुझे और क्या संतोष होगा।" फिर तनिक हर्ष का भाव प्रकट कर वह आगे बोले— 'आर्यवर, ठीक ऐसी ही एक बात मैं भी अभी-अभी देवी रोहिणी से कह रहा था मैं कह रहा था कि ।"

गणाध्यक्ष इसी मध्य तत्परता से बोल उठे—"यही कह रहे थे न आयुष्मान

कि अब तो आयुष्मान ध्वजधर आसन कार्य में पूरे दक्ष हो चुके हैं अतः उनके विवाह की भी कुछ चिंता करनी चाहिए।" यह कह, उन्होंने अपनी दृष्टि उठा सिंह सेनापति और फिर देवी रोहिणी की ओर देखा। शिलाखण्ड पर बैठे हुए वह बोले—"आयुष्मान मेणिमरत्न ने भी तो कल कला प्रांगण में मुझ से यही पूछा था। और आयुष्मान्, भला मेरे लिए इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या होगी?"

गणाध्यक्ष बेटक यह सब कुछ एक साँस में ही कह गए। उनके मुख से यह सुन देवी रोहिणी और सेनापति सिंह तो प्रसन्न हो उठे परन्तु स्वयं ध्वजधर को जैसे भारी विस्मय हुआ। किन्तु जब वह बोला तो उसमें विस्मय का पुट नहीं था और न ही संकोच का भाव था वरन् आपत्ति और स्पष्टोक्ति का एक अद्भुत मिश्रण था। आर्द्र कण्ठ स्वर में वह बोला—"परन्तु आर्यवर, यह कैसे संभव है। कुमारी मंजरिका एक कुलीन एवं श्रेष्ठी कन्या है।। वैशाली के ही नहीं वरन् समूचे वज्जिसंघ के अभिजात वर्ग में इस श्रेष्ठीकुल का विशिष्ट स्थान है। अतः भला उसकी तुलना में मेरा क्या अस्तित्व है मैं एक अज्ञातकुल शील ही तो हूँ इसके अतिरिक्त—।"

आचार्य शिष्य के मुख से निकलती बात मध्य ही में रुक गई फिर भी उसे लगा, जैसे वह आज अनायास ही मन के किसी भारी बोझ से मुक्त हो उठा है। फिर भी जैसे उसका हृदय विद्रोह करता रह गया।

तीनों से ध्वजधर का यह भेद छिपा नहीं था। तो भी देवी रोहिणी और सेनापति सिंह आज स्वयं उसी के मुख से यह सुन व्यथित हो उठे। किन्तु गणाध्यक्ष तत्काल एक जोर का ठहाका दे हँस पड़े। हँसी के रुकते ही उनकी मुख मुद्रा गंभीर हो उठी जिसे देख ध्वजधर एक बार को आपाद शीर्ष सिहर-सा गया। देवी रोहिणी एवं सिंह प्रकृतिस्थ हुए गणाध्यक्ष के मुख की ओर ताकते रहे। अंत में स्वयं गणाध्यक्ष ने इस गतिरोध को भंग किया। अपने स्वाभाविक भावपूर्ण कण्ठ स्वर में वह कहने लगे—"सौम्य आयुष्मानो और देवी-स्वरूपा आयुष्मती रोहिणी आज वैग के साथ फहराती वज्जिसंघ की धवल कीर्ति पताका पर पर्याप्त समय से एक काला धब्बा पड़ा हुआ था और गौरव से सदैव ऊर्ध्व मुख रहे रत्नजटित-स्वर्णिम गण मुकुट पर एक कलंक सा स्थिर हुआ था। और, आज जब वे दोनों ही आयुष्मान् सिंह श्रेष्ठीपुत्र मणिमरत्न एवं स्वयं आयुष्मान ध्वजधर के प्रयास से मिटते हुए जान पड़ रहे हैं तो फिर अज्ञात कुल एवं कुलीन का यह भेद भला किस प्रकार शोभास्पद होगा? आयुष्मान ध्वजधर, इस पृथ्वी पर जो भी एक बार अवतरित हो गया वह अवश्य ही प्रसव पीड़ा से कराहती किसी माता की कोख से उत्पन्न हुआ होगा फिर चाहे वह ज्ञात हो अथवा अज्ञात वह माता तो केवल वंदनीय ही है। और फिर यह प्रसव पीड़ा राजप्रासाद से निर्धन की झोंपड़ी तक एक समान ही तो है। फिर उस पीड़ा जनित संतान-संतान के मध्य भेद क्यों हो?" यह कहते हुए उन्होंने दृष्टि उठा ध्वजधर तथा फिर क्रमशः सेनापति सिंह और देवी रोहिणी की ओर देखा। और फिर सहसा कुछ स्मरण कर बोले—"आयुष्मान्, मंजरिका के साथ विवाह की बात सुन तुम्हें इस समय कदाचित् एक झिझक हो रही है। यह झिझक क्या है उसे मैं भली भाँति समझता हूँ और मेरी दृष्टि में वह कुछ स्वाभाविक भी है। परन्तु वैशाली में

तो सम्पत्ति का अभाव नहीं आयुष्मान्, केवल पुत्रों का अभाव है। मेरे पास कुल देवताओं की कृपा से अतुल सम्पत्ति है परन्तु देखो कोई पुत्र नहीं। अच्छा यदि मैं तुम्हें ही आत्मज रूप में स्वीकार कर लूँ तो क्या तुम्हें उसमें कोई आपत्ति होगी ?" यह कह गणाध्यक्ष जैसे उत्तर की प्रतीक्षा में शिलाखण्ड से उठ खड़े हुए।

उनके मुख से अकस्मात यह प्रस्ताव सुन देवी रोहिणी और सेनापति सिंह गद्गद् हो उठे, किन्तु अभयकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो उठा। अंतत: मौन भंग कर वह बोला—"परन्तु श्रद्धेय कुमार हल्ल और विहल्ल ने जिन परिस्थितियों में राजगृह का त्याग कर वैशाली की ओर प्रस्थान किया है तथा अब जब उनके आगमन की वेला सन्निकट हो घोषित होने के नाते क्या यह अधिकार केवल उन्हीं का नहीं है ?"

देवी रोहिणी और सेनापति सिंह अभयकर के इस उत्तर को सुन चकित हो उठे। और इसी मनःस्थिति में इस उत्सुकता से कि देखो गणाध्यक्ष अब क्या उत्तर देते हैं उनकी ओर देखने लगे। गणाध्यक्ष आचार्य शिष्य के उत्तर पर कुछ गर्व का सा अनुभव करते हुए बोले—"पुत्रवर, यह अधिकार का प्रश्न नहीं भावना का विषय है। फिर दूरदर्शिता के भी तो अपने कुछ अनुमान हैं। आयुष्मान्, वज्जिसंघ के इस वृद्ध सेवक का मस्तक अब पूरे बीस वर्षों से देदीप्यमान गण-मुकुट के भार से नत रहा है अतः उसकी रक्त धमनियों में गण परम्पराओं के प्रति निष्ठाभाव का प्रवाहित हो जाना स्वाभाविक है और यदि राजपुत्रों के प्रति किंचित अविश्वास का भाव आ जाए तो इसमें भेदभाव भी आश्चर्य नहीं। कौन जाने कब उनकी महत्वाकांक्षा बलवती हो उठे और वे इस पुनीत गण की जाज्वल्यमान परम्पराओं को यज्ञ की आहुति की भेंट कर अपनी लिप्सा का साधन बना उसकी धवल कीर्ति पर कलंक लगा बैठें अतएव उनसे बचना ही श्रेयस्कर है।"

गणाध्यक्ष की रक्त धमनियों में प्रवाहित इस गणनिष्ठा को देख दोनों ही उनके सम्मुख श्रद्धातिरेक से नत मस्तक हो गए और देवी रोहिणी तथा सिंह अपने पूर्ववत मौन भाव से अब अभयकर की ओर देख उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। अभयकर बोला—"परन्तु आर्य कुमार हल्ल विहल्ल के सम्बन्ध में मुझे गुप्तचरों से जो कुछ भी विदित हुआ है उसके अनुसार वे तो सचमुच साधुमना ही हैं। उनका केवल इतना ही तो दोष है कि वे राजकुल में उत्पन्न हुए हैं, अतएव उन्हें उनके इस उत्तराधिकार से वंचित करना क्या उनके साथ अन्याय नहीं होगा ?"

गणाध्यक्ष दृढ़ता से बोल उठे—"नहीं नहीं आयुष्मान्, मेरी सम्पत्ति पर केवल मेरा अधिकार है या फिर गणशासन का। और, यदि उन दोनों के मध्य कोई हो सकता है तो वह केवल वह व्यक्ति है जिसे मैं देना चाहूँ और वह अब केवल तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हो सकता। यह मेरा निश्चय है पुत्रवर।" कहते हुए वह पुनः शिलाखण्ड पर बैठ गए। फिर सेनापति सिंह और देवी रोहिणी की ओर देखते हुए बोले—"आयुष्मान् यह मेरा दृढ़ निश्चय ही नहीं अन्तःप्रेरणा भी है और यह भाव अभी-अभी सहसा उदित हो मेरे सारे अंतर में व्याप्त हो उठा है। मैंने आयुष्मान् में निश्चय ही जैसे अपनी किसी निजी दुविधा का समाधान पा लिया है।"

यह कह वह फिर सिंहासन से उठ खड़े हुए। ध्वजधर के कन्धे पर अपना हाथ रख अंतर में व्याप्त निश्चय की दृढ़ता से उसे दबाते हुए बोले—"आयुष्मान्, मुझे इस समय गणाध्यक्ष न समझ यदि केवल एक वृद्ध पिता ही समझो तो मेरे लिए वह कितनी सुखद अनुभूति होगी संभवतः तुम उसकी कल्पना न कर सको।" यह कहते हुए वह तनिक रुके। ध्वजधर उत्तर में केवल मौन ही रहा। गणाध्यक्ष फिर अनुनय के से कण्ठ स्वर में बोल उठे—"पुत्रवर, एक याचना कर रहा हूँ स्वीकार करोगे ?"

ध्वजधर गणाध्यक्ष के करुण भाव से प्रभावित हुए बिना न रहा। उसका अंग प्रत्यंग रोमांचित हो उठा परन्तु उत्तर में क्या कहे उसे कुछ नहीं सूझा। उसे लगा जैसे वह अनायास ही दैव संयोग से किसी सुखद बंधन में बंधा जा रहा है। उसका विद्रोही हृदय इस बंधन का प्रतिरोध किया चाहता था किन्तु प्रकट में वह वयोवृद्ध के इस याचना युक्त करुण भाव के प्रत्युत्तर स्वरूप न केवल नत मस्तक हो रहा बल्कि विनयातिरेक से इतना झुका इतना झुका कि अंततः उसका शीर्ष उस व्यक्ति के पैरों पर जा टिका। गणाध्यक्ष उसके शीर्ष का स्पर्श पा पुलकित हो उठे। उसे तत्परता से ऊपर उठा कहने लगे—"पुत्रवर, तुम्हें पा मैं धन्य हो उठा हूँ। मुझे विश्वास था कि तुम मेरा अनुरोध अवश्य स्वीकार करोगे।" और फिर सहसा सिंह दम्पति की ओर देख अभिभूत कण्ठ स्वर में बोले—"क्यों आयुष्मान् सिंह यदि आज ही यह मंगल आयोजन हो तो कैसा रहेगा ?"

देवी रोहिणी और सिंह ने इस पर भारी हर्ष प्रकट करते हुए मानो एक स्वर में कहा—"आर्य भला इससे श्रेयस्कर संवाद और क्या हो सकता है ?" पर यह सब कुछ सुन ध्वजधर के मुख पर कोई दुविधा उभर आई। कुछ आश्चर्य प्रकट करता हुआ सा वह बोला—"आर्य भला यह कैसे संभव है ? गुप्तचरों की सूचना है कि दोनों कुमारों का पीछा करती हुई कुमार कोणिक की वाहिनियाँ इस समय वैशाली की ओर प्रस्थित हैं।"

गणाध्यक्षश्री उत्तर में तत्परता से बोल उठे—"तो इससे क्या हुआ कुमार ! क्या युद्ध का प्रयाण गीत और विवाहोत्सव का मंगल गान दोनों एक साथ ही नहीं गाये जा सकते ? वे अवश्य ही एक साथ गाये जा सकते हैं आयुष्मान् ! एक हाथ में मंगल आयोजन के मोदक तथा दूसरे हाथ में धनुष टंकार यदि भृकुटि तनी हुई तो नीचे ओष्ठों पर मधुर मुस्कान इधर मंडप में यदि कोकिल कण्ठियों के मुख से निकलता सोल्लास हास्यपूर्ण गान तो उधर रण प्रांगण से गंभीर ध्वनि करता दुन्दुभि, और फिर खड्गों के साथ परस्पर युद्ध चिंगारी मार एक दूसरे पर आक्रमण, तथा फिर भीषण प्रहार से आहत हो गिरता अबोध मानव का अट्टहास चीत्कार और फिर उस पर छा जाने वाली विजय की मुस्कान। आयुष्मान्, यही सब कुछ तो जीवन है। विवाह यदि प्रणय की पराकाष्ठा है तो युद्ध संघर्ष की। जीवन का प्रणय भी चाहिए और संघर्ष भी अन्यथा वह गतिरोध से अवरुद्ध हो अपने में ही घुट-मर जाए। और फिर आयुष्मान् वैशाली के वीर वीर पुरुषों ने तो सदा ही इन दोनों का एक साथ हँसते-गाते आलिंगन किया है। रण के युद्ध से पूर्व यदि आज ही समय

इसे कोई संयम मीत गा लिया जाए तो भला उससे श्रेयस्कर और क्या होगा? बल के रस प्रोत्सुर्ता की बीमत्सता में कौन जाने क्या शेष केवल अवशेष बन रह जाय और फिर मेरा तो यह वृद्ध शरीर ठहरा।" यह कहते हुए वह पुनः शिलाखण्ड पर बैठ गए। उनका कण्ठ स्वर जैसे कुछ शिथिल हो उठा परन्तु नेत्र निराशा का सा स्पर्श करके भी दीप्त हो उठे, मुख-रेखाओं पर उत्साह लहर उठा और दृष्टि क्षितिज पर न जाने क्या कुछ देख स्वप्निल सी हो रही। किन्तु दीप अभी उनके मुख पर मनस्तोष का भाव देखकर भी व्यथित हो उठे। और देवी रोहिणी के तो नेत्र भी सजल हो उठे। बोलीं—"आर्य ऐसा न कहें, अभी तो वैशाली की रक्षा के लिए उसके तरुण पर्याप्त सक्षम हैं।"

"है पुत्री अवश्य है, परन्तु क्या उनके अभिभावक उन पर होते प्रहारों को देख केवल मूक ही खड़े रहेंगे।"

अभयार गणाध्यक्ष की बातों पर पहले तो कुछ क्षणों तक निष्पलक हुआ शून्य में देखता रहा और फिर उसने प्रथम पुरुषमुं और आचार्य सुहिता की ओर देखा। इस बार दोनों ही एक साथ बोल उठे—"आयुष्मान्, इस समय हमें तुम्हारे सौभाग्य पर यदि ईर्ष्या हो रही है। आर्य के आदेश का पालन करना ही अब तुम्हारा पुनीत कर्तव्य है।"

परन्तु अभयार इसके उत्तर में भी मौन ही रहा। भाग्य के इस अकस्मात आरोह पर विचारता सा वह बोला—"परन्तु पितृवर, एक निवेदन है।'

अभयार के मुख से प्रथम बार पितृवर का सम्बोधन सुन न केवल गणाध्यक्ष वरन् सिंह दम्पति का अंतस्तल भी पुलकायमान हो गया। परन्तु गणाध्यक्ष ने शीघ्र ही अपने भाव को संयत कर कहा—'अवश्य निवेदन करो पुत्र! मैं तुम्हारे मुख से निस्संकोच भाव से निवेदन सुनूं भला इससे बढ़कर भी कोई क्षण मेरे जीवन में आएगा? क्यों आयुष्मान् सिंह मैंने ठीक कहा न?'

सिंह सेनापति कुछ उत्तर दें उससे पूर्व ही अभयार मानों अपनी किसी भूल को मन ही मन संशोधित कर बोल उठा—"पितृवर, एक नहीं दो निवेदन करने का लोभ हो आया है।"

गणाध्यक्ष भाव-विभोर हो बोले—'पुत्रवर, तुम्हारा यही लोभ तो मेरी निधि है। उसे अवश्य प्रकट करो आयुष्मान्!

"भाग की सम्पत्ति को प्राप्त करने के पश्चात् उस पर मेरा सम्पूर्ण अधिकार होगा।" अभयार ने तनिक संकोच एवं विनयपूर्वक कहा।

प्रत्युत्तर स्वरूप गणाध्यक्ष के मुख से निकल पड़ा—"पुत्रवर, तुम्हारा संतोष ही मेरा हर्ष है। अतएव मुझे स्वीकार है।"

अभयार आगे बोला—"पितृवर इस प्रथम निवेदन के ही अन्तर्गत में सम्बन्ध की दृष्टि से देवी वेसमना का भ्राता हुआ चाहे अनुज ही सही, तो भी दोनों कुमारों का मातुल तो हुआ ही, अतएव अग्रज भी। जिन परिस्थितियों में मेरे भगिनी-पुत्र यहाँ आ रहे हैं उनका मुझे अपने मन चाहे ढंग से स्वागत करने का अधिकार मिलना चाहिए। उसमें कोई बाधा तो नहीं होगी?"

पर शेर करने की आवश्यकता तो नहीं स्वामी।"

"क्यों देवी? सिंह सेनापति के मुख से जैसे यह प्रश्न अनायास ही निकल गया। रोहिणी उत्तर में बोल उठी—"इसलिए स्वामी कि विनाश ही तो निर्माण का आधार शिला है।"

"किन्तु देवी यह यह विनाश तो नहीं वरन् आत्मघात है।"

'आत्मघात? देवी रोहिणी ने जैसे साश्चर्य पूछा। फिर बोली—'आत्मघात नहीं स्वामी विचार का द्वन्द्व है और आदर्श की परीक्षा कौन किससे श्रेयस्कर है उसका निर्णय और प्रस्तुत कर्त्तव्य के प्रति आह्वान। उसकी ओर से विमुख होना आत्मघात है एक दम ही तो आत्मघात है स्वामी।

सिंह सेनापति को लगा जैसे वह एक निरर्थक विशेषण है कर्त्तव्य के प्रति आह्वान तो बिलकुल ही नहीं। सोचने लगे—"सिंह यह तो निश्चय ही वैशाली की एक पुनीत परम्परा का हनन हुआ। एक आततायी जब उन पर प्रहारोद्यत हो तब वैशालिक आपस ही में लड़ पड़ें भला यह आत्मघात नहीं तो और क्या हुआ?"

वह इसी दिशा में आगे कुछ और सोचा चाहते थे कि इसी मध्य देवी रोहिणी बोल उठी—'स्वामी जब दो-दो कर्त्तव्य एक साथ आह्वान कर उठें तो फिर उनमें से एक का निश्चय करना अनिवार्य हो जाता है जानते हो वह क्या है?"

सिंह सेनापति उत्तर में मौन रहे। देवी रोहिणी फिर अपनी ही बात को आगे बढ़ाती हुई बोल उठी—"स्वामी और वह निश्चय यह करना होता है कि दोनों कर्त्तव्यों में से कौन-सा प्रमुख है। आप इस समय केवल वैशाली के एक सामान्य नागरिक नहीं वरन् समूचे वज्जिसंघ के महाबलाधिकृत हैं, समूचे गणराज्य की रक्षा का भार आपके कन्धों पर है केवल आप ही के कन्धों पर। साम्राज्य का नाग इस समय फुंकारता हुआ जो इस ओर बढ़ा चला आ रहा है कहीं वह गंगा की पावन धारा को पार कर वज्जि तट पर न आ पहुँचे इस बात केवल यही देखना आपका प्रमुख कर्त्तव्य है और शेष कर्त्तव्य हैं समस्त वैशालिकों का।"

"किन्तु देवी वैशालिक तो इस समय "

"स्वामी यह आपकी भूल है। वास्तव में आपके अन्दर बैठा वैशालिक ना ही आस्था मात्र डगमगा उठा है अन्यथा आपने वैशालिकों पर कभी भी इस प्रकार सन्देह न किया होता।"

सिंह सेनापति यह सुन जैसे भारी अपमान का अनुभव कर उठे। और वह इस समय न केवल खीझ कर रह गए, वरन् आवेशित उच्च कण्ठ स्वर में सावधान करते हुए कह उठे— 'देवी रोहिणी!

किन्तु देवी रोहिणी अपने स्वामी के इस आवेश से तनिक भी विचलित नहीं हुई। सर्वथा संयत रह वह बोली— आर्यपुत्र जो कुछ भी मैंने कहा है वह यथार्थ सत्य है यदि आप निष्ठावान वैशालिक हैं तो दूसरों को भी वही समझना होगा केवल अपने ही को वैसा समझना तो स्वयं निष्ठा का अनादर हुआ निष्ठा तो एक ज्योति के समान है जो परीक्षा के समय स्वयं दीप्त हो उठती है। फिर स्वामी, एक बात और भी तो है वैशालिकों ने संकट के समय ही के लिए तो आपकी महाबलाधिकृत चुना

है। संकट के समय आप वज्जिसंघ की बाहर से रक्षा कर सकें यही दायित्व तो उन्होंने आपको प्रदान किया है। अतः आज जब वैशाली विचार द्वन्द्व में व्यस्त है, आपका प्रमुख कर्तव्य है कि आप उसकी सीमान्त की रक्षा करें।"

सिंह सेनापति इस बार जैसे सहज भाव में बोले—"देवी मुझे यह कर्तव्य बताने की आवश्यकता नहीं पर एक कुशल महाबलाधिकृत भी जन सहयोग के अभाव में निस्सहाय हो जाता है, इस स्पष्ट तथ्य को तुम क्यों भूले जा रही हो? फिर यह साधारण अनोत्साह ही तो नहीं वरन् सैनिकों का रणकौशल भी है।"

"तो फिर स्वामी आप अपने कर्तव्य को देखें शेष वैशालिक अपने कर्तव्य को देखते रहेंगे।" रोहिणी ने मानों दृढ़ता से कहा।

"और यहाँ जो रिपु पक्ष के पंचमांगी हैं उनको.....? सिंह सेनापति ने जैसे एक दूसरी समस्या प्रस्तुत की।

देवी रोहिणी के पास जैसे उसका उत्तर भी था। वह तत्परता से बोल उठी—"वह तो आयुष्मान् व्यवहार का कर्तव्य है आप उसके कर्तव्य में भला क्यों हस्तक्षेप करें?"

और सुरक्षा प्रधान आचार्य शिष्य जब सहसा पवन के एक प्रबल झोंके के समान सामन्त पुत्र अभयदेव के सामने आकर खड़ा हुआ तो वह केवल स्तब्ध रह गया। यद्यपि आचार्य शिष्य उस समय निश्चय ही कर्तव्य प्रेरित था, फिर उसके मुख पर लेशमात्र भी कोई कठोर भाव नहीं था वरन् जैसे उस पर एक सहज मुस्कान बिखर रही थी। उसे इस प्रकार निःशस्त्र देख अभयदेव को आश्चर्य हुआ। वास्तव में उसके इस साहस को देख वह उसे सराहे बिना नहीं रहा। किन्तु उसके साथ इस समय जो अन्य सशस्त्र सामन्त पुत्र मंत्रणा-व्यस्त थे वे आचार्य शिष्य के इस अकस्मात आगमन पर उत्तेजित हो उठे। एक सावेश कह उठा—"जानते नहीं यह एक सामन्त का निजी आवास है, उसमें इस प्रकार प्रविष्ट होने का भला आपको क्या अधिकार था?"

आचार्य शिष्य ने जैसे उसकी इस बात को सुना ही नहीं। केवल अभयदेव पर दृष्टि केन्द्रित कर वह समुस्कान कह उठा—"कदाचित इन बन्धुवर ने मुझे सुरक्षा प्रधान समझने की भूल की है। पर इस समय मैं वह नहीं हूँ यदि इसका प्रमाण चाहिए, तो आप मेरी इस अंगुलि की ओर देखो मैं उनसे गण-शासन की मुद्रा भी उतार आया हूँ।" यह कह वह कुछ रुक रहा। सभी उपस्थित सामन्त पुत्र उसकी ओर शंकित हुए से देख उठे। परन्तु उनमें से एक के मुख पर स्पष्ट उसमें संदेह का भाव उभर आया। बोला—"आचार्य शिष्य हम मूर्ख नहीं। क्या हम इतना भी नहीं जानते कि तुम यहाँ निःशस्त्र आए हो और आवास के बाहर तुम्हारे सशस्त्र गण पुरुष खड़े हैं।"

आचार्य शिष्य ने उस युवक की ओर न देख अभयदेव पर ही अपनी दृष्टि केन्द्रित कर मृदुल कण्ठ स्वर में कहा—"मित्रवर, यह भी एक व्यर्थ का संदेह है।

किन्तु इसके पश्चात् भी जैसे उनमें से कोई आश्वस्त न हो सका। अभयदेव ने भी अविश्वास की सी दृष्टि से आचार्य शिष्य की ओर देखा, दृढ़ स्वर में पूछने लगा—"तो फिर आप यहाँ क्यों आए हैं?"

सभी सामन्त पुत्र उत्तर की प्रतीक्षा में उत्सुकता से आचार्य श्रिप्र की ओर देख उठे। उन्होंने समझा इस बार यह अवश्य ही विचलित हो पड़ेगा। आचार्य श्रिप्र के मुख से भी कुछ क्षणों पूर्व की मुस्कान सहसा विलीन हो गई और उसका स्थान गांभीर्य ने ले लिया।

सहसा नगर द्वार पर होते दुन्दुभि निनाद से गगन प्रकम्पित हो उठा। उसे सुन व्यवस्था-व्यस्त गण्य पुरुष सावधान हो गए तथा नागरिकों के मन का सन्देह भाव और प्रगाढ़ हो उठा। किन्तु साथ ही मुख्य राजपथ का रूप और अधिक उत्साह से संवरता चला। उस पर थोड़े-थोड़े अन्तर पर बने तोरणों एवं वंदनवारों को देख कर तो कोई केवल यही अनुमान लगा पाता कि आज महानगरी में जैसे किसी चिर आकांक्षित मंगल समारोह का आयोजन किया है। धर्म-धर्म राजपथों पर पौरजनों की भीड़ सघन होती चली यह और सघन होती जा रही थी कि इसी मध्य मुख्य राजपथ के एक स्थान पर अकस्मात् एक रथ आ रुका सम्मुख खड़ी भारी भीड़ को देखा रथारूढ़ व्यक्ति उसमें बैठे-बैठे ही उच्च कण्ठ स्वर से पुकार उठा—"सुनो ऐ वैशाली के नागरिको सभी कान खोलकर सुन लो।"

सभी उपस्थित नागरिक उसकी ओर उत्सुक दृष्टि से देख उठे। रथारूढ़ व्यक्ति क्षणिक रुकने के पश्चात् पुनः पूर्व से भी अधिक उच्च स्वर में कह उठा—"अरे ओ वैशाली के नागरिको क्या तुमने कुछ नहीं सुना ?"

नागरिकों को हतप्रभ हुआ देख वह एक उच्च ठहाका दे हँस पड़ा। हँसी को रोक इस बार कुछ मंद स्वर में वह बोला—"सौम्य बनो बनो यह भी अच्छा ही हुआ कि तुमने कुछ नहीं सुना।"

और तत्पश्चात् वहाँ एक बार और हँसी का ठहाका गूंज उठा। अपनी इस हँसी को रोक संभवतः वह अभी कुछ और भी कहता कि तभी अश्व सारथी ने अपने स्वामी की अकस्मात् यह परिवर्तित मनोदशा देख उसके आदेश की प्रतीक्षा किए बिना ही रथ आगे बढ़ा दिया। यह असंभव बढ़ा ही था अतः अपने को सम्हाल न सका और पीछे की ओर लुढ़क पड़ा। उसका आधा शरीर रथ में ही टिका रहा तथा अर्द्धभाग अधोमुख हो लटक गया। एक नागरिक ने जब सावेग दौड़ उसे व्यवस्थित करने का प्रयास किया तो रथ उसके पैर को ही रौंदता आगे निकल गया। इस पर वहाँ बड़ा घोष जनसमुदाय उत्तेजित हो जैसे एक स्वर में ही चिल्ला उठा—"अरे भी आकाश देखता नहीं यह क्या हो गया ?"

परन्तु सारथी ने जैसे यह सब कुछ नहीं सुना बस अपने अश्वों को दौड़ाने में ही व्यस्त रहा।

श्रेष्ठी भिरुविरुक के विक्षिप्त हो जाने का यह-समाचार सारी वैशाली में मानों विद्युत गति से फैल गया। उसे सुन सभी स्तब्ध हो उठे, परन्तु सामन्त कार्तिकेय ने जब यह सुना तो वह हँस पड़े। उन्हीं के पास इस समय सामन्त वीरभद्र भी बैठे थे वह भी हँसे बिना नहीं रहे। किन्तु फिर एक क्षण में ही दोनों गम्भीर हो उठे। और उदास मुद्रा से एक दूसरे की ओर देखने रह गए। दोनों ही के मुख पर इस समय केवल एक ही भाव व्याप्त था पर जैसे उन दोनों ही में से किसी को भी उस भाव

विरोध की ओर अधिक ध्यान देने का उन्हें अवकाश नहीं था। वे किसी गूढ़ मंत्रणा में व्यस्त थे, और फिर उसी में व्यस्त हो गए।

और भल्लसंवाहक के प्रासाद में जब यह समाचार पहुँचा तो सन्देशवाहक कपिल ने कुछ रहस्यपूर्ण दृष्टि से दासी-कन्या छाया की ओर देखा। यह आज प्रातः से अब तक एक नहीं अनेक संवाद भल्लसंवाहक तक पहुँचा चुका था अतः आज उसके निकट ऐसे संवादों में कोई नवीनता नहीं रह गई थी और यदि कोई थी भी तो केवल एक संवाद विशेष में। छाया के चिबुक को ऊपर उठा उसके नेत्रों में झाँकता हुआ वह बोला—"देवी, आज तो हमारे प्रसन्न होने का दिन है और तुम उदास दीख रही हो!"

और दिनों जब कपिल उसके चिबुक को इसी प्रकार उठा उसके नेत्रों में झाँकता था तो उसके कपोल एक अम्बा का स्पर्श पा लालिमा से दमक उठते थे। पर आज वह इस सब कुछ के पश्चात् भी केवल खिन्न ही बनी रही। उसके नेत्र सहमे से प्रतीत हुए। न जाने क्यों कपिल के बार-बार के आश्वासनों के पश्चात् भी उसके अन्तर में बैठा कोई भय निकल नहीं पा रहा था। अन्ततः वह स्वयं भी कुछ गम्भीर हो उठा। उसके हाथ को अपने हाथों में ले फिर बना चकित, उससे भी अधिक व्यथित के साथ पूर्ण आत्मीयता से दबाते हुए बोला—"प्रिये विश्वास रखो आज संध्या बेला में जब सूर्य अस्ताचल की ओर बढ़ेगा तो उसका रंग कुछ और ही होगा और कल भोर की फूटती किरणों में से भी कोई नया ही प्रकाश प्रस्फुटित होगा।"

किन्तु उसके पश्चात् भी छाया के मुख पर छाया नैराश्य जैसे अविचल ही तो बना रहा। अन्ततः कपिल अपने को निरुपाय अनुभव कर उठा। संभवतः वह अभी कुछ और कहना चाहता था कि इसी समय एक युवक ने प्रासादागार में प्रवेश किया। इतने दिनों पश्चात् अपने स्वामी-पुत्र प्रद्युम्नदेव को अपने ही आवास में आया देख कपिल को निश्चय ही हर्षित हो उठना चाहिए था। पर उस क्षण वह हर्षित नहीं हो सका, उसे देख वह केवल विस्मित हो उठा। और उसके इस मुख भाव को देख प्रद्युम्नदेव एक लम्बा ठहाका दे हँस पड़ा। फिर गम्भीर हो बोला—"क्यों बन्धुवर कपिल क्या घबरा गए?"

कपिल निश्चय ही घबरा गया था। छाया तो सहमी-सी खड़ी ही थी। यहाँ तक कि वह एक बार भी अपनी दृष्टि उठा अपने स्वामीपुत्र की ओर न देख सकी। उसको इस प्रकार सहमे देख, प्रद्युम्नदेव फिर हँस उठा। हँसते हुए ही पूछने लगा—"क्यों छाया क्या मुझे पहचाना भी नहीं?"

छाया को उसकी यह हँसी अत्यन्त भयावह लगी। वह अन्तर में बुरी तरह काँप उठी।

और उधर, नगर-द्वार के विशाल कपाट अभी भी यथावत बन्द थे। जैसे वे आज घूमेंगे ही नहीं और यदि घूमे भी तो फिर जैसे कोई भयंकर विस्फोट हो उठेगा। क्या विस्फोट हो उठेगा? यद्यपि यह अभी केवल भविष्य के गर्भ में ही था परन्तु अभी नागरिकों के निकट अब यह किसी प्रकार रहस्य भी नहीं रह गया था। और जब रहस्य खुल ही गया तो फिर कोई कैसे हाथ पर हाथ धरे बैठा रहता। समूचा नगर ही तो सशस्त्र हो उठा। परन्तु किसका खड्ग किस पर प्रहार करेगा अभी से यह कहना

अनिश्चित था। सम्भव है औरों को यह दुविधा रही हो पर आचार्य शिष्य जैसे निश्चित था। वह अपना खड्ग देवी शिप्रा की ओर बढ़ा बोला—"देवी शिप्रा लो यह खड्ग आज अपने हाथ में ही लो। जब तक मैं हूँ तब तक तो शायद तुम्हें उसे चलाने की आवश्यकता न पड़े परन्तु उसके पश्चात्...।"

यह कहते हुए सहसा उसका कण्ठ कुछ भर सा आया। किन्तु फिर भी जैसे वह प्रयास करता रहा। रुंधे कण्ठ स्वर से बोला—"देवी दासता से मृत्यु कहीं श्रेयस्कर है परन्तु देखो आत्मघात नहीं वह तो जघन्य अपराध है।"

आचार्य शिष्य के मुख से यह सुन देवी शिप्रा अवश्य ही व्याकुल हो उठी। परन्तु प्रकट में उसका तटस्थ भाव किंचित भी विचलित नहीं हुआ। उसके ओष्ठकोर सहज मुस्कान से फैल उठे। बोली कुछ नहीं। हाँ नेत्र पलक उठा आचार्य शिष्य की ओर अपलक देखा उसकी दृष्टि में आत्म-विश्वास झलक रहा था।

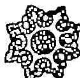
आचार्य शिष्य पराभूत हो उसकी ओर देखता रह गया।

सहसा नगर द्वार से पुनः तूर्य नाद हो उठा। उसे सुन आचार्य शिष्य तुरन्त अश्वारूढ़ हो नगर द्वार की ओर दौड़ लिया। चलते-चलते कंचुक से बोला—"मित्र कंचुक, अट्टालिका की चिन्ता न करना अब तो बस केवल एक ही चिन्ता करनी है और वह तुम्हें बताने की आवश्यकता नहीं।"

कंचुक अपना खड्ग ऊपर आकाश की ओर फेंकते हुए, फिर साथ ही तत्परता से उसे सम्हालते हुए बोला—"स्वामी देखा इस खड्ग को कितनी भी दूर फेंकूँ वापस लौट कर आएगा मेरे हाथ में ही।"

आचार्य शिष्य उसकी इस बात को सुन हँस उठा। बोला—"सो तो ठीक है कंचुक परन्तु शत्रु ऊपर आकाश में नहीं आगे-पीछे है। देवी शिप्रा के साथ आज निकलना कोई सरल कार्य नहीं।"

कंचुक नत मस्तक हो कह उठा—"आर्य, उस ओर से आप पूर्ण आश्वस्त रहें।"





चौबीस

श्रेष्ठी मित्तविदक अपने भव्य प्रासाद के सभी बन्धनों को तोड़ बाहर की ओर भाग लिया। वह भागता जा रहा था और साथ ही असंगत रूप में कुछ कहता भी जा रहा था। गण-महानगरी की क्या कुछ परम्पराएँ हैं वे तो दूर की बात रही उसे अब अपने प्रासाद के ही किसी शिष्टाचार का ध्यान नहीं था। उसको इस मनोदशा में देख राजपथ पर आते-जाते बालक और नारियाँ कुछ भयभीत-सी हो उठीं, परन्तु प्रौढ़ अथवा वृद्ध नागरिक सहानुभूति से उसकी ओर देखते रह गए। युवक हँस पड़े।

सामन्त कार्तिकेय सामन्त वीरभद्र से बोले—"बन्धुवर इस मूर्ख ने तो हमारा जैसे साथ ही रहस्य खोल कर रख दिया।"

सामन्त वीरभद्र बोले—"तो फिर क्या बात है, बन्धुवर? जो हम करना चाहते हैं, वह किसी से छिपा भी क्यों रहे? हम कोई अपराध तो कर नहीं रहे जो कुछ कर रहे हैं वह वैशाली ही की तो एक पुनीत परम्परा की रक्षा है और वह हमें करनी ही होगी।"

और फिर सम्मुख खड़े एक युवक की ओर देखते हुए वह बोले—"क्यों आयुष्मान्, तुम सब कुछ समझ गए न न समझे हो तो एक बार और समझ लो बार कदापि खाली न जाए अन्यथा यह सब कुछ रखा रह जाएगा।"

धनुर्धारी युवक ने नत मस्तक हो कहा—"आर्य भला कभी यह भी सम्भव है, वैशालिक का प्रहार और वह खाली रह जाए।"

सामन्त कार्तिकेय उसकी कमर थपथपाते हुए बोले—"आयुष्मान तुमको तुम्हारा यह साहस आत्मविश्वास और दृढ़ निश्चय निस्संदेह तुम्हारे अनुरूप ही है।"

ये सब बातें गणसंवाहक के ही प्रासाद में एक नीचे के कक्ष में हो रही थीं और स्वयं गणसंवाहक इस समय ऊपर अपने विश्राम कक्ष में थे। वह वहाँ अभी-अभी पहुँचे थे और गवाक्ष छिद्रों में से झाँक नगर द्वार एवं उसकी ओर आते मुख्य राजपथ के दृश्यों को देख मन ही मन कुछ सोच रहे थे।

सहसा कक्ष में सन्देशवाहक कनिष्ठ ने प्रवेश कर कहा—"आर्य श्रेष्ठी मित्तविदक विक्षिप्त हो गए हैं!"

गणसंवाहक ने जैसे यह सुना ही नहीं। हाँ-हूँ कुछ भी तो नहीं किया। दृष्टि भी पूर्ववत गवाक्ष छिद्रों में से बाहर नगर द्वार की ओर भाँकती रही। द्वार-कपाट अभी भी बन्द थे और वहाँ नगर की एक नहीं अनेक कुल वधुओं, कुमारी कन्याओं

तथा प्रतीक्षाओं से उसका समूचा निकट क्षेत्र जैसे लहलहा रहा था। उधर, कुसुम राजपथ पर जन-समूह जैसे उमड़ा पड़ रहा था। उसे देख कदाचित् वह अपने से कुछ पूछ ही रहे थे कि इसी मध्य संदेशवाहक कपिल पुनः कह उठा—"आर्य, शस्त्रागार में कुमार प्रचण्डदेव पधारे हैं।"

गणसंवाहक के लिए जैसे इस समय इस तथा किसी भी संवाद में कोई नवीनता शेष नहीं रह गई थी। फिर भी उसे सुन उनके मुख पर हर्ष और रोष का साथ ही आश्चर्य का भाव छा रहा। किन्तु प्रकट में न तो वह उसे कक्ष में लिवा लाने की बात कह सके और न ही यह कह सके कि वह वापस लौट जाए। केवल पूर्ववत दृष्टि किए बाहर की ओर ही देखते रहे। परन्तु संदेशवाहक आज इस समय एक नहीं कई संवाद एक साथ लाया था। गणसंवाहक की जिधर वह खड़ा था पीठ थी फिर भी वह इस बार अपना मस्तक परयन्त नत कर, इतना नत कि उसने अपने जीवन में इससे पूर्व कदाचित् ही किया होगा विनयातिरेक के स्वर में बोला—"आर्य मुझे आज रात्रि तक का अवकाश देने की कृपा करें मुझे एक महत्त्वपूर्ण कार्य है।"

वैशाली की वर्तमान स्थिति में अपने संदेशवाहक के मुख से महत्त्वपूर्ण कार्य एवं उसके लिए अवकाश की बात सुन गणसंवाहक जैसे कुछ विस्मित हो उठे। बाहर की ओर से दृष्टि हटा, वह उसकी ओर मुख कर बोले—"आयुष्मान कपिल आज वैशाली में तुम्हें कोई महत्त्वपूर्ण कार्य है! भला वह क्या कार्य है?"

अपने वृद्ध स्वामी के मुख से यह सुन वह लेशमात्र को भी आतंकित नहीं हुआ। हाँ कुछ संकोच का सा अनुभव अवश्य कर उठा। तो भी उसे उत्तर देना था। अपनी दृष्टि ऊपर उठाए बिना ही बोला—"आर्यवर, मुझे आशीर्वाद दें।"

गणसंवाहक ने साश्चर्य पूछा—"सो किस बात के लिए आयुष्मान?"

संदेशवाहक कपिल सर्वथा अविचलित रह उत्तर में बोला—"आर्यवर, आज रात्रि वेला में राजा चेटक के प्रासाद में एक सामूहिक विवाहोत्सव है और उसमें मुझे भी सम्मिलित होना है।"

"तुम्हें भी सम्मिलित होना है? किसके साथ?" गणसंवाहक के मुख पर एक साथ ही आश्चर्य और आवेश का भाव छा उठा। संदेशवाहक कपिल ने इस बार जैसे साहस कर अपनी दृष्टि तनिक ऊपर उठाई। फिर नत मस्तक हो बोला—"आर्य वर देवी छाया के साथ और आर्य कुमार प्रचण्डदेव भी तो।"

कपिल के उत्तर का एक-एक शब्द जैसे गणसंवाहक पर वज्र प्रहार कर उठा। भारी उत्तेजना से उनका मुख तमतमा गया। नेत्र आग्नेय हो उठे। आवेश से कण्ठ-स्वर रुद्ध हो उठा। क्रोध से कंपकंपाते हुए बोले—"अरे ओ मातुल पुत्र क्या तुम्हें भी यही करना था?"

परन्तु संदेशवाहक यह समझने में असमर्थ रहा कि गणसंवाहक ने यह वाक्य स्वयं उसके लिए अथवा अपने ही पुत्र प्रचण्डदेव के लिए कहा है। अतः वह उत्तर में, मौन रहा। मौन रहे रहे ही क्रोधाभिभूत गणसंवाहक के मुख से निकलती प्रताड़नाओं को सुनता हुआ वह कक्ष से बाहर हो लिया। गणसंवाहक कहते रह गये—"मेरा पुत्र सामन्त मंगरदेव का पुत्र—प्रचण्डदेव—एक ऐसे विवाह मंडप में जहाँ एक अज्ञात

इस युवक का पाणिग्रहण होगा अथवा भी पाणिग्रहण करायगा! एकदम असम्भव! एक सामन्त पुत्र और वह एक अज्ञात कुल युवक के साथ बैठेगा जहाँ—जहाँ एक दासी कन्या भी बैठेगी। फिर, वह जैसे इसी की रट लगाते रह गए!

उधर, नगरद्वार के पास न जाने कब से खड़ी मंजरिका अंततः क्षुब्ध हो उठी। अर्घ्य सामग्रियों से सज्जित रजत-आधार अर्घ-कलश हाथ पर टिकाए एक वही वहाँ नहीं खड़ी थी, वरन सामन्त-पुत्री चारुस्मिता, महाश्रेष्ठी अग्रोमी रत्न कमल और न जाने कितनी अन्य श्रेष्ठी एवं सामन्त-पुत्रियाँ इस समय वहाँ उपस्थित थीं। देवी रोहिणी भी अब तक वहाँ आ पहुँची थी। अतः मंजरिका क्षुब्ध होकर भी प्रकट में कुछ न कह सकी। वह मन-ही-मन कुछ कह कर रह गई। उसका कण्ठ भी स्वाभाविक गति से अन्य अनेक कण्ठों से प्रस्फुटित होते मंगल गान में सहयोग देता रहा। यदा-कदा उनके इस मंगल गान को प्रकम्पित करता पृष्ठ भाग में खड़े जन-समुदाय के मध्य से उत्थित उच्च कण्ठ-स्वर में जयघोष भी फूट निकलता। उसे सुन मुख्य राजपथ के तोरण-वन्दनवारों का रूप और प्रखर हो उठता। सहसा राजपथों के दोनों ओर खड़े वृक्षों की विशाल शाखा प्रशाखाओं पर निर्मित मचानों से वादक-मण्डलियों का सुमधुर स्वर लहराता फूट निकला और उसके फलस्वरूप जैसे समूची महानगरी में ही उत्साह का संचार हो उठा।

परन्तु नगर द्वार की दूसरी ओर, बाहर, इस समय एक दूसरा ही दृश्य उपस्थित था। गजराज सचनक आरूढ़ मगध-कुमारों की देह न केवल मार्गजन्य धूलि धूसरित थी बल्कि अबाध गति से दौड़ते आने के कारण उनके शरीर से स्वेद-जल भी प्रवाहित था जिससे उनके वस्त्र अंग-प्रत्यंग से बुरी तरह चिपट उठे थे। मुख पर यात्रा-श्रम की क्लान्ति व्याप्त थी तथा कण्ठ बुरी तरह शुष्क हो उठा था। राजगृह से पलायन के समय यद्यपि उन्होंने वैशाली को ही लक्ष्य बनाया था। पर इस समय उन्हें देख कुछ ऐसा लग रहा था जैसे लक्ष्य पर पहुँचने के पश्चात् भी उन्हें कोई विशेष प्रसन्नता नहीं हुई। वे अभी भी स्पष्टतः उदास-मन तथा उचाट-चित्त दीख रहे थे तथा तत्क्षण उन्हें देख केवल यही प्रतीत हो रहा था कि पराजय की खिन्नता जैसे साकार रूप में वहाँ आ उपस्थित हुई हो। द्वार के उस ओर नगर के अन्दर में उत्साह का जो संचार था उसकी ओर से वे केवल उदासीन ही प्रतीत हुए और सम्भवतः इसी उदासीनता के कारण दोनों राजकुमार परस्पर निकट बैठे रहने के पश्चात् भी केवल मौन हुए बैठे रहे।

अन्त में यह मौन भंग किया विहल्ल ने। वह खिन्न हुआ सा बोला—
"बन्धुवर!"

अपने अनुज के इस सम्बोधन पर हल्ल ने उत्तर में हाँ-हूँ कुछ भी न कहा। वह मौन भाव से उसकी ओर देख कर रह गया। विहल्ल इस क्षण हल्ल के मुख की भारी उदासी को देख सिहर-सा उठा। परन्तु अगले क्षण ही अपने को संयत कर उसने जो कुछ कहना चाहा था, उसे ही कहने के अभिप्राय से बोला—"क्यों बन्धुवर, वैशाली आकर हमने क्या भूल नहीं की? जिस संकट को पीठ दिखाकर हम राजगृह से भाग उठे थे, क्या अब वह ही यहाँ भी प्रस्तुत न होगा? नगर द्वार के उस ओर से

हमारे स्वागत निमित्त गाता यह सुमधुर कण्ठ स्वर न जाने कब रणभेरी में परिणत हो जाये। अब हमारे यहाँ आने से यह किसी प्रकार भी तो असम्भव नहीं रह गया। कुमार कौणिक वैशाली पर अवश्य ही आक्रमण करके रहेगा और वैशालिक भी उसका सामना किए बिना न रहेंगे। और उसका परिणाम ? बंधुवर यह तो युद्ध सम्मुख है।"

विहल्ल क्या कहने वाला था हल्ल उसे वास्तव में पहले ही जान गया था। तो भी वह उसका उत्तर देने में जैसे असमंजस रहा। वह उसका भला क्या उत्तर दे यह सोचते-सोचते उसकी उदास मुखमुद्रा गंभीर हो उठी।

वह मन ही मन सोचता रहा— विपत्ति का आना अपने आप में एक दुर्भाग्य है, परन्तु यदि इस विपत्ति में कोई अनुज भी सहभागी बन जाए तो वह निश्चय ही और भी बड़ा दुर्भाग्य है। परन्तु अपने अन्तर के इस भाव को प्रकट किए बिना ही वह सहज ढंग में बोला—"आयुष्मान् फिर इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प भी तो नहीं था।"

राजा को बन्दी बना लिए जाने की बात वह उसे अब भी बताने का साहस न कर सका।

'क्यों नहीं था बन्धुवर ?" विहल्ल तत्परता से बोला— 'क्या हम तथागत के संघ में प्रश्रय नहीं पा सकते थे ? आखिर मनुष्य के लिए वही तो मात्र एक ऐसा निकेत है जहाँ सभी विकार अपना अन्तिम आश्रय पाते हैं।"

हल्ल अनुज की इस बात को सुन हल्का-सा एक ठहाका दे हँस पड़ा। बोला— "आयुष्मान्, बौद्ध संघ तो स्वयं ही इस समय संकटग्रस्त है। महत्त्वाकांक्षी देवदत्त हिंसा का मार्ग ग्रहण कर बलात् मुखत्व प्राप्त करने के लिए उतारू है। देखो तो यह भी कैसी विडम्बना है ? धर्म का अनुशासन भी भला कहीं बलात् प्राप्त किया जा सकता है ? फिर धर्म और राजनीति में अन्तर ही क्या रह गया ?

और यह कहते हुए उसके मुख में मानों किसी भारी पराजय पर खिन्नता का अनुभव कर बरबस एक साँस बाहर निकल गई और फिर जब उसके फलस्वरूप मन का भार कुछ हल्का हो गया तो वह बोला—"आयुष्मान्, यह तो सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार है और यदि इस अंधकार पर विजय पा उसे आलोकित करना है तो उसके लिए संघर्ष अनिवार्य है। यह एक चिरंतन सत्य है। इस सत्य का चरितार्थ रूप ही तो तपस्या है और उससे विमुख होना पलायन है।"

विहल्ल ने तत्परता से परन्तु सहज रूप में प्रश्न किया— "तो फिर बन्धुवर हमने राजगृह में ही यह संघर्ष क्यों नहीं किया ?"

हल्ल ने भी उसी तत्परता से उत्तर देते हुए कहा—"आयुष्मान हम कर सकते थे अवश्य कर सकते थे परन्तु हमने जान-बूझ कर ऐसा नहीं किया। क्यों ? क्योंकि यह एक विवेकपूर्ण सिद्धान्त है कि मानवीय विकारों को उनके प्रथम उठान में कदापि न छेड़ा जाए, अन्यथा वे और अधिक उग्र हो उठते हैं।"

"और फिर चाहे वे अपने प्रथम ही उठान में सब कुछ नष्ट विनष्ट क्यों न कर दें ?" विहल्ल ने फिर तर्क प्रस्तुत किया।

हल्ल ने कहा—"परन्तु आयुष्मान्, तनिक यह भी तो कल्पना करो कि यदि प्रतिरोध होता तो फिर क्या होता ? राजगृह में जो कुछ अब हुआ है उससे कई गुना अधिक रक्तपात हुआ होता और इस रक्तपात में सर्वाधिक क्षति निरीह प्रजा की होती उस प्रजा की जिसके कल्याण के लिए ही यह राज्य की व्यवस्था है। उसी प्रजा के श्रम पर तो हमारा यह राज प्रासाद खड़ा है और उसी के बलिदानों पर हमारे वैभव का यह साम्राज्य टिका है। फिर भी यदि हम उसके प्रति निष्ठावान न रह सकें तो तुम्हीं बताओ फिर भला इससे अधिक घिनौना और कौन हो सकता है ?

विहल्ल को अपने अग्रज की यह बात सर्वथा निरर्थक प्रतीत हुई। उसे स्पष्ट ही आभास हुआ कि इन सभी बातों के पीछे निश्चय ही कोई गंभीर रहस्य छिपा है, जिसे उससे अब तक छिपाया जा रहा है। तनिक सोच वह फिर कहने लगा—"परन्तु बन्धुवर, जिस रक्तपात को टालने के अभिप्राय से हम यहाँ आए हैं क्या उसकी पुनरावृत्ति अब यहाँ नहीं होगी ? कुमार कुणिक अपनी वाहिनियों को ले यदि इस समय इधर ही की ओर अग्रसर हो तो इसमें क्या आश्चर्य है।"

विहल्ल की यह बात सुन हल्ल को लगा जैसे उसके मुख से अनायास ही कोई ज्वलंत तथ्य निकल गया है। वह कुछ सहम-सा गया। तो भी प्रकट में सर्वथा संयत रह, बोला—"आयुष्मान् राजनीति के गतिमान क्रम में सब कुछ हो सकता है। यह तो प्रायः निश्चित है कि रक्तपात होगा पर यह राजगृह वाले रक्तपात से कुछ भिन्न होगा। कुछ भी हो, युद्ध खुले आँगन में ही शोभा देता है।"

यह कह हल्ल तनिक रुक जैसे कुछ सोचता-सा रहा। फिर बोला—"आयुष्मान्, फिर शक्ति की शक्ति ही से तो टक्कर होगी।"

"और संभवतः इस टक्कर में एक स्वतन्त्र राष्ट्र केवल ग्रास बन कर रह जाए। फिर क्या यह शरणदाता राष्ट्र के प्रति विश्वासघात नहीं हुआ ?" यह कहते हुए विहल्ल ने अपनी दृष्टि उठा हल्ल की ओर देखा। विहल्ल के इस तर्क ने हल्ल को जैसे दुविधा में डाल दिया। वह उसका निराकरण करने के प्रयास स्वरूप बोला—"आयुष्मान्, विश्वास रखो यह तो राजनीति के सुस्थापित दोष हैं जिन्हें परम्पराओं की संज्ञा दे सहज रूप में स्वीकार कर लिया गया है अन्यथा तर्क का कहीं भी अन्त न होता और क्रिया शून्यता से वंचित रह जाती। अतएव परम्परा को ही तथ्य रूप में स्वीकार कर संतोष की साँस लेना श्रेयस्कर है। और यह परम्परा नहीं है जिसे हमने इस समय अपनाया है।'

हल्ल के अन्तिम वाक्य में विराम की दृढ़ता प्रतीत हुई। अतः विहल्ल इस बार कुछ मौन रह गया परन्तु वह अभी बिलकुल निरुत्तर नहीं हुआ था यह उसके मुख-भाव से स्पष्ट दीख रहा था। जैसे कोई अन्य तर्क प्रस्तुत करने, को वह अपना कण्ठ-स्वर साध विचारों को शब्दों में बाँधने का प्रयास ही कर रहा था कि इसी मध्य उसकी दृष्टि सहसा पीछे छूटे मार्ग की ओर घूम गई। उसने देखा कुछ अश्व तीव्र गति से दौड़ते हुए इधर ही की ओर आ रहे हैं। उन्हें देख वह चौंक उठा। उसके मुख की रही-सही आभा भी पूर्णतः निस्तेज हो उठी। वह निश्चय ही घबरा उठा था। भर्राए कण्ठ स्वर में बोला—"तो बन्धुवर, जिस संकट की आशंका भी अब वह सम्मुख

ही प्रस्तुत है।" और फिर नैन संकेत से उसने हल्ल का ध्यान उस ओर आकृष्ट करने का प्रयास किया। हल्ल ने भी जैसे सावधान हो, उधर की ओर देखा। वृक्षों के झुरमुट में से कई अश्व अनुक्रम से बाहर निकल तीव्र गति से नगर की ओर दौड़ते चले आ रहे थे। परन्तु वे अभी पर्याप्त दूर थे।

द्वार-शीर्ष पर खड़े सुरक्षा-प्रधान आचार्य सिम्ह की सतर्क दृष्टि भी इस समय तक उस ओर घूम चुकी थी और इन अश्वों को आते देख रक्षा-प्राचीर पर खड़े अन्य सैनिक भी पहले से अधिक सावधान हो उठे थे। उन्होंने अपने शस्त्रों को सम्भाल लिया।

इसी मध्य द्वार के इस ओर नगरभाग में मुख्य राजपथ पर एक अश्व वाहन द्रुत गति से दौड़ता आता दिखाई दिया और वह जन-समूह के निकट पहुँच खड़ा हो गया। उसके पीछे भागते आ रहे अन्य वाहन भी सहसा जहाँ के तहाँ खड़े हो गए। अग्रगामी वाहन पर इस समय एक श्वेत पताका फहरा रही थी अतः उसे देख किसी को भी यह समझने में विलम्ब न लगा कि उसमें कौन आया था। वाहन के रुकते ही उसमें से सर्वथा साधारण परन्तु शालीनतापूर्ण परिधान में देवी सिम्हा नीचे उतर सी। देवी सिम्हा को सम्मुख देख जन समूह में जैसे भारी हलचल-सी मच गई। *उत्साह के आवेग में सभी उसी ओर भाग लिए। देवी सिम्हा का मार्ग अवरुद्ध* हो उठा।

देवी सिम्हा को इस प्रकार भारी भीड़ से घिरा देख आचार्य सिम्ह कुछ झल्ला-सा गया पर मन ही मन उसे एक सुखद अनुभूति भी हो रही। तो भी वह इस समय समर्थ भट-पुरुषों को व्यवस्था के लिए ललकार उठा। उधर, द्वार के समीप खड़ी कन्याएँ तथा नववधुएँ भी जैसे देवी सिम्हा को देखने को आतुर हो उठीं। प्रतीक्षा में सभी की दृष्टि उस ओर केन्द्रित हो गई। यदि नहीं हुई तो केवल एक की और वह स्वयं कुमारी मंजरिका थी। उसके शीर्ष पर इस समय एक स्वर्ण कलश रखा था। उस ओर सर्वथा उपेक्षा का भाव लिया वह ध्यानस्थ हुई केवल उस ओर ही देखती रही जिधर इस समय आचार्य सिम्ह खड़ा था और इस सारे दृश्य को देख भारी गर्व का अनुभव कर रहा था। सम्भवतः उसके इस गर्व का मंजरिका की सूक्ष्म दृष्टि से साक्षात्कार हो रहा। वह कुछ खिसिया-सा गया। परन्तु अगले क्षण ही आचार्य सिम्ह ने अपनी दृष्टि उठा उधर की ओर देखा जिधर से कि अश्व प्रायः पूर्ववत गति के साथ सावेग दौड़ते चले आ रहे थे। उन्हें इस प्रकार आते देख वह दुविधा-ग्रस्त हो उठा।

और फिर उसके नेत्रों के सम्मुख महानगरी की सारी अन्तः स्थिति साकार रूप ग्रहण कर आ उपस्थित हुई। परन्तु उसे लगा वह जिस समस्या विशेष पर जितना अधिकाधिक सोचता जा रहा है वह भी उसी परिमाण में उलझती चली जा रही है। वैशाली का आन्तरिक कलह और विशेषकर गणसंवाहक का विरोध कब नया रूप ग्रहण कर, अन्ततः विकट परिस्थिति उत्पन्न कर दे यह चिन्ता उसे इस समय अन्दर ही अन्दर खाए जा रही थी। वह भली भांति जानता था कि देवी सिम्हा की सामय कुमारों के स्वागत निमित्त आमन्त्रित कर उसने स्वयं ही स्थिति को और भी अधिक विषम बना लिया है, परन्तु इस सब कुछ का पूर्वाभास होते हुए भी वह न जाने क्यों इसका लोभ संवरण नहीं कर सका। क्यों? उसका अन्तर ही उसे इस प्रश्न का उत्तर दे उठा। परन्तु

इस उत्तर के साथ ही उसके अन्तर में एक अन्य प्रश्न उठ खड़ा हुआ—प्रत्यक्ष में मंजरिका और अन्तर में देवी सिप्पा—क्या यह दोनों ही के प्रति विश्वासघात नहीं हुआ? अपने से बोला—"अवश्य, यह तो सचमुच निम्नतम श्रेणी का विश्वासघात हुआ।" यह सोचते हुए उसका हृदय किसी भारी आत्मग्लानि का-सा अनुभव कर उठा। परन्तु, इसी क्षण जैसे कोई अन्तर में उसे सावधान कर कह उठा—"अवश्य, यह समय वैयक्तिक बातों पर सोचने का नहीं। देखता नहीं वैशाली पर इस समय विपत्ति के काले मेघ छाए हुए हैं।" जैसे ऊपर सचमुच मेघ छाए हुए हों उन्हें देखने के लिए उसकी दृष्टि अनायास आकाश की ओर उठ गई। उसे लगा कि सूर्य की प्रखर उग्र रश्मियाँ मानो असंख्य जिह्वाओं में परिणत हो चटकारें लेती हुई नाच रही हैं, वैसे ही जिस प्रकार महारोषण रक्त-पिपासु खड्ग चमचमाते हैं। युद्ध-विभीषिका की आशंका साकार रूप ग्रहण कर उसके नेत्रों के सम्मुख आ उपस्थित हुई जिसे देख वह एक बारगी आपाद शीर्ष सिहर उठा। किन्तु दूसरे ही क्षण विवेक का सहारा ले अपने को संयत करने का प्रयास करते हुए उसने दोनों ओर के दृश्यों पर विहंगम दृष्टि डाली। अब इस समय तक झुरमुट को पार कर मुख्य मार्ग पर आ चुके थे। उधर गण्य पुरुषों के प्रयास स्वरूप नागरिक गण देवी सिप्पा का अवरुद्ध मार्ग प्रशस्त कर पीछे हट पंक्तिबद्ध खड़े हो चुके थे।

फिर भी आचार्य सिप्प जनता को सावधान कर उठा। वैशालियों को सावधान करता हुआ वह कह उठा—"भद्रजनों! वैशाली के लिए इस समय एक-एक क्षण मूल्यवान है।" और, उसका यह आह्वान पर्याप्त समय तक प्रतिध्वनित होता नागरिकों के कानों में गूंजता रहा।

देवी सिप्पा इस समय अपनी मादक मण्डली से घिरी सहज संकोच भाव से आगे की ओर अग्रसर थी। किन्तु उसके चलने की गति धीमी थी। उसे इस प्रकार मन्द गति से चलते देख आचार्य सिप्प कुछ खीझ-सा गया किन्तु शान्त हो सशंकित दृष्टि से उधर की ओर देखता भी रहा। यह देख मंजरिका के मन में आया—"धैर्य के इस क्षण को यहीं छोड़ क्यों न मैं प्रासाद की ओर भाग लूँ।" परन्तु अब तक देवी सिप्पा उसके अत्यन्त निकट आ पहुँची थी। देवी सिप्पा स्वभाव से संकोच शील थी तथा मितभाषिणी भी। तो भी इस अवसर पर जो उसका दायित्व था उससे वह नहीं चूकी। मंजरिका के अत्यन्त समीप पहुँच उसने सर्वथा सहज ढंग तथा मृदुल स्वर में कहा—"देवी मंजरिका तुम्हें बधाई है।"

यह सुन, जैसे आन्तरिक प्रसन्नता से उसका मुख दीप्त हो उठा। मंजरिका ने उसकी ओर से यह तनिक भी आशा नहीं की थी। अतः वह दुविधा-सी में पड़ गई। सोचती रही कि देवी सिप्पा ने क्या सचमुच उसे सम्मानित किया है अथवा उस पर उसका व्यंग्य प्रहार हुआ है। अतः वह तत्काल यह निर्णय न कर सकी कि उसका क्या उत्तर है। परन्तु किसी निर्णय पर पहुँचने के पूर्व ही जैसे उसके मुख से स्वाभाविक गति से निकल गया—"देवी सिप्पा तुम्हें भी तुम्हारे सौभाग्य पर बधाई है।"

देवी सिप्पा ने नेत्रकोरों से उसकी ओर देखा। उसके मनोभाव को वह समझ चुकी थी तो भी प्रकट में वह केवल तटस्थ भाव दिखा कर रह गई। वास्तव में वह

और, यह कह वह उन्मत्त ठहाका दे हँस उठा। उसकी हँसी में निश्चय ही एक रहस्यपूर्ण, आतंकित करती-सी गम्भीरता थी जो सहज ही में सर्वत्र छा गई। उसका कष्ट स्वर कण्ठ स्वर में वे दर्पित शब्द और फिर उसकी हँसी का वह ठहाका नागरिकों के कानों में गूँजता रहा और वह न जाने कब तक गूँजता रहता कि सहसा नगर के मध्य भवास में कहीं किसी कांस्य घड़ियाल पर प्रचण्ड प्रहार हो उठे। उसे सुन श्रेष्ठी मित्रविंदक फिर एक उन्मत्त ठहाका दे हँस उठा।

समूचे वातावरण में गम्भीर सन्नाटा-सा छा गया।

श्रेष्ठी मित्रविंदक के विक्षिप्त प्राय कण्ठ स्वर और कांस्य घड़ियाल के भीषण निनाद को सुन सभी नागरिक आतंकित हो उठे। सब ही की तो सुध मात्रा निस्तेज हो गई। आशंका भरी सहमी दृष्टि से वे द्वार-शीर्ष पर खड़े आचार्य शिष्य की ओर देख उठे। वह इस समय नगर द्वार की ओर बढ़ते आ रहे यवनों को देख रहा था। सहसा उधर की ओर से दृष्टि फेर उसने अपने निकट खड़े शस्त्रधारी गणपुरुषों को कुछ संकेत किया। और उसके उस संकेत पर, एक-एक कर कई गणपुरुष देखते-देखते ही तत्परता से रज्जुओं के सहारे प्राचीर से बाहर की ओर कूद पड़े। नगर द्वार तो अभी भी बन्द था ही। नगर घड़ियाल पर प्रहारों का क्रम भी यथावत् गतिमान था। रज्जुओं के सहारे सैनिकों को बाहर, नीचे की ओर कुदाने के पश्चात् आचार्य शिष्य जैसे तत्काल आगे कुछ भी सोचने में असमर्थ रहा। बस असहाय दृष्टि से वह द्वार के समीप खड़ी एक नहीं अनेक कन्याओं की ओर देख सका। उसने देखा वे सभी इस समय त्रस्त हरिणियों की भाँति एक दूसरे की ओर देख-देख भयभीत हुई जा रही थीं। फिर उसकी दृष्टि अकस्मात् 'कमल' मंजरिका और देवी शिप्रा पर जा टिकी। मंजरिका के मुख पर अति भारी निराशा का भाव व्याप्त था, और देवी शिप्रा की दृष्टि उसी की ओर ऊपर, नगर-द्वार के शीर्ष पर केन्द्रित थी। किन्तु उसके मुख पर इस समय भी स्वस्थ भाव व्याप्त था। वह देख आचार्य शिष्य जैसे चौंक पड़ा। सोचने लगा कि यह कोई योग साधी है अथवा पाषाण मूर्ति? परन्तु दूसरे ही क्षण उसे देखकर मानों उसके अन्दर की व्यग्रता लज्जित हो रही। वह मन-ही-मन 'धन्य-धन्य' कह उठा और साथ ही उसके हृदय में उत्साह का संचार हो उठा और फिर निकट में हो खड़े अनिरुद्ध को वह कोई आदेश दे सोपान पर से शीघ्र उतरता अपने अश्व की ओर बढ़ लिया।

कांस्य घड़ियाल की अविराम टंकारों पर आचार्य शिष्य के सुदीप्त अश्व की पद चापें गूँज उठीं।

सहमे हुए उदास नागरिकों के मुख पर फिर उत्साह का भाव संचरित हो उठा। पर श्रेष्ठी मित्रविंदक की वह विक्षिप्त हँसी अब तक वैसे अबोध हो बुरी तरह सहम, सभी के वक्ष से चिपट उठी।

गणसंचालक सामन्त संजयदेव का रोष इस समय जैसे अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। दाएँ हाथ से अपनी पूरी शक्ति के साथ घड़ियाल पर अनगिनत प्रहार करते रहने के कारण उसके वस्त्र बिखर उठे थे तथा श्रम से वसन स्वेद-सिक्त हो गए। वह कांस्य घड़ियाल पर प्रहार करते जा रहे थे तथा उसी के साथ-साथ उच्च अनवरत गम्भीर, परन्तु विक्षिप्त प्राय कण्ठ स्वर में कहते जा रहे थे—"मैं महासंहारक हूँ,

वैशाली की सर्वोच्च नियामक संस्था गणसंथागार का मैं पूर्णाधिकार सम्पन्न अधिपति हूँ। मैं किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं वरन् स्वयं राजा चेटक मेरे प्रति उत्तरदायी है। अरे मेरे प्रति न सही संथागार के प्रति तो है ही। फिर भी मेरी यह उपेक्षा क्यों ?"

यह कह, उनका गम्भीर स्वर जैसे विश्राम की इच्छा से कुछ हल्का हुआ। परन्तु दूसरे ही क्षण अन्तर में फिर आवेश उठी किसी अन्य हिलोर के साथ वह पुनः दृढ़ हो उठा। वह उच्च स्वर में कहने लगे—"गणसंस्थागार के अधिकारों की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है केवल मेरा। राजा चेटक यदि चाहे तो भी वह कदापि अधिनायक नहीं बन सकता। गणसंथागार उसे स्वेच्छाचारी बनने का अधिकार कभी नहीं दे सकता। अन्यथा या तो वह स्वयं नहीं रहेगा या फिर मैं नहीं रहूँगा संथागार नहीं रहेगा और जब गणसंथागार ही नहीं रहेगा तो फिर यह शासन भी नहीं रहेगा किसी की कोई भी सत्ता नहीं रहेगी यहाँ तक कि यह वैशाली भी नहीं रहेगी। जब उसका गणसंथागार ही नहीं रहेगा तो फिर भला वह ही कैसे रहेगी और जब वह नहीं रहेगी तो कुछ भी नहीं रहेगा सब कुछ मिट जाएगा मैं मिट जाऊँगा चेटक मिट जाएगा अरे ओ सुनो, परन्तु वैशाली की पुनीत परम्पराएं नहीं मिट सकती सामन्त भजदेव उन्हें कदापि न मिटने देगा नहीं मिटने देगा बिलकुल ही तो नहीं मिटने देगा और यदि वे मिटीं भी तो उनसे पहले स्वयं भजदेव मिट रहेगा और वह स्वयं मिटने से पहले सब को उन सभी को जिन्होंने महासंथागार के अधिकार को चुनौती दी है मिटाकर छोड़ेगा।"

सहसा उनका कण्ठ स्वर जैसे थककर भग्न हो उठा। वह विश्राम की एक साँस लिया चाहते थे पर साँस तनिक सा सहारा पाते ही बुरी तरह फूल उठा। फूलती साँस और उस से भी अधिक फूलते वक्ष के साथ उन्होंने अपने पैरों पर गिरे उत्तरीय को आवेश कंधे पर पटका मस्तक पर बहती स्वेद धार धार को सावेग तर्जनी अंगुली से पोंछ नीचे की ओर झटका और फिर विक्षिप्त प्राय दृष्टि से प्रांगण में खड़े जन समुदाय की ओर देखा। किन्तु उनकी दृष्टि जैसे अनायास उधर से उधर सम्मुख ही खड़े एक युवक पर जा टिकी। उसे देख पहले तो वह जैसे स्तम्भ हो गए, परन्तु दूसरे ही क्षण क्रोधावेश के कारण उनके नेत्र आग्नेय हो उठे मुख तम तमा उठा। मेघ-गर्जन सदृश कड़कते कण्ठ स्वर में बोल पड़े—"अरे ओ अभागा तू यहाँ ? अरे भाग तू यहाँ गणसंथागार के प्रासाद में ? मैं पूछता हूँ किसने कहा है तुझे यहाँ आने को ? जा—अब तेरा यहाँ कुछ नहीं जो था वह कभी का मिट चुका है"। पर यह उनके कण्ठ स्वर में सहमा विक्षोभ का सा भाव उभर आया। तनिक रुक वह फिर सावेग बोले—"अभागे मैं कहता हूँ तू हट जा मेरे नेत्रों के सामने से, अभी—तुरन्त अन्यथा—यह समूची वैशाली यहाँ खड़ी आज कोई और ही दृश्य देखेगी।"

परन्तु वृद्ध पिता की वह प्रताड़ना जैसे निष्फल रही। अभयदेव यथा स्थान ही निश्चल अडिग खड़ा रहा। उसके इस दुस्साहस को देख गणसंथाहक जैसे और भी अधिक क्रोधाभिभूत हो उठे। पुनः कर्कश स्वर में बोले—"अभागे सुना नहीं क्या तूने ? मैंने कहा हट जा मेरे नेत्रों के सामने से नहीं तो अभी कुछ अनिष्ट हो रहेगा। अरे, मैंने तो न जाने कब से यही समझ लिया है मेरे कोई पुत्र ही नहीं था और यदि था भी तो वह कभी का मर चुका है।"

गणसंवाहक के लज्जित मुख पर, जैसे सहसा पीड़ा का-सा भाव उभर आया जो उनके एक मात्र पुत्र को मानों हिला-सा गया। इस बार जैसे साहस कर उसने अपने नेत्र-पलक ऊपर उठाए, पर वे अधिक देर तक टिके न रह सके। दृष्टि नत होते ही उसका शीर्ष भी जैसे अवनत हो रहा। नत मस्तक किए हुए ही वह अत्यन्त विनम्र स्वर में बोला—"पूज्यपाद! मैं इस समय गण सेना में हूँ और सुरक्षा प्रधान आचार्य शिष्य ने गणसंवाहक की रक्षार्थ मुझे इसी प्रासाद पर नियुक्त किया है।"

प्रचण्ड देव के मुख से यह सुन गणसंवाहक का क्रोधावेश एवं विक्षोभ जैसे स्वयं ही सहसा आश्चर्य में परिप्लुत हो उठा। उनके नेत्र विस्फारित हो रहे तथा स्वत नम्र हुए कण्ठ स्वर में पूछने लगे—"प्रचण्डदेव तुम्हारे मुख से यह जो कुछ मैं सुन रहा हूँ क्या वह सत्य है अथवा यह भी तुम्हारा कोई प्रपंच है ?"

"श्रद्धास्पद विनीत सेवक ने जो कुछ कहा है वह अक्षरश: सत्य ही है। यह भी सत्य है कि मेरी महत्त्वाकांक्षा पूर्ववत है परन्तु आचार्य शिष्य ने अपने अकाट्य तर्कों से उसके स्वरूप का अवश्य बदल दिया है।" यह कहते हुए उसने अपनी दृष्टि उठा वृद्ध पिता की ओर देखा। उनका फूलता श्वास इस समय तक जैसे सामान्य अवस्था में आ चुका था। तनिक जिज्ञासा का सा भाव प्रकट करते हुए वह बोले—"सो कैसे आयुष्मान् ?"

इस बार पिता के मुख से आयुष्मान का सम्बोधन सुन प्रचण्ड का हृदय आत्मीयता का स्पर्श कर पुलकित हुए बिना न रहा। श्रद्धाभाव से अपना मस्तक पूर्व से भी अधिक नत कर वह अति विनम्र स्वर में कुछ कहने को उद्यत ही हुआ था कि इसी मध्य आचार्य शिष्य का अश्व द्रुत गति से दौड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा। और आचार्य शिष्य उसकी पीठ से कूद सावेग गणसंवाहक की ही ओर बढ़ लिया। निकट आ उसने यथोचित सामन्त का अभिवादन भी किया। फिर प्रचण्डदेव की ओर तनिक देख नत मस्तक ही खड़ा हो गया। गणसंवाहक ने प्रांगण में खड़े मन्त्री व सामन्त जनों की ओर जैसे साश्चर्य देखा और फिर उन्होंने अपनी दृष्टि आचार्य शिष्य के मुख पर केन्द्रित कर दी। उसे देख उनका मुख भाव जैसे एक क्षण में ही परिवर्तित हो उठा। प्रांगण में खड़े जन-समुदाय की ओर देखते रह वह न जाने क्या सोच सावेग आचार्य शिष्य की ओर बढ़ लिए। उसके सम्मुख आ दृढ़ कण्ठ स्वर में बोले—"जानते हो आयुष्मान तुम इस समय कैसी भाव अवस्था में हो ?"

गणसंवाहक के मुख से यह सुन प्रांगण में खड़े सभी सामन्त एवं मन्त्री एक स्वर में तो उनका जयजयकार कर उठे। किन्तु निकट में खड़े सभी भृत्यजन आशंकित हुए सहम उठे। आचार्य शिष्य भी जैसे मन-ही-मन सोचने लगा—'प्रचण्डदेव ने यह कहीं विश्वासघात तो नहीं किया ?' और फिर उसने संदिग्ध दृष्टि से उसकी ओर देखा फिर सामन्त मंत्रीदेव की ओर। बोला कुछ नहीं। गणसंवाहक पुन जैसे क्रोधावेग के से दृढ़ स्वर में पूछ उठे—"अरे ओ अबोध बालक, मौन क्यों है तू उत्तर क्यों नहीं देता ?"

आचार्य शिष्य को इस बार निश्चय ही जैसे आश्चर्य भारी संदेह हो उठा। फिर भी प्रकट में उसने अपने को प्रयास कर, सर्वथा अविचलित रखा। पराजित

वैशाली की सर्वोच्च नियामक संस्था गणसंथागार का मैं पूर्णाधिकार सम्पन्न अधिपति हूँ। मैं किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं वरन् स्वयं राजा चेटक मेरे प्रति उत्तरदायी हैं। अरे मेरे प्रति न सही संथागार के प्रति तो है ही। फिर भी मेरी यह उपेक्षा क्यों ?"

यह कह उनका गम्भीर स्वर जैसे विश्राम की इच्छा से कुछ हलका हुआ। परन्तु दूसरे ही क्षण अन्तर में फिर आवेग उठी किसी अन्य हिलोर के साथ वह पुनः दृढ़ हो उठा। वह उच्च स्वर में कहने लगे—'गणसंस्थागार के अधिकारों की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है केवल मेरा। राजा चेटक यदि चाहे तो भी वह कदापि अधिनायक नहीं बन सकता। गणसंथागार उसे स्वेच्छाचारी बनने का अधिकार कभी नहीं दे सकता। अन्यथा या तो वह स्वयं नहीं रहेगा या फिर मैं नहीं रहूँगा संथागार नहीं रहेगा और जब गणसंथागार ही नहीं रहेगा तो फिर यह शासन भी नहीं रहेगा किसी की कोई भी सत्ता नहीं रहेगी यहाँ तक कि यह वैशाली भी नहीं रहेगी। जब उसका गणसंथागार ही नहीं रहेगा तो फिर भला यह ही कैसे रहेगी और जब यह नहीं रहेगी तो कुछ भी नहीं रहेगा सब कुछ मिट जाएगा मैं मिट जाऊँगा चेटक मिट जाएगा अरे ओ सुनो, परन्तु वैशाली की पुनीत परम्पराएं नहीं मिट सकतीं सामन्त भयदेव उन्हें कदापि न मिटने देगा नहीं मिटने देगा बिलकुल ही तो नहीं मिटने देगा और यदि वे मिटीं भी तो उनसे पहले स्वयं भयदेव मिट रहेगा और वह स्वयं मिटने से पहले सब को उन सभी को जिन्होंने गणसंथागार के अधिकार को चुनौती दी है मिटाकर छोड़ेगा।

सहसा उनका कण्ठ स्वर जैसे थककर अवरुद्ध हो उठा। वह विश्राम की एक साँस लिया चाहते थे पर साँस तनिक सा सहारा पाते ही बुरी तरह फूल उठा। फूलती साँस और उस से भी अधिक फूलते वक्ष के साथ उन्होंने अपने पैरों पर गिरे उत्तरीय को सावेग कंधे पर पटका मस्तक पर बहती स्वेद कण धार को दायें तर्जनी अंगुली से पोंछ नीचे की ओर झटका और फिर विक्षिप्त प्राय दृष्टि से प्रांगण में खड़े जन समुदाय की ओर देखा। किन्तु उनकी दृष्टि जैसे अनायास उधर से उचट सम्मुख ही खड़े एक युवक पर आ टिकी। उसे देख पहले तो वह जैसे स्तब्ध हो गए, परन्तु दूसरे ही क्षण क्रोधावेश के कारण उनके नेत्र आग्नेय हो उठे मुख तम तमा उठा। मेघ-गर्जन सदृश कड़कते कण्ठ स्वर में बोल उठे— अरे ओ अधम तू यहाँ ? अरे पापी तू यहाँ गणसंचालक के प्रासाद में ? मैं पूछता हूँ किसने कहा है तुझे यहाँ आने को ? जा—अब तेरा यहाँ कुछ नहीं जो था वह कभी का मिट चुका है"। यह कह उनके कण्ठ स्वर में सहसा विक्षोभ का सा भाव उभर आया। तनिक रुक वह फिर सावेग बोले— 'अधम मैं कहता हूँ तू हट जा मेरे नेत्रों के सामने से, अभी—तुरन्त अन्यथा—यह समूची वैशाली यहीं अभी आज कोई घोर ही दृश्य देखेगी।"

परन्तु वृद्ध पिता की यह प्रताड़ना जैसे निष्फल रही। अभयदेव यथा स्थान ही निश्चल अडिग खड़ा रहा। उसके इस दुस्साहस को देख गणसंचालक जैसे और भी अधिक क्रोधाभिभूत हो उठे। पुनः कर्कश स्वर में बोले—"अधम सुना नहीं क्या तूने ? मैंने कहा, हट जा मेरे नेत्रों के सामने से, नहीं तो अभी कुछ अनिष्ट हो रहेगा। अरे, मैंने तो न जाने कब से यही समझ लिया है मेरे कोई पुत्र ही नहीं था और यदि था भी तो वह कभी का मर चुका है।"

गणसंवाहक के उत्तेजित मुख पर, जैसे सहसा पीड़ा का-सा भाव उभर आया था उनके एक मात्र पुत्र की मानों हिला-सा गया। इस बार जैसे साहस कर उसने अपने नेत्र-पलक ऊपर उठाए, पर वे अधिक देर तक टिके न रह सके। दृष्टि नत होते ही उसका शीर्ष भी जैसे अवनत हो रहा। नत मस्तक किए हुए ही वह अत्यन्त विनम्र स्वर में बोला—"पूज्यपाद! मैं इस समय गण सेना में हूँ और सुरक्षा प्रधान आचार्य शिष्य ने गणसंवाहक की रक्षार्थ मुझे इसी प्रासाद पर नियुक्त किया है।"

प्रबल देव के मुख से यह सुन गणसंवाहक का क्रोधावेश एवं विक्षोभ जैसे स्वयं ही सहसा आश्चर्य में परिणत हो उठा। उनके नेत्र विस्फारित हो रहे तथा स्वत नम्र हुए कण्ठ स्वर में पूछने लगे—"प्रबलदेव तुम्हारे मुख से यह जो कुछ मैं सुन रहा हूँ क्या वह सत्य है अथवा यह भी तुम्हारा कोई प्रपंच है?"

"महाशय विनीत सेवक ने जो कुछ कहा है वह अक्षरश: सत्य ही है। यह भी सत्य है कि मेरी महत्त्वाकांक्षा पूर्ववत है परन्तु आचार्य शिष्य ने अपने अकाट्य तर्कों से उसके स्वरूप को अवश्य बदल दिया है।" यह कहते हुए उसने अपनी दृष्टि उठा वृद्ध पिता की ओर देखा। उनका फूलता श्वास इस समय तक जैसे सामान्य अवस्था में आ चुका था। तनिक जिज्ञासा का सा भाव प्रकट करते हुए वह बोले—"सो कैसे आयुष्मान्?"

इस बार पिता के मुख से आयुष्मान का सम्बोधन सुन प्रबल का हृदय आत्मीयता का स्पर्श कर पुलकित हुए बिना न रहा। भावावेश से अपना मस्तक पूर्व से भी अधिक नत कर वह अति विनम्र स्वर में कुछ कहने को उद्यत ही हुआ था कि इसी मध्य आचार्य शिष्य का अश्व द्रुत गति से दौड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा। और आचार्य शिष्य उसकी पीठ से कूद सावेग गणसंवाहक की ही ओर बढ़ लिया। निकट आ उसने वयोवृद्ध सामन्त का अभिवादन भी किया। फिर प्रबलदेव की ओर तनिक देख नत मस्तक हो खड़ा रह गया। गणसंवाहक ने प्रांगण में खड़े अपने व सामन्त जनों की ओर जैसे साश्चर्य देखा और फिर उन्होंने अपनी दृष्टि आचार्य शिष्य के मुख पर केन्द्रित कर दी। उसे देख उनका मुख भाव जैसे एक क्षण में ही परिवर्तित हो उठा। प्रांगण में खड़े जन-समुदाय की ओर देखते रह वह न जाने क्या सोच सावेग आचार्य शिष्य की ओर बढ़ लिए। उसके सम्मुख आ दृढ़ कण्ठ स्वर में बोले— "जानते हो आयुष्मान तुम इस समय कैसी भाव अवस्था में हो?"

गणसंवाहक के मुख से यह सुन प्रांगण में खड़े सभी सामन्त एवं श्रेष्ठी एक स्वर में तो उनका जयजयकार कर उठे। किन्तु निकट में खड़े सभी मुख्यजन आतंकित हुए सहम गए। आचार्य शिष्य भी जैसे मन-ही-मन सोचने लगा —'प्रबलदेव ने यह कहीं विश्वासघात तो नहीं किया?' और फिर उसने संदिग्ध दृष्टि से उसकी ओर देखा फिर सामन्त प्रबलदेव की ओर। बोला कुछ नहीं। गणसंवाहक पुन: जैसे कोपावेश के से दृढ़ स्वर में पूछ उठे—"अरे ओ अबोध बालक मौन क्यों है, तू उत्तर क्यों नहीं देता?"

आचार्य शिष्य को इस बार निश्चय ही जैसे साश्चर्य भारी संदेह हो उठा। फिर भी प्रगट में उसने अपने को प्रयास कर सर्वथा अविचलित रखा। पराजित

वैशाली की सर्वोच्च नियामक संस्था गणसंस्थागार का मैं पूर्णाधिकार सम्पन्न अधिपति हूँ। मैं किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं वरन् स्वयं राजा चेटक मेरे प्रति उत्तरदायी है। अरे मेरे प्रति न सही संथागार के प्रति तो है ही। फिर भी मेरी यह उपेक्षा क्यों ?"

यह कह उनका गम्भीर स्वर जैसे विश्राम की इच्छा से कुछ हल्का हुआ। परन्तु दूसरे ही क्षण अन्तर में फिर आवेग उठी किसी अन्य हिलोर के साथ वह पुनः कुछ ही बढ़ा। वह प्रश्न स्वर में कहने लगे—"गणसंस्थागार के अधिकारों की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है केवल मेरा। राजा चेटक यदि चाहे तो भी वह कदापि अधिनायक नहीं बन सकता। गणसंस्थागार उसे स्वेच्छाचारी बनने का अधिकार कभी नहीं दे सकता। अन्यथा या तो वह स्वयं नहीं रहेगा या फिर मैं नहीं रहूँगा संथागार नहीं रहेगा और जब गणसंस्थागार ही नहीं रहेगा तो फिर यह शासन भी नहीं रहेगा किसी की कोई भी सत्ता नहीं रहेगी यहाँ तक कि यह वैशाली भी नहीं रहेगी। जब उसका गणसंस्थागार ही नहीं रहेगा तो फिर भला वह ही कैसे रहेगी और जब वह नहीं रहेगी तो कुछ भी नहीं रहेगा सब कुछ मिट जाएगा मैं मिट जाऊँगा चेटक मिट जाएगा अरे ओ सुनो, परन्तु वैशाली की पुनीत परम्पराएँ नहीं मिट सकती सामन्त मंजदेव उन्हें कदापि न मिटने देगा नहीं मिटने देगा बिलकुल ही तो नहीं मिटने देगा और यदि वे मिटी भी तो उनसे पहले स्वयं मंजदेव मिट रहेगा और वह स्वयं मिटने से पहले सब को उन सभी को जिन्होंने गणसंस्थागार के अधिकार को चुनौती दी है मिटाकर छोड़ेगा।"

सहसा उनका कण्ठ स्वर जैसे थककर अवरुद्ध हो उठा। वह विश्राम की एक साँस लिया चाहते थे पर साँस तनिक सा सहारा पाते ही बुरी तरह फूल उठा। फूलती साँस और उस से भी अधिक फूलते वक्ष के साथ उन्होंने अपने पैरों पर गिरे उत्तरीय को आवेग कंधे पर पटका मस्तक पर बहती स्वेद जल धार को आवेग तर्जनी अंगुली से पोंछ नीचे की ओर झटका और फिर विक्षिप्त भाव दृष्टि से प्रांगण में खड़े जन समुदाय की ओर देखा। किन्तु उनकी दृष्टि जैसे बलात् उधर से उचट सम्मुख ही खड़े एक युवक पर जा टिकी। उसे देख पहले तो वह जैसे स्तम्भ ही गए, परन्तु दूसरे ही क्षण क्रोधावेग के कारण उनके नेत्र आग्नेय हो उठे मुख तम तमा उठा। मेघ-गर्जन सदृश कड़कते कण्ठ स्वर में बोल उठे—"अरे ओ अधम तू यहाँ ? अरे पाप तू यहाँ गणसंवाहक के प्रावार में ? मैं पूछता हूँ किसने कहा है तुझे यहाँ आने को ? जा—अब तेरा यहाँ कुछ नहीं जो था वह कभी का मिट चुका है"। यह कह उनके कण्ठ स्वर में सहसा विक्षोभ का सा भाव उभर आया। तनिक रुक वह फिर सावेग बोले—"अधम मैं कहता हूँ, तू हट जा मेरे नेत्रों के सामने से, अभी—तत्काल अन्यथा—यह समूची वैशाली यहाँ यहीं आज कोई और ही दृश्य देखेगी।"

परन्तु वृद्ध पिता की यह प्रताड़ना जैसे निष्फल रही। अवश्यदेव यथा स्थान ही निश्चल अविग खड़ा रहा। उनके इस दुस्साहस को देख गणसंवाहक जैसे और भी अधिक क्रोधाभिभूत हो उठे। पुनः कड़कते स्वर में बोले—"अधम सुना नहीं क्या तूने ? मैंने कहा हट जा मेरे नेत्रों के सामने से नहीं तो अभी कुछ अनिष्ट हो रहेगा। अरे मैंने तो न जाने कब से यही समझ लिया है मेरे कोई पुत्र ही नहीं था और यदि था भी तो वह कभी का मर चुका है।"

चीखते हुए बोले—"श्री चेटक के दत्तक पुत्र, तूने मेरे ऊपर जो उपकार किया है उसे तो मैं आमरण नहीं भूल सकूँगा।" और यह कहते हुए उन्होंने मकरध्वज की ओर देखा। मकरध्वज का हृदय भी भाव विभोर हो उठा और नेत्र सजल हो गए। तथापि वह मन-ही-मन लज्जा का-सा अनुभव करता हुआ नत मस्तक हो गया, तथा तत्पश्चात चरण स्पर्श करके हो पश्चाताप के से बोझिल कण्ठ स्वर में बोला—"पितृवर मैं अपने अक्षम्य अपराध के लिए क्षमा चाहता हूँ।"

वस्तुसंवाहक के नेत्रों से स्नेह की जलधारा फूट निकली और कण्ठ स्वर बिखर सा गया। उसे किसी प्रकार संयत करने का प्रयास करते हुए बोले—"आयुष्मान मकरध्वज तुमने अस्तुत वैशाली के स्वर्णिम इतिहास को कलंक से बचा ही लिया। मैं इसके लिए हृदय से आभारी हूँ। परन्तु यह समय अब इस तरह बिताने का नहीं। तुम्हें शीघ्र ही अपने कर्तव्य का निर्धारण करना होगा। तुम यहीं रहकर आचार्य शिष्य की सहायता करोगे और मुझे तुरन्त ही आयुष्मान सिंह की सहायतार्थ गंगातट की ओर प्रस्थान करना होगा।"

वृद्ध वस्तुसंवाहक के इस प्रस्ताव पर आचार्य शिष्य तथा मकरध्वज दोनों ही कुछ कहने को उद्यत हुए। परन्तु उन्हीं की मन की बात को सर्व प्रथम संदेश वाहक कपिल कहने में सफल रहा। बोला—"महामान्य, आपने तो आजन्मजीवन ही वज्जिसंघ की सीमाओं की रक्षा की है अतः अब आपको विश्राम की आवश्यकता है। क्या आपको हम तरुणों पर विश्वास नहीं?"

'विश्वास नहीं? यह किसने कहा कि विश्वास नहीं। विश्वास क्यों नहीं आयुष्मान परन्तु अभी तो तुम्हारे खेलने खाने के दिन हैं। आज संध्या ही तो तुम्हारा सादी भी हो जाना करना आयुष्मती आया से विवाह है। जानते हो, इस नाते तुम मेरे क्या हुए? भला क्या कोई विवेकशील पुरुष अपने उस जामाता को
पुत्र की वि भी पिता

वस्तुसंवाहक का वाणी प्रवाह सैनिक सेविकाओं के मुख से उठता, उच्चारित जय-जयकार के मध्य विलीन हो गया। और सन्देशवाहक कपिल तो हर्षातिरेक में झूम झूम कर, पुकार उठा—'महाराज।"

बस, वह आगे कुछ नहीं कह सका।

परन्तु वस्तुसंवाहक का कण्ठ स्वर पुनः संयत हो रहा। वह बोले—"मेरे उस दिन के अपराध को यदि आयुष्मती आया और तुम दोनों ही केवल दोनों ही नहीं वरन् दास वर्ग सहित सारा वैशाली समाज क्षमा कर सके तो मैं समझूँगा मुझे वस्तु-सेवा का यथोचित पुरस्कार मिल गया है।" और फिर सहसा अपनी दृष्टि आचार्य शिष्य की ओर घुमा तथा उसके अत्यन्त निकट आ बोले—"आयुष्मान तुम केवल वज्जि मुकुट राजा चेटक के ही नहीं वरन् सारे वैशाली समाज के दत्तक पुत्र हो।" यह कह वह सहसा रुके और फिर कुछ सोचते हुए वे बोले—"फिर वैसी आम्रपाली की शिष्या ने ही क्या क्या दोष किया है? आयुष्मानो क्या वह वैशाली की दत्तक पुत्री बनने के योग्य नहीं? योग्य ही नहीं बल्कि अधिकारिणी भी है।"

वस्तुसंवाहक का कण्ठ भर आया और नेत्र सजल हो उठे।

गंभीर एवं सधत स्वर में वह बोला—"आर्य, यदि मैं आपके इस प्रश्न का उत्तर देता तो उसका स्पष्ट ही यह अर्थ होता कि आपको मुझे बंदी बनाने का अधिकार प्राप्त है। किन्तु वैशाली में इस समय यह अधिकार केवल एक का ही है, और जिसे यह अधिकार प्राप्त है वह स्वयं मैं हूं।"

आचार्य शिष्य के इस उत्तर से यह वातावरण सहसा गंभीर हो उठा। प्रत्युत्तर में गणसंवाहक ने किंचित व्यंग के से कर्कश स्वर में कहा—"और तू फिर भी अपने अधिकार का उपयोग नहीं कर रहा।"

यह सुन आचार्य शिष्य के मुख पर स्पष्ट ही क्रोध का भाव उभर आया। दृष्टि पुष्ट कर वह बोला—"यह बताना आर्य का कार्य नहीं वह तो मेरा दायित्व है और इस सम्बन्ध में कोई भी निर्णय करना केवल मेरा एकाधिकार है यहाँ तक कि स्वयं गणाध्यक्ष भी उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते।

श्रेष्ठी एवं सामन्त वर्गों ने यह आचार्य शिष्य की केवल उद्दंडता समझी। अतः वे सभी उत्तेजित हो उठे। आचार्य शिष्य की ओर तीखी दृष्टि से देखते हुए उन सभी ने तो अपने वस्त्र ऊपर उठा लिए। अन्तिम पंक्ति में बड़े महाश्रेष्ठी मणि रत्न बोल उठे—"मूर्ख बालक राजा चेटक भले ही हस्ताक्षर न कर सकें, परन्तु महा स्थ सामन्त मंजरेन तो कर ही सकते हैं। जानता नहीं यह गणसंवाहक है—संघ की सर्वोच्च नियामक संस्था गणसंघागार के अधिष्ठाता।"

महाश्रेष्ठी मणिरत्न मैं आगे अभी कुछ और कहा चाहते थे कि तभी मध्य गणसंवाहक ने इंगित से उन्हें रोक दिया। तत्पश्चात् गणसंवाहक कुछ कहने को उद्यत ही हुए थे कि आचार्य शिष्य प्रत्युत्तर में बोल उठा—"महाश्रेष्ठिन्, वह अधिष्ठता ये पर अब नहीं है।"

'सो कैसे?" गणसंवाहक ने तनिक आश्चर्य का सा भाव प्रकट करते हुए पूछा।

आचार्य शिष्य तत्परता से बोला—"आर्यवर, वैशाली में इस समय बाह्य आक्रमण के संकट को देखते हुए आपात स्थिति घोषित है और उसकी घोषणा शासनाध्यक्ष के नाते स्वयं राजा चेटक ने की है। अष्टेणी पुस्तक ने उनको यह अधिकार प्रदान किया है। और, गणसंवाहक के नाते आर्य का भी यह प्रमुख कर्तव्य है कि वह निष्ठापूर्वक आपात नियमों का पालन करें।'

"और यदि न करूं तो?" गणसंवाहक ने आचार्य शिष्य की ओर सीधी दृष्टि करते हुए मानों उत्सुकता से पूछा। आचार्य शिष्य ने नत मस्तक हो विनीत स्वर में कहा—"आर्य नियामक संस्था के प्रमुख होने के नाते आप ऐसा भी करेंगे इसमें मुझे संदेह है।"

आचार्य शिष्य के मुख से यह सुन गणसंवाहक के मुख पर जैसे हर्ष का सा भाव झलक आया तथा नेत्र दीप्त हो उठे। सोल्लास हाथ बढ़ा उन्होंने आचार्य शिष्य की पीठ थपथपाते हुए कहा—"आचार्य शिष्य तुम्हारा यह संदेह उचित ही है।"

आचार्य शिष्य भी गद्गद् हो उठा महातिरेक से वह नीचे झुक गया।

गणसंवाहक भी गद्गद् हो उठे। वह आचार्य शिष्य को अपने वक्ष की ओर

चीखते हुए बोले—"ओ चेटक के दत्तक पुत्र तूने मेरे ऊपर जो उपकार किया है उसे तो मैं आमरण नहीं भूल सकूँगा।" और यह कहते हुए उन्होंने अखण्डदेव की ओर देखा। अखण्डदेव का हृदय भी भाव विभोर हो उठा नेत्र सजल हो गए। तथापि वह मन-ही-मन लज्जा का-सा अनुभव करता हुआ नत मस्तक हो गया तथा तत्पश्चात चरण स्पर्शोद्यत हो पश्चाताप के से बोझिल कण्ठ स्वर में बोला—"पितृवर मैं अपने अक्षम्य अपराध के लिए क्षमा चाहता हूँ।"

गणसंवाहक के नेत्रों से स्नेह की जलधारा फूट निकली और कण्ठ स्वर विह्वल सा गया। उसे किसी प्रकार संयत करने का प्रयास करते हुए बोले—"आयुष्मान अखण्ड देव तुमने अन्ततः वैशाली के स्वर्णिम इतिहास को कलंक से बचा ही लिया। मैं इसके लिए हृदय से आभारी हूँ। परन्तु यह समय अब इस तरह बिताने का नहीं। हमें शीघ्र ही अपने कर्तव्य का निर्धारण करना होगा। तुम यहीं रहकर आचार्य शिष्य की सहायता करोगे और मुझे तुरन्त ही आयुष्मान सिंह की सहायतार्थ गंगातट की ओर प्रस्थान करना होगा।"

वृद्ध गणसंवाहक के इस प्रस्ताव पर आचार्य शिष्य तथा अखण्डदेव दोनों ही कुछ कहने को उद्यत हुए। परन्तु उन्हीं की मन की बात को सर्व प्रथम रथ वाहक कपिल कहने में सफल रहा। बोला—"महामात्य, आपने तो यावज्जीवन ही वज्जिसंघ सीमांत की रक्षा की है अतः अब आपको विश्राम की आवश्यकता है। क्या आपको हम तरुणों पर विश्वास नहीं?"

'विश्वास नहीं ? यह किसने कहा कि विश्वास नहीं। विश्वास क्यों नहीं आयुष्मान परन्तु अभी तो तुम्हारे खेलने खाने के दिन हैं। आज संध्या ही तो तुम्हारा दासी भो हो क्षमा करना आयुष्मती छाया से विवाह है। जानते हो इस नाते तुम मेरे क्या हुए ? भला क्या कोई विवेकशील पुरुष अपने सद्य जामाता को युद्ध की वि भी पिका

गण संवाहक का वाणी प्रवाह सेवक सेविकाओं के मुख से सहसा उच्चारित जय-जयकार के मध्य विलीन हो गया। और स्यन्दन-वाहक कपिल तो हर्षातिरेक में सुध बुध खो पुकार उठा—"महामात्य।"

वह बस आगे कुछ नहीं कह सका।

परन्तु गणसंवाहक का कण्ठ स्वर पुनः संयत हो चुका। वह बोले—"मेरे उस दिन के अपराध को यदि आयुष्मती छाया और तुम दोनों ही केवल दोनों ही नहीं, वरन् दास वर्ग समेत सारा वैशाली समाज क्षमा कर सके तो मैं समझूँगा मुझे गण-सेवा का समुचित पुरस्कार मिल गया है। और फिर सहसा अपनी दृष्टि आचार्य शिष्य की ओर घुमा तथा उसके अत्यन्त निकट जा बोले—"आयुष्मान तुम केवल गण मुकुट राजा चेटक के ही नहीं वरन् सारे वैशाली समाज के दत्तक पुत्र हो।" यह कह वह सहसा रुके और फिर कुछ सोचते हुए से बोले—"फिर वैसी आम्रपाली की शिष्या ने ही भला क्या पाप किया है ? आयुष्मानो क्या वह वैशाली की दत्तक पुत्री बनने के योग्य नहीं ? योग्य ही नहीं बल्कि अधिकारिणी भी है।"

गणसंवाहक का कण्ठ भर आया और नेत्र सजल हो उठे।

वह भाई कण्ठ स्वर में पुनः बोले— 'आयुष्मान मेरे लिए अब यह सम्भव नहीं कि मैं उसके पास जाऊँ, समय जो नहीं रह गया। पर इससे क्या ? पुत्रवर तुम उससे इतना तो कह ही सकते हो क्यों इतना तो कह ही बोले कि सामन्त मंजदेव नहीं-नहीं विक्षिप्त मंजदेव नहीं आचार्य शिष्य सामन्त मंजदेव को ही उस सामन्त को, जिसे अपना खोया पुत्र आज अनायास वापस मिल गया है क्षमा कर देना। उससे कहना पुत्री आयुष्मती वैशाली में दास वर्ग की मुक्ति की शुभ गौरवमयी प्रतीक हो। क्या दास और क्या स्वामी मानव-मानव के बीच में यह एक व्यर्थ ही की तो दीवार है और यह दीवार भला क्या किसी गणराज्य में उस गण राज्य में जहाँ सभी समान हों क्या किसी प्रकार शोभा दे सकती है।"

अपने कर्णधार गणसंवाहक के मुख से यह सुन सभी सामन्त एवं श्रेष्ठी जन भौंचक्के से उनकी ओर देखते रह गए सोचते रहे कि वह आज अवश्य ही विक्षिप्त हो उठे हैं परन्तु जैसे अभी उनमें प्रतीक्षा का धैर्य शेष था।

किन्तु, इसी मध्य गणसंवाहक ने सहसा अपना हाथ बढ़ा आचार्य शिष्य के हाथ में लटकता खड्ग छीन लिया। आचार्य शिष्य केवल देखता रह गया। उसे लगा, जैसे उसके पग नीचे की भूमि खिसक गई हो। श्रेष्ठी एवं सामन्त जनों के मुखों पर हर्ष का अपार भाव का उठा वे उल्लसित कण्ठ स्वर में उनका जय जयकार कर उठे और गण संवाहक एक जोर का ठहाका दे हँस पड़े हँसते रहे हँसते हुए ही उनका हाथ भी उठ रहा आगे भी बढ़ लिया। उनकी उस समय की मुखाकृति को देख सभी भृत्य जन भयभीत हो उठे। परन्तु अगले क्षण ही वे उत्तेजित हुए से कुछ संकल्प हो उठे। कपिल सावेग चिल्ला उठा—"यह विश्वासघात है।"

बबर सामन्त कार्तिकेय कड़कते हुए जैसे आह्वान कर उठे—"अरे, देखते क्या हो पहले इसी मातंग पुत्र को पकड़ लो।"

गणसंवाहक और भी जोर का ठहाका दे हँस पड़े। किन्तु अगले क्षण ही उनकी मुख मुद्रा गतीव गम्भीर हो उठी। अपना खड्ग सामन्त कार्तिकेय की ओर करते हुए वह बोले— 'आयुष्मान तुम भूल कर रहे हो।"

और यह कह वह सामुख खड़े अश्व की ओर सावेग दौड़ मानों अपने को उड़ा लते हुए उसकी पीठ पर जा बैठे। फिर सभी की ओर दृष्टि कर वह बोले— आयुष्मानो, केवल तुम ही नहीं तुम्हारे साथ मैं भी भूल कर रहा था। अरे ओ मूर्खो एकता तो वैशाली का सुहाग है गणसंस्थागार उसका भव्य प्रासाद है, एक ऐसा प्रासाद कि जिसमें कोई राजा नहीं और सभी राजा हैं स्वामी और भृत्य के भेद को वह कदापि सहन नहीं कर सकता।" और फिर, उन्होंने अश्व को एड़ लगा दी। अश्व हिनहिनाते ही दौड़ उठा। उनके अश्व को इस प्रकार सावेग दौड़ते देख सभी एक स्वर में उच्च स्वर में जितने भी जोर से वे कह सकते थे पुकार उठे—"नैमित्र आर्य ?"

किन्तु वयोवृद्ध गणसंवाहक ने पीछे मुड़ कर भी नहीं देखा। नमस्कार इस समय तक भूल ही चुका था उसे फाँद उनका अश्व पूर्व से भी अधिक तीव्र गति से संथागार की ओर जाने वाले मार्ग पर मुड़ लिया। जहाँ अब कोई नहीं था, यहाँ तक कि —— ——र भी नहीं। हाँ उनके मुख पर एक भाव अवश्य था और उस भाव के

साथ अदम्य उत्साह भी।

गणसंवाहक के प्रासाद से निकल आचार्य शिष्य जब सामन्तपुत्र मदनदेव तथा सन्देशवाहक कपिल के साथ मुख्य राजपथ पर आया तो नगर द्वार की ओर से द्रुत गति से दौड़ते आ रहे दो अश्वारोही सहसा उसके पास पहुँच ठहर गए। उनके मुख के भाव को देख कुछ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वे कोई सन्देश लेकर आए हैं तथा उसके निवेदन के लिए अत्यधिक आतुर हैं। आचार्य शिष्य उनकी इस भाव-मुद्रा को देख कुछ विस्मित हो उठा परन्तु दूसरे ही क्षण संवाद विशेष को सुन उसका मुख प्रसन्नता से कमल की भाँति खिल गया। साश्चर्य बोला—"क्या कहा वे रिपु अश्व नहीं श्रेष्ठीपुत्र कपिल के सार्थ के अपहृत अश्व थे।"

आचार्य शिष्य हर्षातिरेक में जोर से पुकार उठा—'देवी शिष्या ओ कल्याणमयी देवी शिष्या तुम्हारी उपासना सफल हो गई।

तत्पश्चात् आचार्य शिष्य ने अपने अश्व की वल्गा ढीली कर उसे पूरे वेग से छोड़ दिया। अश्व ने भी जैसे देवी शिष्या के पास हो जाकर साँस लिया। परन्तु न जाने क्यों देवी शिष्या को देख आचार्य शिष्य के सम्मुख सहसा पूर्व का कोई भी तो एक चित्र उभर आया। उसकी मुख मुद्रा खिन्न हो उठी और हृदय जैसे आर्तनाद कर उठा। ऊर्ध्व बाहु हो उसने सहायता के लिए याचना के से दैन्य स्वर में कहा—"महाप्रभो आचार्य मेरी रक्षा करो।" उसका कण्ठ शुष्क हो गया और मुख पर भारी पराजय का सा भाव छा उठा।

सभी लोग विस्मित हुए से उसकी ओर देखते रह गए।

परन्तु देवी शिष्या अविचलित ही रही। उसने नेत्र पलक उठा तनिक ऊपर देखा। उसकी दृष्टि आचार्य शिष्य के मुख पर स्थिर हो गई। आचार्य शिष्य के ओष्ठों पर फैली शुष्कता को देख उसका हृदय जैसे तरल हो उठा तथा मस्तक गर्व से उन्नत हो उठा। कपोल रक्तिम हो गए तथा फिर लज्जा से नेत्र पलक स्वतः नीचे गिर गए।

आचार्य शिष्य यह देख कुछ खोया-सा गया। अपने को आश्वस्त हुआ अनुभव कर वह सन्तोष की साँस ले उठा और फिर मधुर कण्ठ स्वर में बोला—'देवी शिष्या आपकी उपासना सफल हुई। उसके लिए बधाई है।"

देवी शिष्या ने उत्तर में अपने नेत्र तनिक ऊपर उठा कहा—'परन्तु आर्य आपके प्रोत्साहन के अभाव में तो वह उपासना अपूर्ण ही रहती। भविष्य में भी मैं आपका सहारा लेती रहूँ, केवल यही एक कामना है।"

मंजरिका खिन्न मन से यह सब कुछ देख रही थी। जो कुछ वह देख रही थी उससे यदि वह सब कुछ देखा नहीं जा रहा था परन्तु विवशता से वह अपनी दृष्टि भी नहीं हटा पा रही थी। आचार्य शिष्य को उसकी यह खिन्न अवस्था जैसे असह्य हो उठी। किन्तु अपने आप ही उसके मन में हो आया—'कुमारी मंजरिका से क्षमा ही माँग लूँ कुछ आश्वासन भी दे दूँ वचनबद्ध भी हो रहूँ।' परन्तु वह जो कुछ सोच रहा था उस पर संयम भी नहीं हो पा रहा था। भावावेश में बोला—"देवी मंजरिका।"

किन्तु मंजरिका मौन ही बनी रही। हाँ ऊपर उठे नेत्र-पलक उरोज कुछ अवश्य भर उठे। आचार्य शिष्य ने इस बार मधुर कण्ठ स्वर में कहा—

मंजरिके।"

पर, मंजरिका इस बार भी मौन ही रही। हाँ नेत्र अवश्य स्पष्ट हो उठे।

आचार्य शिष्य उसकी ओर देखता रह गया। अन्त में जैसे सचेष्ट हो उसकी बाहुओं को पकड़ धीमे से बोला—"देवी मंजरिका देवी शिप्रा मेरी आराध्य देवी है उसकी कृपा कोर के बिना मेरा जीवन सूना है। क्यों प्रिये क्या तुम अपने आराध्य की आराध्या को नमस्कार नहीं कर सकतीं?"

मंजरिका के मन में हुआ कह दे—'नहीं—आचार्य शिष्य नहीं—भला यह कैसे सम्भव है? यह तो मेरे अधिकार का हनन है।'

किन्तु, जब यही बात वह प्रकट में कहने को उद्यत हुई तो उसके ओष्ठ कोर फैल रहे। नेत्रों ने निष्पलक हो आचार्य शिष्य की ओर देखा भी और फिर, उसका मस्तक अनायास देवी शिप्रा के सम्मुख नत हो रहा।

सहसा देवी शिप्रा का उठा हाथ मंजरिका के सिर पर आ टिका। उसके ओष्ठ भी फड़फड़ा गए। एक स्वांस बाहर छोड़ वह जैसे तटस्थ भाव से संयत कण्ठ स्वर में बोली—"देवी तुम्हारा अधिकार सुरक्षित रहे। दाम्पत्य जीवन सुखी रहे ऐसी मंगल कामना मैं करती रहूँ भला इससे बढ़कर मेरा और क्या सौभाग्य होगा?"

और इसी मध्य धारा गमन अनुक्रम से अनेक जयघोषों से गूँज उठा। इन जय घोषों के मध्य देवनन्द धारक हुल्ल-विहल्ल भारी जन समूह के साथ मुख्य राजपथ पर आगे बढ़े जा रहे थे। वे बढ़े अवश्य जा रहे थे परन्तु उनका मन उन्हें जैसे पीछे की ओर खींच रहा था। अन्ततः विहल्ल धीमे से बोला—"बन्धुवर, महात्मा बुद्ध ने इस नगरी का बहुत कुछ उद्धार किया है तो फिर क्या उनके संघ में हमारा भी उद्धार नहीं हो सकता?"

वास्तव में विहल्ल ने जयघोषों की इस तुमुल ध्वनि के मध्य भी किसी के शान्त कण्ठ स्वर को सुन लिया था। श्रेष्ठी मित्रविंदक इस समय नगर की ओर लौटती सघन भीड़ के मध्य सर्वथा शान्त गति से नगर द्वार की ओर जाता हुआ अपने शान्त कण्ठ स्वर में 'बुद्धं शरणं गच्छामि धर्मं शरणं गच्छामि संघं शरणं गच्छामि' का उच्चारण करता हुआ आगे बढ़ रहा था।

उत्साहोल्लास के इस निराशा वातावरण को देख उसके जी में एक बारगी आया भी था कि वह पुनः अपने भव्य प्रासाद की ओर लौट ले परन्तु फिर वह सोचने लगा—'जिसके बन्धनों से मुक्त हो मैं एक बार निकल ही चुका तो फिर अब भला उनमें वापस क्या लौटना।

इसी मध्य सामन्त कार्तिकेय उत्पल और वीरभद्र के अश्व भी अनुक्रम से उस भीड़ को चीरते नगर द्वार को पार कर उसी पथ पर सावेग दौड़ लिए, जिधर केवल कुछ समय पूर्व ही मनोयुक्त पशुसंचालक सामन्त मंजुदेव का अश्व दौड़ता हुआ गया था।

रथोद्य वाहक कपिल इस समय उल्लसित था और उनसे भी अधिक उल्लसित उसकी छाया थी। परन्तु न जाने क्या ध्यान में आते ही छाया के मुख पर सहसा भारी गैरत्व छा गया और वह रुआँसी हो गई। उसका अपने मन पर भी नियन्त्रण नहीं रह सका। उसके ओष्ठ फड़फड़ा उठे। कपिल के वक्ष पर अपना सिर टिका वह

रो उठी। परन्तु वे किसी प्रकार अपने को सम्हाल वह असमंजस बोली— 'मेरे आराध्य क्या स्वामी सचमुच गए ?"

छाया के मन की इस दुविधा को देख निकट ही में खड़ा पद्मपद्रेश तत्परता से बोल उठा— 'बहिन छाया, स्वामी नहीं पितृवर कहो [illegible] ही वह गए।"

छाया कुछ और कहना चाहती थी कि इसी समय कपिल उसे अपने वक्ष से और सपेटता उसकी पीठ पर हाथ फेर बोल उठा— "देवी निराश न हो आशा ही जीवन है और निराशा मृत्यु [illegible] हम सभी की सभी इसीलिए तो पितृवर गंगातट की ओर गए हैं। और देखो, जब वह वहाँ से लौटेंगे तो सम्भावना है हम सभी के लिए कृपासपूर्ण [illegible] फल भी लाएँगे।





पच्चीस

और, इन सभी बातों को धीरे-धीरे कई वर्ष बीत गए।

गण-महानगरी का सारा कार्य-व्यापार सर्वथा अबाध गति से प्रवाहित होता हुआ जैसे चरमोत्कर्ष की दिशा में अग्रसर था। और सदानीरा के शांत प्रवाह की मंद-मंद कल-कल पूर्ण ध्वनि को सुनती हुई यूं इस समय भी उसके तट से सटी एक बस्ती खड़ी थी। किन्तु, अब उसका स्वरूप सर्वथा भिन्न था। यहां कभी जीर्ण-शीर्ण झोंपड़ों में निरीह दास रहा करते थे। परन्तु अब? अब वहां झोंपड़ों के स्थान पर भव्य अट्टालिकाएं दीख रही थीं जो उदात्त भाव से सदानीरा के अबाध प्रवाह को निहारती-सी प्रतीत होतीं। यूं दास वहां अब भी विद्यमान थे परन्तु उनका स्वरूप भी स्पष्ट ही बदल चुका था। आज तो सदानीरा के स्वच्छन्द प्रवाह पर उनका स्वयं आभ्यंतर वैशालिकों के समान ही अधिकार था और उसके प्रवाह पर विभिन्न पण्य पदार्थों से भरी उनकी विशाल नौकाएं उसी प्रकार आती-जाती दिखाई देतीं जैसे कभी महाश्रेष्ठी मणिरत्न अथवा श्रेष्ठी मित्रविदक की व्यापार-व्यस्त नौकाएं दीखा करती थीं। श्रेष्ठीपुत्र कपिल के सार्थों की भांति अब उनके सार्थ भी विभिन्न दिशाओं में अभियान व्यस्त रहते। वे सभी व्यापार में लग गए थे सो ऐसी बात नहीं। कुछ ने यदि कृषि को अपने उद्यम के रूप में अपनाया था तो कुछ ने अन्य व्यवसायों को। इस प्रकार इस बस्ती का अब जो स्वरूप बन आया था वह मुख्य वैशाली की बाह्यतम् प्राचीर से पर्याप्त दूर हो कर भी उसका न केवल अभिन्न अंग वरन् गौरव बन मुखरित हो उठा था। उसके अन्तर में और बाहर—चहुं ओर—उत्साह का संचार एवं सघन गतिविधियों का भीना भीना संगीत गुंजायमान था।

और एक दिन इसी बस्ती से कुछ दूर एक आम्रकुंज में से क्षितिज पर फूटती भोर की प्रथम किरण के साथ सहसा किसी कोकिलकण्ठी का मधुर स्वर गूंज उठा। आते-जाते नागरिकों ने जब उसे सुना तो वे भाव विभोर हो उठे। कौतूहल से उन सभी के पग जैसे स्वतः उस दिशा में बढ़ लिए। उन्होंने देखा एक साध्वी अपने अन्तर के भावों में आकण्ठ डूबी तन-मन की सुध-बुध खोए कोई भी तो भक्ति गीत गा रही है। एकत्र जन आनन्दोत्प्लावन की तन्मयता से उसे सुनने में व्यस्त हो पड़े।

धीरे-धीरे आगन्तुकों की भीड़ भी सघन होती चली।

अंततः उस कोकिल कण्ठी का गीत समाप्त हुआ। किन्तु समाप्ति के पश्चात् भी वह पर्याप्त समय तक उस शांत वातावरण में मानो गूंजता-सा रहा। उपस्थित जन सर्वथा मौन रह अनिमेष दृष्टि से उसकी ओर देखते रहे और प्रतीक्षा करते रहे कि वह संभवतः अब कोई दूसरा गीत गाए। परन्तु उसने तत्काल कोई अन्य गीत

नहीं छेड़ा और न ही भोलापन उससे कोई अनुरोध कर सके। भला किसी वती साध्वी वैराग्य-पथ गामिनी से ऐसा अनुरोध किया भी कैसे जाता ?

अन्त में जब देवी साध्वी के आह्लाद मुदित नेत्र खुले तो उसने उचटती दृष्टि से अपने चारों ओर खड़े जन समुदाय की ओर देखा। और फिर अपनी मुट्ठी को बाम हथेली पर रखी किसी वस्तु विशेष की ओर निहारा। उसे निहार उसकी मुख आभा पूर्व से भी अधिक दीप्त हो उठी।

और इस सारी अवधि सभी एकाग्र-मन विमुग्ध भाव से उसकी ओर एकटक देखते रहे जैसे वे उसे पहचानने का प्रयास कर रहे थे।

सहसा उस साध्वी का सरस कण्ठ स्वर फिर उषाद के उस शान्त वातावरण में गूंज उठा।

उधर नगर द्वार को अनुक्रम से पार अभी-अभी कतिपय चतुर्थोटी अश्वारोही बाहर आए थे। महावन की ओर द्रुत गति से दौड़ते जा रहे इन आखेटकों के कानों में जब यह ध्वनि गूंजी तो उनके हाथों की ढीली बल्गाएं जैसे बलात् पीछे की ओर खिंच गईं। उनके अश्व भी जहाँ के तहाँ खड़े हो गये। आरोही आखेटक मंत्रमुग्ध हुए से उस सरस गीत को सुनने में व्यस्त हो उठे। कुछ क्षणों तक तो वे विमुग्ध दृष्टि से एक दूसरे की ओर ही देखते रहे तत्पश्चात् उत्साहावेश में एक के मुख से मानों हठात् निकल गया—"कन्दुवर ध्यान यह तो निश्चय ही देवी आम्रपाली का कण्ठ-स्वर प्रतीत होता है।"

जैसा कि बहुधा देखने में आया है अपने ही मन की कोई बात किसी अन्य के मुख से कहीं सुन कोई दूसरा अत्यधिक उल्लसित हो उछल पड़ता है वैसी ही दशा अन्य अश्वारोहियों की इस समय थी। मंजरिका उत्साह के आवेश में बोल उठी—"कन्दुवर अथवा और बस यही बात मैं भी कहने वाली थी।" साथ ही चारुस्मिता भी सोल्लास कह उठी—"विश्वास नहीं करोगे सामन्त पुत्र और यही बात—न जाने कैसे—मैं कहने से चूक गई।"

तत्पश्चात् उन सभी के अश्व सवेग उसी ओर दौड़ लिए। समूचा प्रान्तर अश्वों की पद चापों से गूंज उठा। किन्तु उससे साध्वी की तन्मयता में जैसे कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ। देवी आम्रपाली के गीत का क्या आशय था आम्रकुंज में प्रविष्ट होते ही उन सभी को जैसे यह स्पष्ट हो गया। जब वे अश्वों को कुंज के सिरे पर ही छोड़ पैदल आगे बढ़े तो गीत का आशय और भी अधिक स्पष्ट होता गया। देवी आम्रपाली भाव रस में आकण्ठ डूबी कण्ठ माधुर्य से कह रही थी—"तथागत कहीं तो था वह स्थान ? वहीं तो कभी तुम्हारे दिव्य रूप के दर्शन कर मैं वैराग्य की ओर अभिमुख हुई थी और पाया था जीवन का अपूर्व प्रकाश। यद्यपि, सभी कहते हैं कि अब तुम इस लोक में नहीं रहे और महा निर्वाण को प्राप्त हुए हो। पर पगली इससे क्या ? तुम्हारी छवि तो मेरे नयनों में अभी भी बसी हुई है। तुम अमर हो तुम अमर हो प्रभु।" यह कहते हुए देवी आम्रपाली का बायां हाथ सहसा ऊपर उठ गया। उसमें एक डोरी भी गुथाम थी। फिर अपने बाएं हाथ की मुट्ठी को खोल उसमें रखी किसी पदार्थ विशेष को देख वह पुलकित कण्ठ स्वर में पुनः बोल उठी—"महाप्रभु

तुम्हारा यह भस्मावशेष मेरी नहीं अपितु समूची वैशाली की केवल वैशाली की ही नहीं भगवन्, बरन् यह तो सारे विश्व की पुनीत धरोहर है। पर शास्ता जन साधारण की स्मृति अति अल्प-कालिक है वे कहीं तुम्हें भूल न जाएं इसी से मैं इसे यहीं प्रतिष्ठापित कर अपने स्वप्नों का एक भव्य स्तूप बनाऊँगी।

उपस्थित जन-समुदाय देवी आम्रपाली के इस निश्चय को सुन हर्षित हो उठा।

भावातिरेक में उनके कण्ठों से निकला तथागत का और फिर देवी आम्रपाली का जयजयकार सारे प्रान्तर में गूंज गया। और इसी बीच देवी आम्रपाली के हाथ की कुदाल ने एक स्थान पर आघात किया। मिट्टी के कण मानों बिहंसते से इधर-उधर दूर तक छिटक गये। तब देवी आम्रपाली को लगा जैसे स्वयं शास्ता की दिव्य देह अपरिमित आलोक किरणों के साथ माता वसुंधरा के वक्ष से अमर यहीं प्रतिष्ठापित होने को आ प्रकट हुई है। हाथ की कुदाल छोड़ वह कुछ क्षणों तक तो ध्यानस्थ हुई नैनों के सम्मुख प्रस्तुत झांकी को देखती रही तत्पश्चात् कर-बद्ध हो नत मस्तक से सपरिक्रमा नमस्कार करती हुई बोली—"महाप्रभु !"

फिर वह आगे कुछ न बोल सकी। भावातिरेक से उसका कण्ठ भर आया। नैनों से भावातिरेक की जलधार फूट निकली। और फिर मिट्टी के छिटके कणों को इस प्रकार समेटने लगी जैसे कोई अपनी टूटी माला के मुक्ताओं को तत्परता से बीनने लगती है।

वैशालिकों ने न जाने कितने दिनों दिनों क्या वर्षों बाद देवी आम्रपाली को देखा था। वह अभी भी जैसे उनके मानस पटल पर विराजमान थी और हृदय में आत्मीयता का सहज भाव सचारित था। उसे इस भाव विभोर दशा में देख वे भी भाव मग्न से हो रहे।

अंततः, देवी आम्रपाली ने अपने कण्ठ को संयत कर कहा—"सौम्य नागरिको और सौम्याओ यह मेरे हाथ में दुर्लभ दर्शन तथागत के अवशेष रूप में उनका एक दांत है। मेरी अभिलाषा है कि उस महाभाग के इस अवशेष को एक स्वर्ण मंजूषा में रख यहीं इसी स्थान पर प्रतिष्ठापित कर एक भव्य स्तूप का निर्माण कराया जाय। और, इस स्तूप का निर्माण केवल उन्हीं के हाथों हो जो शास्ता के सिद्धान्तों में श्रद्धा रखते हों। मैं स्वयं ही आगे बढ़ इस महान् अनुष्ठान में योग दान करूँ इससे वैशालिको का लाभ ही होगा हानि नहीं।"

यह सुन सभी नागरिक उल्लसित हो एक स्वर में कह उठे— "देवी यह तो सचमुच हम सभी वैशालिकों का सौभाग्य है।"

इसी समय सुरक्षा प्रधान आचार्य पिप्प उत्साह के आवेग में भीड़ को पार कर उनके सम्मुख आ पहुँचा। नत मस्तक हो बोला— "देवी आप स्वयं मंजूषा के लिए आज्ञा करें उसका पालन कर मैं अपने आपको कृतकृत्य हुआ अनुभव करूंगा।"

इतने वर्ष बीत जाने के पश्चात् भी देवी आम्रपाली ने उसे बिना किसी कठिनाई के उसे पहचान लिया। बोली— आयुष्मान् वैशाली में सब कोई सकुशल तो है न?"

आचार्य पिप्प ने पुनः अपना मस्तक नत कर सविनय कहा—"हां देवी क्षमा-

पीठिका की अधिष्ठात्री देवी शिप्रा समेत सभी सकुशल हैं। देवी राजा चेटक तो अब नहीं रहे। और अब स्थानापन्न गणाध्यक्ष कुमार सेनापति सिंह के शासन में भी सभी नागरिक पूर्ववत सुख शान्ति का अनुभव कर रहे हैं। फिर विनिश्चय अमात्य आचार्य वर्षकार की न्याय प्रियता का क्या कहना? सर्वत्र उनकी न्याय-व्यवस्था की केवल प्रशंसा ही प्रशंसा है।"

देवी आम्रपाली अन्तिम वाक्य को सुन जैसे सहम-सी गई। तथापि प्रकट में उसकी कोई चर्चा न कर पूछने लगी—"और क्यों आयुष्मान आर्य अभयदेव तो स्वस्थ हैं न?"

आचार्य शिष्य ने इस प्रश्न के उत्तर में कुछ देर तक तो मौन रखा फिर कम्पित कण्ठ से बोला—"देवी उन्हें तो वीर गति को प्राप्त हुए अब कई वर्ष बीत चुके। अपार कोशल की वाहिनियों का सामना करते हुए देवी उन्होंने अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया। देवी वह अमर हो गए हैं।"

तब देवी आम्रपाली बोली—"वैशाली तू सचमुच धन्य है।"

और फिर उस आम्रकुंज की सघनता में कुछ समय तक जैसे किसी की पावन स्मृति स्वरूप मौन छाया रहा।

अन्तत: उस मौन को भंग किया देवी आम्रपाली ने वह कहने लगी—"सौम्य क्या यही तो इस जगत का व्यापार है कोई आता है, कोई जाता है। यह नश्वर देह यदि बनी है तो उसकी मृत्यु भी अवश्य होगी। केवल तथागत नहीं मरता वह अमर है।" और फिर अपने हाथ में कुदाल ले वह उसी स्थान को खोदने में व्यस्त हो गई। वह इस समय तक बूढ़ी हो चुकी थी। तथापि उसका मुख निस्तेज नहीं हुआ था। उसके नेत्र जैसे अम्बर के आलोक से ज्योतित थे। कुदाल चलाते-चलाते उसने सभी उपस्थित जनों पर एक बार को उचटती सी दृष्टि डाली। उसकी इस दृष्टि को देख सभी को कुछ ऐसा लगा जैसे उनमें कोई प्रश्न स्थिर हो आया हो। आचार्य शिष्य तो जैसे स्पष्ट ही देवी के मन में उठी जिज्ञासा को समझ गया। वह स्पष्ट ही यह समझ गया कि विनिश्चय अमात्य वर्षकार की वैशाली में उपस्थिति से देवी सन्तुष्ट नहीं है। परन्तु साथ ही वह धर्माचरण रत होने के कारण अपना कोई मंतव्य प्रकट करने में असमर्थता का भी अनुभव कर रही है।

वह कुछ क्षणों तक व्याकुल हुआ सा खड़ा रह देवी आम्रपाली की ओर देखता रहा। फिर बोला—"यदि देवी की आज्ञा हो तो स्वयं मंजूषा की तत्काल कुछ व्यवस्था की जाए। और देवी वैशालिकों की अभिलाषा है कि स्तूप का शिलान्यास समारोह हो।"

किन्तु देवी आम्रपाली के तटस्थ मन पर संभवत: अभी भी वर्षकार वाली बात टिकी हुई थी अतएव वह कुछ बोझिल था। फलस्वरूप हाथों की गति कुछ शिथिल हो गई। फिर सहसा उसके हाथ की चलती कुदाल भी रुक रही। दृष्टि को नत रखे ही वह बोली—"आयुष्मान तथागत की दृष्टि में वैशाली का गण एकता में था। वह एकता तो यथावत अक्षुण्ण है न?"

आचार्य शिष्य ने नत मस्तक हो सविनय कहा—"हाँ देवी महाप्रभु की इच्छा

से वह सुरक्षित ही समझो।"

देवी आम्रपाली ने फिर अपनी कौमिल दृष्टि आचार्य शिष्य के मुख पर केन्द्रित कर कहा—"आयुष्मान इस आत्म-विश्वास को क्या तुम क्या कहोगे ?"

आचार्य शिष्य कुछ सोचता हुआ सा बोला—'देवी सम्भवतः वह प्रमाद ही अथ एक दुर्बलता ही हुई। तथापि अभी इसे चिन्ता का विषय नहीं कहा जा सकता।"

यह सुनकर भी देवी आम्रपाली जैसे आश्वस्त नहीं हो सकीं। परन्तु प्रकट में वह बोलीं—"आयुष्मान् स्तूप का शिलान्यास आज ही और अभी होना है। उसका निर्माण कार्य मैं अपने नेत्रों से देखा चाहती हूँ अतः यदि वह अहर्निश भी चले तो कोई चिन्ता नहीं उससे मुझे अति प्रसन्नता ही होगी।"

आचार्य शिष्य ने उत्तर में कहा—"देवी वह हो जाएगा। आप इस ओर से पूर्णतः आश्वस्त रहें। देवी अब तो आप स्वर्ण मंजूषा के लिए कोई आदेश करें तो उसकी व्यवस्था की जाए।"

देवी आम्रपाली ने तनिक सोच कहा—'यह विषय तो आयुष्मान मैं तुम ही पर छोड़े देती हूँ। जो भी तुम्हारे निकटतम हो मेरा तात्पर्य है आयुष्मान कि जो तुम्हारे निकट सर्वाधिक प्रिय हो मुझे उसी की मंजूषा चाहिए।

यह सुन आचार्य शिष्य मानों किसी दुविधा में पड़ गया। उसे लगा जैसे देवी आम्रपाली ने यह स्वर्ण मंजूषा नहीं माँगी वरन् उसकी कोई कठिन परीक्षा लेनी चाही है। सभी की दृष्टि इस समय आचार्य शिष्य के मुख पर केन्द्रित हो रही। मंजरिका चारुस्मिता तथा समस्त उपस्थ देव सभी उत्सुकता से उसकी ओर देखते रहे कि देखो वह कौन सौभाग्यशाली है। कुछ सोच आचार्य शिष्य बोला—'पुरुषा प्रधान के नाते देवी मेरी दृष्टि में सभी समान रूप से प्रिय हैं और पत्नी रूप में देवी मंजरिका को पाकर मैं अपने को धन्य हुआ समझता हूँ। और, देवी रोहिणी पर भला कौन गर्व नहीं करेगा ? तथापि देवी वैशाली में देवी शिप्रा का स्थान विशिष्ट है। देवी कन्या-अभिप्राओं रूप में उन्हें सभी का तो स्नेह और सम्मान समान रूप से प्राप्त है।"

यह सुन सभी हर्षित हो उठे यहाँ तक कि मंजरिका भी। पता नहीं वह आज इस क्षण क्यों अपने स्वाभाविक विद्वेष का अनुभव न कर सकी। देवी आम्रपाली ने भी मौन रह अनुमोदन में केवल हर्ष भाव प्रकट कर दिया।

आचार्य शिष्य अब वहाँ खड़ा नहीं रह सका। उत्साह आवेग में सभी को सम्बोधित कर वह बोला—'सौम्यजनो मैं देवी शिप्रा से स्वर्ण मंजूषा लेकर अभी उपस्थित होता हूँ, तब तक आप अन्य व्यवस्था करें।

और फिर वह तत्क्षण से प्रकृत की ओर ऐसे दौड़-सा लिया। उसके आरूढ़ होते ही अश्व भी वायु वेग से नगर की ओर दौड़ उठा। किन्तु मुख्य द्वार पर उपस्थित एक दृश्य विशेष को देख उसके हाथ की वल्गा जैसे अनायास पीछे की ओर। ।

उधर, इस समय नगर के मुख्य द्वार पर नागरिकों की विशाल ... ।

असामान्य कर्णधार को जैसे घेरे खड़ी थी। वे सभी वहाँ क्यों खड़े थे —दूर से कुछ भी समझने में असमर्थ रहा। पर फिर भी न जाने क्यों । आम्रपाली का वह तीव्र प्रवाह सजीव हो उठा जो कैशन

बसते दिया था। वह अपने से पूछ उठा—'क्या यह देवी आम्रपाली का सचमुच कोई स्पष्ट संकेत था? वह, जैसे यूं ही सोचने लगा—'तो क्या राजगृह में अजातशत्रु का अपने वयोवृद्ध महामात्य वर्षकार पर भरी राजसभा में प्रहार करना केवल किसी प्रपंच की भूमिका मात्र थी? और उस सभा में आचार्य वर्षकार द्वारा वैशालिकों का पक्ष लिया जाना क्या उसका कोई नीति कौशल था? यह सब कुछ वास्तव में क्या था क्या न था सोचते-सोचते उसका अश्व भीड़ के सर्वथा सन्निकट पहुंच रुक गया। आचार्य शिष्य के वहां आ पहुंचने पर सभी उपस्थित नागरिकों ने कुछ ऐसा भाव दिखाया जैसे वे उस समय उसी की प्रतीक्षा में खड़े थे। और, आचार्य वर्षकार ने भी उसे देख जैसे संतोष की सांस ली। कुछ समय पूर्व उनके मुख पर जो चिंता का सा भाव छाया हुआ था वह सहसा लुप्त हो गया। हां नेत्रों में जैसे सायास एक प्रश्न सा अवश्य उभर आया।

सहसा आचार्य शिष्य की दृष्टि भीड़ के मध्य पड़ी चार शय्याओं पर जा पड़ी। उनमें से प्रत्येक शय्या पर एक-एक युवक का रक्त रंजित शव पड़ा था। यह अप्रत्याशित दृश्य देख आचार्य शिष्य चौंक उठा। उसकी मुख आभा भी सहसा मलिन हो गई।

नगर में यद्यपि सुरक्षा प्रधान का पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था पर वह विनिश्चय अमात्य के ही अधीन था। अत आचार्य शिष्य ने नत मस्तक हो उनका अभिवादन किया। फिर शवों की ओर तनिक दृष्टि डाल व्यग्र कण्ठ स्वर में पूछ उठा—"आर्यवर यह क्या हुआ?"

सुरक्षा प्रधान का यह प्रश्न जैसे विनिश्चय अमात्य को असह्य प्रतीत हुआ। वह स्पष्ट ही क्रोधित हो उठे। उत्तेजना से उनकी भ्रू-रेखाएं तन गईं। पदाधिकार के दृढ़ स्वर में वह सायास बोले—"यह प्रश्न सुरक्षा प्रधान के मुख से तो शोभा नहीं देता। स्वयं सिंह सेनापति भी विनिश्चय अमात्य से यह प्रश्न नहीं कर सकते। विनिश्चय अमात्य के नाते मैं स्वयं तुमसे यह पूछना चाहता हूं कि सुरक्षा प्रधान की क्या यही नगर व्यवस्था है? एक रात्रि में चार चार युवकों की हत्या हो जाए और सुरक्षा प्रधान को इतने दिन चढ़े तक भी यह विदित न हो यदि यह आयुष्मान का प्रमाद नहीं तो भला और क्या है?"

स्वर्गीय गणाध्यक्ष राजा चेटक के दत्तक पुत्र एवं सुप्रतिष्ठित सुरक्षा प्रधान को इस प्रकार सार्वजनिक रूप से प्रताड़ित करना कोई कम साहस की बात नहीं थी। सभी उपस्थित जन जानते थे कि इन हत्याओं में आचार्य शिष्य का कोई प्रत्यक्ष दोष नहीं और यदि है तो केवल इतना ही कि उसके कार्य काल में यह सब कुछ हुआ है। परन्तु उसको इस प्रकार प्रताड़ित किया जाना किसी को भी जैसे रुचिकर नहीं लगा। पर आचार्य शिष्य ने जैसे यह सब कुछ सुना ही नहीं। उसने लेश मात्र को भी तो अपने को अपमानित हुआ अनुभव नहीं किया। हां एक बार दृष्टि ऊपर उठा विनिश्चय अमात्य की ओर अवश्य देखा। उसकी दृष्टि में इस समय आत्म विश्वास झलक रहा था आत्म विश्वास के साथ थोड़ा-थोड़ा आक्रोश का भाव भी। वह किंचित मौन के पश्चात् अपने स्वाभाविक दृढ़ कण्ठ स्वर में बोला—'आर्य आश्वस्त रहें हत्या करने वालों को अवश्य ही खोज कर ली जाएगी।"

"परन्तु कब तक ?" विनिश्चय अमात्य ने अपने पूर्ववत दृढ़ स्वर में प्रश्न किया। आचार्य शिष्य ने इस बार भी सर्वथा अविचलित रह कहा—"अपराधियों की खोज करना मेरी विशेष चिन्ता है आर्य परन्तु उससे भी अधिक चिन्ता मुझे उस प्रयोजन का पता लगाने की है जो इस योजनाबद्ध काण्ड में स्पष्ट प्रतीत हो रहा है।"

विनिश्चय अमात्य ने पहले तो आश्चर्य सुरक्षा प्रधान की ओर देखा फिर पूछने लगे—"सुरक्षा प्रधान क्या यह तुमने कैसे जाना कि यह योजनाबद्ध काण्ड है।"

"यह इस प्रकार आर्य कि ये चारों शव केवल एक साथ ही नहीं पड़े हैं वरन् इनकी एक ही समय में हत्या भी की गई प्रतीत होती है। और, सभी पर एक ही जैसा प्रहार किया गया है। शरीर के केवल एक ही भाग पर हुए इस प्रहार से तो मेरा यह मत और भी अधिक पुष्ट हुआ प्रतीत होता है।

विनिश्चय अमात्य वर्षकार ने इस बार पूर्व से भी अधिक आश्चर्य का भाव लिए पूछा—"और आयुष्मान तुमने यह कैसे जाना कि सभी की एक ही समय में हत्या हुई है ?"

आचार्य शिष्य बोला—"समय आने पर आर्य की सेवा में सभी कुछ निवेदन कर दिया जाएगा परन्तु मैं इस समय नगर का सामान्य जीवन चाहता हूँ। और मैं उसकी उचित व्यवस्था भी करूँगा।"

"परन्तु यह कैसे सम्भव है ? क्या सुरक्षा प्रधान यह नहीं समझते कि नगर में जब इतनी अराजकता हो कि एक रात में चार चार युवकों की हत्या हो जाए, तो फिर क्या नागरिक भला विचलित भी न होंगे ? यह तो सर्वथा असम्भव है।"

इस पर आचार्य शिष्य नत मस्तक हो परन्तु आत्मविश्वास की दृढ़ता के साथ बोला—"असम्भव इस में कुछ भी नहीं आर्य फिर ये मृतक वैशालिक भी तो नहीं।"

आचार्य शिष्य ने जैसे यह कोई महत्त्वपूर्ण रहस्योद्घाटन किया। विनिश्चय अमात्य उसे सुन चकित रह गए और कदाचित् कुछ विस्फारित दृष्टि से आचार्य शिष्य की ओर देख उठे। विनिश्चय अमात्य ने उसकी ओर देखते हुए प्रश्न किया—"सुरक्षा प्रधान क्या तुम यह विश्वास के साथ कह सकते हो कि ये मृत युवक वैशालिक अथवा वज्जि नहीं हैं ?"

'हाँ आर्य यह मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूँ। ये वैशालिक अथवा वज्जि नहीं हैं इसीलिए यह काण्ड और भी रहस्यपूर्ण बन गया है। अतएव अब सुरक्षा की दृष्टि से इस काण्ड में निहित प्रयोजन का पता लगाना और भी महत्त्वपूर्ण हो गया है।

वास्तव में वहाँ उपस्थित जन-समुदाय में से किसी का भी ध्यान उस ओर नहीं गया था। अतएव सभी सुरक्षा प्रधान के इस बुद्धि कौशल की मन-ही-मन सराहना कर उठे।

आचार्य वर्षकार भी सुरक्षा प्रधान के इस बुद्धि कौशल की मन-ही-मन प्रशंसा कर उठे। परन्तु वह वास्तव में इस समय इससे अधिक हुए। आगे ही वे बोले—'वर्षकार यह सुरक्षा प्रधान अवश्य ही कोई ब्राह्मण-पुत्र है। यदि यह वैशाली में न हो मगध साम्राज्य की सेना में होता तो उसकी यह प्रतिभा और भी अधिक विस्तृत आकार



छब्बीस

आचार्य वर्षकार को शायद ही कभी यह कल्पना हुई होगी कि अम्बपाली किसी दिन फिर भी, वैशाली में लौट सकती है। अतः जब उन्होंने उसके पुनरागमन का समाचार सुना तो वह सर्वथा स्तब्ध रह गए। पर उन्होंने पूरे चालीस वर्षों तक मगध की राजनीति में सक्रिय भाग लिया था साम्राज्य के क्षितिज पर वह इस सारी अवधि ही ध्रुव तारे की भाँति देदीप्यमान रहे थे और इस मध्य न जाने कितने ज्वार आए थे जिनके सम्मुख वह एक दृढ़ चट्टान की भाँति अविचल खड़े रहे थे। अतः किसी विपत्ति के सामने अपने अन्तर का दुर्बल भाव दिखाना उनका सहज स्वभाव नहीं रह गया था। अन्तर के भावों को अन्तर तक ही सीमित रखना उनके संयत स्वभाव का स्थायी अंग बन चुका था। फिर भी वह जब उस समाचार को सुन अपने प्रासाद में लौटे तो कुछ ऐसे विचारमग्न हो रहे जैसे किसी समस्या ने उन्हें अपना समाधान खोज निकालने के लिए बाध्य कर दिया हो। उन्हें लगा जैसे वैशाली में यह देवी अम्बपाली का नहीं वरन् साकार रूप में किसी दैवी-विपत्ति का आगमन हुआ है। यह देख एक बारगी तो उनका अन्तस्तल प्रकम्पित तक हो उठा। परन्तु उन्होंने अपने अन्तर का यह दुर्बल भाव कक्ष की भित्तियों के सम्मुख तक भी प्रकट नहीं होने दिया। तो भी जैसे उनके मुख से बलात् एक निश्वास निकल गया और उसी के साथ उनका अन्तः भाव ध्वनित हो कह उठा—"वर्षकार दीखता है अब तेरा वैशाली में रहना असंभव है।"

और फिर उनके मुख पर दुविधा का-सा भाव उभर आया।

तत्पश्चात् उनका विचार-व्यस्त मस्तिष्क कुछ रिक्तता का-सा अनुभव कर उठा दृष्टि शून्य में उलझ गई और मुख पर नैराश्य छा गया। अन्ततः अब, पीठिका से उठ वह वाटिका व्यस्त हो गए। किन्तु उन्हीं के साथ विचारों ने भी जैसे एक नया मोड़ ले लिया। अपने ही को सुनाते हुए बोले—देवी अम्बपाली के आगमन पर सारा ही नगर उल्लसित है तो फिर वर्षकार, कोई कारण नहीं कि तू भी सभी वैशालिकों के इस उल्लास में उनके साथ सम्मिलित हो उसका स्वागत न करे।

उन्होंने जैसे यह एक निश्चय किया जिसकी दृढ़ता उनके मुख पर स्पष्ट हो उठी। फिर निश्चय की दृढ़ता पर कोई दुरभिमान छा रहा और दृष्टि रहस्यपूर्ण हो उठी। किन्तु वह शीघ्र ही एक मुस्कान में परिणत हो गई। ऐसा लगा जैसे उन्हें समाधान ही कोई सूत्र हाथ लग गया हो। वह अब स्पष्ट ही प्रसन्न चित्त थे। परन्तु किस कारण? वह इस प्रश्न को वहीं छोड़ कक्ष से बाहर निकल और तत्परता से द्वार मंडप में

था रथारूढ़ हो गए।

सारथी ने भी अपने स्वामी के आदेश पर रथ को देवी आम्रपाली के आम्र-कुंज की ओर बढ़ा दिया। और जब वह प्रासाद की परिधि को लांघ राजपथ पर आए तो वे भी सरपट दौड़ लिए।

आचार्य वर्षकार के मुख पर असाधारण उल्लास छा उठा। जैसे आज उनका किसी उदीयमान विचार से अनायास ही समझौता हो गया हो और उनके अन्तर ने अपने सभी दुराग्रहों को त्याग किसी नयी आस्था को जन्म दिया हो। मार्ग में जब एक नागरिक ने उनका अभिवादन किया तो प्रत्युत्तर में उनके मुख का रूप भाव हिल्लोलित हो उठा। वह सोत्साह उच्च कण्ठ स्वर में कह उठे—"सौम्यजन वैशाली का यह धर्मनिरपेक्ष स्वभाव तो सचमुच धन्य है। अरे, आज तो मैंने भी इसके मर्म को समझ लिया है।"

फिर एक दूसरे नागरिक द्वारा प्रस्तुत अभिवादन के उत्तर में वह बोले—'सौम्यजन देवी आम्रपाली ने निस्सन्देह वैशालिकों को एक पुनीत कार्य के लिए आह्वान किया है।'

और फिर, तीसरे से उन्होंने साभिमान कहा—'सौम्यजन देवी आम्रपाली ने तो यह जैसे मेरे ही किसी दिवा स्वप्न को साकार रूप देने का अनुष्ठान किया है। भगवान् तथागत की पावन स्मृति में यदि वैशाली में भी स्तूप न बना तो फिर भला और कहाँ बनेगा?"

वयोवृद्ध आचार्य को इस प्रकार भाव विभोर हुआ देख सभी तो उनकी इस सरलता पर गद्गद हो उठे।

फिर तो अन्य वैशालिकों की भाँति वह भी प्रति दिन देवी आम्रपाली के दर्शन के लिए जाने लगे। किन्तु वह जैसे जाते वैसे ही लौट भी आते। देवी आम्रपाली के साथ एक भी शब्द का आदान प्रदान न हो पाता। देवी आम्रपाली का यह दुराग्रह अथवा उपेक्षा भाव देख उनके अन्तर की दुविधा और प्रबल हो उठी।

कोई एक पक्ष पश्चात्, एक दिन आम्रकुंज की ओर जाते हुए वह सुरक्षा प्रधान आचार्य शिष्य को सहसा मार्ग ही में टोक पूछ उठे—"कहो आयुष्मान क्या उन अपराधियों का कुछ पता चला?"

आचार्य वर्षकार का यह निस्सन्देह साधिकार प्रश्न था फिर भी उन्होंने उसे इस समय सर्वथा सहज ढंग में पूछा था। एक रात में चार चार युवकों की और वह भी वैदेशिकों की हत्या का हो जाना किसी प्रकार भी एक सामान्य घटना नहीं थी। सुरक्षा प्रधान आचार्य शिष्य ने भी उसे कोई साधारण घटना समझ उसकी उपेक्षा नहीं की थी। वह इस सारी अवधि ही अपराधियों की खोज में व्यस्त रहा था एक प्रकार से अपना सारा ध्यान उसी ओर केन्द्रित कर रखा था। इस समय भी उसके मुख पर चिन्ता का अगाध भाव छाया हुआ था। पर, न जाने क्यों विनिश्चय अमात्य के इस प्रश्न को सुन वह इस समय अपने अन्तर में कुछ उत्तेजित हो उठा। साथ ही उसने जैसे किसी दुराग्रह की कटुता का भी अनुभव किया। तो भी प्रकट में सहसा संयत रह उसने पहले तो दृष्टि उठा आचार्य वर्षकार की ओर देखा और फिर नत मस्तक हो बोला—

"मार्यवर, पता प्रवश्य चला है परन्तु प्रभी तक जितना कुछ विदित हो सका है वह अपर्याप्त ही है और उसके आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वह सूत्र हाथ लग सका है।"

आचार्य शिष्य के मुख से सूत्र के हाथ लगने की बात सुन विनिश्चय प्रमात्य को जैसे कुछ आश्चर्य हुआ सम्भवतः आश्चर्य से भी अधिक दुविधा हुई परन्तु दुविधा ने जैसे अन्ततः अप्रयास विश्वास का सहारा ले लिया। मानो उनके अन्तर में कुछ भी नहीं हुआ अतः प्रकट में उत्सुकता दिखा तत्परता से पूछने लगे—"और आयुष्मान भला वह सूत्र क्या है?"

आचार्य शिष्य ने इस प्रश्न पर अपनी दृष्टि तनिक ऊपर उठा कहा—"मार्यवर, सुरक्षा के हित में अभी उसका बताना किसी प्रकार भी उचित नहीं।"

यह सुन आचार्य वर्षकार को इस बार आश्चर्य का अनुभव नहीं हुआ वरन् जैसे उनके किसी दृढ़ आत्म विश्वास का पद सहसा शिथिल हो गया। उनके अन्तर का कोई दुविधा भाव व्यग्रता में परिणत हो उठा। परन्तु प्रकट में उनके मुख से कुछ ऐसा आभास हुआ जैसे उन्होंने आचार्य शिष्य के इस उत्तर से अपने को अत्यन्त अप मानित हुआ समझा हो। वह सावेग बोले—"परन्तु सुरक्षा प्रधान विनिश्चय प्रमात्य के नाते यह सब कुछ जानना मेरा निश्चित अधिकार है।

इस पर आचार्य शिष्य ने सर्वथा अविचलित रह, साथ ही नत मस्तक हो सवि नय कहा— अवश्य हो सकता है मार्यवर, परन्तु मैं यह अवश्य ही निवेदन करूँ यह मेरा कर्तव्य कदापि नहीं। मार्य सुरक्षा प्रधान को अभी प्रमाण की आवश्यकता है, और वह इस समय उसी की खोज में है।

आचार्य वर्षकार के अन्तर में बैठा कोई व्यक्ति यह सुन जैसे एक उच्च ठहाका दे हँस पड़ा। किन्तु बाह्य में उनका आवेग और उग्र हो उठा। उत्तेजना के से स्वर में बोले— "और यदि तुम उसे खोजने में असमर्थ रहे तो?"

विनिश्चय प्रमात्य की भृकुटि रेखाएं तन गईं। किन्तु, उनके मुख से यह प्रत्यक्ष प्रश्न सुन कर भी आचार्य शिष्य हतोत्साहित नहीं हुआ। वास्तव में उसने उसमें कुछ चुनौती का सा आभास पाया था। उसकी दृष्टि आचार्य वर्षकार के मुख पर केन्द्रित हो रही। सहज ढंग में बोला—"मार्यवर जो मेरा कर्तव्य है उसे मैं अवश्य करूंगा।"

विनिश्चय प्रमात्य को सुरक्षा प्रधान का यह उत्तर अस्पष्ट प्रतीत हुआ। वास्तव में वह प्रश्न मैं जितना सरल प्रतीत हुआ आचार्य वर्षकार के निकट वह उतना ही रहस्यपूर्ण बन कर रह गया। परन्तु इस समय उनके विश्लेषण का समय नहीं था। अतः वह पुनः सावेग ही तत्परता से पूछ उठे—"तो फिर क्या अनिश्चित समय तक ही अभियोग का प्रस्तुत किया जाना भी स्थगित रहेगा?'

सुरक्षा प्रधान मन-ही-मन झल्ला उठा। परन्तु प्रकट में सर्वथा संयत रह बोला —"अनिश्चित समय तक तो नहीं मार्यवर, परन्तु हाँ अभी कुछ और समय अवश्य लगेगा। फिर मार्यवर घटना भी तो कोई साधारण नहीं।"

यह कह आचार्य शिष्य ने पुनः अपनी दृष्टि उठा आचार्य वर्षकार के मुख की ओर देखा। जैसे उसने उनकी मुख रेखाओं में कुछ पढ़ने का प्रयास किया। आचार्य

वर्षकार ने उसकी इस ग्रध्ययन-व्यस्त दृष्टि को तनिक देखा किन्तु शीघ्र ही अपने को संयत कर, दृष्टि के प्रति उपेक्षा का सा भाव दिखा वह बोले— यह मैं भी जानता हूँ आयुष्मान कि घटना सामान्य नहीं है पर साथ ही हम उसे असामान्य कह न्याय की भी तो उपेक्षा नहीं कर सकते।"

आचार्य शिष्य ने भी अपना मस्तक नत कर सविनय कहा— 'आर्यवर, परन्तु यह न्याय के प्रति उपेक्षा तो कदापि नहीं और न ही यह गए पुरुषों का प्रमाद हुआ। सभी तो वास्तविकता की खोज के लिए प्रयत्नशील हैं। क्या न्याय का वांछित तथ्य का पता लगाना नहीं है ?"

"है, अवश्य है आयुष्मान किन्तु न्याय को विलम्बित करना उसकी अवहेलना के समान ही है इस तथ्य को ही तुम क्यों भूले जा रहे हो ?

सुरक्षा प्रधान के पास जैसे इसका भी उत्तर था तो भी वह इस बार कुछ बोला नहीं। वास्तव में वह यदि आज चाहता तो विनिश्चय अमात्य के मूल प्रश्न का निश्चय ही प्रत्यक्ष उत्तर भी दे सकता था पर फिर भी वह उसे टाल गया। वैसे ही नहीं वरन जानबूझ कर उसने ऐसा किया था और उसके पीछे इस समय उसका कोई दृढ़ निश्चय था और उसके इस दृढ़ निश्चय की आधार शिला में कोई भारी दुविधा थी। कदाचित यह वही दुविधा थी जिसमें वह गत कई दिनों से ग्रस्त था। अतः, जब वह विनिश्चय अमात्य के पास से विदा हुआ तो उसे कुछ क्षणों के लिए मनस्तोष का सा अनुभव हुआ परन्तु जैसे-जैसे उसका अश्व आगे बढ़ा उसके अन्तर का कोई दुराग्रह भाव भी अधिकाधिक परिमाण में उग्र होता चला। वह इस समय देवी आम्रपाली के स्तूप निर्माण स्थल से लौट देवी शिष्या की अट्टालिका की ओर आ रहा था। परन्तु अब वह अनायास ही सिंह सेनापति के दुर्ग की ओर चल पड़ा।

और जब आचार्य वर्षकार सुरक्षा प्रधान से अलग हुए तो जैसे उन्होंने भी मन स्तोष की साँस ली। वास्तव में आचार्य शिष्य को टोक उससे उन्होंने जो प्रश्न किया था उसका एक विशेष प्रयोजन था। आचार्य शिष्य अपराधियों की खोज की दिशा में किस प्रकार प्रयत्नशील है उनसे यह रहस्य छिपा नहीं था और न ही उनसे यह छिपा हुआ था कि अब तक के सतत प्रयत्नों के फलस्वरूप वह किस निष्कर्ष पर पहुँचा है। तो भी वह उसकी पुष्टि कर लेना चाहते थे और वह केवल इसी के लिए गत कई दिनों से अवसर की खोज में थे। अतः आज उनका रथ आचार्य शिष्य के प्रासाद के सम्मुख वैसे ही नहीं आ गया था वरन् जैसे जान-बूझ कर लाया गया था।





सत्ताईस

आचार्य शिष्य ने उस समय अवश्य मनस्तोष की सांस ली परन्तु उसके पश्चात् ? उसे लगा उसके नेत्रों के सम्मुख कोई घटना-क्रम गतिमान हो उठा है और उसे वह, जैसे निष्क्रिय हुआ सा देख रहा है। वैशाली में देवी आम्रपाली द्वारा स्तूप के निर्माण को उसने केवल एक संयोग ही समझा। परन्तु एक रात्रि में बार-बार मागधों की हत्या को वह मात्र संयोग समझ कर कैसे रह जाता ? प्रत्यक्ष में इन दोनों ही घटनाओं के मध्य कम से कम वर्तमान में परस्पर कोई तारतम्य नहीं था परन्तु भविष्य के सम्बन्ध में कौन क्या कह सकता है ? कोई कुछ भी तो नहीं कह सकता ठीक है कोई कुछ कह भी कैसे सकता है ? वह सोचने लगा—'परन्तु, उधर राजगृह में सम्राट् अजातशत्रु पर्वत शृंखला से बाहर उप्पल वन वाटाओं के पास नालंदा ग्राम मार्ग पर जो एक नया नगर बनवा रहा है वह किस बात का द्योतक है ? फिर जैसे वह अपनी इसी जिज्ञासा के उत्तर में आगे सोचने लगा—'वह इसी बात का तो द्योतक है कि अब उसे पर्वत शृंखला की ओट में घिरे रहने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई, और यदि वह बाहर आकर भी रहे तो सर्वथा सुरक्षित ही है। किन्तु उसका प्रधान अमात्य गोपाल तो इससे भी कुछ आगे कह रहा है। वह सम्राट् द्वारा राजगृह के पास ही इस नए नगर के निर्माण से लेशमात्र को भी तो संतुष्ट नहीं वह उसे अपने सम्राट् का एक स्पर्श का प्रमाण समझ रहा है। क्यों ? क्योंकि उसका अनुमान है कि मगध की राजधानी शीघ्र ही पाटलिग्राम में स्थानान्तरित करनी होगी। उसकी दृष्टि में पाटलिग्राम एक ऐसे स्थान पर अवस्थित है जहां से बढ़ते हुए साम्राज्य का शासन कार्य अधिक सुगमता एवं सुचारु ढंग से चलाया जा सकता है। फिर, पाटलिग्राम के उज्ज्वल भविष्य के सम्बन्ध में स्वयं तथागत ने भी तो एक बार भविष्यवाणी की थी। तथागत की इसी भविष्यवाणी का ध्यान आते ही उसे एक अन्य बात भी स्मरण हो आई। वह उसे स्मरण कर सोचने लगा—'जब उन्होंने यह बात कही थी तो यही वर्षकार, जो आज यहां वैशाली में है, वहां एक नया दुर्ग बनवा रहा था और फिर यही वर्षकार एक दिन तथागत के पास भी गया था वह गया था भगवान से यह पूछने कि राजा अजातशत्रु वज्जि संघ पर आक्रमण कर, उसे अपने राज्य में मिलाना चाहता है भगवन्, इसमें कुछ अनुचित तो न होगा ?

आचार्य शिष्य को वर्षकार के इस धृष्टतापूर्ण प्रश्न पर मन-ही मन हंसी आ गई। वह अपने से बोला—"भला क्यों यह प्रश्न भी तथागत से पूछने का था ?"

तब भगवान् राजगृह में ही गृध्रकूट पर्वत पर रहते थे और जिस समय

वर्षकार ने उनसे यह प्रश्न किया था प्रमुख शिष्य आनन्द भी अपने शास्ता के निकट खड़ा उन पर पंखा झल रहा था। तथागत वर्षकार के इस प्रश्न के उत्तर में मौन नहीं रहे क्योंकि उनके मौन रहने का अवसर ही यह अर्थ लगाया जाता कि उन्होंने अज तशत्रु को आक्रमण की अनुमति दे दी है। किन्तु उन्होंने वर्षकार से सीधे कुछ भी न कह अपने ही प्रमुख शिष्य से पूछा—"क्यों आनन्द क्या तुमने सुना है कि वज्जीगण बार बार सभा करते हैं और एकत्र होते हैं ?"

आनन्द ने उत्तर में तथागत से कहा— जी हाँ भदन्त मैंने सुना है कि वज्जी बार-बार सभा करते हैं और एकत्र भी होते हैं।"

तथागत—"क्या वज्जी समग्र एकत्र होते हैं समग्र उठते हैं और समग्र रूप ही से अपने कार्य करते हैं ?

इस पर आनन्द ने नत मस्तक हो कहा—"जी हाँ मैंने ऐसा ही सुना है।"

फिर तथागत ने आगे पूछा—"क्यों आयुष्मान् वे दूसरों के नियम को तो अपना नियम नहीं कहते—अर्थात् स्वनिर्मित विधान का ही तो पालन करते हैं न उसे तोड़ते तो नहीं ?"

आनन्द ने बताया—"जी हाँ भदन्त मैंने सुना है कि वज्जी अपने बनाये विधान के अनुसार ही चलते हैं।"

तथागत ने फिर प्रश्न किया—"क्यों आनन्द वज्जी अपने वृद्ध राजनीतिज्ञों का मान तो करते हैं न ? और जो परामर्श वे देते हैं उसे वे स्वीकार करते हैं न ?"

आनन्द ने नत मस्तक रह ही कहा—"जी हाँ भदन्त वज्जी अपने वृद्ध राज नीतिज्ञों का मान रखते हैं और उनके परामर्श को भी स्वीकार करते हैं।"

"और आयुष्मान वे अपने राज्य की विवाहित अथवा अविवाहित स्त्रियों पर अत्याचार तो नहीं करते ?"

"भदन्त मैंने सुना है कि वज्जियों के राज्य में स्त्रियों का आदर ही आदर होता है।"

"और वे अपने नगर के तथा नगर के बाहर के देव-स्थानों का उचित संरक्षण तो करते हैं न ?'

"जी हाँ भन्दत मैंने सुना है कि वे अपने सभी देव-स्थानों का उचित ध्यान रखते हैं।"

और फिर सबसे अन्त में तथागत ने पूछा—"क्यों आयुष्मान आनन्द वे अपने राज्य में आए अर्हन्तों की उनके योग्य ऐसी समुचित व्यवस्था तो रखते हैं न कि उन्हें कोई कष्ट न हो तथा साथ ही अन्य अर्हन्तों को वहाँ आने के लिए प्रोत्साहन मिले यह सब सावधानी तो वज्जी रखते हैं न ?"

और इसके उत्तर में भी आनन्द ने पूर्व की भाँति ही कहा—"हाँ भन्ते वज्जियों के देश में किसी भी अर्हन्त को कोई कष्ट न हो, वे इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं।"

तब तथागत ने अमात्य वर्षकार से कहा—"हे ब्राह्मण एक बार वैशाली में रहते समय मैंने गणराज्य के अभ्युदय के इन सात नियमों का वज्जियों को उपदेश

किया था और जब तक वज्जी इन नियमों के अनुसार आचरण रखेंगे तब तक उनकी उन्नति ही होगी अवनति कदापि नहीं।"

इस पर वर्षकार ने नत मस्तक हो कहा था—"हे गौतम यदि वज्जी इनमें से किसी एक नियम का भी अनुसरण करते रहे तो उनकी उन्नति ही होगी अवनति कदापि नहीं।

राजा अजातशत्रु की नगरी में रहते समय तथागत ने वज्जियों के सम्बन्ध में जब यह बात कही थी तो आचार्य शिष्य उस समय वहीं वैशाली में इसी सुरक्षा प्रधान पद पर था और उसने भी अन्य वैशालिकों की भांति गर्व का अनुभव किया था। परन्तु आज उसे लगा कि वह किंचित भी तो गर्व की बात नहीं थी यह तो तथागत ने एक प्रकार से हम सभी को जैसे सावधान किया था।

उसका अश्व इस समय द्रुत गति से बलाध्यक्ष के दुर्ग की ओर दौड़ रहा था। यह बात ध्यान में आते ही वह उसकी पीठ पर और सम्हल कर बैठ गया और वल्गा को और ढीली छोड़ आगे की बात सोचने लगा। वह सोचने लगा कि यदि तथागत ने हमें सावधान किया था तो क्या उन्होंने साथ ही वर्षकार को अशुभकामी‌वश कुछ संकेत भी नहीं दे दिया था। और, वह संकेत क्या था? वह अश्व की वल्गा को तनिक खींच सोचने लगा—और आज वही वर्षकार वैशाली में है। वैशाली में आने से पूर्व एक घटना और भी हुई थी और वह घटना थी राजगृह में साम्राज्य के सभी धार्मिकों की सभा और इसी सभा में वर्षकार ने वैशालिकों का पक्ष लिया था। और उसने अजातशत्रु के सम्मुख वैशालिकों का कोई पक्ष क्यों लिया? यह प्रश्न सहसा उनके मस्तिष्क में विद्युत वेग से कौंध-सा गया।

आचार्य शिष्य को लगा जैसे इसी प्रश्न के उत्तर में तो कहीं कोई गूढ़ घटना हुआ है। परन्तु उसका इस हत्याकाण्ड से सम्बन्ध? उसे कुछ भी स्पष्ट समझ में नहीं आया। हां उसके अन्तर में बैठी कोई धारणा अवश्य और दृढ़ हो रही सन्देह भी। परन्तु अकेले सन्देह से तो काम नहीं चलता उसके लिए प्रमाण चाहिए, और इसी प्रमाण को वह पूरे एक पक्ष से खोज रहा है सोचते-सोचते हताश भी हो उठा है। और यदि वह प्रमाण न मिला तो क्या यह सन्देह सन्देह पर्यवसीन ही रहेगा चाहे फिर? और फिर वह आगे कुछ नहीं सोच सका। बस उसके मुख का गैरावण भाव प्रगाढ़ हो उठा। अब तक दुर्ग का द्वार आ चुका था। उसे देख वह फिर सोचने लगा—जब प्रमाण ही पास नहीं तो फिर बन्धुवर सिंह न क्या कहना शेष रह गया? और क्या पता प्रमाण के अभाव में वह मेरी बात पर एक ठहाका दे हंस ही पड़ें और कह उठें आयुष्मान् यह तो तुम्हारा आचार्य वर्षकार के प्रति कोई दुराग्रह भाव हुआ न्याय व्यवस्था में दुराग्रह के लिए कोई स्थान नहीं फिर यह एकता को भंग करने का भी प्रयास हुआ उसी एकता को जो वज्जियों की और उनके इस गणतन्त्रात्मक गणराज्य की आधार भूत शक्ति है और जिस शक्ति की एक दिन केवल एक दिन ही नहीं वरन् अनेक बार स्वयं तथागत ने प्रशंसा की थी।

आचार्य शिष्य ने जैसे अपनी ही किसी बात पर पुनर्विचार करने के लिए द्वार से—न अश्व को तनिक रोक लिया। अश्व को रोक उसे वापस मोड़ने को उद्यत भी

हो उठा परन्तु फिर दृढ़ता से अपनी आस्था को पकड़ वह सोचने लगा—"सुरक्षा प्रधान का दायित्व है कि मुझे कोई निश्चित निर्णय करना ही होगा चाहे फिर उस निर्णय के परिणाम कुछ भी क्यों न हों या फिर. ।"

या फिर के आगे भी उसने कुछ सोचा, और वह सोचते ही जैसे उसे कोई बड़ा अवलम्ब मिल गया। अश्व फिर द्रुत गति से दुर्ग के अन्दर की ओर दौड़ लिया। द्वार मण्डप में अश्व को छोड़ सोपान पर उसने पैर रखा ही था कि पीछे वाटिका की ओर से कोई उसे पुकार उठा। उसने मुड़कर उधर की ओर देखा तो वह जैसे चौंक कर रह गया। मन-ही-मन बोला—"यह तो प्रमाद है अरे जयधर, सभी ने सोच लिया है, जैसे इस गणराज्य की सुरक्षा का दायित्व केवल तेरे ही कंधों पर है, और शेष सभी ने सब मुझे यह कार्य सौंप मानो अवकाश ले लिया है।

सम्मुख वाटिका में इस समय केवल सिंह दम्पत्ति ही नहीं वरन् महावीर मणिप्रिय रत्न भी अपनी पत्नी देवी रत्न कमल के साथ वहाँ उपस्थित थे और उनका एक चार वर्षीय बालक रोहिताश्व तितलियों को पकड़ने के उपक्रम से सारी कुंज-कुंज को उनके पीछे-पीछे भाग रहा था। परन्तु उनके सन्निकट पहुँच कर भी वह उन्हें पकड़ नहीं पा रहा था। और उसके इस कृत्य को देख देवी रत्नकमल तथा देवी रोहिणी दोनों ही सहज विनोद भाव से हँस रही थीं। किन्तु, आचार्य शिष्य को आया देख अब सभी का ध्यान उस ओर आकृष्ट हो रहा।

सिंह सेनापति तो जयधर को आया देख इस समय जैसे अत्यन्त प्रसन्न हो उठे। उल्लसित कण्ठ स्वर में बोले—"आओ आयुष्मान आओ! हम तो सचमुच अभी तुम्हारा ही स्मरण कर रहे थे।" यह कहते हुए वह तनिक रुके फिर बोले—"आयुष्मान आज देवी आम्रपाली के स्तूप को देख मैं तो चकित रह गया! एक पक्ष की अवधि क्या होती ही क्या है, परन्तु इस अल्प काल में भी उसके निर्माण कार्य ने जो प्रगति की है वह निस्सन्देह प्रशंसनीय है।"

आचार्य शिष्य जैसे कहने के लिए कह उठा—"वस्तुतः यह सब वैशालिकों का उत्साह ही तो है।"

"और, देवी आम्रपाली की लगन भी तो देखो।" महावीर मणिप्रियरत्न भी अपना मंतव्य प्रकट कर उठे।

आचार्य शिष्य महावीर की ही बात को आगे बढ़ाते हुए कुछ कहना चाहता था कि इसी समय सिंह सेनापति फिर बोल उठे—"परन्तु मुझे इन सबसे अधिक आश्चर्य तो देवी आम्रपाली की इस बात पर है कि जितना उनका कभी नृत्य पर अधिकार हुआ करता था उतना ही वैराग्य पर भी हुआ, और फिर अब इस स्तूप निर्माण में तो उन्होंने स्थापत्य कला के विशद ज्ञान का भी परिचय दे दिया है।"

अब तक देवी रोहिणी और देवी रत्न कमल भी वहीं पहुँच चुकी थीं। दोनों ही अत्यधिक प्रसन्न थीं। देवी रोहिणी ने अपनी मुस्कराती दृष्टि आचार्य शिष्य की ओर फेर परिहास के से कण्ठ स्वर में कहा—"यह तो जो कुछ है सो है ही पर वस्तुतः यह भी बताओ कि आज इधर कहाँ आ भटके? क्यों जयधर पथ कहीं मार्ग तो नहीं भूल गए?"

अभी देवी रोहिणी अपनी बात पूरी भी नहीं कर पायी थी कि देवी रत्न कमल भी उतावली में उमगती हुई सी कह उठी—"देवी यह स्वयं तो हमें भूल गए हैं सो तो इतने आश्चर्य की बात नहीं परन्तु देवी मंजरिका को भी तो देखो न यह तो हम सभी को कुछ ऐसी भूल गई, जैसे उनका हम से कभी कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा।"

अपने प्रथम गुरुबन्धु की उपस्थिति में दोनों के मुख से यह आत्मीयतापूर्ण उलाहना सुन आचार्य शिष्य भारी संकोच का अनुभव कर उठा यह उत्तर में कुछ भी न कह सका। हाँ संकोच की भग्न दृष्टि से एक बारगी उसने उनकी ओर देखने का असफल प्रयास किया पर उसकी मुख मुद्रा फिर अस्त व्यस्त हो उठी। वास्तव में वह गणाध्यक्ष के दुर्ग में बन्धुवर सिंह से आज वैशाली की किसी ज्वलंत समस्या पर बहुत कुछ कहने आया था। पर उसने जब यहाँ उसका दूसरा ही वातावरण देखा तो उसके अन्तर का सारा उत्साह जैसे फीका पड़ गया। उसका संकोच भाव और भी अधिक प्रगाढ़ हो उठा। परन्तु गणाध्यक्ष सिंह ने अब तक उसके मुख पर छाई चिन्ता की झाँई को स्पष्ट रूप से देख लिया था। उन्होंने देखा कि वह इस समय केवल चिन्ता ग्रस्त ही नहीं वरन् कुछ उत्तेजित भी है। अतः सिंह सेनापति ने कुछ चिन्तामिश्रित उत्सुकता से पूछा—"क्यों आयुष्मान आज तुम इतने उदास क्यों दीख रहे हो ?"

यह प्रश्न सुन आचार्य शिष्य की खिन्नता जैसे कोई सहारा पा बिखर-सी गई। सप्रयास मुस्कान के साथ बोला—"नहीं बन्धुवर, उदास तो नहीं परन्तु हाँ चिन्तित अवश्य हूँ।"

यह कह वह क्षणेक रुका। फिर जैसे अपने अन्तर की सारी शक्ति बटोर वह सिंह की ओर मानों असहाय दृष्टि से देखते हुए कह उठा—"पूज्यपाद मैं सुरक्षा प्रधान के पद से मुक्त हुआ चाहता हूँ।"

उसके मुख से अकस्मात् यह सुन न केवल सिंह सेनापति वरन सभी तो स्तब्ध रह गए। सभी के मुख निस्तेज हो उठे।

देवी रोहिणी अपने पितृ-शिष्य को इस प्रकार भावावेश में देख पहले तो कुछ चिन्तित हुईं परन्तु अगले क्षण ही वह उसके इस भावावेश पर हँसे बिना भी न रही। किन्तु सिंह सेनापति ने तभी उसे नेत्र इंगित से सावधान कर रोक दिया। फिर ध्वज धर की ओर दृष्टि केन्द्रित कर आत्मीयता के से कण्ठ स्वर में पूछा—"क्यों आयुष्मान ऐसा सहसा क्या हो गया जो इतने उत्तेजित हो उठे ?"

ध्वजधर का मुख इस समय भावावेश से रक्तिम हो उठा था। मन की कोई बात असावधानीवश मुख से बाहर निकल न जाए, अतः एक भारी साँस अन्दर अटा में समेटते हुए वह क्षोभित कण्ठ से बोला—"बन्धुवर, कारण तो कोई स्पष्ट नहीं बस अब मन ऊब गया है।"

और फिर यह कहते हुए वह सामने ही अश्व की ओर बढ़ लिया फिर तत्क्षण से उस पर आरूढ़ हो उसे अपने प्रासाद की ओर दौड़ा दिया। सभी हतप्रभ हुए से उसकी ओर देखते रह गए। उन्हें लगा जैसे आचार्य शिष्य नहीं बल्कि वे स्वयं ही किसी भारी दुविधा में फंस गए हों।

आचार्य शिष्य का अश्व आते ही प्रासाद की ओर प्रस्थित हुआ था। किन्तु

मध्य मार्ग में वह अपने स्वामी का वल्गा-संकेत पा देवी शिप्रा की अट्टालिका की ओर बढ़ लिया। द्रुतगति से दौड़ता हुआ वह देखते-देखते ही उसके सम्मुख जा पहुँचा किन्तु वहाँ केवल क्षणेक रुक फिर उसी गति से वापस भी लौट लिया। शंबुक ने इस दृश्य को देखा तो वह भौंचक्का-सा रह गया।

आचार्य शिष्य के अश्व को गए अभी कुछ क्षण ही बीते होंगे कि मार्ग उसी अत्यावेग से दौड़ता हुआ एक अन्य अश्व वहाँ आ पहुँचा। देवी रोहिणी ने अश्वपीठ पर बैठे हुए ही पूछा—"क्यों शंबुक अम्बुवर अभी क्या इधर आए थे?"

शंबुक अभी उनका उत्तर दे ही रहा था कि देवी रोहिणी अपना प्रश्न कर बैठीं। पूछने लगीं—"क्यों देवी शिप्रा तो यहीं है न?"

शंबुक असमंजस में पड़ गया। वह सोचने लगा पहले कौन से प्रश्न का उत्तर दूँ। अन्ततः वह नत मस्तक हो बोला—"हाँ देवी! वह यहीं है।

इस पर देवी रोहिणी ने तनिक मुस्कराते हुए पूछा—"क्या शंबुक क्या मैं अन्दर आ सकती हूँ?

शंबुक को लगा जैसे देवी रोहिणी ने यह प्रश्न कर अप्रत्यक्ष में उस पर कटाक्ष किया है। परन्तु साथ ही उसने यह भी अनुभव किया कि उसमें तिक्तता जैसी तो कोई बात नहीं थी वरन सहज ढंग में पूछा था। वह मस्तक नत कर बोला—"देवी अपने इस तुच्छ सेवक से भला यह भी कोई पूछने की बात है? देवी शिप्रा आपके दर्शन कर क्या कम प्रसन्न होंगी और देवी फिर स्वामिनी के लिए इससे बढ़कर भला और क्या सौभाग्य होगा?"

इसी मध्य देवी रोहिणी सवेग अपने अश्व से नीचे कूद चुकी थीं। अश्व शंबुक की ओर बढ़ाती हुई बोलीं—"शंबुक, एक अत्यन्त आवश्यक कार्य निकल आया था इसी से अभी आयी।"

और फिर वह अन्दर की ओर जैसे दौड़-सी गयी।

आचार्य शिष्य ने सिंह सेनापति के सम्मुख पदत्याग की इच्छा प्रकट कर सोचा था—चलो, एक भारी दुविधा से अनायास ही छुटकारा मिल गया। परन्तु वह ऐसा केवल एक बार ही सोच सका क्योंकि अगले क्षण ही वह भारी आत्मग्लानि का अनुभव कर उठा। वह अपने ही पर व्यंग कर कह उठा—"अम्बुवर अम्बुवर ने और फिर इस वैशाली ने जो तेरे ऊपर उपकार किए थे उन सबों का तू आज उन्हें अच्छा पुरस्कार दे आया।

जब वह प्रासाद में लौटा तो मंजरिका उसकी मनोदशा को देख चकित-सी हो उठी साथ ही चिंतित भी हो उठी। उसके नेत्र सजल हो उठे। कातर भाव स्वर में पूछने लगी—"क्यों स्वामी ऐसा क्या हो गया?"

किन्तु आचार्य शिष्य ने जैसे यह सब कुछ सुना ही नहीं बस मौन रहे ही वह अपने कक्ष की ओर बढ़ता रहा। मंजरिका भी पीछे-पीछे चलती रही। उसे कुछ भी पूछने का साहस नहीं हो पा रहा था फिर भी जैसे बलात् उसका भाव कण्ठ तोड़ पूछ उठा—"क्यों स्वामी क्या आज किसी से कोई मतभेद विवाद हो गया है?"

आचार्य शिष्य के मन में आया कि कह दूं किसी से क्या अरुचिकर संवाद होता यहाँ वैशाली में मेरा अरुचिकर संवाद सुनने वाला ऐसा बैठा ही कौन है ? वास्तव में मुझे तो अपने ही से अरुचि हो गयी है । परन्तु उसे लगा जैसे उसकी जिह्वा बस जड़ होकर रह गयी है और अंग-प्रत्यंग शिथिल हो उठे हैं । परन्तु साथ ही मस्तिष्क इतने मन कष्ट के पश्चात् भी जैसे विश्राम नहीं लिया चाहता उल्टे उसकी सक्रियता और सघन हो उठी है । वह शय्या पर लेट मंजरिका से बोला— देवी मुझे इस समय एकान्त चाहिए ।"

किन्तु यह उसने कहा था । पर मंजरिका ने जो कुछ देखा था उसे देख उसके लिए वहाँ से जाना जैसे असम्भव हो गया ।

स्वामी के मस्तक पर उभरे मोटे स्वेद कणों को देख वह घबरा-सी उठी । उन्हें अपने उत्तरीय के आँचल से पोंछते हुए बोली—"स्वामी देख रही हूँ कि तुम कितने ही दिनों से कुछ खोए-खोए से रहते हो आखिर वह दुविधा मैं भी तो जानूँ या फिर मैं इतनी हतभाग हूँ कि मुझे वह जानने का भी अधिकार नहीं रह गया है ।

आचार्य शिष्य अभी भी दुविधा में ग्रस्त था । उन्मनता से बोला—"देवी भला अधिकार क्यों नहीं परन्तु सभी बातें बताने योग्य हों, सो भी तो सम्भव नहीं ।"

यह कह आचार्य शिष्य ने दूसरी ओर करवट बदल ली साथ ही उसका शुष्क कण्ठ फिर अनुनय के स्वर में कह उठा—"देवी क्षमा करो मुझे इस समय बस एकान्त में रहने दो ।"

किन्तु मंजरिका पुनः यह सुनकर भी वहीं बैठी रही । केवल बैठी ही नहीं रही वरन् उसके मस्तक पर अपना करतल रख साथ ही कह भी उठी—"स्वामी दुविधा को प्रकट कर देने से मन का बहुत कुछ भार हल्का हो रहता है फिर वैशाली में तो सभी प्रकार की समस्याओं में परामर्श की परम्परा है । या फिर यूं कह दो मैं उसके योग्य नहीं ।"

आचार्य शिष्य को यह मंजरिका का अनधिकार हस्तक्षेप लगा । अतः वह कुछ झल्ला उठा । लेटे-लेटे ही पैरों को और लम्बे फैला करवट को गहरी कर बोला—"श्रेष्ठी पुत्री हर समय तुम्हें तो बस एक ही काम रह गया है और वह है अपने अधिकारों की दुहाई देना ।"

मंजरिका ने यह सुन अपने को कुछ अपमानित हुआ अनुभव किया । किन्तु स्वामी को इस समय किसी गम्भीर समस्या में उलझा हुआ समझ वह चुप कर गई । और फिर जैसे मन-ही-मन अनुमानों का सहारा ले कारणों पर विचार करने लगी । *अवश्य ही इसका भी एक कारण था* परन्तु, वह सोचने लगी—वह उन दिन से केवल व्यस्त रहे थे व्यग्र नहीं हुए थे तो फिर इस व्यग्रता का कारण ? सहसा उसे स्मरण हो आया—श्रेष्ठीपुत्र कपिल पश्चिमोत्तर देशों में व्यापार कर अभी वैशाली लौटा है । किन्तु साथ ही वह फिर आगे सोचने लगी—'वो तो कोई बड़ी बात नहीं यह सदा ही इस प्रकार जाता है और लौटता भी है और आचार्य शिष्य उसको सकुशल लौटे देख प्रसन्न भी हुए हैं । भला इस बार ही ऐसी कौनसी बात हो गई ? हो गई है, अवश्य हुई है ।" जैसे मंजरिका को सहसा कोई सूत्र हाथ लग गया हो

वह प्रसन्न हो उठी।" केवल गत संध्या ही तो षष्ठीपुत्र कपिल ने संध्या समाज में देवी शिप्रा को एक बहुमूल्य मुक्ताहार भेंट किया था वह मन-ही-मन बोली—"अवश्य ही स्वामी को यह प्रसंग हो उठा है।"

और फिर उसके पश्चात् वह पर्याप्त समय तक उसी प्रकार शय्या पर बैठी रही। आचार्य शिष्य भी यथापूर्व करवट लिए पड़ा रहा। अन्त में मंजरिका अपने ही से कहने लगी—'यदि यही कारण है तो भी मुझे वह अवश्य जानना चाहिए, और स्वामी को भी उसे बताने में कोई झिझक नहीं होनी चाहिए। आचार्य शिष्य को झिंझोड़ते हुए वह पूछ उठी— स्वामी कैसा भी कारण क्यों न हो वह आपको बताना ही होगा। और यदि मैं आपकी इस मनोव्यथा तक को भी नहीं जान सकती तो फिर मुझे और मेरे इस जीवन को धिक्कार है।" यह कह वह जैसे भावोद्वेग से फफक उठी नेत्रों से अश्रु कण निकल कपोलों पर ढुलक गए। आचार्य शिष्य को यह सब कुछ अत्यन्त असंगत प्रतीत हुआ और वह पूर्व से भी अधिक कस्ता उठा। आवेश में बहुत कुछ कहने को भी उद्यत हो गया परन्तु साथ ही मंजरिका के लिए यह सब कुछ स्वाभाविक समझ, मौन ही रह गया। वास्तव में उसके सम्मुख इस समय जो कुछ भी समस्या उपस्थित थी उसने जैसे उसके सारे ही विवेक को जकड़ रखा था। उसका सारा ध्यान समग्र चेतना केवल उसी समस्या का समाधान करने में जुटी हुई थी किन्तु अपनी सारी शक्ति लगाकर भी वह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पा रहा था। साथ ही वह दस्युवर सिंह के सम्मुख पद-मुक्त होने का जो प्रस्ताव कर बैठा था उसकी आत्मग्लानि पृथक से उसे सता रही थी। सोचने लगा — आज तो मैं यह जीवन की कदाचित सबसे बढ़कर भूल, केवल भूल ही नहीं वरन् कृतघ्नतापूर्ण कार्य कर बैठा और जो कुछ कहने गया था वह सब कुछ रखा ही रह गया। दस्युवर यह पुरखा प्रधान का दायित्व भार है उसका निर्वाह कोई बाल-क्रीड़ा तो नहीं।" किन्तु इसी बात पर उसे भारी असन्तोष भी हो रहा अपने से कहने लगा—"दस्युवर यह भी अच्छा ही हुआ। क्या पता मेरी ही किसी बात को लेकर घातक वर्ग की एकता में फूट का सूत्रपात हो रहता, और फिर उसका सारा कलंक मेरे माथे पर लगता।

बाहर निकलते एक निःश्वास के साथ उसने करवट बदलने का-सा प्रयास किया। किन्तु इस मध्य भी उसका मस्तिष्क विचारों से जकड़ा रहा। वह अपने से फिर कह उठा— और यदि न कहूँ तो उसमें भी तो वैशाली का अहित है क्या पता उसका वि मा वैशाली के विनाश की बात मस्तिष्क में आने मात्र से आचार्य शिष्य सिहर-सा उठा। वह अपने में और उद्विग्न हो रहा। मंजरिका ने उसके कन्धे का स्पर्श किया तो उसका करतल तत्परता से उठकर माथे पर जा पहुँचा। उसे लगा जैसे स्वामी को ताप हो गया हो। मंजरिका घबरा उठी। बोली—"स्वामी, यह तो तुम्हें ।"

परन्तु इसी मध्य आचार्य शिष्य आश्वासन के से सहज कण्ठ स्वर में बोल उठा—नहीं षष्ठी पुत्री कुछ नहीं तुम्हें तो व्यर्थ का भ्रम हो गया है। मैं तो पूर्णतः स्वस्थ हूँ।"

मंजरिका ने इस बार बलात आचार्य शिष्य के मुख को अपनी ओर फेर लिया। उसे देख वह भयभीत हो उठी। उसे लगा जैसे आचार्य शिष्य का सारा मुख लाल हो

उठा है। मंजरिका को भी जैसे इस बार कुछ असीम आवेग आ गया बोली—"स्वामी आप मुझ से निश्चय ही कुछ छिपा रहे हैं, जो किसी प्रकार भी शोभाजनक नहीं। आपके लिए नहीं स्वामी मेरे लिए।"

आचार्य शिष्य ने अशान्त प्राय कण्ठ स्वर में कहा—"यह देवी का भ्रम है और यदि कुछ छिपा ही रहा हूँ तो वह मेरे दायित्व का अंश है।"

मंजरिका तत्परता से बोल उठी—"और मेरे प्रति अविश्वास। सच बताओ आचार्य शिष्य यदि देवी सिप्पा ने इसका अल्प भी अनुरोध किया होता तो क्या आप इसी बात को उनसे इस प्रकार गोपनीय रखते ?"

मंजरिका जैसे यह आवेग सब कह उठी। तत्पश्चात् वह शय्या पर बैठी न रह सकी और वहां से उठ निकट ही में खड़ी हो गई।

आचार्य शिष्य की दृष्टि भी इस बार ऊपर उठे बिना न रही। अन्तर में उसने कुछ भी अनुभव किया हो पर प्रकट में वह केवल विहँसते नेत्रों से मंजरिका की ओर देख सका। वे कुछ क्षणों तक मंजरिका की ओर इस प्रकार देखते रहे जैसे उनसे कोई महत्वपूर्ण प्रश्न पूछ रहे हों। किन्तु मंजरिका ने जो कुछ कहा था उस पर उसने इस समय न तो पश्चात्ताप का और न ही आत्मग्लानि का और न ही लज्जा का अनुभव किया वरन् उसे हुआ जैसे आज उसने यह सब कुछ कह अपने मन के भार को उतार फेंका है। आचार्य शिष्य अभी भी शय्या पर लेटा था। उसने मुस्कराते नेत्रों से मंजरिका की ओर देखा फिर उसे अपने निकट आने का संकेत भी किया। परन्तु मंजरिका यथा स्थान ही खड़ी रही जैसे उसने अपने स्वामी के इस सुपरिचित इंगित को समझा ही नहीं। अन्त में आचार्य शिष्य मानों पराजय की विवशता से उठ खड़ा हुआ। किन्तु उसके मुख पर इस समय भी मुस्कान खेल रही थी। मंजरिका की भुजाओं को हाथ में पकड़ सर्वथा सहज ढंग में बोला—"देवी ! इस जीवन में मैं तुम्हें पाकर सचमुच धन्य हो गया हूँ।"

आचार्य शिष्य कदाचित् अभी आगे और कुछ कहा चाहता था कि इसी मध्य मंजरिका सावेग बोल उठी—"आचार्य शिष्य आपने मुझ पर यह निश्चय ही व्यंग किया है।"

यह कह मंजरिका के कपोल पहले से भी अधिक रक्तिम हो उठे। उसे इस दशा में देख आचार्य शिष्य को लगा जैसे उसके सम्मुख इस क्षण कोई प्रौढ़ महिला नहीं वरन् एक ऐसी अबोध बाला खड़ी है जिसका हृदय सहसा विद्रोह कर उठा है। यह देख आचार्य शिष्य का मन भी व्यथित हो उठा क्षण ही भिन्न भी। परन्तु इन दोनों के मध्य यही अगाध स्वाभाविक गाम्भीर्य भी अटल रहा। और इस सारी अवधि उसके मुख पर आत्मीयता पूर्ण मुस्कान खेलती रही। किन्तु जब वह बोला तो उसका कण्ठ स्वर कुछ कुछ भारी प्रतीत हुआ। कहने लगा—"तो देवी ने इसे व्यंग समझा है ?"

मंजरिका दृढ़ता से कह उठी—"हाँ आचार्य शिष्य, मैंने इसे व्यंग ही समझा है और जो समझा है वह अनुचित भी नहीं।"

आचार्य शिष्य मंजरिका के इस आवेग और उसकी इस दृढ़ता को देख पहले

तो हँस पड़ा परन्तु दूसरे ही क्षण उसकी मुख मुद्रा सहसा गम्भीर हो उठी। पूछने लगा—"तो क्या षष्ठीपुत्री यह भी समझती है कि मैंने जो कुछ कहा है उसमें मैंने अपने को भी धोखा दिया है?"

मंजरिका अपने स्वामी के इस प्रश्न से तनिक भी विचलित नहीं हुई। पूर्ववत् आवेश और साथ ही आत्म विश्वास की दृढ़ता के साथ बोली—"हाँ आचार्य पिप्प मैं ऐसा ही समझती हूँ और मेरा ऐसा समझना सर्वथा स्वाभाविक भी है।

आचार्य पिप्प उसकी भुजाओं को छोड़ गवाक्ष की ओर बढ़ लिया। गवाक्ष छिद्रों में से अन्यमनस्क दृष्टि से बाहर की ओर देखता हुआ-सा बोला—"षष्ठीपुत्री, सम्भव है तुम्हीं ठीक कहती हो और तुम्हारे कहे अनुसार मैंने अपने को ही धोखा दिया हो। किन्तु इसका कारण? सम्बन्ध की दृष्टि से तुम मेरी आत्मीया हो पत्नी रूप में तुम्हारा समर्पण पाकर मेरा सर्वस्व गर्व का अनुभव कर तुम्हारे सम्मुख नत मस्तक हुआ है। मेरे मन ने कदाचित् कभी अनजाने में भी ऐसी आकांक्षा नहीं की होगी कि जीवन में तुम्हारे अतिरिक्त कोई अन्य " यह कह वह क्षणिक रुका, फिर बोला—'मुझे इस जीवन में जो कुछ मिलना था बस तुम्हीं में मिल गया है। फिर भी हाँ एक बात अवश्य है देवी देवी छिम्मा के प्रभाव की मैं एक क्षण को भी कल्पना नहीं कर सकता। मानो यह मेरा दूसरा सौभाग्य है। वह मैंने तुमसे न पहले ही कभी छिपाया था, और न ही अब छिपाने का कोई प्रयास कर रहा हूँ। वास्तव में वह अब कोई रहस्य भी नहीं रह गया तो भी वह जैसे एक बड़ा रहस्य हो जिसे जितना स्पष्ट रूप से कहो वह उतने ही अधिक परिमाण में रहस्य पूर्ण होता जाता है।

मंजरिका बोली—"तो फिर क्या यह सब कुछ मेरे एक पत्नी के आधारभूत अधिकार पर कुठाराघात नहीं हुआ?"

आचार्य पिप्प तत्परता से बोल उठा—"नहीं कदापि नहीं देवी यदि मैंने एक क्षण को भी ऐसा अनुभव किया होता तो निश्चय मानो देवी छिम्मा कभी की मेरे मन से निकल गई होती। मुझे विश्वास करो देवी छिम्मा ने हमारे मध्य कदाचित् ही कभी ऐसा व्यवधान उपस्थित किया होगा वरन् अधिकाधिक उत्साह ही प्रदान किया है।"

मंजरिका बोली—'व्यवधान प्रस्तुत न किया हो ऐसा आप अनुभव कर सकते हैं परन्तु मैं तो उसका स्पष्ट प्रभाव देख रही हूँ।"

"सो कैसे?" आचार्य पिप्प ने उत्सुकता से पूछा।

मंजरिका इसका उत्तर देने को उद्यत हुई ही थी कि इसी मध्य संदेशवाहक ने आकर बड़े होसलास बताया—"आर्य आज तो प्रासाद में कल्याणमयी देवी छिम्मा पधारी है।"

यह सुन दोनों हो विस्मत हो उठे। तत्क्षण हो उन्होंने एक-दूसरे की ओर देखा। किन्तु अगले क्षण ही मंजरिका के मुख पर व्यंग की मुस्कान खेल गई। तो भी आचार्य पिप्प ने संदेशवाहक की ओर देखते हुए सर्वथा प्रफुल्लित कण्ठ स्वर में कहा— आयु ष्मन् उन्हें यहीं लिवा लाओ।"

संदेशवाहक के चले जाने के पश्चात् मंजरिका के मुख पर एक चपल मुस्कान

उठा है। मंजरिका को भी जैसे इस बार कुछ असीम आवेश था गया बोली—"स्वामी आप मुझ से निश्चय ही कुछ छिपा रहे हैं, जो किसी प्रकार भी शोभाजनक नहीं। आपके लिए नहीं स्वामी मेरे लिए।"

आचार्य शिष्य ने बलात् प्रायः कष्ठ स्वर में कहा—"यह देवी का भ्रम है और यदि कुछ छिपा ही रहा हूँ तो वह मेरे दायित्व का अंग है।"

मंजरिका तत्परता से बोल उठी—"और मेरे प्रति अविश्वास। अब बताओ आचार्य शिष्य यदि देवी सिप्पा ने इसका शतांश भी अनुरोध किया होता तो क्या आप इसी बात को उससे इस प्रकार गोपनीय रखते ?"

मंजरिका जैसे यह आवेश वश कह उठी। तत्पश्चात् वह शय्या पर बैठी न रह सकी और वहाँ से उठ निकट ही में खड़ी हो गई।

आचार्य शिष्य की दृष्टि भी इस बार ऊपर उठे बिना न रही। अन्तर में उसने कुछ भी अनुभव किया हो पर प्रकट में वह केवल विहँसते नेत्रों से मंजरिका की ओर देख सका। वे कुछ क्षणों तक मंजरिका की ओर इस प्रकार देखते रहे जैसे उससे कोई महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछ रहे हों। किन्तु मंजरिका ने जो कुछ कहा था उस पर उसने इस समय न तो पश्चात्ताप का और न ही आत्मग्लानि का और न ही लज्जा का अनुभव किया बरन् उसे हुआ जैसे आज उसने यह सब कुछ कह अपने मन के भार को उतार फेंका है। आचार्य शिष्य अभी भी शय्या पर लेटा था। उसने मुस्कराते नेत्रों से मंजरिका की ओर देखा फिर उसे अपने निकट आने का संकेत भी किया। परन्तु मंजरिका यथा स्थान ही खड़ी रही जैसे उसने अपने स्वामी के इस सुपरिचित इंगित को समझा ही नहीं। अन्त में आचार्य शिष्य मानों पराजय की विवशता से उठ खड़ा हुआ। किन्तु उसके मुख पर इस समय भी मुस्कान खेल रही थी। मंजरिका की भुजाओं को हाथ में पकड़ सर्वथा सहज ढंग में बोला—"देवी ! इस जीवन में मैं तुम्हें पाकर सचमुच धन्य हो गया हूँ।"

आचार्य शिष्य कदाचित् अभी आगे और कुछ कहना चाहता था कि इसी मध्य मंजरिका सावेग बोल उठी—"आचार्य शिष्य आपने मुझ पर यह निश्चय ही व्यंग किया है।"

यह कह मंजरिका के कपोल पहले से भी अधिक रक्तिम हो उठे। उसे इस दशा में देख आचार्य शिष्य को लगा जैसे उसके सम्मुख इस क्षण कोई प्रौढ़ महिला नहीं बरन् एक ऐसी अबोध बाला खड़ी है जिसका हृदय सहसा विद्रोह कर उठा है। यह देख आचार्य शिष्य का मन भी व्यथित हो उठा चाहे हो किन्तु भी परन्तु इन दोनों के मध्य कहीं उसका स्वाभाविक गाम्भीर्य भी भटक रहा। और इस सारी अवधि उसके मुख पर आत्मीयता पूर्ण मुस्कान खेलती रही। किन्तु जब वह बोला तो उसका कण्ठ स्वर कुछ कुछ भारी प्रतीत हुआ। उसने कहा—"तो देवी ने इसे व्यंग समझा है ?"

मंजरिका दृढ़ता से कह उठी—"हाँ आचार्य शिष्य, मैंने उसे व्यंग ही समझा है और जो समझा है वह अनुचित भी नहीं।"

आचार्य शिष्य मंजरिका के इस आवेश और उसकी इस दृढ़ता को देख पहले

तो हँस पड़ा परन्तु दूसरे ही क्षण [illegible] । उसने कहा—"तो क्या षष्ठीपुत्री यह भी समझती है [illegible] उसने अपने को भी खोता दिया है ?"

मंजरिका अपने स्वामी के इस प्रश्न से [illegible] नहीं हुई । [illegible] आवेश और साथ ही अपने विश्वास की दृढ़ता के साथ बोली—"हाँ आचार्य मित्र मैं ऐसा ही समझती हूँ, और मेरा ऐसा समझना सर्वदा स्वाभाविक भी है ।"

आचार्य मित्र उसकी भुजाओं को छोड़ गवाक्ष की ओर बढ़ गया । गवाक्ष छिद्रों में से अन्यमनस्क दृष्टि से बाहर की ओर देखता हुआ-सा बोला—"षष्ठीपुत्री, सम्भव है तुम्हीं ठीक कहती हो और तुम्हारे कहे अनुसार मैंने अपने को ही खोता लिया हो । किन्तु इसका कारण ? सम्भव की दृष्टि से तुम मेरी आकांक्षा की पत्नी बन के तुम्हारा समर्पण पाकर मेरा सर्वस्व दर्प का अनुभव कर तुम्हारे सम्मुख नत मस्तक हुआ है । मेरे मन में कदाचित कभी अनजाने में भी ऐसी आकांक्षा नहीं की होगी कि जीवन में तुम्हारे अतिरिक्त कोई अन्य [illegible]" यह कह वह [illegible] रहा फिर बोला—मुझे इस जीवन में जो कुछ मिलना था सब तुम्हीं में मिल गया है । फिर भी हाँ एक बात अवश्य है देवी देवा मित्रा के अभाव की मैं एक क्षण का भी कल्पना नहीं कर सकता । अभी यह मेरा दूसरा सौभाग्य है । यह मैंने तुमसे न पहले ही कभी छिपाया था और न ही अब छिपाने का कोई प्रयास कर रहा हूँ । वास्तव में यह अब कोई रहस्य भी नहीं रह गया तो भी वह जैसे एक बड़ा रहस्य हो जिसे जितना स्पष्ट रूप में कहो वह उतने ही अधिक परिमाण में रहस्य पूर्ण होता जाता है ।

मंजरिका बोली—"तो फिर क्या यह सब कुछ मेरे एक पत्नी के आधारभूत अधिकार पर कुठाराघात नहीं हुआ ?"

आचार्य मित्र तत्परता से बोल उठा—"नहीं कदापि नहीं देवी यदि मैंने एक क्षण को भी ऐसा अनुभव किया होता तो निश्चय मानो देवी मित्रा कभी भी मेरे मन से निकल गई होती । मुझे विश्वास करो देवी मित्रा ने हमारे मध्य कदाचित् ही कभी ऐसा व्यवधान उपस्थित किया होगा बल्कि अधिकाधिक उत्साह ही प्रदान किया है ।"

मंजरिका बोली— [illegible] ऐसा भार अनुभव कर सकते हैं परन्तु मैं तो उसका स्पष्ट प्रभाव देख रही हूँ ।"

"वह कैसे ?" आचार्य मित्र ने [illegible] से पूछा ।

मंजरिका इसका उत्तर देने का उद्यत हुई ही थी कि इसी समय [illegible] ने बाहर [illegible] [illegible] में सम्मानमयी देवी मित्रा पधारी हैं ।"

[illegible]

[illegible]

फैल उठी। वह आचार्य शिष्य की ओर देखती हुई बोली—"क्यों आचार्य शिष्य और यदि मैं संदेशवाहक से कह देती कि जाओ देवी दिव्या से लौट जाने को कह दो तो भला तब क्या होता ?"

यह सुन आचार्य शिष्य के मुख पर भी एक चपल मुस्कान खेल उठी। बोला—'इतना सोचकर भी अन्ततः तुम क्या कहतीं, यह तुम मुझे बताओ इसकी आवश्यकता नहीं।"

इस पर मंजरिका ने तनिक हँसते हुए कहा—"आप कितने अंतर्यामी हैं सो तो मैं भी भली भाँति जानती हूँ। पर इतना तो सोचा होता कि देवी दिव्या आज प्रथम बार ही हमारे आवास पर पधारी हैं तो फिर क्या यह किसी प्रकार उचित है कि संदेशवाहक को ही उन्हें यहाँ लिवा लाने का आदेश कर हम यहीं बैठे रह उनकी प्रतीक्षा करें ?"

आचार्य शिष्य मंजरिका की ओर देखते हुए बोला—"हाँ उचित तो नहीं देवी पर भय भी लगता था।

"सो किससे आचार्य शिष्य ?" मंजरिका ने तत्परता से पूछा।

आचार्य शिष्य उत्तर में मंजरिका की ओर देख केवल हँस पड़ा। मंजरिका भी उसकी ओर देखते हुए, कक्ष से बाहर निकल गई और फिर जैसे उत्साह के आवेश में आस्थानागार की ओर दौड़-सी गी।

इस मध्य देवी दिव्या संदेशवाहक के साथ कक्ष की ओर चल पड़ी थी। मंजरिका ने उन्हें देख पहले तो नत मस्तक हो उनका अभिवादन किया और फिर सोत्साह उनकी ओर बढ़ बोली—"देवी आज यह हमारा सचमुच परम सौभाग्य है।"

इस पर देवी दिव्या का मुख-सौम्य अन्तर के विनीत भाव से और मुखर हो उठा। संकोच से कपोलों की स्निग्ध लालिमा पर सिहरन दौड़ गई और कान लज्जा की उष्णता से आरक्तिम हो उठे। ओष्ठ कुछ खुले तो शुभ्र दंत-पंक्ति समुस्कान चमक उठी। सविनय, सौम्यभाव से बोली—"देवी यह आपकी उदारता है अन्यथा मैं भी किस योग्य हूँ।"

मंजरिका परजनित हो उठी। अपने उत्तरीय के दोनों छोर देवी दिव्या के सम्मुख फैला फिर उनसे मार्ग को बुहारती हुई सी वह सोत्साह मृदुल मन्द स्वर से बोली— देवी आपकी कला प्रतिमा के सम्मुख भला कौन नत मस्तक नहीं है। तभी को तो सब पर गर्व है आपका स्वागत कर मैं तो आज सचमुच धन्य हो गई हूँ। और यह आगार? देवी यह तो आज आपकी चरण धूलि से सचमुच सुवासित हो उठा है।

देवी दिव्या इस पर पूर्व से भी अधिक संकोच का अनुभव कर उठी। कहने लगी—"धन्धीपुनी आपकी इस आतिथ्य भावना के सम्मुख मैं नत मस्तक हूँ।" यह कह वह तनिक रुकी। उसके मुख पर सहसा चिंता का सा भाव उभर आया। व्यग्र हुई सी पूछने लगी—"क्यों देवी आचार्य शिष्य स्वस्थ तो हैं न ?"

मंजरिका ने नत मस्तक हो कहा— देवी सो तो सब अमर भैरवों की कृपा है।"

आचार्य शिष्य ने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि देवी दिव्या किसी दि

उसके आवास पर भी आ सकती है अतः उसका हृदय हर्षातिरेक से ओतप्रोत हो उठा। परन्तु साथ ही यह भी आभास रहा कि उसका इस समय यह आगमन हुआ तो कैसे हुआ? किन्तु निरन्तर सोचते रहने के पश्चात् भी वह यह समझने में सर्वथा असमर्थ रहा। हाँ उसके मन को यह अवश्य अनुभव हुआ कि कुछ समय पूर्व ही उसके अन्तर के विषाद का जो सागर उमड़ा पड़ रहा था वह सहसा शान्त हो गया है।

और मंजरिका के साथ जब देवी शिष्या ने कक्ष में प्रवेश किया तो संकोचवश उसके नेत्र पलक ऊपर हो न उठ सके। उसे हुआ जैसे उसकी वाणी बन्द हो गई है इसी देवी शिष्या के सम्मुख बन्द हो गई है जिसकी प्रतिच्छवि को अपने नेत्रों के सम्मुख देखो उसने एकान्त में न जाने क्या क्या कहा है और उससे न जाने क्या कुछ मांगा है। उसके सजीव रूप के सम्मुख ही अभी उसने कब अपने अंतः भाव को छिपाया था। उसके आगमन पर वह इस समय सगर्व गद्गद् था तो भी प्रकट में वह संकोच का अनुभव कर सका जैसे किसी चिरपरिचित से अनायास ही, संयोगवश चिर-आकांक्षित साक्षात्कार हो गया हो। देवी शिष्या यूं उसके नेत्रों के सम्मुख ही बैठी थी परन्तु उसकी दृष्टि उसके अन्तर पर विराजमान उसी की प्रतिच्छवि को निहार रही थी। वह मन-ही-मन कहने लगा—'भला मैं भी कितना मूर्ख हूँ। जिसके सम्मुख सदा ही मैं बोलता रहा हूँ आज उसी को देखकर मैं मौन हो उठा हूँ।' सहसा उसके मुख से ध्वनित हो उठा—"देखो तो यह भी कैसी विचित्र पहेली है।"

यह सुन देवी शिष्या और मंजरिका दोनों ही कुछ चौंक-सी गईं। दोनों ही के मुख से एक साथ निकल ही तो गया—"सो कौन सी पहेली आचार्य शिष्य?'

आचार्य शिष्य की जैसे तंद्रा टूटी, वह हड़बड़ा-सा गया। मानों अचेत होता हुआ सा बोला— कुछ नहीं कुछ नहीं देवियो! और फिर जैसे अपनी ही किसी दुर्बलता पर वह लज्जित हो रहा। उन दोनों की दृष्टि-छाया में बैठना उसे असम्भव सा प्रतीत होने लगा। मन को हुआ कहीं भाग चले किसी ऐसे स्थान को भाग चले जहाँ वैशाली के प्रति मोह की धुंधली क्षीण रेखा तक भी न हो और न ही हो दायित्व का यह गुरु भार!

मंजरिका पुनः अपने स्वामी की यह मनःस्थिति देख खिन्न मन से दृष्टि नत किए बैठी रही। मन-ही-मन सोचती रही— आज स्वामी के सम्मुख निश्चय ही कोई कठिन समस्या है तभी तो देवी शिष्या को सम्मुख देखकर भी वह स्वस्थ न हो सके। देवी शिष्या भी मौन ही रह नेत्र कोरों से उसके मुख पर छाई अंतः] दुविधा की झाँई का अवलोकन करती रही। आचार्य शिष्य का दुविधा भाव इस समय तक और भी अधिक प्रगाढ़ हो उठा था। उसे हुआ जैसे उसकी सारी चेतना ही तो विक्षिप्त हो गई है। साथ ही विचारों के आवेग में वह एक बारगी आपाद शीश सिहर-सा गया और उसका मन मानों विवशता से आर्तनाद कर उठा। उसके मन की जैसे किसी असह्य वेदना का स्पर्श कर गये। वह क्षोभित कण्ठ स्वर में बोला— "देवी अथवा कभी अपने उदारता को अभिशाप बनते देखा है? न देखा हो तो अब वैशाली में देख लो।"

और फिर, उसके दुविधा-ग्रस्त मुख पर त्वरित गति से क्रमशः विक्षोभ एवं घृणा का सा भाव उभर आया। मंजरिका और देवी शिष्या दोनों को यह सब कुछ

अत्यंत रहस्यपूर्ण लगा। किन्तु, साथ ही दोनों को हुआ जैसे अब कोई रहस्य उनके सम्मुख उद्घाटित होने को है। अतः वे कुछ सम्हल कर बैठ गईं और उत्सुक दृष्टि से आचार्य शिष्य की ओर देखने लगीं। आचार्य शिष्य के मुख पर अब तुम चिन्ता की गाढ़ी रेखाओं ने स्थान ले लिया था। उन्हें देख देवी दिव्या को लगा जैसे आज उनका मन अपने सारे संयम को तोड़ आचार्य शिष्य के निकट सरककर बैठ जाने को उद्यत हो उठा है। मानों वह पूछने को उद्यत हो उठा है— क्यों आचार्य शिष्य भला ऐसी वह कौन सी समस्या है जिसके समाधान के प्रयास ने तुम्हें इस परिमाण में उद्वेलित किया है।"

उनके अन्तर में न जाने कब से सुसुप्त आत्मीयता का भाव मानों स्पष्ट रूप में जाग उठा और जैसे वह संकोच के विरुद्ध विद्रोह कर उठा हो ऐसा विद्रोह कि जिसका उसने अब तक कभी भी अनुभव नहीं किया था और यदि किया भी था तो उसे भविष्य की सुखद कल्पना के सहारे भुला दिया था। उसे लगा जैसे आज उसे मंजरिका की उपस्थिति अखर रही है। परन्तु, साथ ही उसका मन पश्चात्ताप का सा अनुभव कर बुरी तरह से प्रकम्पित भी हो उठा। उसे लगा जैसे कोई उसकी सुरक्षित साधना आज अनायास ही खण्डित होने को मचल उठी हो।

मंजरिका को भी हुआ जैसे वह यहाँ इस समय केवल बाधा रूप में उपस्थित है। उसे यह अपनी अनधिकार चेष्टा प्रतीत हुई। अपने ही से बोली—'पर इस समय तक भी क्या ? किन्तु उसका मन फिर भी जैसे उसे स्वामी के कल्याण के लिए, वहाँ से जाने को कहता ही रहा। विवश हो एक बारगी वह उठ सी भी गई पर पग साथ न दे सके सलंकोच वहीं की बैठी ही रह गई अपने को प्रताड़ित करती हुई सी।

इसी मध्य सहसा आचार्य शिष्य बोल उठा—"देवियो निष्कर्ष सम्मुख है परन्तु प्रमाण उपलब्ध नहीं। तो फिर क्या प्रमाण के अभाव में अनुभूति के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष का अपना कोई अस्तित्व नहीं ?"

मंजरिका को हुआ जैसे स्वामी ने यह तो घुमा फिरा कर उसी के किसी प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया है; और जो कुछ वह कहना चाहते हैं स्वयं मुख ही से कहलवाना चाहते हैं। अतः सावधानीवश मौन ही रही।

किन्तु देवी दिव्या बोल उठी—"आचार्य शिष्य ! सामान्यतः सचमुच उसका कोई अस्तित्व नहीं। पर साथ ही वह उपेक्षा का भी विषय नहीं। उसका निज का भी महत्त्व है। अतएव विवेकशील सदा ही उसे पृष्ठ भूमि में रख सजग दृष्टि से सर्वथ भविष्य में आवश्यक प्रमाण की खोज करते हैं।

यह सुन आचार्य शिष्य को हुआ जैसे वह जिस समाधान की खोज में था उसे वह मिल गया है। उसके नेत्र ज्योतित हो उठे। उल्लसित कण्ठ स्वर में बोला—'देवी दिव्या आप निस्सन्देह ठीक कहती हैं तथापि एक बात है ।

यह कह आचार्य शिष्य मध्य ही में रुक रहा।

देवी दिव्या ने सहज भाव से पूछा—'सो कौन सी आचार्य शिष्य ?"

आचार्य शिष्य अपने मस्तिष्क में उठ प्रश्न पर विचारणा-सा जैसे उसे स्पष्ट

शब्दों में बांधने का प्रयास करने लगा। किन्तु पर्याप्त विचारने के पश्चात् भी जब उसे उपयुक्त भाषा न मिल सकी तो बोला—'निश्चय भ्रम भी तो हो सकता है देवी धिप्पा? फिर वह भ्रम विभेद का कारण बन सकता है और विभेद अंततः विनाश का?"

देवी धिप्पा बोली—'आचार्य शिप्र आप ठीक ही कह रहे हैं। किन्तु जहां निश्चय में भ्रम की दुविधा हो वहां आचार्य शिप्र निष्ठा का अवलम्ब ले किसी आत्मीय के सम्मुख उसे प्रकट कर सहज ही में परामर्श का क्रम लिया जा सकता है। वैशाली में तो आत्मीय जनों का अभाव नहीं कम से कम आपके लिए तो बिलकुल भी नहीं।"

आचार्य शिप्र को लगा जैसे वह जहां से चला था, फिर वहीं आ पहुंचा है। किन्तु साथ ही उसे यह भी प्रतीत हुआ, जैसे गुत्थी सुलझती जा रही हो और यदि न भी सुलझ रही हो तो उसने भ्रम निवारण की दिशा में अवश्य ही कोई महत्व पूर्ण संकेत दिया है। केवल संकेत ही नहीं वह तो स्पष्ट ही आमंत्रण है। वह उत्सा हित हो उठा। पर शीघ्र ही उसे जैसे फिर निराशा ने आ घेरा। बोला—"परन्तु देवी धिप्पा परामर्श भी तो वहीं सम्भव है जहां आत्मीयता हो और जब आत्मीयता ही संदिग्ध हो उठे तब?"

देवी धिप्पा सहज रूप में मुस्करा उठी उसी प्रकार जिस भांति कि वह श्रेष्ठी पुत्र कम्पिल से मुक्ताहार ग्रहण करते हुए मुस्करा उठी थी। आचार्य शिप्र मन-ही मन कह उठा—'सचमुच यह मुस्कान प्रपंच है और आत्मीयता भ्रम है तेरा जीवन तो सचमुच निस्सार है। और देवी धिप्पा उसी प्रकार मुस्कराती रह, बोल उठी—आचार्य शिप्र संदेह अकारण भी हो सकता है अतः उसे मन से निकाल फेंकना ही श्रेयस्कर है। क्यों? क्योंकि वहां वह अपने ही प्रति अविश्वास का भाव ले दुविधा को जन्म देता है वहां दूसरी ओर गतिरोध का भी प्रमुख कारण बन रहता है, और फिर गतिरोध संकट का सूत्रपात कर उठता है।

मंजरिका यह सुन मन में न जाने क्यों आतंकित हो उठी। पर आचार्य शिप्र का मन खिल उठा। उसकी दृष्टि बलात् मंजरिका की ओर घूम उसी पर जा टिकी। मंजरिका ने वक्ष में रुकी सांस को जैसे सप्रयास बाहर निकाला और फिर क्रमश आचार्य शिप्र एवं देवी धिप्पा की ओर देखा। देवी धिप्पा के मुख पर उसने लेश मात्र भी तो किसी दुराग्रह का चिन्ह नहीं पाया। उसे वह सर्वथा निरापद प्रतीत हुआ। वास्तव में उसका मुख भाव सौम्यतर हो उठा था।

मंजरिका मन-ही-मन बोली—'जीवन सचमुच एक पहेली है जिसे जितना सुलझाओ उसमें उतने ही उलझ रहो और यदि न सुलझाओ तो उसी में उलझ, मुक्ति के लिए कराहते रहो।'

उसके मुख पर जैसे किसी अदृष्ट पराजय की खिन्नता, फीकी मुस्कान का सहारा लेती हुई सी फैल गई।

इसी मध्य आचार्य शिप्र सहसा पूछ उठा—"और क्या देवी जबा अनुभूति क्या है?"

देवी शिप्रा पीठिका से उठती हुई बोली— आचार्य शिल्प अंतः प्रेरणा ही का दूसरा नाम तो अनुभूति है।"

आचार्य शिल्प तत्परता से पुनः पूछ उठा—"और बाह्य में से कुछ नहीं।"

देवी शिप्रा ने प्रस्थान करते हुए, समदृष्टि से पति-पत्नी की ओर देखा। फिर बोली—"आचार्य शिल्प यह केवल संयोग की बात है परन्तु जो बाहर है वह गौण है और जो अन्तर में है, वही मुख्य है।"





अट्ठाईस

आचार्य शिष्य और देवी शिप्रा के मध्य के इस प्रश्नोत्तर के प्रवाह में क्या कुछ रहस्य गर्भित था उसे मंजरिका कुछ समझी थी और कुछ नहीं भी। वह तो फिर भी कुछ समझ गयी पर किसी अन्य के लिए तो वह जैसे सर्वथा समझ से बाहर ही की बात थी। और की बात छोड़ो स्वयं आचार्य शिष्य ही उसे समझने में असमर्थ रहा। उस दिन संध्या समाज में उसने बाहर में जो कुछ भी देखा था उसके अन्तर में कुछ और बात भी हो सकती है यह वास्तव में उसके मस्तिष्क में आई ही नहीं और न ही श्रेष्ठीपुत्र कम्पिल तब यह समझ सका था कि देवी शिप्रा को उपहार स्वरूप मुक्ताहार भेंट कर वह किसी संकट का भी सूत्रपात कर रहा है।

वास्तव में हुआ क्या था? कोई दो वर्ष की लम्बी अवधि के पश्चात् श्रेष्ठीपुत्र कम्पिल जिस दिन वैशाली लौटा था उस दिन लिच्छवि अमात्य वर्षकार उसकी कुशल क्षेम पूछने उसके आवास पर पहुँचे थे। कुशल क्षेम पूछने के पश्चात् फिर उन्होंने इस बात पर चिंता प्रकट की कि श्रेष्ठीपुत्र जब कभी बाहर जाते हैं तो प्रत्येक बार ही उन्हें निर्धारित अवधि से अधिक समय लग जाता है। फिर इसी सम्बन्ध में उन्होंने अपना यह भी मत प्रकट किया कि यह तो निश्चय ही यक्षेन्द्र मणिभद्र का प्रकोप है। इससे पूर्व श्रेष्ठीपुत्र कम्पिल इस बात पर मन-ही-मन हर्षित था कि चलो दो वर्ष की यह यात्रा सफल हो गयी क्योंकि वह भारी मात्रा में धन अर्जित कर लौटा था और उसका यह लाभ वैशाली के अन्य किसी भी सार्थवाह द्वारा अर्जित धन राशि से कहीं अधिक था। किन्तु उसने आचार्य वर्षकार के मुख से जब यह सुना तो वह शंकित हो उठा। वह सोचने लगा? दो वर्ष की यह यात्रा भी की और देखो तो कोई विशेष लाभ भी नहीं हुआ कहीं यह सचमुच यक्षेन्द्र मणिभद्र का ही प्रकोप न हो। अतः वह आतुरतावश स्थान-यात्रा-देवता के इस प्रकोप को शान्त करने का उपाय भी वयोवृद्ध लिच्छवि अमात्य से पूछ बैठा।

आचार्य वर्षकार कुछ समय तो ध्यानस्थ हुए जैसे उत्तर में कुछ सोचते से रहे फिर जैसे उन्हें सहसा कोई बात स्मरण हो आई। पूछने लगे—"क्यों आयुष्मान, क्या कभी तुमने यक्षेन्द्र मणिभद्र के चैत्य के सम्मुख उपासना भी की है?"

श्रेष्ठीपुत्र कम्पिल बोला—"आर्यवर, मैंने तो कभी नहीं की हाँ परन्तु कल्याणी देवी शिप्रा ने एक बार मेरे मंगल की कामना से अवश्य की थी?"

इस पर आचार्य वर्षकार जैसे प्रसन्न हो तत्परता से बोल उठे—"हाँ आयुष्मान यही तो मैं जानना चाहता था।"

तनिक रुक वह फिर कुछ सोचते से रहे। श्रेष्ठीपुत्र कम्पिल उनके मुख की ओर उत्सुकता से देखता रहा। कुछ सोचने के पश्चात् आचार्य वर्षकार ने फिर पूछा—"और क्यों आयुष्मान उस उपासना के उपलक्ष्य में तुमने गण कल्याणी को भी कुछ भेंट किया था या नहीं ?"

इस प्रश्न को सुन श्रेष्ठीपुत्र कुछ व्यग्र-सा हो उठा। मुख पर आशंका का भाव सहम-सा गया। बोला—"नहीं तो आयवर और कदाचित् मैं यही भूल कर बैठा हूं।"

इस पर आचार्य वर्षकार पीठिका से उठ, कम्पिल के और निकट आ बोला—"आयुष्मान् केवल भूल ही नहीं यह तो भयंकर भूल हुई। प्रमाद भी हुआ क्योंकि देवी विप्पा को यह संयत कामना किए कुछ भी नहीं तो बारह वर्ष से भी अधिक बीत चुके और तुमने इस सारी अवधि एक बार भी इस बात की सुध नहीं ली।

श्रेष्ठीपुत्र यह सुन स्पष्ट ही जैसे भयभीत हो उठा। पूछने लगा— 'क्यों आर्य वर क्या इसका अब कोई उपाय नहीं हो सकता ?

आचार्य वर्षकार मानों आश्वासनपूर्ण कण्ठ स्वर में तत्परता से बोल उठे—"क्यों नहीं श्रेष्ठीपुत्र क्यों नहीं ? इस संसार में भला उपायों की भी कोई कमी है और फिर वैशाली के ये देवता तो स्वभाव से बड़े हा भोले हैं।"

यह कह, आचार्य वर्षकार रुक जैसे फिर कुछ सोचने में व्यस्त हो उठे। पर, श्रेष्ठीपुत्र कम्पिल का व्यग्र भाव और प्रगाढ़ हो उपाय जानने के लिए उतावला हो उठा। वह नत मस्तक हो अत्यन्त दीनता के साथ बोला—"फिर आर्यवर आप ही कोई उपाय बताएं न ?"

यह सुन आचार्य वर्षकार भी मुख मुद्रा जैसे अत्यन्त व्यस्त हो उठी। कुछ सोचते हुए बोले—"आयुष्मान्, उपाय तो अत्यन्त सरल है परन्तु उसका पालन भी उतना ही कठिन है।"

कम्पिल तत्परता से बोल उठा—"आर्यवर, चाहे कितना भी कठिन क्यों न हो उसका अनुष्ठान तो करना ही होगा। आचार्य मैं वह अवश्य करूं गा।"

श्रेष्ठीपुत्र के मन पर निश्चय की दृढ़ता छा गयी।

आचार्य वर्षकार ने उसकी ओर देखते हुए कहा—'आयुष्मान तुम्हें कोई भी तो बहुमूल्य आभूषण देवी विप्पा को भेंट करना होगा।"

कम्पिल प्रसन्न होता तत्परता से बोल उठा—"आर्यवर, यह तो कोई कठिन बात नहीं। क्या मैं एक आभूषण भेंट करने के योग्य भी नहीं ?"

इस पर आचार्य वर्षकार तनिक हंसते हुए बोले—"सो तो मैं भी जानता हूं आयुष्मान परन्तु उसकी विधि तनिक कठिन है।"

श्रेष्ठीपुत्र के मुख पर भारी उत्सुकता का भाव उभर आया।

वह सोत्साह पूछ उठा—"वह विधि क्या है आचार्य ?

आचार्य वर्षकार पुनः पीठिका पर बैठ उसे मानो समझाते हुए से बोले—देवी विप्पा को आभूषण भेंट करते समय केवल तुम्हारे मन में ही यह बात रहनी चाहिए कि तुम किस उपलक्ष्य में उसे यह उपहार प्रदान कर रहे हो। दूसरे, उनसे चूंकि सार्वजनिक रूप से उपासना की थी अतः सार्वजनिक रूप में ही तुम उस यह उपहार भेंट

करो। आज ही संध्या समाज में नृत्य के पश्चात् सभी की उपस्थिति में यदि यह शुभ कार्य सम्पन्न हो जाए तो और भी अधिक श्रेयस्कर रहेगा। और आयुष्मान् देखो कोई इसका कारण पूछे उसके पूर्व ही तुम अपना प्रयोजन भी प्रकट कर दो।"

"किन्तु प्रयोजन रूप में मुझे क्या प्रकट करना होगा आर्यवर ?" कप्पिन ने पुनः उत्सुकता का भाव दिखाते हुए पूछा।

आचार्य वर्षकार हँसते हुए बोले—"आयुष्मान्, तुम सचमुच कितने भोले हो। क्या यह भी कोई पूछने की बात है? देवी शिप्रा एक गण-कल्याणी है और सभी को उस पर आसक्ति भाव प्रकट करने का समान रूप से अधिकार है अतः उससे कहना—देवी, इस सेवक ने दूर विदेश तक यात्रा की है और एक से एक सुन्दरी देखी है परन्तु इस आभूषण के लिए कोई भी तो योग्य पात्री नहीं मिली, फिर तुम्हारी छवि भी तो सदा ही मुख पर बनी रही है। स्वप्नों में न जाने कितनी बार तुम्हारे इन नृत्यों को देख मैंने आनन्द का अनुभव किया है, और जो आज तक इस प्रकार गोपनीय बना रहा वह सभी के सम्मुख प्रकट हो सके, इसी से प्रतीक रूप में यह तुच्छ उपहार देवी की सेवा में प्रस्तुत है।

और उसी दिन संध्या समाज में जब श्रेष्ठीपुत्र कप्पिन ने देवी शिप्रा को उसके प्रथम नृत्य के पश्चात् ही सभी की उपस्थिति में इसी आमोदगार के साथ सोत्साह मुक्ताहार भेंट किया तो सम्पूर्ण दर्शक समवाय में हर्ष की लहर दौड़ गई। सभी तो श्रेष्ठीपुत्र का साधुवाद कर उठे। गण-कल्याणी देवी शिप्रा ने भी उसे सानुराग ग्रहण कर उसे अपने नेत्रों एवं ओष्ठों से लगाया तथा पश्चात् उससे अपने कण्ठ को सुशोभित किया। फिर वह अनुग्रह स्वरूप दूसरा नृत्य करती उसके लिए यह स्वाभाविक ही था। किन्तु उसके पश्चात् आचार्य शिष्य के लिए वहाँ बैठे रहना असंभव हो गया। वास्तव में वह श्रेष्ठीपुत्र कप्पिन के आमोद्गार को सुन स्तब्ध हो उठा था और उसकी वह स्तब्धता शीघ्र ही विक्षोभ में परिणत हो उठी थी। तो भी शिष्टाचारवश वह वहाँ किसी प्रकार बैठा रहा और उसके अगले दिन ही प्रातः जब वह महाबलाध्यक्ष सिंह सेनापति के गृह से लौट देवी शिप्रा की अट्टालिका की ओर गया था तो कदाचित् उसका इस सम्बन्ध में उससे कुछ पूछना भी मुख्य प्रयोजन रहा हो। परन्तु फिर द्वार तक जाकर भी वापस क्यों लौट आया? वह सोचने लगा—'यह सब कुछ पूछना केवल मेरी संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचायक ही तो होगा।'

और आज उसके कुछ समय पश्चात् ही जब स्वयं देवी शिप्रा चलकर उसके आवास पर आई तो वह प्रारम्भ में उसका कोई स्पष्ट कारण नहीं समझ सका। केवल संकेत में ही वैसे कुछ समझने का प्रयत्न किया। वास्तव में उसे कहीं विदित नहीं हो सका कि उसे देवी रोहिणी ने भेजा था। उसने क्यों भेजा था भला फिर यह प्रश्न ही उसके मस्तिष्क में कैसे उठ पाता? तो भी वह वैसे कुछ प्रोत्साहित हो उठा। किन्तु उसके मस्तिष्क पर आचार्य वर्षकार के साथ हुआ वार्तालाप और फिर सिंह सेनापति के सम्मुख कही गई पश्चात्ताप की बात पूर्ववत् ही छाई रही। पहली बात को लेकर जब वह दुविधा ग्रस्त था तो दूसरी का ध्यान कर वह अधिकाधिक आत्मग्लानि का सा अनुभव कर रहा था।

और आचार्य वर्षकार ने श्रेष्ठीपुत्र कपिल से क्या यह सब कुछ किसी विनोद वश कहलवाया था या फिर किसी अन्य प्रयोजन से। चूँकि यह बात केवल श्रेष्ठीपुत्र कपिल और उन्हीं के मध्य रही अतः वह भी केवल रहस्य बन कर रह गई, और वह भी एक ऐसी रहस्यपूर्ण कि उसका स्वयं कपिल को भी कुछ पता न चल सका। अतः उस रहस्य के सम्बन्ध में यदि किसी को कुछ पता हो सकता था तो वह स्वयं आचार्य वर्षकार ही थे।

वास्तव में राज-पुरोहित-कुलोत्पन्न एवं उदीयमान मगध साम्राज्य के भूतपूर्व महामात्य आचार्य वर्षकार को वैशाली आए इस समय तक कोई तीन वर्ष ही बीते होंगे। परन्तु इस अल्पावधि में भी विनिश्चय अमात्य रूप में उन्होंने जिस तत्परता बुद्धि कौशल एवं उत्कृष्ट न्याय प्रियता का सहज परिचय दे डाला था उसके फलस्वरूप वह न केवल शासक वर्ग के अभिन्न अंग बन गये थे, वरन् गण शासन विशेष रूप में न्याय पीठिका के लिए जैसे अनिवार्य भी बन चुके थे। उनका एवं उनकी न्याय प्रियता का इस समय सर्वत्र प्रभाव था एवं उनकी दण्ड व्यवस्थाओं के सम्मुख जैसे सभी नत-मस्तक थे। वैशाली में वह केवल एकाकी आए थे और जिस दिन वह राज गृह से यहाँ पहुँचे थे उनके मुख पर घोर निराशा का भाव व्याप्त था मानों मगध राज अजातशत्रु के दुर्व्यवहार ने उनके गौर प्रखर एवं ओजपूर्ण व्यक्तित्व पर खिन्नता की एक स्थायी छाप छोड़ दी थी। उनका हृदय भी तब अत्यन्त व्यथित प्रतीत हुआ और उस समय उनके मुख से जो भी शब्द निकलता उससे यह प्रतीत होता कि जैसे उनके अन्तर की सारी पीड़ा साकार रूप ग्रहण कर सभी के सम्मुख उपस्थित होने को मचल उठी हो। और जब कुछ दूरदर्शी वैशालिकों ने उनके प्रति संदेह प्रकट कर उन्हें आश्रय दिये जाने का विरोध किया तो इसे उन्होंने सर्वथा स्वाभाविक कह केवल अपने भाग्य का ही दोष बताया। उन्हें वैशाली में रहने की अनुमति दी जाए अथवा नहीं वैशाली के गणमान्य व्यक्तियों एवं कर्मचारियों में इस प्रसंग को लेकर कई दिनों तक तीव्र वाद विवाद चलता रहा था। उनके आगमन का विरोध करने वालों में स्वयं आचार्य शिष्य तो था ही सामन्त प्रचण्ड देव ने भी आश्रय दिए जाने का घोर विरोध किया था। सामन्त प्रचण्डदेव ने तो यहाँ तक कह दिया था—'यदि इस छद्म वेषी को वैशाली में स्थान दिया गया तो मैं न केवल महाबलाधिकृत का पद छोड़ दूँगा, वरन् वैशाली से भी चला जाऊँगा।'

परन्तु अंततः आचार्य वर्षकार का निरंतर अनुनय एवं स्थिति के स्पष्टीकरण का प्रयास सामन्त प्रचण्डदेव तथा उनके समर्थकों को भी परिवर्तित करने में सफल हो गया। और फिर इसके फलस्वरूप जब गण-शासकों ने उन्हें विनिश्चय अमात्य का गौरवपूर्ण पद प्रदान किया तो उन्होंने उस समय कुछ ऐसा भाव प्रकट किया जैसे वह उन सभी वैशालिकों के सदा-सदा के लिए उपकृत हो उठे हों।

और सत्तर वय की इस वृद्धावस्था में भी जब केवल अपने पद भार वहन तक सीमित न रह उन्होंने वैशाली में एक न्याय-विद्यापीठ की भी स्थापना की तो वैशालिक उनकी कार्य क्षमता को देख मुग्ध हो उठे। प्रातः वेला में वह शिष्य रूप में आए वज्जिकुमारों को सम्यक् तक न्याय शास्त्र की दीक्षा देते और फिर न्याय पीठिका की

ओर प्रस्थान कर उठते। ग्रीष्मकाल की मध्याह्न वेला में जब और सभी अपने विश्राम कक्षों में चैन से निद्राग्रस्त होते, वह वीथिका में बैठ अभियोगों की सुनवाई करते। साथ ही, उन्हें तत्परता से निपटाने का प्रयत्न भी करते। उनकी न्याय तुला से उतरे प्रायः सभी निर्णय अचूक होते। अतएव, दोषी दण्ड पाकर भी उनका आदर किए बिना न रहता और निर्दोष अपने को दोष-मुक्त हुआ सुन भला हर्षित हुए बिना कैसे रह जाता? अतः ऐसे निरपेक्ष एवं दक्ष विनिश्चय अमात्य का शिष्य बनना प्रत्येक सामन्त एवं श्रेष्ठीपुत्र अपना केवल परम सौभाग्य ही समझता। सभी को उनमें अगाध आस्था थी और सभी उनकी कृपा कोर पाने को लालायित थे। अतः छात्रों में एक स्वाभाविक प्रतिस्पर्धा थी। ऐसा लगता जैसे उनकी दृष्टि में चढ़ने के लिए जैसे सभी सामन्त एवं श्रेष्ठीपुत्रों में कोई वीभत्स संघर्ष छिड़ा हो। आचार्य वर्षकार ने भी कभी उन्हें हतोत्साहित नहीं किया। शिष्यगण एक-से-एक बढ़कर प्रश्न अथवा तर्क खोज कर लाते जिज्ञासा रूप में आचार्य पाद के सम्मुख प्रस्तुत करते और वह भी जैसे पूरे मनोयोग से उनकी इस ज्ञान क्षुधा को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करते।

उन्हीं के प्रासाद के पृष्ठ भाग में एक विशाल वट वृक्ष खड़ा था। उसकी लम्बी शाखा प्रशाखाओं की सघन छाया में नित्य ही वैशाली के कुछ भी नहीं तो कोई दो सौ कुमार विद्यार्जन के लिए एकत्र होते और आचार्य वर्षकार जब अपने शिष्यों के इस लहलहाते समुदाय पर विहंगम दृष्टि डालते तो उनका मन गर्व से फूल उठता। किन्तु आज जब वह आचार्य शिष्य से वार्ता कर लौटे तो उस समय अपनी इस वृहत शिष्य मण्डली को देख उन्होंने गर्व का अनुभव नहीं किया वरन् उनकी रक्त वाहिनियों में उत्साह का संचार हो उठा और उनके नेत्र आभा से दीप्त हो उठे। सभी को सम्बोधित कर वह बोले—"आयुष्मानो प्रतिभावान वत्स कुमारो, और" "मेरे प्रिय शिष्यो! मुझे आज आप सभी के सम्मुख एक महत्त्वपूर्ण घोषणा करनी है।"

सभी शिष्य उत्सुक दृष्टि से उनकी ओर देख उठे।

आचार्य वर्षकार तनिक रुक फिर बोले—"कुलभूषण कुमारो, मनीषियों की ऐसी धारणा है कि ज्ञान का कोई अन्त नहीं वह तो अनन्त है और उसकी गहराई भी अथाह है तथापि इस अल्पावधि में आप सभी ने अपनी अगाध रुचि दिखा न्याय शास्त्र का जो अध्ययन किया है और पूर्ण तन्मयता से उसके गूढ़ मर्म को समझने का प्रयत्न किया है उसे देख मैं तो सचमुच चकित रह गया हूँ। मगध की राजनगरी में पूरे चालीस वर्ष रहने के पश्चात् भी मुझे जो यश नहीं मिल सका वह मुझे यहाँ केवल तीन वर्ष की अवधि में ही प्राप्त हो सका भला इससे बढ़कर मेरे लिए और क्या सौभाग्य होगा?"

यह कह कर वह फिर तनिक रुक रहे। सभी कुमार उनकी ओर अत्यधिक उत्सुकता से देखते रहे। कारण उनके आचार्य उनसे क्या कुछ कह रहे थे, वे उसे अभी तक पूर्णतः समझने में असमर्थ थे। आचार्य वर्षकार तनिक विश्राम के पश्चात् फिर बोले—"मेधावी कुमारो, मुझे गर्व है कि इस अकिंचन वृद्ध ब्राह्मण को आप सभी के आचार्यत्व का सौभाग्य मिला, और वैशाली के उदार सामन्तों एवं श्रेष्ठीजनों की उदारता की तो मैं जितनी प्रशंसा करूँ वह थोड़ी ही है। तथागत ने एक दिन जब उन्हें एक साथ समय रूप में आते देख अपने प्रमुख शिष्य आनन्द से भी यह कहा था—

'आयुष्मान आनन्द! यदि तूने कभी देवों को एक साथ चलते न देखा हो तो आज इस ओर आते इन लिच्छवियों के समूह को देख ले' तो उन्होंने यह सर्वथा उचित ही बात कही थी। तो देव-पुत्रो! आज मैं आप सभी से एक निवेदन किया चाहता हूँ और वह निवेदन यह है कि ...।

इसी मध्य एक शिष्य सहसा उच्च कण्ठ स्वर में कह उठा—"आर्यवर! निवेदन कह आप हमें लज्जित न करें, हम तो आपके आदेश के आकांक्षी हैं।"

शिष्य की इस बात को सुन आचार्य वर्षकार के भाषण का मुख्य प्रवाह बीच मध्य ही में रुक गया। उन्होंने उस कुमार की ओर देख कहा—"आयुष्मान सुव्रत! तुम्हारा यह सौजन्य तो निस्सन्देह प्रशंसनीय है, भला यह शील तुमने कहाँ से पाया?"

कुमार सुव्रत को लगा, आचार्य कदाचित मेरे इस हस्तक्षेप पर क्रुद्ध हो गए हैं अतः वह भयभीत हो उठा। कतिपय अन्य कुमारों ने भी यह उसका मात्र उतावलापन समझा अतः वे हँस पड़े। उनकी हँसी देख (कुमार सुव्रत यदि क्षुब्ध हो उठता तो स्वाभाविक ही था।) अतः वह आक्रोशपूर्ण दृष्टि से उन हँसते हुए कुमारों की ओर देख उठा पर बोला कुछ नहीं। यह दृश्य देख आचार्य वर्षकार भी हँसे बिना नहीं रहे। फिर बोले— आयुष्मान सुव्रत! कदाचित तुम्हें यह भ्रम हुआ है कि मैं तुम पर कुपित हुआ हूँ। आयुष्मान! तुमने तो वास्तव में ही यह अपने उच्च कुलोचित बात कही थी?"

आचार्य वर्षकार की यह बात एक अन्य कुमार को जैसे असह्य हो उठी। वह तत्परता से साक्षेप बोल उठा—"आचार्य पाद! सुव्रत को क्या आप एक उच्च कुल जन्मा कुमार कह रहे हैं? वह तो ...।"

अभी वह कुमार कुछ कह ही रहा था कि इसी मध्य सुव्रत का एक अनन्य मित्र आवेश बोल उठा—"क्यों मित्र कीर्तिरथ? क्या तुम्हें भी सुव्रत के कुलीन होने पर कोई आपत्ति हो सकती है? वह तो ...।"

यह बात आगे बढ़ ही रही थी कि आचार्य वर्षकार के एक उच्च ठहाके से वह सहसा वहीं रुक रही। तत्पश्चात् वह बोले— आयुष्मानो! यह तो सचमुच बड़े हर्ष की बात है कि वैशाली के कुमार अपने कुल गौरव के प्रति इतने सजग हैं। किसी ने यह उचित ही कहा है कि जिसे अपने कुल पर अभिमान न हो वह नर नर नहीं वरन् पशु समान है, परन्तु कुमारो! इस वाद-विवाद के लिए यह समय उपयुक्त नहीं। हाँ तो आयुष्मानो! मैं जो कुछ कहना चाहता था वह कोई दूसरी ही महत्त्वपूर्ण बात थी। वास्तव में मैं अब इतना वृद्ध हो चुका हूँ कि विनिश्चय अमात्य के इस गुरु-दायित्व का निर्वाह करने में असमर्थ हूँ और जब तक मैं इस गौरवपूर्ण पद से अवकाश लूँ, मेरी प्रबल इच्छा है कि आप ही में से कोई कुमार इस महत्त्वपूर्ण पद को सुशोभित करे, यह मेरे लिए सौभाग्य का और गर्व का विषय होगा और मैं निश्चय ही अपने को कृतार्थ हुआ समझूँगा।

आचार्य वर्षकार की अप्रत्याशित घोषणा केवल कुमारों तक ही सीमित नहीं रह गई वरन् देखते देखते नगर के पूरे आगार प्रसार में फैल उठी। और फिर बात की बात में अनेक गण-मान्य नागरिकों ने रथ उनके प्रासाद की ओर दौड़ा लिए।

सामन्त कार्तिकेय इस समय तक पर्याप्त वृद्ध हो चुके थे और गत कई मास से पाँव रोग से पीड़ित थे तो भी वह इस संवाद को सुन अपनी शय्या पर लेटे न रह सके वह तुरन्त शिविकारूढ़ हो आचार्य वर्षकार के प्रासाद की ओर प्रस्थान कर उठे।

निष्कासित अमात्य आचार्य वर्षकार के प्रासाद का मुख्य प्रकोष्ठ इस समय एक नहीं अनेक सामान्य एवं प्रमुख प्रौढ़ तथा वृद्ध नागरिकों से युक्त था और उन सभी ने जब वृद्ध सामन्त को रुग्णावस्था में वहाँ आए देखा तो सभी जैसे एक स्वर में बोल उठे—"क्यों आर्य क्या अब भी आपके मन में पद से अवकाश ग्रहण करने की कोई इच्छा शेष रह सकेगी ? अब तो आपको अपने इस निर्णय पर पुनर्विचार करना ही होगा।"

इन सभी के अनुरोध को सुन आचार्य वर्षकार जैसे भारी दुविधा में पड़ गए बोले कुछ नहीं। सभी उपस्थितजन इस समय पीठिकाओं पर आसीन थे, और वह उनके सम्मुख विनम्रता की साकार मूर्ति बने खड़े हुए थे। सामन्त कार्तिकेय ने जब उनसे आसन ग्रहण करने का अनुरोध किया तो वह नत मस्तक हो सविनय बोले—'आर्यवर, मेरे लिए आज का यह दिन सभी वैशालिकों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का दिन है। उनकी ऐसी सत्कार के लिए इस सेवक के पास और कुछ तो है नहीं अतः उनके सम्मुख नत मस्तक हो खड़े रहना ही मुझे शोभा देता है आर्यवर ! मुझे इसमें सच मुच अवर्णनीय आनन्द का अनुभव हो रहा है।"

वृद्ध आचार्य के मुख से यह सुन सभी उपस्थित जन अभिभूत कण्ठ से 'धन्य-धन्य' कह उठे। उनके इस सौजन्य की वे सभी मन-ही-मन सराहना करते रह गए। सामन्त कार्तिकेय पीठिका से उठ, मस्तक नवाते हुए बोले—"आर्यवर, आपकी यही तो वह सरलता है जिसने आपके विरोधियों के हृदयों को भी जीत लिया है। आज वे सभी आपके प्रति कितने कृतज्ञ हैं अब यह बताने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई।"

आचार्य वर्षकार इस पर जैसे संकोच का अनुभव कर उठे सलज्ज बोले—"आर्यवर यह मेरा सौभाग्य ही था कि आप सभी ने मुझ पर उस दिन कृपा की और मैं जीवन में फिर से अपना शीश ऊँचा कर सका अन्यथा मगधराज ने तो।"

यह कहते-कहते उनका कण्ठ मानों अवरुद्ध-सा हो गया। सामन्त कार्तिकेय बोले—"आर्यवर, अब उसे भूला देना ही अच्छा है। यह सब कुछ कह आप तो हमें लज्जित कर रहे हैं। और भला वह आप पर कृपा ही क्या थी वह तो वैशालिकों ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया था। आर्यवर इस समय हम सभी का यह अनुरोध है कि आप अभी पद से अवकाश लेने की बात मन में न लाएँ।

और इस अनुरोध के सम्मुख आचार्य वर्षकार जैसे फिर निरुत्तर हो गए।

उधर, हस्तिवाहक कपिल ने जब गणाध्यक्ष सिंह को आचार्य वर्षकार की इस घोषणा का समाचार सुनाया तो वह स्तब्ध रह गए। और अश्वसंचालक सामन्त मृत्युंजय ने जब यह समाचार सुना तो उन्हें तो जैसे अपने कानों पर ही विश्वास नहीं हो सका। किन्तु सुरक्षा प्रधान आचार्य सिम्ह ने जब यह सब कुछ सुना और साथ ही यह भी कि निष्कासित अमात्य की इस घोषणा का सुन वैशाली के अनेक गणमान्य नागरिक उनके प्रासाद की ओर भाग लिए हैं तो वह हँसे बिना नहीं रहा अपने पर नहीं वरन् वैशालिकों की भावुकता पर। किस भावुकता पर ? वास्तव में वह अपने ही थे

यह प्रश्न पूछ उठा और फिर शय्या पर लेटे-लेटे ही वह इस प्रश्न पर मानों पूरे अर्ध याम से सोचता रहा। उसका स्वास फूल उठा तथा कण्ठ सूख गया ओष्ठ भी शुष्क हो उठे, अत कुछ जल पीने की इच्छा हुई वह मंजरिका-मंजरिका पुकार उठा। और जब मंजरिका कक्ष में दौड़ी आई तो बोला—"क्यों देवी शिष्या क्या तुम कुछ थोड़ा सा प्रमाण नहीं दे सकती?"

मंजरिका यह सुन पहले तो विस्मित हो उठी किन्तु अगले क्षण ही एक ठहाका दे हँस पड़ी। बोली—'स्वामी यह तो कमी की गई, परन्तु आपने तो मुझे पुकारा था।"

आचार्य शिष्य ने जैसे ध्यान से उसकी ओर देखा साथ ही वह अपनी भूल पर भी विचारता रहा। परन्तु उस पर वह इस समय न तो हँसा ही और न लज्जित ही हुआ वरन् उसकी मुख मुद्रा गंभीर हो उठी और इस बार जैसे सावधान हो मस्तिष्क पर कुछ जोर देता हुआ सा बोला—'देवी बड़ी प्यास लगी है।"





उनतीस

एक-एक कर जब सभी प्रकोष्ठ से चले गए और अंत में विजितयश अमात्य वयोवृद्ध सामन्त शान्तिसेन को द्वार मण्डप से विदा कर अपने विश्राम कक्ष में आए तो वह कंधे पर से उत्तरीय उतारते हुए, सहसा एक उच्च ठहाका दे, हँस पड़े। उस हँसी के प्रवाह में ही जैसे स्वतः उनके मुख से निकल गया—"मूर्ख कहीं के।"

कुमार सुमन्त न जाने कब से कक्ष के एक कोने में चुपचाप खड़ा आचार्य वर्षकार के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने जब विजितयश अमात्य का ठहाका और उसी के साथ उनके मुख से निकले शब्दों को सुना तो उसने समझा आचार्य ने उसे देख, उसी के सम्बन्ध में यह सब कुछ कहा है अतः वह भय से सहम गया। किन्तु जब उसने दबे पाँव कक्ष से बाहर निकलने का प्रयास किया तो उसकी पग आहट को सुन आचार्य चौंक उठे और अब तक वह अपनी किसी भूल पर कुछ सोचें उससे पूर्व ही उनके सारे गात में एक बिजली सी दौड़ गई। परन्तु दूसरे ही क्षण वह अपने को सम्हाल पहले से भी अधिक उच्च ठहाका दे हँस उठे। साथ ही सुमन्त की ओर से पुकार, बोले—"क्यों आयुष्मान अपने आचार्य के आवास में आना इतने संकोच की क्या आवश्यकता था... ओ—इधर आओ आयुष्मान!"

सुमन्त भी रुक गया केवल रुक ही नहीं गया वरन् वापस लौट, आचार्य के चरणों में लेट गया फिर बोला—'आचार्यवर आज आपको संभाषण के मध्य टोकने की जो धृष्टता कर बैठा उस पर मैं सचमुच अत्यंत लज्जित और भारी आत्म-ग्लानि का अनुभव कर रहा हूँ, आर्यवर मैं क्षमा की याचना करता हूँ।"

यह सुन आचार्य वर्षकार के मुख पर एक कुटिल मुस्कान खेल गई और नेत्रों में एक रहस्यपूर्ण भाव आ झलका। इतने ही वे कहने लगे—'कुमार सुमन्त तू जैसी क्षमा की याचना करने आया है, वह मुझे बताने की आवश्यकता नहीं। परन्तु साथ ही वह प्रकट में अपार आत्मीयता का सा भाव दिखाते हुए कह उठे—"आयुष्मान मैं कुपित हुआ यह तुम्हारा केवल भ्रम है। तुम्हारे उस योग पर मैं तो सचमुच विमुग्ध हो उठा था। और किसी के मस्तिष्क में तो यह बात आई तक भी नहीं थी। तुम्हारी इस प्रखर बुद्धि को देख मेरी तो यही धारणा बन गयी है कि विजितयश अमात्य के गौरवपूर्ण पद के योग्य यदि इस वैशाली में कोई है तो वह सुमन्त ही है।'

कुमार सुमन्त को लगा जैसे उसे उसका अभीष्ट मिल गया। उसका हृदय गुदगुदा उठा तथा सारा अन्तर उल्लासमय हो गया। आचार्य के चरणों पर अपने शीर्ष को रगड़ते हुए गद्गद कण्ठ स्वर से बोला—"आचार्य पाद यह सब आपके ही चरणों

की रक्षा का ही प्रताप है अन्यथा यह अकिंचन भी भला किसी योग्य था ?"

आचार्य वर्षकार ने इस बार उसे ऊपर उठाते हुए कहा—"यह सब तुम्हारा स्वयं पुरुषोचित सौजन्य है आयुष्मान और तुम्हें यही शोभा भी देता है।"

सुव्रत का मन प्रफुल्लित हो उठा।

उसे गए अभी कुछ समय ही बीता होगा कि संदेशवाहक ने कक्ष में प्रवेश कर निवेदन किया—"आर्य आस्थानागार में कुमार कौतिरथ आया है और वह आपके दर्शन किया चाहता है।"

इस संवाद को सुन विनिश्चय आमात्य को एक सुखद अनुभूति हो रही। मन ही-मन उल्लसित हो उठे। परन्तु प्रकट में कुछ उपेक्षा का सा भाव दिखाते हुए बोले—"आयुष्मान सुमन्त मैंने पद से अवकाश लेने की इच्छा क्या प्रकट की यह तो अब उससे भी भारी कार्य ऊपर आ पड़ा। कहूँ तो आयुष्मान उससे भी कि वह नहीं आ जाए !"

संदेशवाहक के जाने के पश्चात् आचार्य विचार-रिक्त हुए से शय्या पर लेटे रहे। फिर भी एक बात जैसे बलात् उनके मस्तिष्क से आ टकराई। वह उसी पर अभी कुछ सोच ही रहे थे कि कुमार कौतिरथ ने कक्ष में प्रवेश किया। उसे देख वह तत्परता से शय्या पर उठ बैठे। साथ ही बोले—"आओ कुमार आओ ! इस समय तो मैं सचमुच तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था कि संयोग से संदेशवाहक ने तुम्हारे आगमन की सूचना लाकर दी मन प्रसन्न हो उठा !"

कौतिरथ नत मस्तक हो सविनय बोला—"आर्यवर यह मेरा परम सौभाग्य है आर्य आज्ञा करें !"

यह सुन आचार्य जैसे शय्या पर बैठे न रह सके। उससे नीचे उतर कौतिरथ के समीप आ उसके कंधे पर अपना हाथ रखते हुए गद्गद कण्ठ से बोले—"आयुष्मान मैं तुम्हारे कुल से कितना उपकृत हुआ हूँ भला यह किसी से छिपा है और आज तो सामन्त कार्तिकेय ने मुझे जैसे अत्यन्त भारी ऋण के बोझ से ही लाद दिया है और इस समय मैं पड़ा-पड़ा यही सोच रहा था कि उनसे किस प्रकार उऋण हुआ जाए ?"

कुमार कौतिरथ का नत मस्तक और नत हो गया। सविनय बोला—"आचार्यपाद वह तो पितृवर का दायित्व था आप विनिश्चय अमात्य सदृश महत्त्व पूर्ण पद को [illegible] न करें उनकी यही आकांक्षा है।"

आचार्य कुछ सोचते हुए बोले—"किन्तु आयुष्मान पड़ोस आर्य की यह चिंता व्यर्थ है क्योंकि वैशाली में इस समय एक से एक योग्य तरुण है और कोई भी इस पद के भार को वहन करने में समर्थ है। आयुष्मान सुव्रत ही को लो न योग्यता की दृष्टि से भला उसमें क्या कमी है ?"

यह कह आचार्य वर्षकार ने तनिक कुछ कौतिरथ की ओर देखा। यूं कौतिरथ और सुव्रत में परस्पर कोई वैर नहीं था, वरन् मैत्री ही थी। कौतिरथ यदि सामन्त कार्तिकेय का पुत्र था तो सुव्रत सामन्त वीरभद्र का। सामन्त वीरभद्र और कार्तिकेय के मध्य भी यह मैत्री एक प्रकार से कुल परम्परा का अंग थी और दोनों कुलों के मध्य यह घनिष्ठ सम्बन्ध न जाने कितनी पीढ़ियों से अनवरत रूप में चला आ रहा

था। सामन्त वीरभद्र का कोई दो वर्ष पूर्व स्वर्गवास हो चुका था और तब से कुमार सुव्रत की संरक्षकता का भार सामन्त कार्तिकेय के कन्धों पर ही था। और कोई तीन वर्ष पूर्व जब आचार्य वर्षकार राजगृह से तिरस्कृत हो वैशाली में आए थे तो इन दोनों मित्र-सामन्तों ने ही उनको आश्रय दिये जाने का प्रबल समर्थन किया था। इस कारण से नहीं कि उनका आचार्य वर्षकार से कभी किसी प्रकार का सम्बन्ध रहा था वरन् इसलिए कि शरणागत को अभय देना वैशाली की एक पुनीत परम्परा थी और उसका पालन अभिमान था। इन दोनों कुलों के घनिष्ठ सम्बन्धों की बात आचार्य वर्षकार से भी नहीं छिपी थी। अतः उन्हें आश्चर्य था कि विद्यापीठ में जब उन्होंने कुमार सुव्रत के शील की प्रशंसा की थी तो वह कुमार कीर्तिरथ को क्यों न सहन हो सकी केवल असह्य ही नहीं हुई, वरन् उसने सुव्रत के कुल पर भी कोई व्यंग किया था। वास्तव में कुमार कीर्तिरथ ने उस समय आवेशवश भी कुछ कह दिया था उसे सुन सुव्रत तो चकित रह ही गया था। स्वयं कीर्तिरथ को भी बाद में अपने पर कोई कम आश्चर्य नहीं हुआ था। उसे भय हुआ कि कहीं आचार्य किसी प्रसंगवश यह बात उसके पिता से न कह दें अतः उससे पूर्व ही वह उनसे क्षमा की याचना करने चला आया था। फिर भी न जाने क्यों इस समय आचार्य के मुख से सुव्रत की पुनः यह प्रशंसा सुन वह उसे सहन न कर सका। आचार्य वर्षकार भी जैसे उसके मन के भाव को ताड़ गए, बोले—"आयुष्मान, यूं तुम भी उससे क्या कम योग्य हो परन्तु उसमें योग्यता से भी अधिक एक स्वाभाविक गुण है और वह है महत्त्वाकांक्षा का। फिर वह महत्त्वाकांक्षा को स्पष्ट प्रकट न कर छिपे छिपे उसको फलीभूत करने की कला में भी दक्ष प्रतीत होता है।"

कुमार कीर्तिरथ ने इस बार अपनी दृष्टि ऊपर उठा तत्परता के साथ कहा —"किन्तु आर्य वैशाली में तो महत्त्वाकांक्षा को एक दुर्गुण समझ, हेय दृष्टि से देखा जाता है।"

आचार्य वर्षकार तनिक हँस बोले—"देखा जाता है नहीं वरन् देखा जाता था आयुष्मान किन्तु तब से तो सदानीरा का न जाने कितना जल गंगा की पावनधारा में बह चुका है। आयुष्मान वैशाली सदा ही से नूतनता की प्रेमी रही है, और वैशालिकों ने भी सदैव जो नूतन है उसका स्वागत कर, उसे अपनाया है। केवल अपनाया ही नहीं वरन् नई सामाजिक मान्यताओं को भी जन्म दिया है और इन सामाजिक मान्यताओं के ही फलस्वरूप यदि एक ओर गणराज्य के स्वरूप का विस्तार हुआ है तो दूसरी ओर उसकी कुछ परम्पराओं में भी परिवर्तन आया है और इस परिवर्तन की प्रक्रिया में महत्त्वाकांक्षा मात्र सजगता बन कर रह गई है। और सजग होने में तो कोई बुराई नहीं आयुष्मान।"

कीर्तिरथ उत्तर में कुछ नहीं कह सका। वह केवल यही सोच कर रह गया कि आचार्य प्रकांड विद्वान हैं अतः उन्होंने जो कुछ सोचा समझा है वह उचित ही होगा। वह कक्ष से बाहर निकल कर खुले वातावरण में आया और उसने महत्त्वाकांक्षा वाली बात पर सोचा तो उसे भी उसमें कोई दोष नहीं दीखा और जब उसमें उसे कोई दोष नहीं दीखा तो वह सोचने लगा—"यदि सुव्रत लिच्छविगण गणाध्यक्ष के पद के लिए महत्त्वाकांक्षा कर सकता है तो फिर भला मुझ ही में ऐसी क्या कमी है, जो मैं उसे

लिए इच्छा नहीं कर सकता ?"

अब यदि कहीं कीर्तिरथ को सुव्रत दूर से भी दिखाई दे जाता तो वह उस मार्ग से हट दूसरी दिशा में चल पड़ता। एक दो बार सुव्रत ने चाहा भी कि वह कीर्तिरथ को टोक उससे उसके इस व्यवहार का कारण पूछे और एक बार तो उसने पूछा भी परन्तु कीर्तिरथ ने इस सम्बन्ध में अपना केवल उपेक्षा भाव ही दिखाया। प्रकट में तो कुछ नहीं कहा परन्तु मन-ही मन अपने से बोला—"यह अवश्य ही इसका कोई नीति कौशल है अन्यथा यह मित्रता के लिए इतना उत्सुक कदापि न होता।"

एक दिन क्या हुआ सुव्रत गोधूलि बेला में अपने अन्य मित्रों के साथ महावन में आखेट कर नगर की ओर लौट रहा था। लिच्छिवि अमात्य भी नित्य इस बेला में नगर से निकल पुष्करिणी की ओर घूमने निकल जाया करते थे। परन्तु उस दिन वह पुष्करिणी की ओर न जा व्यायामशाला की दिशा में चल दिए। सुव्रत एवं उसके मित्रों ने वन्य शूकर का आखेट किया था अतः वे सभी अत्यन्त प्रफुल्ल थे। आचार्य वर्षकार ने जब उन्हें इस प्रकार आते देखा तो वह भी उसी दिशा में चल पड़े। जब वे सभी पास आए तो आचार्य वर्षकार ने उन्हें टोक पूछा—"क्यों कुमारो, आज यह आखेट, किस के शौर्य का परिचायक है ?"

सुव्रत समेत सभी कुमार एक स्वर में सोल्लास बोल उठे—"आचार्य पाद हम सभी ने मिलकर इसे मारा है।"

आचार्य वर्षकार इस पर जैसे साश्चर्य बोले—"सभी ने मिलकर केवल एक शूकर का ही आखेट किया तुम्हें तो आज कई शूकर लाने चाहिए थे।

यह सुन सभी सोत्साह कह उठे—"अच्छा आचार्य पाद कल हम कई शूकर लाएंगे और आपको दिखाएंगे भी।"

आचार्य वर्षकार उनका यह उत्साह देख जैसे अत्यन्त प्रसन्न हो उठे। बोले—'अच्छा तो यह बात है !"

इसके पश्चात् जब वे सभी आगे निकल गए तो आचार्य वर्षकार को जैसे सहसा कुछ स्मरण हो आया। उन्होंने सुव्रत के एक अन्य मित्र जयरथ को पुकार, अपनी ओर आने का संकेत किया। जयरथ भी सोत्साह उनकी ओर दौड़ लिया। समीप आने पर आचार्य ने उसके कानों के निकट अपना मुंह ला कुछ कहा। तत्पश्चात् जब वह सोल्लास लौटता हुआ अपनी मित्र मण्डली में लौटा तो सुव्रत ने उत्सुकता से पूछा—"क्यों मित्र जयरथ आचार्य पाद ने तुम से ऐसा क्या कहा जो इतने प्रसन्न हो उठे।"

जयरथ उसी प्रकार उत्फुल्लित रह बोला—"मित्रवर आचार्य पाद क्या और क्या कहते यही कह रहे थे कि तुम सभी बड़े बलवान हो।

पर सुव्रत को जयरथ की इस बात पर जैसे कुछ संदेह हुआ। वह सोचने लगा आचार्य पाद से इसने अवश्य ही यह कहा होगा कि यह शूकर मैंने मारा है और फिर उन्होंने उससे कहा होगा—'जयरथ तुम सचमुच बड़े बलवान हो। केवल सुव्रत ने ही ऐसा नहीं सोचा वरन् अन्य कुमारों ने भी यही अनुमान लगाया परन्तु उस समय किसी ने उससे कुछ कहा नहीं बस मन-ही-मन कुछ सोचकर रह गए सोचा कि जयरथ ने अवश्य ही वैशाली के प्रतिकूल आचरण किया है।



तीस

देवी आम्रपाली स्तूप निर्माण के कार्य की प्रगति और उसके प्रति आबाल-वृद्ध बौद्ध भिक्षुओं की अगाध रुचि को देख अत्यन्त प्रसन्न थी आचार्य शिष्य भी प्रसन्न था। परन्तु एक ऐसा दृश्य था जिसे वह अपनी समस्त शक्ति लगा भुलाने का प्रयास कर रहा था।

श्रेष्ठीपुत्र कपिल का मुक्ताहार उसको वह माया और फिर अन्तःपुर में देवी शिष्या की वह मुस्कान उस सारे दृश्य का वह एक क्षण को भी तो ध्यान नहीं किया चाहता था पर जैसे वह स्वयं उसके नेत्रों में उभर स्थिर हो उठता। और यदि कभी संयोग से वह दृश्य स्वयं उपस्थित होना भूल जाता तो तब आचार्य शिष्य न जाने क्या कुछ खोया हुआ सा अनुभव कर व्याकुल हो उठता। तब वह एकान्त टटोलता-सा कभी इधर तो कभी उधर जाता और इस सारी अवधि ही वह केवल यही निश्चय करता रहता कि अब देवी शिष्या की अट्टालिका की ओर कभी भी नहीं जाऊँगा। पर संध्या समाज का समय जैसे-जैसे निकट आता चलता तो उसका मन जैसे भटकता-सा कभी यहाँ तो कभी वहाँ जाता और फिर अन्ततः उसी के द्वार के सम्मुख पहुँच खड़ा हो रहता। फिर उस द्वार को देख वह मन-ही मन कहता—'चलो कोई बात नहीं आज तो अब आ ही गया पर कल नहीं आऊँगा।' और अगले दिन जब वह कल आता तो वह जैसे अपनी ही किसी दुर्बलता पर मन-ही-मन झल्ला उठता झल्लाता रहता और उसी के साथ-साथ उसका चरण भी अट्टालिका की ओर ही बढ़ता जाता। और जब वह द्वार के सम्मुख पहुँच रहता तो अपनी आज की इस पराजय पर, अथवा अपनी किसी अन्य असमर्थता पर मन-ही मन स्वीकारोक्ति की खिन्न हँसी हँस रहता कभी-कभी एक उच्च ठहाका दे वह अपनी असमर्थता पर हँस भी उठता। किन्तु अगले क्षण ही गम्भीर हो कहता—'देवी शिष्या मैं तुम्हें भूल जाऊँ, इसीलिए तुम से घृणा किया चाहता हूँ। क्या तुम अपने से घृणा कराने में मेरी सहायता नहीं कर सकती?

यह बात मस्तिष्क में आते ही उसे लगता जैसे उसे अनायास ही कोई बड़ा सहारा मिल गया। सोचता—'देवी शिष्या से आज बस यही बात तो कहने आया हूँ।

और इसके उत्तर में देवी शिष्या उसी प्रकार मुस्करा देती जैसे उस दिन संध्या समाज में वह श्रेष्ठीपुत्र कपिल की ओर देख अनुग्रह का भाव प्रकट करती हुई मुस्करा उठी थी। यह देख उसका मुख आवेग से लाल हो उठता पर फिर भी वह वापस न लौट सीधे ही समाज स्थल की ओर बढ़ लेता यह सोचते हुए कि आज इसी श्रीम के साथ उसका नृत्य देखना है जिससे उसे कम से कम यह तो विदित हो

कि कोई कोई वर्षों में ही, स्वयं में उसकी किसी बात से इतना मुग्ध भी हो सकता हूँ।"

यद्यपि सिंह सेनापति को यह भलीभाँति विदित था कि आचार्य शिष्य भावुक है। किसी की भावुकता के सम्बन्ध में कोई किसी अन्य को कुछ स्पष्ट बताए, यह आवश्यक नहीं परन्तु आचार्य बहुलाश्व ने उसे जिस पत्र के साथ एक दिन वैशाली सिंह सेनापति के पास भेजा था उसमें उन्होंने अपने शिष्य की इस दुर्बलता का विशेष रूप से उल्लेख किया था। किन्तु साथ ही आचार्य बहुलाश्व ने अपने शिष्य की इस भावुकता को उसकी दुर्बलता नहीं कहा था उन्होंने लिखा था—"यह तो उसके स्वभाव का मुख्य एवं साथ ही स्थायी धर्म है जिस पर उसकी सारी चारित्रिक विशेषता आधारित है।" आचार्य बहुलाश्व ने फिर इसी पत्र में आगे लिखा था—"आयुष्मान् किन्तु उसकी यह भावुकता सहज ही में किसी अन्य में आत्मीयता का संचार कर उठती है साथ ही यह उसे सत्कार्यों की ओर भी प्रेरित करती है किसी दुष्कर्म की बात तो वह सोच तक भी नहीं सकता और यदि कभी उसे परिस्थिति वश सोचनी भी पड़ जाए तो उससे पूर्व ही वह निराश हो उठता है और फिर वह जैसे आत्म विस्मरण को बाध्य हो उठता है जो अन्ततः उसे अपने कुल परिचय की जिज्ञासा तक ले जाती है। किन्तु आयुष्मान वह अज्ञात कुल भी नहीं है।"

और, आचार्य बहुलाश्व ने इस पत्र में उसके कुल के रहस्य को भी खोल दिया था। वास्तव में वह एक गोपनीय पत्र था जिसे यद्यपि स्वयं आचार्य शिष्य ही लाया था तो भी उसने उसे पढ़ा नहीं था। कारण? क्यों कि आचार्य बहुलाश्व ने उसे ऐसा ही आदेश किया था। और जब उसने वह पत्र सर्वथा अक्षत रूप में सिंह सेनापति को लाकर दिया तो वह उसकी इस कर्तव्य परायणता एवं निष्ठा पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहे। और उसके इस अमल पुष्पमधु का किस कुल से सम्बन्ध था सिंह सेनापति ने यह रहस्य किसी को भी नहीं बताया था। वह बस उनके तथा आचार्य बहुलाश्व के मध्य ही की बात बनकर रह गई थी। और, जैसे अब तो उसकी इतनी भी आवश्य कता नहीं रह गई थी क्योंकि उसकी भावुकता ने उसे अब तक पूर्णतः वैवाहिक, एक निष्प्रमाण वैवाहिक बना दिया था। अतः अब उसने उस दिन सेनापति के सम्मुख पर मुक्त होने की इच्छा प्रकट की तो वह उसे उसका कोई क्षोभ भावावेग समझ कर भी कुछ चिन्तित हो उठे थे। वास्तव में तभी से वह उसका कारण जानने को उत्सुक थे परन्तु उसके पश्चात् ही जब उन्होंने आचार्य बलनार की घोषणा भी सुनी तो वह दुविधा-ग्रस्त हो रहे। सोचने लगे कि यह केवल संयोग मात्र है अथवा दोनों में कोई परस्पर सम्बन्ध भी है?

पर इसी मध्य वैशाली के अनवरत व्यस्त जीवन में एक दूसरी ही गतिविधि का संचार हो उठा। उसके उद्यान दूर दिगन्त से आने वाले महाजन जनों की भीड़ से पूर्ण उठे। वास्तव में देवी आम्रपाली के स्तूप निर्माण का संवाद इस समय तक सभी ओर दूर-दिशाओं में फैल चुका था और जैसे जैसे यह संवाद फैलता जा रहा था वैसे वैसे ही वैशाली में आने वाले लोगों की भीड़ भी प्रगाढ़ होती जा रही थी यहाँ तक कि अब उद्यान स्थित आवेशनों में उनके आवास की व्यवस्था असम्भव प्रतीत होने

लगी। परन्तु इससे वैशालिकों का उत्साह कम न हुआ उल्टे बढ़ा ही। वे गद्गद् हो पर स्पर कहने लगे—"यह तो वैशाली का सौभाग्य समझो कि वैदेशिकों ने इसे इस प्रकार तीर्थस्थल का सम्मान प्रदान किया।"

जब उपान्त-आवेशनों में स्थान नहीं रहा तो अभ्यागत श्रद्धालुजनों के स्वागत हेतु वैशालिकों ने अपने आवासों के द्वार खोल दिए। उनकी बाहुओं को पकड़-पकड़ वे उन्हें अपने आवासों में ले जाने लगे साथ ही कहते—"आगतो यह तो सचमुच देवी आम्रपाली की कृपा है कि हम आप इसी के दर्शन पा सके।"

और वैदेशिक दर्शक भी कहते—"वैशालिको आपका यह आतिथ्य पा हम सच मुच अपने को धन्य हुआ अनुभव कर रहे हैं।'

भिक्षु महाली ने जब यह सुझाव सुना तो उस समय वह तथागत की पावन भूमि कपिलवस्तु में ही था। वैशाली में शास्ता की पुण्य स्मृति में स्तूप का निर्माण हो और वह भी देवी आम्रपाली के हाथों और वह उसका संवाद सुनकर यूं ही रह जाए, इसके लिए भला यह कैसे संभव था? वह तुरन्त प्रस्थान कर उठा। जब वैशा लिकों ने उसके आगमन का समाचार सुना तो जैसे समूची नगरी ही उसके दर्शन को उमड़ पड़ी। फिर वह अकेला भी तो नहीं आया था न जाने कितने शाक्य-जन भी उत्साह की उमंग में उसके साथ दौड़े चले आए थे वे ही शाक्यजन, जिनके मध्य एक दिन तथागत ने जन्म लिया था।

शाक्यजनों के आगमन से समूची नगरी भाव-विभोर हो उठी वैशाली कि नर-नारी गर्व का भी अनुभव कर उठे। और सभी ने यह अपने लिए सौभाग्य का दिन समझा।

वैशालिकों ने तो यह अपने लिए सौभाग्य का दिन समझा और उनके लिए यह उचित भी था परन्तु उधर इसी मध्य तथागत की पावन भूमि कपिलवस्तु में क्या हो रहा? कोई एक सप्ताह पश्चात् ही गुप्तचरों ने आचार्य शिष्य को जो संदेश आकर सुनाया वह उससे बुरी तरह सिहर उठा। वह अपने से बोला—"विडूडभ भला यह भी कोई प्रतिशोध हुआ कि तूने समूची जाति का ही संहार कर दिया। कौशल नरेश विडूडभ द्वारा समूची शाक्य जाति के संहार का समाचार जब गण महानगरी में फैला तो सर्वत्र शोक की लहर छा गई महाली तो रो तक उठा। परन्तु आचार्य वषकार के गुप्तचरों ने उन तक उससे भी आगे का समाचार पहुंचा दिया था जिसे सुन वह न जाने क्यों प्रसन्न हो उठे थे।

विडूडभ द्वारा शाक्यकुल के विनाश का यह समाचार केवल वैशाली में ही नहीं, वरन् सर्वत्र फैल गया। राजा अजातशत्रु ने जब यह सुना तो वह भी एक बार को आशंकित हो उठा। उसे लगा कि कहीं वह कपिलवस्तु से सीधे इधर ही की ओर प्रस्थान न कर उठे और क्या पता वह वज्जीसंघ पर ही आक्रमण कर दे और यदि वह ऐसा कर बैठा तो फिर मगध साम्राज्य के विस्तार की यह सारी योजना विफल हो रहेगी क्योंकि फिर उससे युद्ध में जीतना कोई सरल बात नहीं। राजा अजात शत्रु सोचने लगा—"यदि विडूडभ ने कहीं वज्जीसंघ को कौशल-राज्य में मिला लिया तो फिर मगध साम्राज्य के विस्तार की बात तो दूर की रही उसके वर्तमान स्वरूप —

को भी सुरक्षित रखना असंभव हो जाएगा। यदि इधर मैं महत्त्वाकांक्षी हूँ तो उधर वह भी कोई कम नहीं। यदि एक दिन इस राज्य की महत्त्वाकांक्षा के वशीभूत हो मैंने पिता को बन्दी बना कारागार में डाला था तो उसने भी उसी आकांक्षा से प्रेरित हो अपने वृद्ध पिता प्रसेनजित को सम्राट् श्रावस्ती से बाहर निकाल दिया था और वह बेचारा न जाने किस आशा से मेरे पास आ ही रहा था कि यहीं एक आवेशन में पहुँचते ही उसकी मृत्यु हो गई। संयोग से वह इस समय उसी स्थल पर खड़ा था जहाँ कभी वह आवेशन था और अब उसे तोड़कर उस पर नए नगर की प्राचीर बनाई जा रही थी। उसका प्रधान अमात्य गोपाल भी इस समय उसी के पास खड़ा था परन्तु उसे जैसे उसका ध्यान ही नहीं रहा उसके नेत्रों के सम्मुख आचार्य वर्षकार जैसे सदेह आ उपस्थित हुआ था और इस समय हँस कह रहा था—"क्यों सम्राट् बस घबरा गए?"

परन्तु, तभी अमात्य गोपाल कह उठा—"सम्राट् गुप्तचरों ने जो अभी-अभी समाचार दिया है उसे सुन आप अवश्य ही हर्षित हो उठेंगे।"

सम्राट अजातशत्रु के दुविधा-ग्रस्त मुख पर उत्सुकता छा गई। पूछने लगा—"क्यों आर्य ऐसा क्या समाचार है वह?"

गोपाल ने इधर उधर देख जैसे सावधान हो धीमे से कहा—"सम्राट् कौशल नरेश विड्डभ कपिलवस्तु से अपनी ही राजधानी श्रावस्ती की ओर लौट चुका है तथा वहाँ से जो समाचार आया है वह कुछ और ही है।"

उस समय कोई भी वहाँ नहीं था तो भी गोपाल बस इतना ही कह रुक गया। अजात शत्रु के मुख पर पहले से भी अधिक उत्सुकता का भाव छा गया। उतावली-सी में पूछ उठा—"वह समाचार क्या है आर्य! शीघ्र बताओगे न?"

परन्तु गोपाल जैसे सर्वथा अविचलित रह बोला—"सम्राट् अब आप प्रासाद की ओर चलें वैशाली से भी शीघ्र ही अभी कोई महत्त्वपूर्ण समाचार पहुँचने की संभावना है।"

इधर वैशाली में अब तक विड्डभ के सम्बन्ध में कोई और ही संवाद पहुँच चुका था। गुप्तचरों ने आकर बताया कि विड्डभ जब कपिलवस्तु से श्रावस्ती लौटा तो उस समय अचिरवती नदी में वर्षा के कारण बाढ़ आ चुकी थी अतः उसका मार्ग अव-रुद्ध हो गया और उसकी सेना उसी के किनारे शिविर लगाए पड़ी रही। और एक रात्रि अचिरवती नदी में इतनी भयंकर बाढ़ आई कि वह अपनी सारी सेना समेत ही उसकी विनाशकारी लहरों में समा गया।

आचार्य शिष्य यह शुभ संवाद की सांस लिए बिना नहीं रहा। परन्तु फिर भी उसके मस्तिष्क में एक बात उभरी रही और वह थी कपिलवस्तु के नृशंस नर-संहार को लेकर ही। शुभ विचार की उपजा इतने भयंकर प्रतिशोध के लिए भी प्रेरित कर सकती है इसकी उसने कभी कल्पना तक भी नहीं की थी। और, इसी प्रसंग में उसे अपनी ही कोई न जाने कब से भूली बात सहसा स्मरण हो आई और चूँकि वह एक दीर्घ अवधि के पश्चात उभरी थी अतः वह उतनी ही शक्ति के साथ उसकी चेतना को झक-झोर उठी। वैसे तब वह उसे अपने सम्बन्ध में एक गर्व की बात समझता था, फिर भी वह उस पर विचारता रहा परन्तु इस समय उसके सम्मुख एक नहीं अनेक कार्य

थे जिनके मध्य वह अत्यंत व्यस्तता का अनुभव कर रहा था।

एक दिन जब वह मध्याह्न का भोजन करने कोई तीसरे प्रहर आवास पर पहुँचा तो उसे इतने विलम्ब से आया देख प्रतीक्षा थकित देवी मंजरिका खिन्न मन से कहने लगी—"स्वामी आप आज प्रात से ही निराहार हैं फिर भी आपने मध्याह्न भोजन के लिए इतना विलम्ब कर दिया।

वास्तव में यह कोई आज ही की बात नहीं थी वरन् गत कई दिनों से ऐसा ही क्रम चल रहा था। किन्तु इतनी कार्य व्यस्तता के पश्चात् भी आचार्य शिष्य के मन को संतोष नहीं मिल पा रहा था। कारण? वह कुछ ऐसा समझ रहा था जैसे वह किसी मुख्य प्रवाह से हट कहीं भटक गया है और उसमें कोई उत्साह शेष नहीं रह गया है। देवी शिष्या की संध्या समाज वाली वह मुस्कान उसे भुलाए नहीं भूली जा रही थी और उसके फलस्वरूप वह कुछ ऐसा अनुभव कर रहा था कि जिसने एक दिन इस रीते जीवन में अनायास ही बहुत कुछ भर दिया था उसी ने अब जैसे कोई अवसर पा उसे सहसा छीन भी लिया है। देवी शिष्या की ओर से उसने इस प्रकार की कभी कल्पना तक भी नहीं की थी, इसलिए वह अत्यधिक खिन्न था, केवल खिन्न ही नहीं वरन वह स्पष्टत यह अनुभव कर रहा था कि वह अपनी कोई न गँवाने योग्य अमूल्य निधि गँवा बैठा है। परन्तु वह उसने स्वयं तो गँवाई नहीं थी तो भी उसे भारी दुख था। सोचने लगा—"मैं ही जब इस योग्य नहीं तो फिर देवी शिष्या भी क्या करे उसका इसमें भला दोष भी क्या है? उसके मन में आया कि एक दिन वह देवी शिष्या से उसके प्रेम की याचना करे, परन्तु दूसरे ही क्षण वह सोचने लगा—'क्या प्रेम भी याचना से मिल सकता है? और जब मैं उससे यह याचना करूँगा तो भला क्या वह यह कह देगी कि जाओ मैं तुम्हें प्रेम नहीं देती! परन्तु प्रेम अंतत क्या है? क्या वह याचना से मिल सकता है?' फिर वह अपने से पूछने लगा—आखिर, क्या देवी शिष्या ही उसके लिए सब कुछ बन गई है? और क्या उसकी कृपा कोर पाये बिना जीवित नहीं रहा जा सकता? तब वह अपने को उत्तर देते हुए कहता—'क्यों जीवित क्या मैं अब नहीं रह रहा हूँ? परन्तु वह भी कोई जीवन में जीवन है अरे यह जीवन तो निस्सार है धिक्कार है ऐसे जीवन को जिसे देवी शिष्या का प्रेम न मिल सके।'

परन्तु जीवन को धिक्कारते धिक्कारते वह अपने को भी धिक्कार उठता यह सोचकर कि जिस वैशाली ने उसे इतना कुछ बना दिया है, और जिसने उसके जीवन के सभी अभावों को भरने का प्रयत्न किया है केवल प्रयत्न ही नहीं वरन् वस्तुत भरा है वह आज उसी वैशाली के प्रति समय आने पर उदासीन हो उठा है। कैसे? वह जैसे उस पर अधिक न सोच पाता परन्तु इतना अवश्य स्वीकार कर उठता कि यह मेरी उदासीनता ही है अन्यथा ' अन्यथा क्या ?

उसके सम्मुख जैसे कोई प्रश्न साकार रूप में आ उपस्थित हुआ।

वह परोसे भोजन पर से सहसा उठ खड़ा हुआ। मंजरिका यह देख स्तब्ध रह गई खिन्न भी हो उठी। और स्वयं आचार्य शिष्य? वह उस समय वहाँ खड़ा भी न रह सका और न ही वह विश्राम कक्ष की ओर जा सका वरन् सीधा द्वार-मण्डप की ओर दौड़ अश्वारूढ़ हो सावेग बाहर की ओर प्रस्थान कर उठा।



इकत्तीस

नित्य प्रति की भाँति चिन्तित मगधस्थ आचार्य वर्षकार आज भी गोधूलि वेला में पुष्करिणी तट पर आ पहुँचे। वैसे घूमते घूमते ही वह उसके पश्चिमी छोर पर पहुँच गए, और फिर वहाँ ऐसे खड़े हो गए जैसे दूर-सुदूर तक फैले हरे भरे कमलों की मनोहारी छटा को देख रहे हों। निकट ही में कलभवास ग्राम दीख रहा था परन्तु उस ओर जैसे उनकी दृष्टि ही नहीं गई, यदि गई भी तो फिर वह उधर से उचट पीछे की ओर सघन आम्रकुंज की ओट में से झाँकती ब्राह्मण कुंडपुर ग्राम की अट्टालिकाओं पर जा टिकी। लहलहाते कमलों और ब्राह्मण कुंडपुर ग्राम की अट्टालिकाओं को देख जैसे उन्हें जीवन का कोई विस्मृत पृष्ठ स्मरण हो आया। वह सोचने लगे—'पाटलिग्राम में मगध राज्य का दुर्ग बनवाते समय जब मैं गंगा तट के इस ओर फैले इन हरे भरे, लहलहाते कमलों को देखता था तो मेरा मन एक सुखद कल्पना से गुदगुदा उठता था और साथ ही यह महत्वाकांक्षा भी बलवती हो उठती थी कि न जाने किस दिन यह वैशाली मगध साम्राज्य का अंग बन सकेगी? तब मैं कितनी लालसा भरी दृष्टि से इस ओर देखा करता था. मन होता था कि वैशाली में ही रह उसकी इन स्वर्ण रजत एवं ताम्र कलश युक्त ऊँची भव्य अट्टालिकाओं को जी भर देखता रहूँ और देखता रहूँ इन सुदृढ़ विशाल वक्ष वाले यौधेय वैशालियों को जिनके शौर्य को देख महाप्रतापी बिम्बसार ने भी जैसे पराजय का अनुभव कर अपनी साम्राज्य की महत्वाकांक्षा को सदा-सदा के लिए त्याग दिया था। उन्हें स्मरण हो आया कि राजा बिम्बसार जब प्रौढ़ावस्था में था और उसकी रक्त धमनियों में साम्राज्य विस्तार की सुखद कल्पना के अदम्य उत्साह का संचार हो उठा करता था तो वह उस समय केवल एक ही बात कह पाता था, और वह थी—'आचार्य वर्षकार यदि मुझे वैशालिकों की एकता और उनके बल का सहयोग मिल जाए तो मैं दिग्विजय कर सकता हूँ और पता नहीं ये कैसे मूर्ख हैं कि इतनी दुर्लभ सामर्थ्य के स्वामी होकर भी ये अपने गणराज्य की संकीर्ण सीमाओं में ही घिरे पड़े हैं और मात्र उन्हीं की इन सीमाओं में मैं आबद्ध हूँ—परन्तु ये टूटेंगी अवश्य ही किसी दिन टूटेंगी पर कब ?

क्षणिक रुक उन्होंने फिर अपना विचार प्रवाह जैसे बलात् दूसरी ओर मोड़ लिया। सोचने लगे—'यदि मगध की तरह कभी वैशाली के इन योद्धाओं ने भी साम्राज्य स्थापना की बात सोची होती तो भला क्या होता? होता क्या वर्षकार अंग तथैव मगध अवश्य ही इनके अधीन होता और अवन्ती के चण्ड प्रद्योत का अस्तित्व तक न रह पाता। स्वयं आर्य गौतम और मैं ब्राह्मण पुत्र सभी इनके चाकर बन रहते,

और कौन जाने इस समूचे जम्बू द्वीप पर ही इनका एकच्छत्र राज्य होता पर ये जमाने इस ओर से सदा उदासीन ही रहे उदारता को अपना कोई देवस्वरूप गुण समझते रहे पर कब तक समझते रहेंगे ?

इसी मध्य पुष्करिणी तट ही की ओर दौड़ते आ रहे एक अश्व की पदचापों की आहट से उनका ध्यान भंग हो रहा। अनेक जैसे उचटती दृष्टि से उधर की ओर देखा फिर आम्रकुंज की ओट में से झांकती हुई अट्टालिकाओं को देखते हुए वह पुन अपने से बोले—"एक दिन सन्ध्या समय गरजते मेघों एवं मूसलाधार वर्षा में भीगते हुए मैंने इसी ग्राम में तो आकर शरण ली थी।

शरण लेने की और वैशालिकों द्वारा शरण दिए जाने की बात सोच आज वह न जाने क्यों मन ही मन हँस पड़े परन्तु किस पर ? अपने ही पर या वैशालिकों पर पर यह जैसे उनके निकट ही रहस्य बनकर रह गया। वह अश्व इस समय तक पुष्करिणी के सन्निकट पहुँच चुका था उसे देख आचार्य के मुख पर जैसे स्वत हुए का सा भाव उभर आया। परन्तु उन्होंने तत्काल ही उस ओर से ऐसे दृष्टि हटा ली जैसे उससे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु अश्वारोही एक पवन के झोंके की भांति उनके सर्वथा सन्निकट पहुँच सहसा बड़ी तत्परता से बोला—"आर्यवर, मुद्राएं गंगातट के इस ओर बिखर चुकी हैं।"

आचार्य वर्षकार ने भी उसी तत्परता से कहा—"तो फिर उन्हें बटोर उपवित में ला एकत्र करो। और आयुष्मान् भला स्वर्ण मुद्रा का क्या हुआ ?"

अश्वारोही सावधान दृष्टि से इधर उधर देख बोला—"आर्यवर उसने तो अपने को ताम्र आवरण में ढांप लिया है, और मार्ग पर से पांच मुद्राओं को उठा अब इधर ही की ओर अग्रसर है।"

इस पर आचार्य वर्षकार बोले—"ताम्रवर्ण से कहो वह उठाई मुद्राओं को फेंक अकेले ही मध्य कोठार में पहुँच जाए शेष सब ठीक है।"

अश्वारोही यह सुन फिर उसी दिशा में सावेग दौड़ लिया जिधर की ओर से वह आया था परन्तु इस पर आचार्य वर्षकार जैसे झल्ला उठे। अपने स्थान पर ही खड़े एक उच्च ध्वनि में इतनी उच्च ध्वनि में कि पुष्करिणी के पूर्वी तट पर खड़े युवक प्रहरी भी भली भांति सुन लें वह बोले—"अरे ओ अश्वारोही क्या तू बहरा है अभी तो तुझे मार्ग बताया था फिर भी ।"

परन्तु अश्वारोही ने जैसे इस बार कोई ध्यान ही नहीं दिया तीव्र गति से उसी दिशा में दौड़ता चला गया। और आचार्य वर्षकार जैसे उसकी इस मूर्खता पर एक उच्च ठहाका दे हँस पड़े। हँसी के ठहाके को सुन प्रहरी तरुणों का ध्यान इस समय तक पूर्णत इधर की ही ओर आकृष्ट हो चुका था और वे विनिश्चय अमात्य की ही ओर देख रहे थे। आचार्य वर्षकार ने अपने सहज स्वभाव के अनुसार उनमें से एक को संकेत कर अपनी ओर बुलाया और वह युवक भी विनीत सेवक की भांति सोत्साह उनकी ओर बढ़ लिया। शेष सभी तरुण उत्सुकता से उधर की ओर देख उठ देखते रहे कि विनिश्चय अमात्य ने उसके कान में धीमे से कुछ कहा है। जब वह वापिस अपने साथियों में पहुँचा तो उनमें से एक अत्यधिक उत्सुकता दिखा पूछ उठा—"क्यों मित्र

आप ने तुमसे क्या कहा ?

विमल उत्तर में सोत्साह बोला— 'कुछ भी तो नहीं कुमार, वह कह रहे थे तुम सभी बड़े धनवान हो।"

इस पर वह पूछने वाला तथा अन्य सभी सोचने लगे— विमल निश्चय ही झूठ बोल रहा है इसने अमात्य से अवश्य ही यह कहा होगा कि मैं बड़ा धनवान हूं जैसे और हम तो सभी निर्धन हैं।

तत्पश्चात् आचार्य वर्षकार पुष्करिणी तट से नीचे उतर, कूटागार शाला की दिशा में बढ़ लिए, परन्तु जैसे उनकी दृष्टि अकस्मात् ऊपर आकाश की ओर उठ गई। वह आश्चर्य से भर पड़ गए, बोले—'अरे आज असमय में ये मेघ कैसे ?

वह कुछ ऐसे चिन्तित हो उठे जैसे इन घिरे मेघों ने कोई बाधा उपस्थित की हो। अतः वह कूटागार शाला की ओर अग्रसर हो लिए।

उधर आकाश को सहसा मेघाच्छन्न हुआ देख आचार्य शिष्य कुछ घबरा-सा गया। वह इस समय वल्गुमीरा के तट पर बैठा कुछ सोच रहा था। वह सोच रहा था— 'कुमार सिंह ने मुझे यह पद प्रदान कर वैशाली के साथ निश्चय ही अन्याय किया है मैं उसके किंचित भी तो योग्य नहीं हूं। तो फिर मैं किस योग्य हूं ? वह इस समय जैसे इस बात को सोचना व्यर्थ समझ रहा था फिर भी वह सोच उठा 'इससे तो मैं यदि देवी शिप्रा की बालक मण्डली में ही हुआ होता तो कहीं अधिक श्रेयस्कर रहता। तब देवी शिप्रा कम से कम दृष्टि छाया में तो बनी रहती और हर समय उसका सान्निध्य लाभ भी हो रहता। उसने इस बात को अपने अन्तर की पूर्ण गम्भीरता से सोचा था फिर भी वह स्वयं उस पर हंसे बिना नहीं रहा। अपने से कहने लगा—'किधर से भी कुछ भी क्यों न सोचूं यह देवी शिप्रा जैसे हर ओर से मेरा मार्ग रोक खड़ी हो जाती है।

वह उस पर कुछ खिन्न हुआ सा झुंझला उठा साथ ही अपने पर भी अपने पर अधिक क्योंकि वह इसे अपनी ही दुर्बलता समझ रहा था, सोचने लगा—'भला इसमें देवी शिप्रा का क्या दोष है ? और न मेरा ही यदि है भी तो केवल एक का और वह स्वयं आचार्य बहुलाश्व का जिन्होंने मुझे जैसे इसी दुविधा के लिए यहां वैशाली भेजा हो।

किन्तु मस्तिष्क में यह विचार आते ही वह ऐसे कांप उठा जैसे उसने किसी दुष्कर्म का बोध किया हो। वह कांप उठा यह सोचकर कि जिस आचार्य ने मुझे और आज उन्हीं के प्रति यह कुविचार उनके प्रति यह कृतघ्नता।

वह अपने को धिक्कार उठा।

वह घुटनों के बल भूमि पर बैठ गया उसके कर अंजलि बद्ध हो उठे और नेत्र अश्रु पूरित कण्ठ रुंध आया। अवरुद्ध कण्ठ से बोला—"आचार्यपाद आप जहां भी हों इस कृतघ्न को क्षमा करना क्षमा करना इस अभागे दुष्ट को जिसे आपने जीवन में इतना कुछ दिया मुझे इस देव दुर्लभ शाला में भेजा और भेजा इस देवी शिप्रा को देखने को जिसके दर्शन पा मैं धन्य हो गया हूं महाश्रमी मैं सचमुच धन्य हो गया हूं उसके दर्शन कर पर यह अब इस समय न जाने मेरे किस अपराध का मुझे दण्ड दे रही है आचार्यपाद वह तो गुणवती है और कल्याणमयी भी है तो फिर क्या

उसकी उपेक्षा उचित है ?"

"बिलकुल नहीं आयुष्मान बिलकुल नहीं।

सहसा नेपथ्य से आए इस उत्तर को सुन वह चौंक-सा गया। किन्तु तत्परता से उधर दृष्टि कर जब उसने देखा तो अभिवादन स्वरूप उसका शीर्ष झुक गया। फिर जैसे साश्चर्य बोला— 'बन्धुवर आप यहाँ कैसे ?"

आगन्तुक भिक्षु वेश में था और उसके मुख पर एक सहज मुस्कान खेल रही थी। आत्मीयता का सा भाव लिया वह कहने लगा—"क्यों आयुष्मान क्या जहाँ पूज्यपाद आचार्य बहुलाश्व का एक शिष्य पहुँच सकता है वहाँ दूसरा नहीं आ सकता ?"

आचार्य शिष्य के मुख पर एक क्षण को गर्व का सा भाव स्फरित हो उठा। परन्तु, अगले क्षण ही वह जैसे सप्रमाद बोला— 'बन्धुवर, भिक्षु संघ में प्रविष्ट होने की इच्छा बलवती हो उठी है।"

उसके मुख से एक भारी साँस निकल वायुमण्डल में विलीन हो गई।

भिक्षु की मुद्रा इस समय तक गम्भीर हो उठी थी। किन्तु वह फिर अपनी स्वाभाविक मुस्कान के साथ बोला—"क्यों आयुष्मान क्या इसलिए कि इस समय वैशाली के ऊपर यह प्रकाश मेघाच्छन्न हो है ?"

उत्तर से पूर्व आचार्य शिष्य का मन भारी हो उठा। मस्तक नत करते हुए उसके मुँह से फिर भारी साँस निकल गई। भर्राए कण्ठ स्वर में बोला—"हाँ बन्धुवर, कदाचित इसी से।"

भिक्षु तनिक सोच बोला— आयुष्मान्, फिर तो यह पलायन हुआ अत भिक्षु संघ में तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं।"

यह कह भिक्षु की दृष्टि में एक दृढ़ता-सी उभर आई। उसके इस उत्तर को सुन आचार्य शिष्य हतोत्साहित हो उठा और मुख पर भारी निराशा व्याप्त हो उठी। उसके ओष्ठ तो पर्याप्त समय से ही शुष्क चले आ रहे थे। रुंआसे कण्ठ स्वर में बोला—"तो क्या बन्धुवर मेरे लिए अब कहीं भी स्थान नहीं ?

भिक्षु महाली तत्परता से बोला—"क्यों अभी तो वैशाली को ही तुम्हारी आवश्यकता है आयुष्मान।"

आचार्य शिष्य ने भिक्षु महाली की ओर तनिक देख कहा—"बन्धुवर, वैशाली को तो इस समय प्रमाण की आवश्यकता है और वह मेरे पास है नहीं।"

यह कह वह कुछ रुका, फिर जैसे कुछ सोचते हुए से बोला—"और इस समय वैशाली को नहीं वरन् स्वयं उसे वैशाली की आवश्यकता है क्योंकि—।"

जैसे इस बार वह अपनी अधूरी बात को पूरा करने के अभिप्राय से साहस कर निस्संकोच हो बोला—"क्योंकि बन्धुवर मुझे देवी शिप्या की आवश्यकता है।"

भिक्षु महाली बोला—"आयुष्मान बन्धुवर तो फिर क्या तुम श्रम भी सावधान होकर नहीं कर सकते ?"

किन्तु इस पर आचार्य शिष्य तनिक भी विचलित नहीं हुआ। वह मस्तक हो बोला—"हाँ बन्धुवर ऐसा भी हो सकता है।"

भिक्षु महाली जैसे विश्वास की दृढ़ता से कह उठा— हो सकता है नहीं आयुष्मान वरन् है।"

"तो भी बन्धुवर आप मुझे इस समय भिक्षु संघ में प्रविष्ट होने की अनुमति प्रदान करें।

भिक्षु महाली ने उसकी ओर देखते हुए कहा— 'आयुष्मान वह तुम्हें मिल सकती है परन्तु उससे पूर्व ।

भिक्षु महाली को मध्य ही में रुका देख आचार्य शिष्य उत्सुकतावश उतावला से पूछ उठा— उससे पूर्व क्या बन्धुवर आप आदेश करें।

भिक्षु महाली मात्रा सोचते हुए से कह उठा—"तुम्हें पहले देवी शिष्या से अनुमति लेनी होगी मैं क्या कोई भी तुम्हें दीक्षा देने से भला कैसे रोक सकता है।

आचार्य शिष्य को लगा जैसे उसे सहसा कोई अवलम्ब मिल गया। वह तुरन्त ही तो आरूढ़ हो देवी शिष्या की अट्टालिका की ही ओर प्रस्थान कर उठा।

और भिक्षु महाली वहीं खड़ा रह उसकी ओर देखता रहा। साथ ही कुछ सोचता भी रहा। वह सोच रहा था कि एक दिन तू भी तो ।

उधर आकाश में मंडराते मेघों को देख आम्रकुञ्ज में मयूर कूक उठे, आम्रकुंज भी उनकी मधुर ध्वनि से गूंज उठे और फिर अपनी ही प्रतिध्वनि को सुन वे प्रतिवादिक उच्च स्वर में केका कर नृत्य मगन हो उठे।

आचार्य शिष्य का अश्व इस समय तीव्र गति से दौड़ता हुआ जा रहा था। वह नए उदीत को पार कर अभी पद्मरिणी के उत्तर तट की ओर इस उद्देश्य से मुड़ा था कि तथागत की पावन स्मृति में बनते स्तूप को देखता चलूं फिर साथ ही देवी आम्रपाली के दर्शन भी हो जाएंगे। वह उधर गत दो-एक दिनों से गया भी नहीं था। परन्तु वह सोच उठा—"भिक्षु मन में तो प्रविष्ट हो ही रहा हूँ अतः अब उसकी अभी क्या आवश्यकता रह गई है कभी स मैं भी वहां पहुँचा वैशाली में राजा चेटक की विपुल सम्पत्ति को त्याग कर अब वहीं तो रहना है मंजरिका से भी भला फिर क्या सम्बन्ध रह जाएगा? किन्तु मंजरिका का ध्यान आते ही उसके हृदय में एक टीस सी उभर उठी। वह सोचने लगा— आज व्यर्थ ही मैं उस पर अनाचार कर बैठा पर अभी कम न उसे भी कोई कष्ट नहीं दूंगा। उसका अश्व इसी मध्य पद्मरिणी तट पर पहुँच गया था। वहां क्षणिक रुक उसने सम्मुख ही बनते स्तूप पर हल्की-सी दृष्टि डाली परन्तु इसी मध्य उसके मस्तिष्क में कोई विचार जैसे विद्युत गति से आ टकराया अश्व भी उसी के साथ कमल कर की ओर दौड़ लिया। अश्व तीव्र गति से कमल वन की ओर दौड़ता जा रहा था परन्तु वह आज मन में मानों विषाद भाव से बढ़ा जा रहा था। कुछ क्या यही सोच रहा था— आज तक कभी भी मैंने देवी शिष्या को कुछ भेंट नहीं दिया और जीवन के इस महत्त्वपूर्ण प्रसंग पर जब तक वह पदार्पण हो उसके पूर्व मैं उसे एक कमल पुष्प ही उपहार स्वरूप भेंट करता चलूं उससे कहूंगा—देखा अपने श्रम से अर्जित मेरे पास अल्पमित कलित की भांति कोई बहुमूल्य मुक्ताहार तो है नहीं अतः तुम इसे ही स्वीकार कर लो। कौन जाने यह

तुम्हारे इस श्यामल केशपाश पर कण्ठ के मुक्ताहार से कहीं अधिक शोभायमान हो सके।

अंतत कमल कुण्ड आ पहुँचा। अश्व को वन के तट पर छोड़ वह पहले निकट की एक बावड़ी की ओर चल पड़ा। उसके सोपान पर से नीचे उतर उसने उसके जल से अपने मुख को धोया पैरों को भी और फिर उसके जल को ले अपने शरीर पर छिड़का जैसे वह इस समय यहाँ पुष्प तोड़ने नहीं वरन् किसी उपासना की तैयारी करने आया हो।

कुंड में इस समय एक नहीं अनेक और वे भी विभिन्न वर्ण के कमल पुष्प खिले थे—श्वेत नील रक्तिम एवं पीले—सभी प्रकार के तो। अत वह उनकी विविध वर्ण-छटा को देख जैसे कुछ सोच में पड़ गया सोचने लगा—श्वेत संधि का द्योतक है, पर देवी चिप्पा से मेरा न तो कोई संघर्ष ही रहा और न दुराग्रह ही अत वह उचित नहीं फिर तो रक्तिम ही ठीक रहेगा पर, वह अनुराग एवं आसक्ति का परिचायक है जो संभव है कभी मेरे मन में रहा हो किन्तु अब नहीं, बिलकुल भी तो नहीं अत वह अब निरर्थक है और नील पुष्प उसकी सघन श्यामल केश राशि में खो जायगा और पीत वैराग्य का द्योतक है पर वैराग्य को एक बार स्वीकार कर भला म उसे किस प्रकार पुष्प भेंट कर सकता हूँ। और वह वर्णों की माया में उलझ-सा गया। अंतत बोला—श्वेत शुभ भी है और सरलता का भी परिचायक है, फिर देवी चिप्पा भी तो सौम्य है सरल है अत वही क्यों न ले लूँ प्रेम जितना भी सरल हो वह उतना ही सुखद है फिर अब तो एक प्रसंग की परिसमाप्ति की ही बात है, वह भी जितनी सहज और सरल हो उतनी ही सुखद रहेगी।

यह सोच वह अंतत कुंड में उतर लिया पर अधिक उथले जल का पुष्प उसके मन नहीं आया अत वह और आगे बढ़ लिया मन-ही-मन बोला—प्रेम की जितनी भी गहराई में उतर जो उतना ही अच्छा है उसका उपहार जितना श्रम कर अर्जित किया जाए वह उतना ही मूल्यवान है प्रेम का मूल्य धन नहीं श्रम है साधना है और त्याग है देवी चिप्पा आज मैंने अपने प्रेम को त्यागने का निश्चय किया है इसलिए निश्चय किया है कि तुम किसी और के साथ प्रेम कर सको और तुम प्रसन्न रह सको यही तो मेरी एक मात्र महत्वाकांक्षा है।

कुंड के जल से उसके सारे वस्त्र भीग गये पर जैसे उस ओर उसका कोई ध्यान ही नहीं गया। बाहर आ उसने एक बासंती पुष्प की ओर दत्त-चित्त दृष्टि से देखा बोला—"देवी चिप्पा की विमल मुख-कान्ति पर जब यह शुभ पुष्प झटक रहेगा तो निश्चय ही इसका सौष्ठव भी और बढ़ रहेगा और यह धन्य हो रहेगा अभी तो यह कुछ भी सुन्दर नहीं तब देखना जब यह उनकी केश राशि में उलझ रहेगा।"

और फिर वह कुंड के जल में ही खड़ा रह अपने नेत्र मूँदे न जाने क्या अंत-र्दृष्टि से निहारता हुआ हृदयंगम करता रह गया।

सहसा ऊपर नभ में मेघ गर्जना कर उठे। उसे सुन आम्रकुंज के मयूर भी आनन्दोच्छ्वास से कुछ कह उठे। आच्छन्न मेघों की सघनता को देख आचार्य चिप्प के अन्तर में छिपा कोई भाव अथवा कोई चाह भी खिल उठी मेघ गर्जना सुन वह

भयभीत नहीं हुआ बरन् उसे एक सुखद अनुभूति हो रही। मन-ही-मन बोला—'कल जब मैं भिक्षु संघ में जाऊँगा तब देखा जाएगा परन्तु आज तो अभी मैं देवी शिप्पा की अट्टालिका की ही ओर जा रहा हूँ। देवी शिप्पा मेरी है और मैं देवी शिप्पा का वह हो या न हो पर मैं तो हूँ ही। क्यों प्रेम क्या एकांगी नहीं हो सकता? वह होता है यदि अब तक नहीं हुआ है तो आगे हो रहेगा उसकी भी तो अपनी निराली अनुभूति है अपना सुख है अपनी कल्पना है और उसका यह निराला पथ ही तो आनन्दोच्छ्वास है ऐसा उच्छ्वास जिसमें कल्पना कहीं अधिक स्वतन्त्र हो रहती है और पीड़ा में एक विचित्र माधुर्य का संचार हो उठता है।

यह सब कुछ सोचते-विचारते वह आगे बढ़ा ही जा रहा था कि मार्ग में उसका प्रासाद आ गया सोचने लगा—'जब प्रासाद तक आ ही गया हूँ तो फिर वस्त्र ही बदलता चलूँ।' पर फिर सोचने लगा—'चलो ऐसे ही चलो उपहार उपमाएं हो रहेगा। परन्तु वह फिर आगे सोचने लगा—'मंजरिका से तो कम से कम कहता ही चलूँ कि कल तुम्हारा यह आचार्य शिष्य भिक्षु संघ में प्रविष्ट हो रहेगा और फिर वह उसके पश्चात तुम्हें कोई कष्ट नहीं देगा आज जैसा अत्याचार वह तुम पर कर बैठा फिर कभी नहीं कर सकेगा। किन्तु द्वार द्वार पर खड़ा प्रहरी उसे देखते ही कह उठा—"स्वामी स्वामिनी तो महावीर के आवास पर गई हैं देवी रत्नकमल कल से अस्वस्थ हैं, इसी से उधर चली गई हैं वह अब कल आएँगी।

प्रहरी के मुख से यह सन्देश सुन आचार्य शिष्य न जाने क्यों एक बारगी घबरा सा गया खिन्न भी हो उठा। परन्तु दूसरे ही क्षण अन्तर में एक भारी श्वास खींचते हुए बोला—"चलो यह भी अच्छा ही हुआ कल उन्हें स्वयं पता लग जाएगा।"

प्रहरी की इच्छा हुई कि पूछे तो क्या स्वामी? पर वह यह चाहकर भी नहीं पूछ सका। आचार्य शिष्य के मन में आया कि पहले महावीर के आवास की ओर ही हो आऊँ, क्या पता देवी रत्न कमल सचमुच अस्वस्थ हों पर वह यह भी केवल सोच कर ही रह गया आज जैसे स्वयं ही सीधे देवी शिप्पा की अट्टालिका की ओर ही बढ़ लिया।

अभी वह वीथी मुख पर ही था कि गणसंथागार की दिशा से आता उसे उसका सहायक अनिरुद्ध मिल गया उसे देख वह दूर ही से बोला—'मित्रवर आज से तुम आने का ही सरासर प्रमाण समझो मैं तो कल भिक्षु संघ में ।"

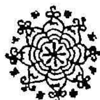
परन्तु वह यह बात अधूरी ही कह सका। फिर प्रसन्न वदन वह पूछने लगा—'क्यों मित्र अनिरुद्ध यदि प्रमाण नहीं मिल तो क्या फिर संदिग्ध अपराधी का ही बंदी नहीं बनाया जा सकता?"

अनिरुद्ध तनिक सोच बोला—"अवश्य आर्य अवश्य परन्तु यह तभी संभव है जबकि नगर अथवा राज्य में शासन विधि हो और उसके लिए वही व्यक्ति कारण प्रतीत होता हो या फिर उससे किसी संकट की आशंका हो।"

इस पर आचार्य शिष्य तत्परता से कह उठा—"मित्र अनिरुद्ध नगर में यह सभी कुछ है, किन्तु स्पष्ट नहीं अस्पष्ट है इसीलिए इतनी दुविधा है हत्याकांड में निश्चय ही ।"

आचार्य शिष्य भी सावधान हो उठा उसने फिर प्रसंग बदल और कुछ पूछना चाहा परन्तु न जाने क्या सोच बस मौन रह गया। उसका अश्व फिर सीधा देवी शिष्या की अट्टालिका की ही ओर बढ़ लिया।

अनिरुद्ध भी क्षणिक देर नहीं खड़ा रह, अन्ततः जिधर जा रहा था उसी ओर बढ़ लिया।



भयभीत नहीं हुआ बरन् उसे एक सुखद अनुभूति हो रही। मन-ही-मन बोला—'कल जब मैं भिक्षु संघ में जाऊँगा तब देखा जाएगा परन्तु आज तो अभी मैं देवी शिप्रा की अट्टालिका की ही ओर जा रहा हूँ। देवी शिप्रा मेरी है और मैं देवी शिप्रा का वह हो या न हो पर मैं तो हूँ ही। क्यों प्रेम क्या एकांगी नहीं हो सकता ? वह होता है यदि अब तक नहीं हुआ है तो आगे हो रहेगा उसकी भी तो अपनी निराली अनुभूति है अपना सुख है अपनी कल्पना है और उसका यह निराशा पन ही तो आनन्दोच्छ्वास है ऐसा उच्छ्वास जिसमें कल्पना कहीं अधिक स्वतन्त्र हो रहती है और पीड़ा में एक विचित्र माधुर्य का संचार हो उठता है।

यह सब कुछ सोचते-विचारते वह आगे बढ़ा ही जा रहा था कि मार्ग में उसका प्रासाद आ गया सोचने लगा— अब प्रासाद तक आ ही गया हूँ तो फिर अन्त ही बद सता जाऊँ।' पर, फिर सोचने लगा—'चलो ऐसे ही चलो उपहार तत्प्रमाण हो रहेगा। परन्तु वह फिर आगे सोचने लगा—'मंजरिका से तो कम से कम कहता ही जाऊँ कि कल तुम्हारा यह आचार्य शिष्य भिक्षु संघ में प्रविष्ट हो रहेगा और फिर वह उसके पश्चात तुम्हें कोई कष्ट नहीं देगा आज जैसा अनाचार वह तुम पर कर बैठा फिर कभी नहीं कर सकेगा। किन्तु बाह्य द्वार पर खड़ा प्रहरी उसे देखते ही कह उठा—"स्वामी स्वामिनी तो महावीर के आवास पर गई हैं देवी रत्नकमल कल से अस्वस्थ हैं इसी से उधर चली गई हैं वह अब कल आएँगी।"

प्रहरी के मुख से यह सन्देश सुन आचार्य शिष्य न जाने क्यों एकबारगी घबरा सा गया खिन्न भी हो उठा। परन्तु दूसरे ही क्षण अन्तर में एक भारी श्वास खींचते हुए बोला—"चलो यह भी अच्छा ही हुआ कल उन्हें स्वयं पता लग जाएगा।"

प्रहरी की इच्छा हुई कि पूछे तो क्या स्वामी ? पर वह यह चाहकर भी नहीं पूछ सका। आचार्य शिष्य के मन में आया कि पहले महावीर के आवास की ओर ही हो आऊँ, क्या पता देवी रत्नकमल सचमुच अस्वस्थ हों पर वह यह भी केवल सोच कर ही रह गया अपने पैर स्वयं ही सीधे देवी शिप्रा की अट्टालिका की ओर ही बढ़ लिया।

अभी वह थोड़ी-दूर बढ़ा ही था कि गणसंथागार की दिशा से आता उसे उसका सहायक अनिरुद्ध मिल गया उसे देख वह दूर से ही बोला— मित्रवर आज से तुम आने को ही अच्छा प्रयास समझा मैं तो कल भिक्षु संघ में ।"

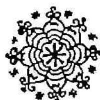
परन्तु वह यह बात अधूरी ही कह सका। फिर प्रसन्न बदन वह पूछने लगा— "क्यों मित्र अनिरुद्ध यदि प्रमाण नहीं मिले तो क्या फिर संदिग्ध अपराधी को ही बंदी नहीं बनाया जा सकता ?"

अनिरुद्ध तनिक सोच बोला— 'अवश्य आर्य अवश्य परन्तु यह तभी संभव है जबकि नगर अथवा राज्य में आपात स्थिति हो और उसके लिए वह व्यक्ति कारण प्रतीत होता हो या फिर उससे किसी प्रकार की आशंका हो।"

इस पर आचार्य शिष्य तत्परता से कह उठा— मित्र अनिरुद्ध नगर में यह सभी कुछ है किन्तु स्पष्ट नहीं। अस्पष्ट है इसीलिए स्वामी दुविधा है स्याद्वाद में निश्चय ही ।"

आचार्य शिष्य जैसे सावधान हो उठा उसने फिर प्रसंग बदल और कुछ पूछना चाहा परन्तु न जाने क्या सोच वश मौन रह गया। उसका अश्व फिर सीमा देवी शिष्या की अट्टालिका की ही ओर बढ़ लिया।

अनिरुद्ध भी तनिक देर वहीं खड़ा रह अन्यत्र जिधर जा रहा था उसी ओर बढ़ लिया।



छत्तीस



सन्ध्या समाज की बेला निकट आई देख, देवी शिप्रा ने अब कुछ समय पूर्व ही प्रसाधन कक्ष में आ उसके शिखाग-दर्पण के सम्मुख पीठिका पर बैठी थी कि एक परिचारिका ने सवेग कक्ष में प्रवेश किया। परन्तु, कक्ष में प्रविष्ट होते ही परिचारिका को जैसे अपनी किसी भूल की सुध हो आई।

अट्टालिका की सभी परिचारिकाओं को विदित था कि क्षमा देवी को अतिरेक अधिकार खलता है और वह व्यवहार में सौम्य भाव को अनुकूल आचरण समझती हैं अतः आगत परिचारिका अपने तत्क्षण के भावावेग पर जैसे लज्जित-सी हो गई।

किन्तु आज जैसे देवी शिप्रा ने भी परिचारिका के इस आवेग के प्रति कुछ उत्सुकता दिखाई। उसकी पद आहट को सुन उसकी दृष्टि दर्पण की ओर से बलात् हट रही। यह देख उसकी सघन श्यामल घुंघराली केश राशि को अपने पुष्प से सजा रही प्रसाधिका का हाथ भी सहसा रुक रहा। किन्तु क्षणिक प्रतीक्षा के पश्चात् देवी शिप्रा के नेत्र पुनः दर्पण में झांक उठे। दर्पण में ही झांकते हुए उसने देखा कि परिचारिका के मुख पर अभी भी उल्लास की लालिमा व्याप्त है उसकी सांस भी कुछ कुछ फूली-सी प्रतीत हुई। अतः देवी शिप्रा ने इस समय यही समझा कि संभवतः वह हंसी से कुछ कह नहीं पा रही है। देवी शिप्रा ने एक बारगी तो उत्सुकतावश उसके आवेग का कारण पूछना भी चाहा परन्तु साथ ही यह सोच कि क्या अपने आप कह देगी वह फिर दर्पण में भरी दृष्टि से झांक उठी जैसे वह अपने ही नेत्रों में किसी अन्य की छवि दर्पण की सहायता से देखना चाहती थी पर वह कुछ उदास हो उठी उसकी पर स्निग्धता की फीकी मुस्कान सी फैल-सी गई अन्तर में जग कोई व्यंग भाव की दृष्टि में आ उलझ-सा गया। पावस मटकता मणिगुम्फित का दीप्त मुक्ताहार उसे जैसे असह्य हो उठा। उसने मुक्ताहार को तत्परता से उतार प्रसाधिका की ओर फेंक दिया। मुख पर स्पष्ट ही खिन्नता का भाव छा उठा फिर जिज्ञासा का-सा। फिर, वह सहज स्वर में पूछने लगी—"क्यों कलिका अमा नारी की वास्तविक शोभा क्या है?"

प्रसाधिका ने दर्पण की ओर दृष्टि कर पहले तो जैसे देवी शिप्रा के मनोभाव को जानने का सा प्रयास किया फिर सहज ढंग में बोली—"देवी उसके मनोभाव ही उसकी वास्तविक शोभा है।

तनिक रुक प्रसाधिका कलिका फिर जैसे कुछ भावुक हुई सी बोल उठी—"और देवी जो सभी प्रकार के मनोभावों में यहां तक कि विकारों के मध्य भी अपने

एक बनी रहे, वही नारी सम्पूर्ण है।"

"जैसे ?"—जैसे यह प्रश्न देवी धिप्या के मुख से उत्सुकतावश बलात् निकल गया। प्रशाधिका भी उत्तर में सहज स्वभाव कह उठी—"जैसे देवी धिप्या स्वयं !"

देवी धिप्या ने अनुमान लगाया था कि कपिधा उसके उत्तर में निश्चय ही देवी आम्रपाली का उल्लेख करेगी। वास्तव में इस प्रसंग में उसने अपने सम्बन्ध में कल्पना तक भी नहीं की थी। अतः उसे प्रशाधिका की बात पर विश्वास नहीं हुआ फिर भी उसके मुख पर अविश्वास का नहीं वरन् जिज्ञासा का सा भाव छा गया। परन्तु वह भी शीघ्र ही लुप्त हो गया। उसकी मुख मुद्रा गम्भीर हो उठी और गम्भीर मुख पर आवेश की एक रेखा उभर उठी। वह बोली—"कपिधा क्यों क्या यह भ्रम उत्पन्न करने का प्रयास नहीं है ?

देवी धिप्या के मुख से ऐसा प्रश्न सुनकर भी प्रशाधिका सर्वथा अविचलित रही। हाँ उसके गौर मुख पर एक मुस्कान अवश्य खेल उठी। दर्पण में देवी धिप्या के प्रतिबिम्ब को निहारती-सी वह बोली—"देवी आपको मैं भ्रम कराऊँ, तो मेरा साहस कदापि नहीं हो सकता मेरी दृष्टि में तो यह एक वास्तविकता ही है।

"सो कैसे देवी प्रशाधिका ?

इस बार देवी धिप्या के मुख का जिज्ञासा भाव सर्वतोभाव प्रगाढ़ हो उठा। प्रशाधिका उत्तर से पूर्व अपनी पीठिका से उठ खड़ी हो गई।

परिचारिका मौन भाव से खड़ी रह दोनों के मध्य प्रारम्भ हुए इस प्रसंग को मानों, पूर्ण तन्मयता से सुन रही थी परन्तु साथ ही संवाद निवेदन के उद्देश्य से अवसर के लिए भी प्रयत्नशील रही। अतः इस बार उचित अवसर समझ वह कहने को उद्यत ही हुई थी कि इसी मध्य प्रशाधिका देवी धिप्या के दो-एक उलझे केशों को अपनी लम्बी अंगुलियों से संवारती हुई कह उठी—"देवी जब जीवन का प्रवाह सर्वथा सामान्य गति से चलता रहता है तो यह ठीक है कि प्रवृत्तियाँ भी विश्राम की स्थिति में रहती है परन्तु अवसर आने पर वे क्या रूप ग्रहण कर सकती हैं यह तो संकेत मिल ही जाता है। संभव है किसी दिन ।"

"किसी दिन से तुम्हारा तात्पर्य कपिधा ?"

देवी धिप्या के मुख की उत्सुकता इस प्रश्न के साथ-साथ पूर्व से भी अधिक प्रगाढ़ हो उठी। किन्तु प्रशाधिका अपने पूर्ववत सहज ढंग में ही बोली—"देवी धिप्या क्षमा अभिव्यक्ति का यह कोई साधारण तो है नहीं उन पर तक आ जाना अपने आप में एक असाधारण बात है फिर तुम तो वैशाली में एक भारी संकट की भी प्रतीक रही हो परन्तु मैं यह सब कुछ नहीं कहूँगी मैं तो केवल यही कह रही हूँ कि यदि अवसर आया तो परन्तु इसका अर्थ यह भी तो नहीं हुआ कि उस अवसर का आना अनिवार्य ही है।"

देवी धिप्या प्रशाधिका की इस उलझी बात को जैसे बिल्कुल ही तो समझने में असमर्थ रही। किन्तु उसने वह व्यंग्य की बात भी नहीं समझी। उसे लगा कि देवी प्रशाधिका ने अप्रत्यक्ष में अवश्य ही कोई महत्त्वपूर्ण बात कही है, मेरे संदर्भ में नहीं वरन् किसी अवसर विशेष के। और, भला वह क्या हो सकता है ? वह इस दिशा में

कुछ सोच ही रही थी कि इसी मध्य परिचारिका नत मस्तक हो सविनय परन्तु साथ ही उत्साह का सा भाव दिखाती हुई कह उठी—"देवी आकाश में इस समय मेघ छाए हुए हैं और शास्त्रागार में आचार्य शिष्य पधारे हैं।

यह संवाद सुन आज न जाने क्यों देवी शिप्रा का हृदय जैसे बलात् धुकधुका सा उठा, परन्तु प्रगट में उसके मुख पर केवल आश्चर्य का भाव छा कर रह गया। क्यों ? इस कारण नहीं कि आचार्य शिष्य को उस संकेत के पश्चात् आज ही आने की कैसे सुध हो आई। वैसे संभव है यह भी एक कारण रहा हो परन्तु उससे भी अधिक सम्भवतः यही रहा कि परिचारिका इस संवाद के साथ कक्ष में केवल लावेग ही नहीं आई वरन् उसके मुख पर उस समय उल्लास का भाव भी स्पष्टतः परिलक्षित हो रहा था। क्यों ? क्या यह । परन्तु यह अब इस प्रसंग में अधिक सोचना व्यर्थ समझ प्रगट में परिचारिका से कह उठी—"अरी ओ बासवदत्तिका तूने तो आज सचमुच अनर्थ कर दिया आचार्य शिष्य और इतनी देर शास्त्रागार में प्रतीक्षा करें यह तो एक दम असंभव है वह अब तक निश्चय ही लौट गए होंगे।"

देवी शिप्रा का मुख सहसा विवर्ण हो उठा। साथ ही उसे ध्यान हो आया परिचारिका का भला इसमें क्या दोष था अतः वह कुछ पश्चाताप के से कष्ठ स्वर में बोली—"वत्तिका क्षमा करना इसमें भला तेरा क्या दोष था और न ही कोई देवी प्रसाधिका का यह तो आज मुझ ही से भूल हुई कि अकारण यह प्रसंग छेड़ बैठी।

वत्तिका उत्तर में भला क्या कहती और क्या कहती प्रसाधिका कपिला किन्तु कपिला ने यह अवश्य सोचा कि यदि इस समय देवी शिप्रा के स्थान पर कोई अन्य अधिष्ठात्री होती तो वह अवश्य ही उत्तेजित हो उठती क्षमा की याचना करना तो एक दूर की बात रहती ही।

वास्तव में देवी शिप्रा इस समय भारी दुविधा में थी। आचार्य शिष्य को उसकी अट्टालिका में आते अब तक पूरे बारह वर्ष से भी अधिक हो चुके थे पर कदाचित ही ऐसा अवसर आया होगा कि वह मन और तन दोनों से इतनी अस्त-व्यस्त रही हो। और अब निश्चय ही इतना समय नहीं रह गया था कि वह अपने को व्यवस्थित करती। वह कुछ क्षणों तक तो सोचती रही, किन्तु अन्ततः निश्चय कर अपने से बोली—'जब आज ऐसा ही संयोग बन आया है तो फिर जाने में व्यर्थ का क्यों संकोच करूं। और फिर वह उसी अवस्था में जैसे सवेग कक्ष से बाहर निकल ली। आज उसे इस आकुल अवस्था में देख परिचारिका को आश्चर्य हुआ प्रसाधिका को उससे भी अधिक। पर देवी शिप्रा के मदा-लसित पगों में भी आज सचमुच न जाने कहाँ से गति आ गई थी। वह सारे मार्ग आशंकित भी रही सोचती रही कि आचार्य शिष्य कहीं प्रतीक्षा कर अन्ततः चले न गए हों और यदि वह चले गए तो सचमुच मैं किसी का भी अपना मुँह दिखाने योग्य न रहूँगी कौन जाने मुझे अपने को भी मुँह दिखाने में लज्जा आए।

देवी शिप्रा कुछ भी सोचती रही हो परन्तु आचार्य शिष्य इस सारी अवधि ही जैसे अनवरत व्यग्रता—मानसिक और शारीरिक दोनों ही प्रकार की व्यग्रता—एवं उसके फलस्वरूप आई भारी क्लान्ति के पश्चात् पूर्ण विश्रान्ति का सा अनुभव करता रहा। उसे यह तो विश्वास था ही कि देवी शिप्रा चाहे उसकी कितनी भी उपेक्षा क्यों न करे, पर वह

मिलने अवश्य आएगी, चाहे फिर शिष्टाचार वश ही आए, पर वह आएगी अवश्य। अतः इस ओर से वह पूर्णतः आश्वस्त था। तो भी वह इस सारी अवधि विश्रान्ति के मध्य भी कुछ सोचता ही रहा सोच रहा था—'अब एक बार आज यहाँ आ ही गया हूँ अथवा सम्भवतः महासंघ ने भेज ही दिया है तो फिर जो भी कहने वाली बातें हैं वे सभी कहकर रहूँगा अन्यथा कल जब मैं भिक्षु संघ में प्रविष्ट हो जाऊँगा तो फिर एक-एक कर वे सभी बातें सताती रहेंगी और तब पश्चात्ताप होगा कि अवसर मिला भी और कुछ कहा भी नहीं मन की मन में ही रह गई तब निश्चय ही ध्यान भंग हो जायेगा और फलस्वरूप न तो भिक्षु-धर्म का पालन कर सकूँगा और इधर का तो रहूँगा ही नहीं अतः, बस कहीं अधर में अटक कर रह जाऊँगा फिर भला निर्वाण की बात सोची ही कैसे जा सकती है इसका अर्थ हुआ फिर इसी देह को धारण करो और मायावी संसार में आओ और फिर नये सिरे से इन सारी विपदाओं को सहो अजबर उनको सहना तो कोई बड़ी बात नहीं पर कौन जाने फिर जन्म भी लिया और देवी प्रिय्या भी न मिली तो? अजबर, इससे तो निर्वाण ही श्रेयस्कर है निर्वाण होने पर देवी प्रिय्या से मिलने की कम से कम यह लालसा तो नहीं बनी रहेगी वह लालसा जिसने आज अर्थ ही में मुझे इतना भटका दिया है।

बाहर मेघ जैसे किलकारी मारते हुए गर्जन कर उठे अपना रौद्र रूप दिखा चमक भी उठे, और फिर सहसा बरस भी रहे। आचार्य शिप्र आस्थानागार के गवाक्ष किवाड़ों में से अन्दर आए एक झोंके का स्पर्श पा सहमा कर बैठ गया। देवी प्रिय्या अट्टालिका के मुख्य कक्ष की ओर से इस समय आस्थानागार की ही ओर बढ़ी चली आ रही थी कि वह मार्ग में मेघों की गर्जना को सुन सहम-सी उठी। वह सदा ही संयत रही थी अतः आज उसे अपने ही पर आश्चर्य हो रहा। वह इस समय तक वर्षा जल से आपाद-मस्तक भीग चुकी थी सारी देह जल से तर हो गई, परन्तु उसे इस ओर से जैसे तनिक भी सुध नहीं थी भीगे वस्त्र उसके गात से चिपट चुके थे पर इस ओर भी उसका ध्यान नहीं हो सका कि उसके चिपटे वस्त्रों में उसके गात को क्या गत हो उठी है, और वह मन में उठी आशंका की प्रबलता के साथ एक पवन के झोंके के सदृश आस्थानागार में प्रविष्ट हो रही वैसे ही जैसे कुछ देर पूर्व गवाक्ष में से एक पवन का झोंका आया था और आचार्य शिप्र के विचारों को किसी दूसरी ही कल्पना तरंग में बहा ले गया था।

आचार्य शिप्र उसे इस अवस्था में देख स्तब्ध हो उठा देवी प्रिय्या भी उसे देख हतप्रभ हो रही। परन्तु न जाने वह किस देवी की कृपा से अपनी वाणी पर संयम रख सकी कि कण्ठ तक आई किसी बात को भी वह कहने में चूक सकी। पर उसके नैन तो जैसे उसके मन की बात कह ही उठे। और आचार्य शिप्र जब कुछ समझा तो अभिवादन के लिए उठ उसके हाथ नैनों पर आ रहे अत्यन्त मनोयोग न लाया कमल पुनः पीठिका पर ही पड़ा रह गया मन-ही-मन सोचता रहा—'देवी आज इतने दिनों पश्चात् उसके कैपाश में यह पुष्प अटकाने की इच्छा बलवती हुई थी परन्तु जैसे वह भी अधूरी ही रह गई। कल जब भिक्षु संघ में जा उसमें सम्मिलित हो जाऊँगा तो फिर भला कब कौन सा अवसर मिलेगा। अपनी इस इच्छा को फलवती होते न देख वह

और भी बढ़ गई। देवी शिप्या पीठिका पर पड़े कमल की ओर देखती हुई बोली—अब तो चलोगे ?"

आचार्य शिष्य दुविधा-सी में बोला—अवश्य चलूँगा, परन्तु वस्त्र बदलने नहीं।"

"क्या ?

"क्योंकि आज मेरा यह जो भेष है वह किसी देवी के सम्मुख एक प्रमाण है।"

"क्या क्या बिना प्रमाण के काम नहीं चल सकता ? प्रश्न के साथ देवी शिप्या के नेत्र और अधिक मुस्करा उठे। किन्तु आचार्य शिष्य गम्भीर हो गया। बोला—'नहीं देवी शिप्या क्योंकि वैशाली में प्रमाण नितान्त आवश्यक है।

"वह है सो तो मैं भी जानती हूँ अच्छा क्या तक हो चलो वस्त्र न बदलना।

आचार्य शिष्य इस बार जैसे अपने को रोकने में असमर्थ रहा। वह चल पड़ा देवी शिप्या भी दोनों ही वर्षा में भीगते हुए और मुख्य कक्ष में पहुँच देवी शिप्या परिचारिका ललिया से बोली—'इस वर्षा में आज संध्या समाज का आयोजन तो असम्भव है अतः वैसी ही सूचना करवा दो। और फिर वह आचार्य शिष्य का साथ ले अपने निजी कक्ष की ओर चल पड़ी।

कक्ष में आ देवी शिप्या ने आचार्य शिष्य के वस्त्र काष्ठ मंजूषा से निकाल उसके सम्मुख रख दिए। पर आचार्य शिष्य ने उनकी ओर देखा तक भी नहीं। पूछने लगा—'देवी शिप्या क्या देवी मंजरिका ने कुछ कहा नहीं उसने अवश्य ही कुछ कहा होगा।"

देवी शिप्या बोली—"आचार्य शिष्य मंजरिका देवी है। भला वह क्यों कुछ कहती।"

"क्यों देवी शिप्या क्या देवी कभी कुछ कहती ही नहीं ? पर छोड़ो यह। क्या उसने सचमुच कुछ नहीं कहा उसने अवश्य ही कुछ कहा होगा ?"

देवी शिप्या कहने लगी—"मुझे तो कुछ याद रहा नहीं अच्छा तो आप ही बताओ क्या उन्होंने क्या कुछ कहा होगा ?"

आचार्य शिष्य कुछ खीझ-सा गया। पूछने लगा—"देवी शिप्या क्या आप मेरा उपहास नहीं कर रहीं ?"

देवी शिप्या गम्भीर हो बोली—"मैं इतना साहस भी कर सकती हूँ आपने ऐसा कैसे समझ लिया ?"

"क्यों यदि मैं वैसा समझ लूँ तो क्या कुछ अनुचित होगा ?"

देवी शिप्या के नैनों की मुस्कान अगाध हो गई। उसकी ओर देखती हुई बोली—"किंचित भी नहीं आचार्य शिष्य।"

आचार्य शिष्य जैसे नहीं समझ उत्तर बोला—"देवी शिप्या भला यह कैसे सम्भव है कुछ है भी और नहीं भी।"

देवी शिप्या हँस पड़ी उसे हँसते देख आचार्य शिष्य को भारी आश्चर्य हुआ।

क्यों ? क्योंकि वह पहले कभी इस प्रकार हँसी नहीं थी हँसी भी हो तो उसने देखा नहीं था। हँसी के मध्य ही देवी शिप्रा बोली—"देखो आचार्य शिष्य मैं हँस रही हूँ और सज्जा भी क्यों ? क्योंकि इस संसार में जब जन्म हुआ है तो फिर उसमें संध्या समाज में नित्य प्रति नृत्य के लिए भी प्रस्तुत होती हूँ आहार भी करती हूँ रहना भी है और जब रहना है तो उसी के ढंग से रहना होगा जैसे कि देवी मंजरिका रही है, आप आज सारे दिन निराहार रहे, और उन्हें भी रखा परन्तु उन्हें अपने पर किंचित भी तो दुःख नहीं उन्हें दुःख है तो केवल इस पर कि आप रहे। क्या ? क्योंकि उन्हें यही शोभा देता है जैसे मुझे सन्ध्या-समाज में नियमपूर्वक नृत्य करना ही शोभा देता है। क्यों ? क्योंकि यह मेरा कर्तव्य है कर्तव्य के प्रति निष्ठा मात्र ही तो जीवन की शोभा है। कदाचित मंजरिका ने भी यही समझा हो तभी तो वह यहाँ आई, बस रह गई, और कुछ वह भी यह, वह रह गई है— देवी शिप्रा मैं तो आचार्य शिष्य को व्यवस्थित रखने में असमर्थ हूँ और असहाय भी हूँ। और यदि तुम ऐसा कर सको तो मुझ पर तुम्हारा बहुत बड़ा उपकार होगा ऐसा उपकार कि यदि मैं उससे उऋण भी होना चाहूँ तो न हो सकूँ।"

आचार्य शिष्य जैसे सब कुछ समझकर भी कुछ समझने में असमर्थ रहा पर ही वह आत्मग्लानि का सा अवसाद अनुभव कर उठा और पीठिका से उठ खड़ा हो गया साथ ही बोला—"देवी शिप्रा बस अब मैं भिक्षु संघ में प्रविष्ट हो जाऊँगा तो विश्वास करो सब कुछ व्यवस्थित हो जाएगा तब न देवी मंजरिका ही को कोई कष्ट होगा और न ही मैं किसी अन्य को ।"

आचार्य शिष्य का कण्ठ स्वर अत्यधिक बोझिल हो अवरुद्ध हो गया। पर, देवी शिप्रा यह सुन पुनः हँस पड़ी कुछ कहने को भी उद्यत हुई कि आचार्य शिष्य बाहर की ओर चल पड़ा।

भिक्षु संघ में प्रविष्ट होने के लिए देवी शिप्रा से अनुमति लेने की बात जैसे वह अब तक भूल ही चुका था। परन्तु अभी उसने दो-एक पग ही रखे होंगे कि देवी शिप्रा ने अपना हाथ बढ़ा उसे पकड़ लिया। बोली—"आपको मैं आज अभी ऐसे नहीं जाने दूँगी।"

आचार्य शिष्य ने सरोष दृष्टि से देवी शिप्रा की ओर देखा उसी प्रकार देखते रह पूछ उठा—"क्यों ?"

देवी शिप्रा तत्परता से कह उठी—"आचार्य शिष्य यह मैं बाद में बताऊँगी।" और इसी के साथ वह फिर हँस पड़ी। आचार्य शिष्य सावेग बोल उठा—"देवी मैंने इसके पूर्व तुम्हें कदाचित ही कभी हँसते देखा हो क्या आज तुम्हारी यह हँसी अभिनय नहीं है, या फिर यह मेरा उपहास है।"

देवी शिप्रा के मुख पर कुछ खिन्नता उभर आई बोली—"आचार्य शिष्य कभी हँसी नहीं यह मैं स्वीकार करती हूँ परन्तु यह उपहास की हँसी नहीं है रही अभिनय की बात क्या जीवन ही अभिनय नहीं है ?"

"देवी शिप्रा ऐसा कम से कम मैं नहीं समझता।"

"आप भले ही न समझें पर यह है एक वास्तविकता ही। सो कैसे ? यदि मैं

तुम बताना चाहूं भी तो चाह कर भी बता नहीं सकती क्योंकि मेरी भी अपनी कुछ मर्यादा है मर्यादा भी। अच्छा यह तो बताओ कि कम्बुपुर महाश्री ने आपको यहाँ क्यों भेजा था ?"

आचार्य शिष्य बोला—"सम्भव है उनके मन में कोई भ्रम रहा हो।"

"चलो उन्हें भ्रम था पर आपको तो नहीं था फिर भी आप अपने निश्चय को तोड़ आज यहाँ क्या चले आए ?

आचार्य शिष्य को देवी शिष्या का यह प्रश्न कुछ अपमानजनक लगा परन्तु फिर भी वह उस पर उत्तेजित न हो सका उल्टे जैसे कुछ आश्वस्त ही हुआ बोला—"तो क्या यह एक भयंकर भूल ही कर बैठा।

देवी शिष्या तत्परता से बोली—"भूल भला इसमें क्या होती ? यह तो अच्छा ही हुआ कि आप आ गए।"

आचार्य शिष्य अपनी दृष्टि देवी शिष्या के मुख पर टिका बोला—"देवी शिष्या अच्छा तो तब होता जब तुमने कभी मेरी प्रतीक्षा की होती इसलिए यह भूल ही हुई।"

देवी शिष्या इस बार निश्चय ही निरुत्तर हो रही इसलिए नहीं कि उनके पास आचार्य शिष्य के अप्रत्याशित प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था वह अवश्य था और वह उत्तर दे भी सकती थी फिर भी वह उसे टाल गई। परन्तु साथ ही भारी विवशता का भी अनुभव कर उठीं। उसे निरुत्तर देख आचार्य शिष्य न जाने क्या कुछ सम्भवतः स्पष्ट शब्दों में ही कुछ पूछने को विवश ही उठा परन्तु वह न पूछ वह पुनः कक्ष से बाहर की ओर चल पड़ा। देवी शिष्या ने पुनः उसका हाथ पकड़ कहा—"आचार्य शिष्य अब कहाँ जाओगे पर्याप्त रात्रि बीत चुकी है फिर ऊपर से मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो रही है सम्भव है नगर के पूर्ण राजपथ पर आज प्रकाश भी न हो अन्धकार में यदि कहीं कुछ हो गया तो ?"

"तो क्या देवी शिष्या ?"

"अभी यह कहेंगे कि देवी शिष्या ऐसी मूसलाधार वर्षा और रात्रि के इस अन्धकार में भी आचार्य शिष्य को न रोक सकी। अभी की बात छोड़ो स्वयं देवी अंतरिका क्या कहेंगी ?"

आचार्य शिष्य बोला—"और यदि रह गया तो फिर यह सारी वैशाली जन मानस क्या कहेगी ?"

देवी शिष्या मुस्करा कर बोल उठी—"वैशाली की चिन्ता अब तुम करो यह व्यर्थ है।"

आचार्य शिष्य ने मुस्कराते हुए पूछा—"ना क्यों देवी शिष्या ?"

देवी शिष्या उत्तर में पूरी ही हँस पड़ी। फिर बोली—"अभी आपने ही तो कहा था कि वैशाली में केवल तन ही अनैतिक है और मन स्वयं पाप है।"

इस बार आचार्य शिष्य को भी कुछ हँसी आना चाहती थी परन्तु फिर भी प्रकट में न हँस सका। मन सम्भल हो बोला—"देवी शिष्या आप सचमुच बहुत सयानी हैं।"

देवी त्रिष्या बतिया को पुकार उठी।

जब वह आ उपस्थित हुई तो देवी त्रिष्या बोली—"बतिया, आचार्य शिष्य का इसी कक्ष में बिस्तर कर दो मैं भी यहीं भूमि पर सो रहूँगी।"

आचार्य शिष्य यह सुन स्तब्ध रह गया। बतिया को भी आश्चर्य हुए बिना न रहा वह बोल उठी—"क्यों देवी, आप भूमि पर ही क्यों सो रहेंगी? मधूलिका में केवल यही तो एक शय्या नहीं है?"

देवी त्रिष्या इसका कुछ उत्तर दे, इससे पूर्व ही आचार्य शिष्य बोल उठा—"बतिया यह सब कुछ रहने दो।" और फिर देवी त्रिष्या की ओर दृष्टि कर वह बोला— देवी त्रिष्या भला यह कैसे संभव है? मुझे अपने प्रासाद की ओर लौटना ही होगा।

देवी त्रिष्या पूछ उठी—"सो क्यों? यह आवश्यक तो नहीं या फिर आपको यहाँ सोने में कोई संकोच है?"

आचार्य शिष्य उसकी ओर ही देखता रह बोला—"हाँ देवी, संकोच भी है और ?'

देवी त्रिष्या बोल उठी— आत्मविश्वास भी नहीं—क्यों यही न आचार्य शिष्य? पर आज आपको यहीं सोना होगा। ऐसी रात्रि में मैं आपको इस प्रकार कदापि न जाने दूँगी। चाहे फिर आपको संकोच हो अथवा ।"

आचार्य शिष्य मन ही में बोल उठा—"देवी त्रिष्या संकोच तो इतना नहीं परन्तु कल प्रातः व्यर्थ ही सारी वैशाली में दोनों ही के नाम पर कलंक जो लग रहेगा अपने पर कलंक लगे सो तो मुझे उसका इतना ध्यान नहीं पर हाँ ।

देवी त्रिष्या एक उच्च ठहाका दे हँस पड़ी। फिर बोली—"केवल कलंक के भय से तो मैं आपको बाहर जाने नहीं दे सकती। हाँ अपने पर विश्वास न हो तो यह दूसरी बात है मुझे तो अपने पर विश्वास है, और विश्वास है इस बात पर कि आप आज यहाँ सारी रात्रि न सो पाने पर भी प्रातः अपने को स्वस्थ पा सकोगे।"

आचार्य शिष्य को देवी त्रिष्या की यह बात सचमुच बड़ी रहस्यपूर्ण लगी उसे आश्चर्य भी हुआ।

वह पूछने लगा—"और यदि मैं और अस्वस्थ हो गया तो?"

देवी त्रिष्या बोली—"इतना तुम मुझ पर विश्वास कर सकते हो या फिर विश्वास न करने की ही ठान ली है।"

देवी त्रिष्या की इस बात से क्या कुछ तात्पर्य हो सकता है आचार्य शिष्य कुछ भी समझने में असमर्थ रहा। किन्तु इसी मध्य एक प्रश्न सहसा उसके मस्तिष्क में आ टकराया। वह पूछ उठा—"देवी त्रिष्या क्या मैं एक बात पूछ सकता हूँ?"

देवी त्रिष्या ने उत्तर में न तो ना ही कहा और न हाँ ही। परन्तु आचार्य शिष्य ने उत्तर की विशेष प्रतीक्षा न कर पूछा—"क्यों देवी त्रिष्या, क्या मेरा श्रेष्ठी-पुत्र कलिंग पर संदेह उचित नहीं?"

देवी त्रिष्या इस बार भी उत्तर में मौन रही। उसे मौन रहे देख आचार्य शिष्य

कह उठा— देवी शिप्या ऐसा प्रश्न मैं किसी से भी पूछूं यह मेरी मात्र संकीर्णता है कदाचित् अधिकार भी नहीं पर फिर भी मैं न जाने क्यों तुम से इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर पाने के लिए उत्सुक हूं। इस प्रश्न के निश्चय ही दो उत्तर हैं उनमें से कोई भी एक सुनकर मैं संतुष्ट हो सकूंगा कम से कम इतना आश्वासन तो मैं दे ही सकता हूं।

देवी शिप्या तत्परता से बोली—"नहीं आचार्य शिष्य उसका एक तीसरा उत्तर भी तो हो सकता है।"

यह कह देवी शिप्या के नैन मुस्करा उठे।

आचार्य शिष्य ने उत्सुकता से पूछा— 'वो कौन सा देवी शिप्या?"

देवी शिप्या बोली—"पर, मैं इस प्रश्न का उत्तर दूं ही यह आवश्यक तो नहीं।'

आचार्य शिष्य बोला— 'तुम्हारे लिए न हो किन्तु मेरे लिए तो हो ही सकता है। अच्छा चलो फिर यही बताओ कि यदि श्रेष्ठीपुत्र कपिल ने मेरे सम्बन्ध में इसी प्रकार का प्रश्न किया होता तो क्या तुम उसका भी ऐसा ही उत्तर देती?"

देवी शिप्या बोली—"आचार्य शिष्य श्रेष्ठीपुत्र कपिल हमारे मध्य की बातों में आए, यह कोई अभिप्राय तो नहीं। आपके अन्दर तो इस समय व्यर्थ ही मैं सुरक्षा प्रधान की स्वाभाविक जिज्ञासा प्रबल हो उठी प्रतीत होती है।"

यह कह देवी शिप्या ने आचार्य शिष्य की ओर देखा। आचार्य शिष्य उस की ओर देखते हुए कहने लगा—"देवी न जाने क्यों मैं आश्वस्त हुआ चाहता हूं।"

देवी शिप्या उत्तर में जैसे सगर्व मुस्करा उठी। पर आचार्य शिष्य इस बार कुछ निश्चय कर कक्ष से बाहर निकल लिया। देवी शिप्या ने भी उसे इस बार नहीं टोका हां कुछ कहा अवश्य। वह बोली— 'आचार्य शिष्य मैं भी कुछ आश्वस्त हुआ चाहती हूं।"

आचार्य शिष्य बोला—"क्यों क्या उतना मेरा अधिकार है?"

देवी शिप्या बोली—"अधिकार ही नहीं आचार्य शिष्य कर्तव्य भी है।"

आचार्य शिष्य कहने लगा—"देवी शिप्या मैं इस समय अवश्य ही दुविधा में हूं यह तुमसे क्या छिपाना फिर भी यदि मैं तुम्हें आश्वस्त कर सका तो इसे मैं अपना सौभाग्य समझूंगा।"

देवी शिप्या बोली—'आचार्य शिष्य केवल आपका ही नहीं वैशाली का भी। सुरक्षा प्रधान का दायित्व अत्यन्त महत्वपूर्ण है उसके प्रति यह प्रमाद किसी प्रकार भी उचित नहीं। आचार्य शिष्य आप से मेरा यह अनुरोध गण-कल्याणी के नाते है।"

आचार्य शिष्य फिर चलते-चलते पूछ उठा—"और देवी शिप्या के नाते क्या कोई अनुरोध नहीं?"

देवी शिप्या अन्तर में उल्लसित हो बोली—"चलो यह आपने स्वयं पूछ लिया यह अच्छा ही हुआ तो फिर मुझे मंजरिका भी आपसे कुछ अपेक्षा करती है हमारा क्या जब तक यह गणराज्य अजर-अमर है तब तक गण-कल्याणी भी जीवित है और उसका सुरक्षा प्रधान भी फिर उसकी चिन्ता क्यों?"

अन्त में आचार्य शिष्य जैसे न चाहकर भी आर्त्त मन से कह उठा—'देवी शिष्या यदि मेरे मन में कोई भ्रम था तो वह आज यहाँ आकर और बढ़ा ही कम नहीं हुआ क्या यह एक विडम्बना नहीं ?"

और देवी शिष्या इसके उत्तर में न 'हाँ' ही कह सकी और न 'ना' ही कह सकी।





तैंतीस

प्रात जब आचार्य शिष्य की निद्रा खुली तो उसे लगा मन का कोई भारी बोझ उतर चुका है, परन्तु जैसे अंग-प्रत्यंग की क्लान्ति अभी भी अवशेष थी। अतः निद्रा खुलने के पश्चात् भी वह नेत्र बन्द किये ही अलसाया-सा लेटा रहा। पैरों को लम्बे पसार, करवट ले वह सोचने लगा—"अरे ओ अभागे, तूने तो कल भिक्षु संघ में प्रविष्ट होने का निश्चय किया था पर जैसे अभी वह शुभ वेला आई ही नहीं। चलो जब आयेगी तब ही सही। यह भी अच्छा ही हुआ कि मैंने अपने इस निश्चय की बात किसी से नहीं कही पर शायद किसी से कह बैठा था, हाँ अनिरुद्ध ही को तो संकेत किया था, और यदि कहीं उसने यह बात किसी और से कह दी होगी तो? फिर तो मुझे सचमुच बड़ा लज्जित होना पड़ेगा।"

बाहर अब भी वर्षा हो रही थी। रात्रि भर ही उसका अनवरत क्रम अटियान रहा था और उसकी इस रिमझिम में जब वह सम्यावस्थ हुआ था तो उसने जैसे किसी अनिर्दिष्ट-श्रम के पश्चात् की-सी विश्रान्ति का अनुभव किया था। कक्ष में पूर्णत: एकांत तो था ही अतः एक बारगी आया विश्राम का भाव अब और प्रगाढ़ हो उठा तो क्लान्त-मस्तिष्क भी नये विचारों के साथ खेल उठा और न जाने कब तक खेलता रहा कि उसे निद्रा आ गई और जब वह आई तो जैसे वह सर्वथा निर्द्वन्द्व हो कर ही आई। और, वह निर्द्वन्द्वता उसके मुख पर अभी भी विद्यमान थी। संभवतः इसी कारण से 'यदि अनिरुद्ध ने किसी और से कह दिया होगा' वाली बात पर उसने अधिक सोचना व्यर्थ समझा और फिर अपने नवोदित विचारों को एक फुरफुरी-सी दे वह सोचने लगा—'तथागत करें, देवी रत्नकमल के अस्वस्थ होने की बात झूठ निकल आए, फिर तो मैं मंजरिका को सचमुच यह दिखाऊँ, वह दिखाऊँ कि वह भी क्या याद रखेगी और भूल जाएगी देवी शिप्रा की अट्टालिका पर जाना भी। पर इस समय वह देवी शिप्रा की कोई भी बात नहीं सोचना चाहता था अतः उसका स्पर्श करते प्रसंग से तनिक हटने का प्रयास कर वह सोचने लगा— मंजरिका ने देवी शिप्रा से कल न जाने क्या कुछ कहा होगा क्या कुछ क्या उसने कुछ कहा होगा और कदाचित् वह आई हो कि   परन्तु देवी शिप्रा ने भी कल रात्रि अस्वीकार ही कर दिया। कहने लगी—आज रात्रि को यहीं सो रहो भला इस मूसलाधार वर्षा और रात्रि के अन्धकार में मैं तुम्हें कैसे जाने दूँगी यदि जाने दिया तो भला मंजरिका क्या कहेगी? मंजरिका जब यहाँ थी ही नहीं तो फिर क्या कहती व्यर्थ ही मैं हाँ चला आया इससे तो वहीं सो रहता तो अच्छा था पर सोता तो क्या देवी शिप्रा

से ही सारी रात्रि कोई न कोई वार्ता करता रहता भला क्या वार्ता करता रहता ? सचमुच वह बड़ी चतुर है, सजग भी पर उसका मुख देखो तो कितनी मनोज दीखती है ।' और इसी के साथ विचार प्रवाह ने एक विराम-सा लिया फिर भी वह नेत्र मूंदे ही पड़ा रहा जैसे वे सूझे कि न जाने क्या कुछ निकल रहेगा—कि सहसा उसे कुछ स्मरण हो आया देवी चित्रा ने कहा था—'और मुझे यही शोभा देता है कि मैं नित्य प्रति ही संध्या समाज में नृत्य के लिए प्रस्तुत होऊं । और मुझे ? जैसे अपने को धिक्कार कर वह तत्परता से शय्या पर उठ बैठा और सम्मुख पीठिका पर न जाने कब से प्रतीक्षा में बैठा अनिरुद्ध भी उठ खड़ा हो गया । नत मस्तक हो बोला—'आर्य मेरा अभिवादन स्वीकार करें ।"

परन्तु आचार्य शिष्य ने उसके अभिवादन का कोई उत्तर न दे उत्सुकता से पूछा—"क्यों मित्र अनिरुद्ध ऐसे तुम यहाँ कब से बैठे थे ?"

"प्रात ही से आर्य ।"

'प्रात ही से ? और भला अब क्या समय होगा ?"

"यही मध्याह्न में कोई आधा प्रहर शेष रहा होगा आर्य ।"

आर्य आधा प्रहर ? यह तो आश्चर्य है अनिरुद्ध ' पर, तुमने मुझे जगा क्यों नहीं लिया ? अच्छा सब सकुशल तो है ?"

अनिरुद्ध उत्तर में मौन रहा केवल मौन ही नहीं रहा वरन् मस्तक भी नत कर लिया । उसके मुख पर नैराश्य भाव भी आ गया । यह देख आचार्य शिष्य कुछ व्यग्र हो उठा पूछने लगा—"क्यों आयुष्मान्, क्या कोई गम्भीर बात हो गई ? वैशाली कुशल से तो है, या फिर उस पर कोई और आघात हुआ है ?"

अनिरुद्ध ने नत मस्तक रहे ही बोझिल और धीमे स्वर में कहा—"आर्य कुमार सुयश अब इस संसार में नहीं रहा ।"

"इस संसार में नहीं रहा ? क्या हो गया था उसे ?" आचार्य ने साश्चर्य पूछा ।

अनिरुद्ध ने पूर्ववत नत मस्तक रहे ही बताया—'आर्य कल रात्रि में उसकी किसी ने हत्या कर दी ।"

आचार्य शिष्य पर जैसे वज्र प्रहार हुआ । वह शय्या पर ही उठ खड़ा हो पूछने लगा—'हत्या ! सुयश की ? किसने की ? और तुम्हें पता कब चला ?"

पर अनिरुद्ध इनमें से एक प्रश्न का भी उत्तर न दे मानों कोई दूसरा ही संवाद सुनाने को व्याकुल हो उठा । बोला—"आर्य कुमार सुयश की हत्या का संवाद सुन सामन्त कार्तिकेय भी !"

'सामन्त कार्तिकेय भी ?" आचार्य शिष्य शय्या पर ही निर्जर हुआ-सा रह गया फिर बोला—"यह तो सचमुच अनर्थ हो गया अनिरुद्ध ।

फिर शय्या से नीचे कूद अनिरुद्ध के कन्धे को झिंझोड़ते हुए पूछने लगा—"और आयुष्मान सुयश की हत्या किसने की इसका भी कुछ पता चला ?"

किन्तु अनिरुद्ध को जैसे अभी कुछ और कहना शेष रह गया था । परन्तु वह कुछ कहे उससे पूर्व ही उसके नैनों से अश्रु-धार बह निकली ।

आचार्य शिष्य यह देख स्तब्ध रह गया अनिरुद्ध के कन्धे को वह ने भी अधिक

झिझोड़ते हुए पूछने लगा— क्यों आयुष्मान्, क्या कोई दुःखद समाचार अभी और भी शेष रह गया है ?

अनिरुद्ध ने उत्तरीय के पल्ले से नेत्रों को पोंछने का प्रयास किया साथ ही अपना शीर्ष झुका बोला— "आर्य आपने आयुष्मती पुष्पिता ।"

उसका कण्ठ मध्य ही में अवरुद्ध हो उठा। तो भी प्रयास कर वह बोला— "आर्य आप तो जानते ही हैं पिता और माता दोनों ही के दिवंगत हो जाने पर मैंने कितने कष्टों से उसका लालन-पालन किया था और आज ।"

उसकी बात फिर मध्य ही में रुक रही। जैसे जो कुछ वह कहना चाहता था कहने योग्य नहीं था। पर आचार्य शिष्य जैसे उसे समझ चुका था। वह दीर्घ निश्वास छोड़ता हुआ बोला—"आयुष्मान्, वैशाली के उज्ज्वल ललाट पर यह तो सचमुच भारी कलंक है, और सबसे अधिक हमारे मुख पर, कि हम अपने दायित्व का उचित पालन नहीं कर सके।'

तत्पश्चात् अनिरुद्ध की पीठ को थपथपा वह बोला—"अनिरुद्ध वैशालिकों ने सदा ही सभी की हानि को अपनी हानि समझा है आयुष्मती पुष्पिता के साथ जो कुछ हुआ है, वह तुम्हारा कोई निजी अपमान नहीं वरन् समूची वैशाली का है और हम सभी के लिए कर्तव्य का आह्वान ।"

आचार्य शिष्य अभी कुछ और कहना चाहता था कि इसी मध्य अनिरुद्ध फफक उठा बोला— "किन्तु आर्य ऐसा तो वैशाली में कभी नहीं हुआ यह तो गणतंत्र की पुनीत परम्परा के प्रतिकूल आचरण हुआ।"

इस पर आचार्य शिष्य अनिरुद्ध से पूछना चाहता था कि पुष्पिता जीवित भी है या नहीं अथवा आवास में ही नहीं है परन्तु वह इनमें से कोई भी प्रश्न न पूछ सका। क्यों ? क्योंकि इसी के साथ उसके अन्तर का कोई सन्देह भाव प्रबल हो उठा था। पीठिका पर बैठते हुए उसके मुख से जैसे स्वतः एक प्रश्न निकल गया। वह पूछने लगा—"अच्छा आयुष्मान यह तो बताओ कि सामन्त कार्तिकेय ने जब यह समाचार सुना तो उन्होंने कुछ कहा था ? और सुमन्त की हत्या भला कहाँ हुई ?'

अनिरुद्ध बोला—"आर्य सामन्त कार्तिकेय ने जब समाचार सुना तो उनके मुख से केवल यही निकला—'हा विश्वासघात ! परन्तु कैसा और किसने किया और किसके साथ यह सब कुछ कहने से पूर्व ही वह अचेत हो गए, और फिर—।"

यह सुन आचार्य शिष्य के अन्तर में बैठी किसी दृढ़ धारणा को जैसे कुछ बल सम्बल मिल गया। पीठिका से उठ वह बोला—"सामन्त कार्तिकेय को यह सब कुछ बताने की आवश्यकता भी नहीं थी अनिरुद्ध यह विश्वासघात तो वैशाली के साथ हुआ है—वैशाली के साथ और जानते हो किसने किया है ?

अनिरुद्ध उत्सुकता से आचार्य शिष्य की ओर देख उठा। परन्तु आचार्य शिष्य ने अपने ही प्रश्न का कोई उत्तर न दे और आगे पूछा—"और इस समय कुमार कौठिल्य कहाँ है ? तब कहाँ था ? और विनिश्चय अमात्य को यह समाचार कब मिला ? और फिर क्या वह स्वयं भी घटना-स्थल पर पहुँचे ?"

अनिरुद्ध इतने प्रश्नों का एक साथ उत्तर भला कैसे दे पाता। परन्तु आचार्य

शिष्य ने भी कदाचित् ये सभी प्रश्न तत्काल उत्तर पाने की दृष्टि से किए भी नहीं थे। और संभव है कि उसने अपने ही पहले वाले किसी प्रश्न का अप्रत्यक्ष में अपने इन प्रश्नों द्वारा उत्तर देने का प्रयत्न किया था। अनिरुद्ध ने भी जैसे आचार्य शिष्य के अन्तिम प्रश्न को महत्त्वपूर्ण समझा अतः उसी का उत्तर देते हुए बोला— आर्य, आचार्य को यह दुखद संवाद सुनाने स्वयं मैं गया था परन्तु उन्होंने उसमें जैसे कोई रुचि ही नहीं दिखाई। साथ ही बोले—'सुरक्षा प्रधान निष्क्रिय हो उठा है, और नगर व्यवस्था में मेरे साथ कोई सहयोग नहीं कर रहा अतः अब मेरे लिए इस पद पर बने रहना और भी असम्भव हो गया है।

विनिश्चय अमात्य ने एक प्रकार से एक प्रकार से क्या वरन् स्पष्ट शब्दों में ही आचार्य शिष्य पर दायित्व हीनता साथ ही अनुशासन भंग का आरोप लगाया था परन्तु उसे सुनकर भी उसने अपने को न तो अपमानित हुआ अनुभव किया और न वह उत्तेजित ही हुआ। यह देख यदि अनिरुद्ध को कुछ आश्चर्य हो रहता तो स्वाभाविक ही था। वैशाली में किसी पर, और वह भी सुरक्षा प्रधान सदृश उच्च पदाधिकारी पर, अनुशासन हीनता का आरोप लगाया जाए और वह भी उसके एक उच्च पदाधिकारी द्वारा यह कोई कम महत्त्वपूर्ण बात नहीं थी। किन्तु उसे सुनकर भी आचार्य शिष्य इस समय प्रकट में सर्वथा अप्रभावित ही रहा। अनिरुद्ध को यह अवश्य ही रहस्यपूर्ण लगा पर वह अपने इस मनोभाव को प्रकट नहीं कर सका। क्यों? क्यों कि आचार्य शिष्य स्वयं उसका एक अधिकारी था अतः यदि उसके मन में इस समय कोई जिज्ञासा उठी भी तो वह कुछ भी पूछने में असमर्थ रहा। साथ ही वह उल्टे जैसे सोचने लगा—'यदि विनिश्चय अमात्य ने सुरक्षा प्रधान के सम्बन्ध में यह बात कही भी थी तो मुझे उन से यह सब कुछ नहीं कहना चाहिए था विनिश्चय अमात्य चाहते तो स्वयं कह देते या फिर उन्हें सुरक्षा प्रधान के विरुद्ध यह सब कुछ गणाध्यक्ष के सम्मुख कहना चाहिए था। आचार्य शिष्य उसकी ओर ध्यान से देख रहा था और सम्भवतः वह उसके इस मनोभाव को ताड़ भी गया था तो भी उसने इस प्रसंग में कुछ कहा नहीं। कुछ सोचते हुए-से बोला— 'आयुष्मान्, विनिश्चय अमात्य ने तो यह फिर नगरी के शान्त सरोवर सदृश जीवन में पाषाण खण्ड फेंका है।"

अनिरुद्ध को यह प्रत्याक्षेप के समान लगा और 'फिर' शब्द को सुनकर तो वह जैसे चौंक ही उठा। वास्तव में उसे यह सब कुछ रहस्यपूर्ण लगा और साथ ही उसे अनुभव हुआ कि निश्चय ही इस समय दोनों पदाधिकारियों के मध्य कहीं किसी बात को लेकर गतिरोध है। वह जैसे सोचने लगा—'यह तो वैशाली में निश्चय ही किसी अप्रत्याशित घटना का सूत्रपात होने को है अतः वह इस बार अपनी जिज्ञासा पर जैसे नियंत्रण रखने में असमर्थ रहा वह पूछ उठा—"सो कैसे आर्य?"

किन्तु आचार्य शिष्य की समस्त चेतना इस समय अंतर के ही किसी मनोभाव को देखने में व्यस्त प्रतीत हुई। अतः अनिरुद्ध का यह प्रश्न उसके कानों से टकराकर भी जैसे अनसुना रह गया। आचार्य शिष्य सहसा पूछ उठा—"क्यों आयुष्मान श्रेष्ठी पुत्र कप्पिन क्या इस समय वैशाली में ही है?"

कुछ भी हो अनिरुद्ध भी एक सुरक्षा अधिकारी ही था अतः आचार्य शिष्य

के इस अप्रासंगिक प्रश्न पर वह मन ही मन कुछ झल्ला उठा किन्तु प्रकट में सर्वथा संयत रह उसने उत्तर में कहा—"नहीं भाग्य कल प्रात ही अपने सार्थ को ले उसने कौशाम्बी की ओर प्रस्थान किया है।"

यह सुन आचार्य शिष्य के मुख पर स्पष्ट ही उदासी उतर आई। किन्तु साथ ही अपने से बोला—ध्यानवर, यह उदासी का समय नहीं। फिर अनिरुद्ध की ओर दृष्टि कर पूछ उठा—"श्रेष्ठीपुत्र कम्पिल के सार्थ में क्या पथ ही अश्व है अथवा कुछ अन्य वाहन भी?"

अनिरुद्ध इस प्रश्न को कुछ समझ भी और कुछ नहीं भी सहज ढंग में बोला—"आर्य वाहन भी है।

इस उत्तर पर आचार्य शिष्य के उदास मुख पर कुछ संतोष का-सा भाव उभर आया। तत्परता से बोला—"तो फिर आयुष्मान वह अभी बहुत दूर नहीं पहुँचा होगा तुम अभी तुरन्त पाँच अश्वारोही ऐसे अश्वारोही जो तीव्र गति से जा सकें और साथ ही वे कुशल योद्धा भी हों प्रस्तुत करो और तब तक मैं ।"

आचार्य शिष्य तनिक रुक फिर पूर्ववत् तत्परता ही के साथ बोला—"और देखो अनिरुद्ध मेरे इस आदेश का रहस्य किसी पर भी प्रकट न हो यहाँ तक कि स्वयं महाध्यक्ष पर भी उचित समय आने पर मैं स्वयं ही उन्हें बता दूँगा।

अनिरुद्ध मस्तक नत कर बोला—"आर्य आश्वस्त रहें परन्तु आर्य यह तो बताएँ कि श्रेष्ठीपुत्र कम्पिल को क्या संदेश देना है?"

आचार्य शिष्य तनिक सोच बोला—"मौखिक कुछ नहीं उसके पास एक गुप्त पत्र भेजना है वैशाली को उसकी इस समय अकस्मात् आवश्यकता जो पड़ गई है।"

श्रेष्ठीपुत्र कम्पिल द्वारा देवी शिप्रा को मुक्ताहार भेंट किये जाने की बात अनिरुद्ध को विदित थी परन्तु उसे यह कुछ भी विशेष प्रतीत नहीं हुई, क्योंकि यह उसने संध्या समाज में सार्वजनिक रूप से भेंट किया था। और उसके साथ उसने जो कुछ कहा था उसमें भी उसने कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं समझा बस यही सोचकर रह गया कि देश देशान्तर में अर्जित अपार धन राशि के वैभव को वैशालिकों के सम्मुख प्रदर्शित करने का यह उसका एक अभिनय-मात्र था। किन्तु आचार्य शिष्य पर भी उसकी कुछ प्रतिक्रिया हुई है यह बात उसके ध्यान में नहीं आई और आती भी कैसे? इतना तो वह समझता था कि आचार्य शिष्य देवी शिप्रा के नृत्य कौशल से प्रभावित हैं पर उसके भी आगे कोई रहस्य हो सकता है यह विचार कभी उसके मस्तिष्क में आया ही नहीं। अत श्रेष्ठीपुत्र कम्पिल को आचार्य शिष्य द्वारा गुप्त पत्र भेजे जाने का निर्णय अत्यन्त रहस्यपूर्ण लगा। वह आचार्य शिष्य के आदेश का अविलम्ब पालन करने की दृष्टि से कुछ सोचता हुआ कक्ष से बाहर निकल ही रहा था कि आचार्य शिष्य उसे टोक पूछ उठा—"और आयुष्मान् क्या कुमार सुव्रत की हत्या किस स्थान पर की गई? उसी के आवास में या कहीं बाहर?"

अनिरुद्ध उत्तर में बोला—"आर्य कुमार सुव्रत उस समय मध्य मण्डल की एक मधुशाला से बाहर निकल ही रहा था कि किसी ने उस पर पीछे से घातक खड्ग प्रहार किया और वह ।

सुक्त और मधुशाला आचार्य शिष्य को कुछ आश्चर्य हुआ बोला— "वैशाली में मधुशालाएं तो प्रौढ़ों के लिए हैं आयुष्मान और फिर सुक्त तो मद्यपान से वैसे भी घृणा करता था।"

अनिरुद्ध कहने लगा— "आर्य तथागत के महानिर्वाण पर जब अनेक वैशालिकों ने मद्यपान न करने की प्रतिज्ञा की थी उसके पश्चात् से मधुशालाओं में तरुणों का ही बाहुल्य हो गया है क्योंकि वहाँ कोई प्रौढ़ तो आता नहीं जो उनको रोके-टोके अत वहाँ उनका निर्द्वंद्व प्रवेश है फिर गण शासन की ओर से इस सम्बन्ध में कोई ऐसी निषेधाज्ञा भी नहीं कि गण पुरुष उनको साधिकार रोक सकें।

आचार्य शिष्य बोला— "यह तो निस्सन्देह ही वैशालिक कुमारों का ह्रास है पर हाँ फिर आक्रमणकारी का क्या हुआ ?"

"वह रात्रि के अन्धकार में भाग खड़ा हुआ आर्य।"

"तो फिर क्या कुमार सुक्त के साथ कोई नहीं था ?"

"था आर्य उसके साथ कुमार जयराज था परन्तु उसका कहना है कि वह आक्रमणकारी को पहचानने में सर्वथा असमर्थ रहा।

"तो वह आक्रमणकारी क्या कोई वैदेशिक था ? और, भला उस समय कौशिरय कहाँ था ?"

किन्तु इस प्रश्न के पश्चात् आचार्य शिष्य मानों कुछ सोचने लगा। तनिक रुक फिर बोला—"अच्छा आयुष्मान इस समय तो अश्वारोही सन्देशवाहकों की व्यवस्था करो, ये सभी प्रश्न बड़े महत्वपूर्ण हैं अत उसके पश्चात् ही इनके सम्बन्ध में कुछ सोचना सम्भव हो सकेगा।

तत्पश्चात् अनिरुद्ध ने तो अभिवादन कर प्रस्थान किया और आचार्य शिष्य पत्र लिखने बैठ गया।

वर्षा जैसे अब तक रुक चुकी थी।

× × ×

वर्षा को रुके देख देवी आम्रपाली अपने आसन से उठ खड़ी हुई, और उसे उठी देख भिक्षु महाली बोल उठा— "देवी यह तो आज ऐसे ही मध्याह्न हो गया दीखता है जैसे श्रमणों को आज अन्न से पूर्व ही भिक्षाटन के लिए नगर की ओर निकलना होगा।"

इसके उत्तर में देवी आम्रपाली कहा चाहती थी— आर्य जब तुम्हें अभी तक नगर से इतना मोह बना हुआ है, तो फिर भिक्षु संघ में प्रविष्ट ही क्यों हुए, न तुम यहाँ आते और न । परन्तु उसने यह कहा नहीं कहा भी नहीं और आगे की बात सोचने से भी अपने को जैसे बलात् रोक लिया। भिक्षु महाली जैसे कुछ सोच बोल उठा—"क्यों देवी आयुष्मान अभय को देवी भिक्षा के पास अनुमति के लिए भेज अच्छा ही किया न अन्यथा वह भी आज यहाँ आ रहता जैसे हो जैसे ।"

भिक्षु महाली क्या कहा चाहता था देवी आम्रपाली यह भली भाँति समझ गई थी और सम्भवत कहा चाहती थी कि फिर किसी दिन देवी भिक्षा भी भिक्षु संघ में सम्मिलित हो रहती नहीं न ? परन्तु फिर उसने यह न कह कुछ और ही कहा। बोली

—"आर्य गणसंथागार भवन के जीर्णोद्धार के समय आपका जो उत्साह देखने में आया था पता नहीं क्यों, वह अब क्यों नहीं दीख पा रहा अन्यथा मैंने तो यही सोचा था कि वैशाली में स्तूप निर्माण का समाचार सुन आप कहीं भी क्यों न हों यहाँ अवश्य दौड़े आएँगे सो वह साध तो पूरी हो गई, पर आर्य से जो उत्साह अपेक्षित था उसे न पा मुझे कुछ खिन्नता ही हुई है।"

भिक्षु महाली दत्तचित्त हो यह सब कुछ सुनता रहा साथ ही सोचता भी रहा कि देवी आम्रपाली जो कुछ कह रही है, सत्य ही है अतः वह मौन रहा। उसे मौन पड़े देख देवी आम्रपाली स्तूप-स्थल की ओर प्रस्थान कर उठी। भिक्षु महाली कुछ क्षणों तक वहीं बैठा सोचता रहा कि भिक्षाटन के लिए प्रस्थान किया जाए, अथवा देवी आम्रपाली के साथ मैं भी स्तूप-स्थल की ओर चलूँ। सम्भवतः वह देवी आम्रपाली को पुकार कह उठा—"अच्छा देवी ठहरो मैं भी तुम्हारे साथ ही चलता हूँ।" फिर उसके निकट पहुँच वह बोला—"अब तथागत की कृपा से एक बार फिर यह संयोग मिल हो गया तो देवी को खिन्न कर क्या मुझे यह शोभा देगा ?"

किन्तु देवी आम्रपाली कुछ न बोली वह मौन ही रही।

कूटागारशाला से स्तूप-स्थल पर्याप्त अन्तर पर था तो भी दोनों की चारिका की गति धीमी थी क्योंकि तथागत ने धीमी चारिका की ही उपदेशना की थी और कहा था कि तीव्र गति से उदर व्याधियों की तो आशंका रहती ही है, विचारों का प्रवाह भी संयत नहीं रहता। अतः देवी आम्रपाली की चारिका की गति तथागत की उपदेशनानुसार इस समय भी संयत थी मस्तिष्क में उठते विचार भी हृदय में उठते भाव भी—वैसे ही संयत थे जैसे कभी उसकी काम वासना संयत थी और इससे पूर्व असंयम भी। महाली को तब उपसम्पदा लिये कोई एक वर्ष ही बीता होगा परन्तु इस अल्पावधि में भी वह वैशाली के आबाल-वृद्ध नर नारियों का प्राण बन चुका था। क्यों? क्योंकि उसने बड़ी-बड़ी ईंटें पथवा फिर उससे गणसंथागार के विशाल भवन का जिस प्रकार से पुनर्निर्माण कराया था उससे संथागार का तो स्वरूप भव्य हो ही उठा था साथ ही स्थापत्य-कला के क्षेत्र में भी उसकी दूर दिगंत तक ख्याति फैल चुकी थी और उधर उस समय कुमारी आम्रपाली की । जैसे भिक्षुणी देवी आम्रपाली इस समय अपनी नहीं किसी और की बात सोच रही थी और यदि अपनी ही बात सोच रही थी तो अपने किसी और जीवन की उसी भाँति जैसे कि तथागत बहुधा बोधिसत्व रूप में गृहस्थ पूर्व के जीवन और जन्मों की घटनाओं पर सोचा करते थे। अपनी चारिका की गति और भी धीमी कर देवी आम्रपाली संयत कण्ठ स्वर में बोली—"भन्ते एक बात कहूँ।"

भिक्षु महाली भी पूर्णतः संयत था उसका कण्ठ स्वर भी बोला—"अवश्य कहो देवी।"

देवी आम्रपाली कहने लगी—"भन्ते गौतम जब बुद्ध नहीं थे और वह कुमार सिद्धार्थ ही थे तो उनसे देवदत्त भारी प्रतिद्वंद्विता मानता था और ईर्ष्या भी करता था भिक्षु संघ में आने और फिर शास्ता का एक अग्रणी शिष्य बन जाने के पश्चात् भी वह अपने अन्तर के इस विकार पर विजय नहीं पा सका यह तो सभी को विदित

है और यह भी कि उसका क्या परिणाम निकला ?

महाली सर्वथा सहज भाव से बोला—"हाँ देवी जो कुछ तुम कह रही हो सत्य है, अतः ध्यान देने योग्य भी।"

तब देवी आम्रपाली बोली—"सभी विकारों का स्वभाव एक-सा है इसी से क्या एक बात पूछूँ ?"

महाली भी पूर्ववत सहज स्वभाव बोला—"हाँ देवी अवश्य पूछो।

देवी आम्रपाली पूछने लगी—"आर्य क्या सामन्त मंजदेव की प्रतियोग की विजय से आपने यही समझ लिया था कि आम्रपाली भी विजित हो चुकी है ?

भिक्षु महाली सर्वथा अविचलित रह उत्तर में बोला—"ऐसा तो नहीं सोचा था।"

'तो फिर उसके पश्चात् कभी भी अट्टालिका पर क्यों नहीं आए, क्या आपने उस समय यही समझ लिया था कि महानाम कन्या गण नर्तकी की अट्टालिका में जाते ही मन भी बदल चुकी है ?"

"नहीं देवी ऐसा तो नहीं समझा था पर हाँ वहाँ जा भी नहीं सका।"

भिक्षु महाली का कण्ठ स्वर कुछ भारी हो आया। आम्रपाली ने पूछा—"क्यों क्या आम्रपाली से घृणा हो गई थी, या उससे संकोच होता था या फिर सामन्त मंजदेव का भय था ?"

भिक्षु महाली बोला—"देवी इन तीनों में से एक भी कारण नहीं।"

देवी आम्रपाली कुछ सोच फिर बोली—'तो फिर हताश हो गए होंगे ?"

भिक्षु महाली उत्तर में मौन रहा, उसी भाँति जैसे तथागत स्वीकृति प्रदान करते समय रहा करते थे। देवी आम्रपाली फिर बोली—"हताश हुए, इसीलिए न कि पुरुष का स्वाभाविक दंभ प्रबल हो उठा था—अर्थात् नारी पर एकाधिकार का और आम्रपाली अपनी सुन्दरता के कारण उस परिधि से बाहर फेंक दी गई थी।"

भिक्षु महाली इस बार भी मौन रहा। आम्रपाली ही फिर कह उठी—"और राजा बिम्बसार के साथ हुए मेरे गुप्त विवाह का रहस्य जब आप पर प्रकट हुआ होगा तब तो आप और भी हताश हुए होंगे ? कदाचित् घृणा भी करने लगे हों और इसी से फिर आप कभी वैशाली भी नहीं आए।"

भिक्षु महाली इस बार भी मौन रहा चाहता था किन्तु उसके मुख से हठात् निकल गया—"देवी यह स्वाभाविक था।"

देवी आम्रपाली फिर बोली—"और जब मैं सुन्दर भिक्षु संघ में सम्मिलित हो गई तो वहाँ तथागत के दर्शन को भी कभी नहीं आए।"

भिक्षु महाली ने कहा—"देवी आप यह भी सत्य ही कहती है।"

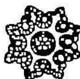
तब देवी आम्रपाली कह उठी—"तो सुनो राजगृह जाकर भी मुझे बिम्बसार से मिलने की कोई इच्छा नहीं हुई इसलिए नहीं कि मैं भिक्षु संघ में थी वरन् सम्भवतः इसलिए कि मैं उसके साथ विवाह तक की बात भूल चुकी थी।"

यह सुन महाली को जैसे भारी आश्चर्य हुआ पूछने लगा—"क्या विवाह की बात भी कभी भूली जा सकती है, देवी ?"

देवी आम्रपाली उत्तर में बोली— 'हां आर्य यदि तुमने भी यह तथ्य स्वीकार न किया होता तो कल आचार्य शिष्य से कभी यह न कहते कि जाओ पहले देवी शिष्या से अनुमति ले आओ आचार्य शिष्य भी तो विवाहित है अतः उसे तो मंजरिका से अनुमति लेनी थी।

भिक्षु महाकाली सोचने लगा—जैसे वह वास्तव में ही कोई भूल कर बैठा। परन्तु इसी मध्य देवी आम्रपाली कह उठी— आर्य तुमने यह ठीक ही किया। और देवी शिष्या तो नारी है न आचार्य शिष्य भले ही न जाने और संभव है वह अभी भी आश्वस्त न हो परन्तु मैंने तो प्रारम्भ में ही जान लिया था कि देवी शिष्या उसकी ओर आकृष्ट हुई है, परन्तु आचार्य शिष्य और मंजरिका के विवाह पर वह प्रसन्न ही हुई होगी दुखी नहीं क्यों क्या उसे भी एकाधिकार की कामना नहीं हो सकती थी? किन्तु उधर आचार्य शिष्य को देखो! आर्य कहानी वही रहती है केवल पात्र बदल जाते हैं, सम्भवतः कुछ स्वरूप भी परन्तु आधार में वही मानव स्वभाव होता है जैसे ही जैसे इस स्तूप की आधार शिला में देवी शिष्या की स्वर्ण मंजूषा और मंजूषा में तथागत के प्रदीप प्रदीप पर फिर स्मृति का सृजन सृजन ही जीवन है और स्मृति उसका आधार सौन्दर्य का सृजन साधना है और जो विगत है उसकी विस्मृति ही वैराग्य आर्य मैंने तो जीवन में बस यही सीखा है।"

भिक्षु महाकाली भी कदाचित् इसके उत्तर में कुछ कहने को उद्यत हुआ परन्तु तब तक स्तूप-स्थल आ चुका था और इस समय वहाँ एक नहीं अनेक असंख्य वैसे भिक्षों की भारी भीड़ खड़ी जैसे उन्हीं के आगमन और दर्शन पाने की प्रतीक्षा कर रही थी।





चौंतीस

आचार्य शिष्य पत्र लिखकर उठा ही था कि तभी अनिरुद्ध आ पहुँचा। नत मस्तक हो उसने निवेदन किया—"आर्य अश्वारोही संदेशवाहक प्रस्तुत है।"

आचार्य शिष्य को इस पर कुछ आश्चर्य हुआ किन्तु साथ ही मुख पर प्रसन्नता भी छा गई। अनिरुद्ध पर दृष्टि केन्द्रित कर वह बोला—"आयुष्मान् तुम्हारी इस कार्य तत्परता पर मैं जितना भी गर्व करूँ थोड़ा ही है अच्छा पत्र पढ़ोगे ?

अनिरुद्ध कुछ सोच बोला—श्रीमन् पत्र पढ़ने से उसकी गोपनीयता नष्ट हो जाएगी फिर अनावश्यक विलम्ब भी होगा।"

आचार्य शिष्य ने इस बार तनिक गम्भीर दृष्टि से अनिरुद्ध की ओर देखते हुए कहा—"अच्छा तो फिर नायक को यहीं कक्ष में लिवा लाओ।

यह कह उसने पुनः एक बार ससावधानी पत्र को पढ़ना चाहा कि इसी मध्य मंजरिका पवन के एक झोंके के समान कक्ष में आ पहुँची। उसके मुख पर व्यग्रता व्याप्त थी। यह देख आचार्य शिष्य को कुछ आशंका हुई पूछने लगा—"क्यों देवी देवी रत्नकमल तो सकुशल है न ?"

"सो तो सब सकुशल है आचार्य शिष्य परन्तु यह बताओ कि आप इतनी रात्रि गए, सो भी मूसलाधार वर्षा में देवी विद्या के यहाँ से अकेले क्यों चले आए, देखो तो नगर में क्या कुछ हो गया है ?

मंजरिका अभी भी त्रस्त दीख रही थी। किन्तु आचार्य शिष्य एक उन्मुक्त ठहाका दे हँस पड़ा बोला—"और तुम डर गईं, भीरु कहीं की।"

आचार्य शिष्य के मन में आया कि वह मंजरिका के कपोल पर एक हल्का-सा चपत जमा दे पर उसने न जाने क्या सोच ऐसा किया नहीं।

मंजरिका तत्परता से बोली—"सो तो हूँ ही पर यह तो बताओ कि ।"

अनिरुद्ध के साथ नायक को आए देख मंजरिका की बात मध्य ही में रुक गई। आचार्य शिष्य ने क्षणिक तो नायक की ओर ध्यान से देखा फिर उसकी ओर बढ़ते हुए उसके कंधे पर हाथ रख पदोचित गम्भीर स्वर में बोला—"नायक सुमन्त आज तुम्हें एक महत्त्वपूर्ण अभियान पर भेजा जा रहा है। देखो यह पत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है अष्ठीपुत्र कम्पिन तक इसे पहुँचाना ही होगा।"

नायक सुमन्त मस्तक नत कर आत्मविश्वास की दृढ़ता से बोला—"आर्य आश्वस्त रहें ?

आचार्य शिष्य उसकी ओर पग बढ़ा बोला—"इसे सावधानी से एक बार पढ़

जो मार्ग में यदि कहीं बाधा समझो तो उसे नष्ट कर देना नष्टकर फेंकना नहीं वरन् उदरस्थ कर लेना यह किसी भी रूप में किसी के हाथ न पड़े समझे आयुष्मान !"

पत्र उसकी ओर बढ़ा आचार्य शिष्य ने मंजरिका की ओर दृष्टि फेर उससे कहा—"देवी, तब तक तुम एक पात्र में जल ले आओ।

मंजरिका स्पष्ट ही इसी आदेश का अभिप्राय समझ गई थी। अतः वह तत्काल कक्ष से बाहर चली गई अनिरुद्ध भी अपना सिर नत कर खड़ा हो गया और जब तक सुमन्त ने पत्र पढ़ा, आचार्य शिष्य उसकी ओर ध्यान से देखता रहा अन्त में पूछा—"क्यों सुमन्त सब समझ गए न ?

हाँ आर्य और यदि श्रेष्ठीपुत्र कम्पिल

आचार्य शिष्य मध्य ही में हस्तक्षेप कर कह उठा—"वह सब तुम्हें स्वयं करना होगा जैसा भी उचित समझो करना सन्ध्या तक हर प्रकार वैशाली वापस आ जाना है। यह सुन अनिरुद्ध को कुछ दुविधा-सी हुई, जैसे यह ध्यान करके कि सम्भव है श्रेष्ठीपुत्र कम्पिल कभी इस मध्य अधिक दूर न निकल गया हो, परन्तु सुमन्त के मुख पर आत्मविश्वास की दृढ़ता एवं उसी के साथ उत्साह को देख वह जैसे मानों आश्वस्त हो रहा।

सुमन्त जब अभिवादन कर कक्ष से बाहर की ओर चला तो आचार्य शिष्य उसे रोक पुनः पूछ उठा—"सभी सशस्त्र हो न ? और देखो सब एक साथ नहीं कुछ अन्तर से रहना जो आगे और जो पीछे किसी को भी कोई सन्देह न होने पाए सावधान।"

सुमन्त के प्रस्थान के पश्चात् आचार्य शिष्य की मुख मुद्रा पूर्व से भी अधिक व्यस्त हो उठी। अनिरुद्ध की ओर देख वह बोला—"जब तक पत्र का कोई उत्तर आए, तब तक अनिरुद्ध हमें कुछ आवश्यक कार्य निपटा लेने होंगे और उनमें प्रमुख यह है कि नगर और उसके उपान्तों में जितने भी वैदेशिक हों उनकी तत्परता से जानकारी कर ली जाए। तुम तब तक आवश्यक संख्या में गणपुरुषों को ले इस काम को करो और मैं इस मध्य नगर की स्थिति देखता हूँ।"

अनिरुद्ध प्रस्थान कर उठा परन्तु आचार्य शिष्य को सहसा कुछ स्मरण हो आया अतः उसे टोक, वह कहा—"अनिरुद्ध गणपुरुष यदि नागरिक वेष में ही रहें तो उचित रहेगा न ?"

अनिरुद्ध बोला—"आर्य आप जैसी भी आज्ञा करें, उसका पालन होगा।"

जब अनिरुद्ध भी चला गया तो रिक्त हुए कक्ष को देख आचार्य शिष्य के मस्तिष्क में एक विचार उठ खड़ा हुआ परन्तु उसे इस समय तक जैसे विचारों से भी घरौंद हो गई थी कोमलता कठोरता में परिणत हो चुकी थी तथा भावुकता दृढ़ निश्चय में। वह तुरन्त नगर की स्थिति का अवलोकन करने को प्रस्थान कर उठा। मंजरिका आई परन्तु वह उसे इस समय केवल देखती रह गई। वास्तव में कुछ कहने को उद्यत होकर भी वह इस समय अपने स्वामी को टोक नहीं सकी। कल रात्रि की घटनाओं तथा उनके प्रसंग में स्वामी के दायित्व का ध्यान कर उसे कुछ कहने का साहस ही नहीं हुआ।

× × ×

और उधर, नगर के उपान्त में स्तूप निर्माण का कार्य नित्य की भाँति आज भी परिसमाप्त हो चला। दर्शकों की प्रबल भीड़ को देख देवी आम्रपाली तो प्रसन्न थी ही पर आज वृद्ध भिक्षु महाली के जर्जर शरीर में भी अदम्य उत्साह का संचार हो उठा था। अतः देवी आम्रपाली का और भी अधिक प्रसन्न रहना स्वाभाविक था परन्तु फिर भी उसकी दृष्टि यदा-कदा उदास वैशालिकों पर जा टिकती साथ ही उसे कभी कभी एक और बात पर भी आश्चर्य हो रहता—वैदेशिकों के मध्य कल जितने यवन दीख रहे थे आज उतने उसकी दृष्टि में नहीं आ पा रहे थे।

इधर, आचार्य शिष्य अपने आवास से निकल सीधा मध्य अंचल की उसी मधुशाला पर जा पहुँचा जहाँ गत रात्रि कुमार सुव्रत की हत्या हुई थी। उसे देख वहाँ खड़ी नागरिकों की भीड़ कुछ हट-सी गई, किन्तु उनके मध्य खड़ा मधुशाला का स्वामी वीरध्वज सहम-सा गया। नागरिकों ने इससे पूर्व आचार्य शिष्य को कदाचित् ही ऐसी गम्भीर एवं संयत मुद्रा में देखा था अतः वे उसकी ओर देखते रहे, वीरध्वज ने भी देखा किन्तु उसकी दृष्टि उसकी ओर अधिक टिकी न रह सकी अतः हो रही वह कांप भी उठा कंपकंपाते स्वर में कहने लगा—"स्वामी मेरा तो सर्वनाश हो गया।" आचार्य शिष्य पूछना चाहता था—'सो कैसे ?' परन्तु वह मौन ही रहा मौन रहे ही उसने वीरध्वज का आपाद शीर्ष अवलोकन किया किन्तु उचटती दृष्टि ही से तो भी वीरध्वज जैसे उसकी इस दृष्टि को भी सहन करने में असमर्थ रहा अन्तर में नासिका से नाभि तक जैसे कोई रेखा-सी खिंच उठी हो उसे ऐसा लगा और वह और प्रकम्पित हो उठा। वह पूर्व से अधिक घबराए कण्ठ स्वर में बोला—"स्वामी उस आततायी ने सुकुमार सुव्रत को नहीं, वरन् मेरी ही हत्या कर दी हाय आर्य इस घटना को सुन अब इस मधुशाला में भला कौन आएगा ?"

नागरिक गण उसके इस करुण क्रन्दन को सुन व्यथित-से हो उठे परन्तु उन्हें साथ ही कुछ आश्चर्य भी हो रहा। केवल कुछ क्षण पूर्व ही यह जिस धीमे स्वभाव वणिक बैठा हुआ घटना का आद्योपांत विवरण सुना रहा था वह सहसा क्षुब्ध हो गया। सभी ने अपने से पूछा—'यह आचार्य शिष्य को देखते ही भला इतना क्यों घबरा उठा ?' परन्तु आचार्य शिष्य पूर्ववत मौन रह मधुशाला के द्वार तथा फिर उसी के साथ लगे आवास के प्रवेश द्वार के मध्य के अन्तर को नाप रहा था—वह कुछ अधिक नहीं था। उस अन्तर को नापता हुआ वह सोच रहा था—'वह आक्रमणकारी यहीं घात में खड़ा रहा होगा ? उस द्वार पर खड़े हो आचार्य शिष्य ने विभिन्न कोणों से घटना-स्थल की ओर देखा। वीरध्वज यह देख फिर बोल उठा—"स्वामी यह आप ही का आवास है मैंने तो संध्या होते ही अर्गला लगा दी थी।" किन्तु, इस बार भी आचार्य शिष्य कुछ नहीं बोला केवल यह देखता रहा कि ओट लेने योग्य दोनों द्वारों के मध्य भी भला कोई स्थान हो सकता है—एक था परन्तु वहाँ खड़े हो उसने अपना हाथ घटना स्थल तक फैलाया और देखा—इतने निकट से घातक प्रहार असम्भव था अतः केवल द्वार की ओट ही सम्भव है, फिर निरन्तर वर्षा भी होती रही थी द्वार के नीचे खड़े रह उससे भी सुरक्षित रहा जा सकता था। आचार्य शिष्य ने फिर उसी द्वार पर खड़े हो, दृष्टि को विभिन्न कोणों में फैला कुछ देखने का प्रयास किया। वह सोचने लगा—

'मृतक और उसका साथी—दोनों मदिरा-पान के पश्चात् परस्पर लड़ कर न मरे हों—यह असम्भव है, पर घटना के अनुसार दोनों के मध्य अवश्य ही कुछ अन्तर रहा है, कितना भी रहा हो तो भी मृतक का साथी प्रहार परिधि में आ रहता है फिर आक्रमणकारी के लिए इतनी तत्परता से भेद करना असम्भव रहा होगा घटना में अवश्य ही कुछ समय लगा है तो इस मध्य मृतक के साथी ने क्या किया ? फिर इस सीमित स्थान में खड्ग प्रहार शीर्ष पर ही सम्भव था यदि मृतक मदिरा-पान के पश्चात् तनिक भी होश में रहा होगा तो पहले वार को वह निरस्त्र होते हुए भी विफल कर सकता था और उसने अवश्य किया होगा क्योंकि मृतक खड्ग कौशल और द्वन्द्व-युद्ध के सभी घात-प्रतिघातों में किसी से भी बढ़-चढ़ कर था अतः संपूर्ण घटना का साक्षी साथी अंध रहा होगा किन्तु उसके पास कोई शस्त्र था अथवा नहीं, और यद्यपि वह जब निकला तो वह उस समय अवश्य ही होश में रहा होगा और जब वह संयत था और मृतक उसका साथी था तो कोई कारण नहीं कि मृतक ने अधिक मात्रा में मदिरा का पान किया हो और यदि उसने किया था तो उसमें अवश्य ही किसी का प्रभावयुक्त अनुरोध रहा होगा, और उसके इस अनुरोध में किसी की प्रेरणा न रही हो यह भी असम्भव है। आचार्य शिष्य सम्मुख खड़े मधुशाला के स्वामी से कुछ प्रश्न पूछने को उद्यत हो उठे परन्तु तत्क्षण उनके पग जैसे स्वतः भवन की ओर बढ़ लिए। फिर वह वहाँ एक भी शब्द बोले बिना किसी अन्य स्थान की ओर प्रस्थान कर उठा।

यह देख गौरव्यपाल संशय में पड़ गया और नागरिक चकित हो उठे। सारा वातावरण जैसे अपने में सिमट अत्यधिक रहस्यपूर्ण हो उठा।

× × ×

अन्ततः देवी आम्रपाली से रहा नहीं गया।

वास्तव में वह पर्याप्त समय से देख रही थी कि भिक्षु महाली के वृद्ध शरीर में उत्साह का आवेग प्रतिक्षण ही बढ़ता जा रहा है और उसी के साथ उसके स्तूप रचना व्यस्त हाथ भी अधिकाधिक गतिमान हो उठे हैं। अतः अपने करतल पर रखी मुट्ठी मिट्टी को उसकी ओर बढ़ा वह बोली—"भन्ते अतिरेक से ध्यान में बाधा पहुँचती है और वयस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है भिक्षु-संघ दोनों ही प्रकार की शक्ति के मध्य सन्धि स्थापित कर दीर्घ काल तक सद्धर्म की सेवा करता रहे, ऐसी आस्था की उपादेयता है।'

तब भिक्षु महाली ने सोचा—'देवी आम्रपाली ने अनुकूल ही कहा है अतः मैं वैसा ही आचरण करूँ। देवी आम्रपाली के करतल से उठाई मिट्टी को स्तूप पर इस बार सधे हाथ से स्थापित कर वह बोला—"हाँ देवी एक भिक्षु सम्पूर्ण संघ है भिन्न नहीं और उससे भिन्नता ही विधर्म का आचरण है, वैसे ही, जैसे किसी एक नागरिक के प्रतिकूल आचरण से भी गण विभाजित हो रहता है।"

इस धर्म-प्रसंग में सहसा गण-व्यवस्था की बात आई देख देवी आम्रपाली चकित हो उठी। निकट में खड़े जो वैशालिक यह सुन सके वे भी चकित हो उठे। वे सभी एक स्वर में कह उठे—"भन्ते तथागत ने भी तो एक बार वैशाली के सम्बन्ध में ऐसा ही कहा था।"

तब भिक्षु महाली बोला—"देवी वैशालिकों ने क्या अब भी ठीक ही सुना है?"

यह कह भिक्षु महासी क्षणिक रुक रहा। कुछ सोच वह देवी आम्रपाली की ओर देखते हुए पुनः कह उठा—'क्यों देवी क्या वर्तमान भविष्य का आधार नहीं? जैसे ही जैसे आज का ध्यान अन्तिम समाधि का और अनन्त मानव की सुखद कल्पना निर्वाण का आधार बन रहता है। तो फिर वैज्ञानिक भी वैसा ही सोच क्यों न आचरण करें?'

इधर, इसी समय आचार्य शिल्प का प्रवर सामन्त कार्तिकेय की अट्टालिका के सम्मुख आ रुका। और उधर, आचार्य वधकार अपने प्रासाद की छत पर खड़े नगर प्राचीर के बाहर चारों ओर दूर सुदूर तक फैली हरीतिमा की मनोहारी छटा देखने में व्यस्त हो उठे। सदानीरा भी दृष्टि परिधि में आ रही। उसे देख वह जैसे चौंक-से गए, अपने ही से बोले—'देखो तो प्रकृति में कुछ बना भी नहीं हुआ और सदानीरा में यह बाढ़ ही आ गई। यह तो कोई शुभ लक्षण नहीं। कौन जाने भगवान ने भी इस समय ऐसा ही कर धारण किया हो पर वर्षकार अभी सदानीरा से गंगा की भी कोई तुलना है। यदि एक गम्भीर है तो दूसरी उच्छृंखल।

ऐसा आचार्य वषकार ने सोचा किन्तु वैज्ञानिक तो वैसा नहीं सोचते थे अतः वह अपने को सावधान कर उठे और फिर अपने से बोले—'वषकार अभी जैसा सभी वैज्ञानिक सोचते हैं तू भी वैसा ही सोच। सोचने लगे—'इन वैज्ञानिकों का विश्वास करना उचित नहीं यदि कहीं अनिरुद्ध ने सुरक्षा प्रदान करने की इच्छा और साथ ही यह भी कि मैंने उसे सहायता का वचन दिया है कहीं किसी के सामने यह बात प्रकट कर दी तो यह सब कुछ एक बालू के घरौंदे की भाँति धराशायी हो रहेगा और उधर मैं भयम संकट में पड़ रहूँगा पर मेरा तो कुछ नहीं हो ये भविष्य "

मस्तिष्क में उठ किसी विचार को मध्य में रोक जैसे उन्होंने अपनी दृष्टि बचाए फिर सदानीरा के प्रवाह की ओर टिका दी। उन्हें लगा सदानीरा का उफनता प्रवाह तटबन्धों से टकरा उन्हें ध्वस्त विनष्ट करने को दृढ़ संकल्प है और यदि उसका यह संकल्प सचमुच पूर्ण हो गया तो तो क्या? कम्पकारों की इस नई बस्ती में निश्चय ही हाहाकार मच उठेगा और मुख्य नगर में? उनके नेत्र एक स्वप्नदृष्टा की भाँति किसी भयंकर दृश्य को देख उसी में डूब रहे। परन्तु साथ ही मुख पर आत्मविश्वास की-सी दृढ़ता भी उभर आई।

× × × ×

सामन्त कार्तिकेय के प्रासाद का मध्य प्रकोष्ठ इस समय अनेक गण्य मान्य नागरिकों से भरा हुआ था। गणाध्यक्ष सिंह सेनापति देवी रोहिणी, महाबलाधिकृत भल्लक देव देवी वासवदत्ता तथा महावीर अर्णिम एवं भी देवी एवं कमला सहित सभी तो वहाँ उपस्थित थे। तो भी प्रकोष्ठ के पूरे आकार प्रकार में मानो दिवंगत सामन्त की स्मृति में सबका मौन व्याप्त था। और कुमार कौशिक इन सभी के मध्य बैठा मस्त घिर किए, जैसे अपनी किसी अपार क्षति पर शोकाकुल हुआ कुछ विचार-सा रहा था। किन्तु आचार्य शिल्प की पग-आहट सुन जब उसने अपनी दृष्टि ऊपर उठाई तो वह सहसा एक अबोध बालक की भाँति फूट-फूट कर रो उठा। पर यह सब कुछ सुनकर भी आचार्य शिल्प की मुख-मुद्रा सर्वथा अविचलित रही जैसे उसे आज विचारों के साथ-साथ भावुकता से भी अवकाश हो गई थी। हाँ संकट में सान्त्वना देने के अभिप्राय से वह उस

रता के साथ उसकी ओर अवश्य बढ़ लिया। निकट आ एक प्रणम्य की भाँति आत्मीयता का भाव दिखा वह बोला— आयुष्मान् पितृ वियोग जीवन में सचमुच एक बड़ी क्षति है और उसकी पूर्ति असम्भव है।"

किन्तु इसी मध्य उसकी दृष्टि जैसे कुछ खोजने में ही व्यस्त सी रही। प्रकट में उपरली परन्तु सावधानी के साथ उसने कीर्तिरथ के पैरों उसकी अंगुलियों की ओर देखा और कदाचित् उसकी दृष्टि उसके अंगुष्ठ नख पर स्थिर भी रही। तत्पश्चात् उसने सहसा कीर्तिरथ का वाम हाथ पकड़ उसकी हथेली को थपथपा कहा—"और फिर आयुष्मान् यह तो एक प्रकार से अकाल मृत्यु ही हुई है।

अपने पिता के सम्बन्ध में अकाल मृत्यु की बात सुन अथवा अन्य किसी कारण से कीर्तिरथ का हाथ कुछ कपकपा-सा गया परन्तु इसका अनुभव केवल आचार्य शिवर को ही हो सका। औरों की दृष्टि में उसका यह कम्पन आ ही नहीं पाया। इस पर आचार्य शिष्य ने अनेक कीर्तिरथ की ओर जैसे साश्चर्य दृष्टि से देखा। यह दृष्टि कुमार कीर्तिरथ को और व्यथित कर उठी और वह पहले से भी अधिक फफक उठा। सभी को ऐसा लगा जैसे कुमार कीर्तिरथ अपने ऊपर आई इस घोर विपत्ति में केवल आचार्य शिष्य से ही पूर्ण सान्त्वना पाने को लालायित हो उठा हो। किन्तु, आचार्य शिष्य अब आगे कुछ और न कह मौन भाव से निकट ही में पड़ी एक पीठिका पर बैठ गया।

और गणाध्यक्ष सिंह तथा सभा सुपरिचित जनों को लगा आचार्य शिष्य ने मानो यह किसी गम्भीर अभिनय का प्रयास किया है। पर साथ ही गत रात्रि में एक-एक कर घटी तीन दुर्घटनाओं का ध्यान कर उन्होंने समझा कि कदाचित् उन्हीं का उसके मस्तिष्क पर भारी प्रभाव हो सम्भव है वह यहाँ आने की स्थिति में भी न रहा हो तो भी शिष्टाचारवश चला आया हो। पर साथ ही उनकी यह भी निश्चित धारणा थी कि आचार्य शिष्य शिष्टाचार का यह आडम्बर कभी नहीं रच सकता। और फिर उसके मनोवैज्ञानिक स्वभाव के लिए यह अभिनय तो एकदम ही असम्भव है अथवा आज उसमें यह कोई आकस्मिक परिवर्तन हुआ है। वे सभी यह सब कुछ सोच ही रहे थे कि आचार्य शिष्य पीठिका से उठ सहसा प्रस्थान कर उठा।

कक्ष से बाहर आ उसका अश्व पुनः मध्य मण्डप की ओर दौड़ लिया।

उधर आपूर्ति जैसा गभिस्त आई वैसे आचार्य अपकार अपने प्रासाद की छत से नीचे उतर नित्य प्रति की भाँति आज भी पुष्करिणी तट की ओर चल पड़े।

और आचार्य शिष्य का अश्व इस बार अनिरुद्ध के आवास पर जाकर रुका। उसने पहले तो बाहर ही खड़े रह कुछ ठगा कुछ सोचा सा परन्तु शीघ्र ही जैसे संकोच हो सोचने से अपने को असात् रोक लिया मानो सोचने का ध्यान आज मात्र न ही उसे भूला हो उठी थी। अब वह निस्संकोच भाव से साकेत आवास में प्रविष्ट हो लिया सम्मुख ही अनिरुद्ध की पत्नी महामाया खड़ी दिखाई दी उसे देख वह दूर ही से पूछ उठा— क्यों देवी क्या मुझे पहचाना?

महामाया के नेत्र इस समय जैसे प्रतीक्षारत थे। अप्रत्याशित रूप में आचार्य शिष्य को यों देख वह हतप्रभ हो उठी। उसे देख कुछ ऐसा भी लगा जैसे उसे अपने नेत्रों पर ही विश्वास नहीं हो पा रहा था वह असमंजस रही सी बोली—"हाँ श्रीमन

पहचान लिया पर आप तो आज भिक्षु संघ में प्रविष्ट होने वाले थे ?"

आचार्य शिष्य तनिक हँस उत्तर में बोला— हाँ देवी होना तो था किन्तु आज प्रातः उठते ही जब वैशाली की इन अनहोनी घटनाओं के सम्बन्ध में सुना तो फिर विचार स्थगित करना ही पड़ा।" तनिक रुक जैसे कुछ सोच वह पूछ उठा— पर देवी आपको यह कैसे पता चला कि मैं संघमें प्रवेश का भी निश्चय कर बैठा हूँ ?

महामाया तत्परता से कह उठी— स्वयं स्वामी ने ही तो बताया था श्रीमन्।"

क्षणभर —आचाये शिष्य ने पूछना चाहा परन्तु यह न पूछ वह कहने लगा—"हाँ देवी मैंने यही निश्चय किया था और कल संध्या मैंने आयुष्मान अनिरुद्ध को यह सब कुछ बता भी दिया था जिससे वह अपने नए दायित्व के प्रति अभी से सावधान हो जाए।"

यह कह आचार्य शिष्य ने अपनी दृष्टि तनिक ऊपर उठा महामाया की ओर देखा। देवी महामाया जैसे इस समय अपने अन्तर में उठे प्रसन्नता के भाव के साथ संघर्ष कर उसे प्रकट न आने से बलपूर्वक रोक रही थी। इसी मध्य आचार्य शिष्य अपनी दृष्टि नत कर एक भारी निश्वास छोड़ते हुए पुनः बोल उठा— देवी खेद है कि श्रेष्ठिपुत्री मेरे इस दायित्वभार से कभी भी तो प्रसन्न नहीं हो सकी। वह श्रेष्ठीपुत्री है कदाचित् इसी से परन्तु मुझे विश्वास है कि आप कभी भी आयुष्मान अनिरुद्ध को उस ओर से हतोत्साहित नहीं करती।"

महामाया बोली—"श्रीमन् देवी मधरिका सदा क्यों उदासीन रही ? वैशाली में सुरक्षा प्रधान का पद तो अधिकारों की दृष्टि से अत्यन्त गौरवपूर्ण है इतना गौरव पुत्र को यदि वह चाहे तो एक बारगी बलाध्यक्ष को भी ।"

महामाया को सहसा जैसे कुछ ध्यान हो आया और उसी के साथ वह रुक रही। पर आचार्य शिष्य उसकी अधूरी बात को पूरी करता हुआ कह उठा— हाँ देवी यदि वह चाहे तो गणाध्यक्ष को भी बन्दी बना सकता है।"

और इसी के साथ वह एक ठहाका दे हँस उठा तत्पश्चात् बोला—"किन्तु देवी उसके लिए उसे प्रमाण भी तो चाहिएं।"

यह सुन महामाया कुछ भयभीत का-सा अनुभव करती हुई खिन्न हो उठी। खिन्नता से उसके ओष्ठ कोर कँप-से गए। बोली—"नहीं श्रीमन् मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं था कि किसी को बन्दी बना ही लिया जाए, मैं तो केवल अधिकार की बात कह रही थी।

परन्तु आचार्य शिष्य ने जैसे यह अनसुना कर दिया। वह पूछने लगा—"क्यों देवी आयुष्मती सुचिता तो कुशल है न ?"

देवी महामाया उत्तर में बोली— हाँ श्रीमन्, वैसे तो सकुशल है किन्तु वह अभी भी अत्यन्त त्रस्त दीख रही है।"

"सो तो स्वाभाविक ही है देवी सुरक्षा प्रधान के नाते मैं अत्यन्त लज्जित हूँ मैं उससे क्षमा माँगा चाहता हूँ।" यह कह आचार्य शिष्य ने ऊपर नभ में नीचे की ओर झुकती सूर्य-किरणों की ओर देखा निश्चय ही विलम्ब हो रहा था फिर भी उसने अन्दर कक्ष में जाना आवश्यक समझा। वह महामाया के पीछे-पीछे चल पड़ा।

आयुष्मती सुचिता अभी भी शय्या पर पड़ी थी। उसके केश बिखरे हुए थे तथा नेत्र मूंद कर लाल हो चुके थे। आचार्य शिष्य को देख उसने जैसे आत्म ग्लानि का अनुभव किया। अपने नेत्रों को हाथों से ढाप वह एक दम ही रो रो उठी। उसे रोता देख आचार्य शिष्य का हृदय भी जैसे अपने पर नियन्त्रण न रख सका। वह भारी संताप का अनुभव कर उठा मन बोझिल हो रहा परन्तु शीघ्र ही संयत हो बोला—"आयुष्मती घबराओ नहीं यह वैशाली के उज्ज्वल ललाट पर भारी कलंक लगा है, अपराधी की खोज उसे अवश्य ही कठोर दण्ड दिया जायगा। पर यह तो बताओ आयुष्मती क्या वह कोई वैशालिक ही था?"

कुमारी सुचिता किसी प्रकार अपनी सुबकियों को रोक अपने नेत्रों पर हाथ रखे ही कह उठी—"वसुवर वह निश्चय ही वैशालिक नहीं था।

यह सुन आचार्य शिष्य का मुख सहसा निस्तेज हो उठा किन्तु नेत्रों में जैसे प्रसन्नता उभर आई मानो उसे कुछ मिल गया हो। अब उसके लिए जैसे वहां अधिक खड़ा रहना असम्भव हो गया तो भी उसने देवी महामाया की ओर दृष्टि कर पूछा—"और देवी उस समय आप कहां थीं और क्या उसने आवास में अन्दर कैसे प्रवेश किया क्या इस सम्बन्ध में आप मुझे कुछ बता सकोगी?

महामाया ने उत्तर से पूर्व अपने को जैसे कुछ सम्हाला-सा फिर बोली—"आर्य घटना इस प्रकार हुई कि स्वामी के जाते ही मैंने मुख्य द्वार को अर्गला लगा दी थी। उनके प्रस्थान के पर्याप्त समय पश्चात् कोई व्यक्ति आया और उसने स्वामी का नाम ले पुकारा। उस समय मैं अपने ही कक्ष में थी। तब वर्षा तो हो ही रही थी फिर भी मैं शिष्टाचार से शय्या से उठ खड़ी हुई। मैं द्वार की ओर जा ही रही थी कि इसी मध्य मुझे लगा आयुष्मती उस आए व्यक्ति को कुछ उत्तर दे रही है अतः मैं आश्वस्त हो पुनः शय्या पर जा लेटी बस लेटी ही थी कि आयुष्मती आतंकित कण्ठ स्वर में मुझे पुकार उठी। यह सुन मैं सावेग उसी ओर दौड़ सी परन्तु इसी मध्य उस दुष्ट व्यक्ति ने आयुष्मती को अपने आलिंगन में दबोच लिया और आयुष्मती के मुख को भी उसने बलात् अपने करतल से ढांप लिया किन्तु उसके पश्चात् भी आयुष्मती उससे द्वंद्व करती रही मैं सहसा तो उसकी ओर देखती रह किंकर्तव्यविमूढ़ की भांति खड़ी रही परन्तु फिर तत्परता से उसकी ओर लपक मैंने उसी के कोष से खड्ग खींच लिया और अपने को निरस्त्र हुआ देख वह ।"

महामाया अभी कुछ और कहा ही रही थी कि आचार्य शिष्य मध्य ही में बोल उठा—"और देवी वह खड्ग इस समय कहां है?

"वह यहीं है श्रीमन्" यह कह वह कदाचित् उसे लेने ही तत्परता से अपने कक्ष की ओर चली गई। और आचार्य शिष्य सुचिता के मुख पर रखे उसके हाथों को हटा कहने लगा—"आयुष्मती घबराओ नहीं देवी महामाया ने तो यह निश्चय ही पुरस्कार पाने योग्य कार्य किया है और. ।"

इसी मध्य देवी महामाया उस नग्न खड्ग को ले वहां आ पहुंची आचार्य शिष्य ने सतर्क दृष्टि से उसकी ओर देखा और खड्ग को हाथ में लिए बिना ही जैसे उसे पहचान भी लिया। तत्पश्चात्, कोष से अपना खड्ग निकाल महामाया की ओर बढ़ा

वह बोला— देवी यह भार मुझे दे दें और सुरक्षा प्रदान का यह खड्ग आज से आप अपने हाथों में ले लें परन्तु इस दायित्व के साथ कि यदि इस आवास से बाहर निकल कर भी तुम्हें यह चलाना पड़े तो तुम उससे भी विमुख नहीं होगी।"

देवी महामाया उसकी ओर हतप्रभ हुई-सी देखती रह गई किन्तु इस बार आचार्य शिष्य उसकी ओर सीधी दृष्टि कर तत्पश्चात अपना मस्तक नत करते हुए बोल उठा—"देवी मैं आपके इस साहसपूर्ण काम के लिए आपका अभिवादन करता हूँ यदि कल समूचा वैशाली भी इसी प्रकार आपके सम्मुख नत मस्तक हो आपका इस प्रकार अभिवादन कर सके तो यह निश्चय ही वैशाली का केवल वैशाली का ही नहीं वरन् समूचे वज्जिसंघ का सौभाग्य होगा और सौभाग्य होगा उस महान आदर्श का जिसके लिए ।"

आचार्य शिष्य फिर सहसा मध्य ही में रुक रहा। उसे लगा जैसे अब एक-एक क्षण का भी विलम्ब अनुचित होगा। अब वह तुरन्त प्रस्थान के लिए उद्यत हो उठा चलते चलते फिर एक बार देवी महामाया की ओर मुड़ सविनय दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए वह बोला— देवी अपने साहस के प्रतीक इस खड्ग को इस प्रकार से जाने पर आप दुखी न हों यदि संभव हो सका तो यह कल गणसभागार के एक ऐसे स्थान पर रखा जाएगा जहां सभी उसे भलीभांति देख सकें और साथ ही यह भी समझ सकें कि यह किस बात का प्रमाण है, आज यह खड्ग इस बात का प्रमाण है कि ।"

'किस बात का अर्थ ? महामाया के मुख से जैसे यह प्रश्न उत्सुकतावश हठात निकल गया। वास्तव में उसके मुख पर इस समय तक भारी जिज्ञासा का भाव स्थिर हो उठा था।

आचार्य शिष्य प्रस्थान करते हुए बोला— देवी समय आने पर यह खड्ग न जाने क्या-कुछ रहस्य खोलेगा परन्तु इस समय तो यह दुविधा से जैसे मौन ही है संभव है अस्त भी हो पर कल जब यह निर्बंध हो उठेगा तो सब कुछ बता देगा।"

किन्तु देवी महामाया की दृष्टि इस समय आचार्य शिष्य के पगों पर स्थिर थी उनके गत्यावेग को देख एक बारगी वह भी व्यस्त हो गई परन्तु अगले क्षण ही जब उस अपने हाथ में सुरक्षा प्रदान के खड्ग का तथा साथ ही उसके आह्वान का ध्यान हो आया तो वह पुत्रिका की शय्या की ओर मुड़ कर जैसे उत्तेजित हो बोली— "आयुष्मती पुत्रिका अब उठोगी भी कि ऐसे ही भयभीत हुई पड़ी रहोगी।"



पैंतीस

आशा अनुसार मैं जो सोचा था वैसे नहीं हुआ।

सखामीरा की उद्दाम लहर तटबन्धों को तोड़ अन्तत नए बहाव की ओर बढ़ ही तो निकली।

उधर दिवस की यात्रा समाप्त कर थका मादा सूर्य अपनी फीकी आभा के साथ वैशाली की स्वर्ण रजत एवं ताम्र कलशों युक्त ऊँची भव्य अट्टालिकाओं की ओर निहार उठा। पर आज उसे लगा जैसे सम्पूर्ण नगरी ही किसी भारी संताप में आकण्ठ डूबी हुई है। सामन्त कार्तिकेय की मृत्यु एवं कुमार सुव्रत की हत्या के बाद से देवी शिप्या ने भी प्राय संध्या समाज स्थगित ही रखा। अब जो मधुर रागरंग एवं वीणा-विनोद और फिर उसका एक विस्तृत प्रांगण सन्ध्या वेला को नाना वेश रंगारंग हो असंख्य पौरजनों की चहल-पहल से गूंज उठता था वह भी सूना ही दीख पड़ा। वैसे भी देवी शिप्या का मन भी आज न जाने क्यों उचाट था। अट्टालिका के सभी कक्ष ही तो उसे उदास दीख पड़े। अत वह बाहर विश्राम वाटिका के उसी शिलाखण्ड पर आ बैठी जहाँ कभी प्रारंभ में आचार्य शिष्य भी उसके पास आ बैठा करता था। किन्तु उसे वहाँ बैठे अभी कुछ ही क्षण बीते होंगे कि स्वयं भद्रक उसके सम्मुख आ खड़ा हुआ फिर नत मस्तक हो बोला— "देवी! आपकी सेवा में आचार्य शिष्य ने अभिवादन निवेदन किया है।"

यह सुन देवी शिप्या को कुछ आश्चर्य हुआ कदाचित् स्वयं भद्रक के आगमन पर पर साथ ही उसके मन को लगा जैसे उस दिन का कुछ गिर गया है। सोत्साह पूछने लगी— "और वह प्रार्थनागार में ही हैं न?"

भद्रक ने अपनी दृष्टि तनिक ऊपर उठा कहा— "देवी वह आये थे परन्तु तुरन्त ही लौट भी गए, और आपकी सेवा में यह संदेश प्रस्तुत करने को कह गए हैं।"

"संदेश प्रस्तुत करने को कह गए हैं" ये शब्द भद्रक के थे पर आचार्य शिष्य ने क्या कहा होगा इसका अनुमान लगा जैसे आचार्य शिष्य की ध्वनि में ही वे शब्द उसके कानों में और फिर उसी के साथ सम्पूर्ण अन्तस्तल में गूंज उठे। सम्मुख खड़े भद्रक से वह अपनी उसी व्यथावस्था में कहना चाहती थी— "भद्रक आज न जाने क्यों मेरा मन अत्यन्त उचाट है।" परन्तु न जाने क्यों वह इसमें भी कुछ संकोच का अनुभव कर उठी कुछ सोच फिर जैसे अन्यमनस्क बोली— "भद्रक क्या तुम उन्हें यहाँ क्यों नहीं लिवा लाए?"

मधुक नत मस्तक हो बोला—"देवी वह आज अत्यन्त व्यस्त दीख रहे थे संभव है उन्हें आज इस समय अवकाश न रहा हो।"

"क्या वह उदास भी दीख रहे थे?"

"नहीं देवी उनके मुख पर तो स्पष्ट ही आत्मविश्वास की दृढ़ता थी।"

देवी शिप्रा शिलाखण्ड से उठ बोली— मधुक फिर तुम्हें निश्चय ही भ्रम हुआ होगा या फिर ।

आगे की बात उसके मुख से निकल ही नहीं सकी। वह मन ही मन बोली—अरी यह तो सचमुच आत्मातिरेक हुआ।

देवी शिप्रा अब तक केवल तथ्यों को ही उसके व्यवहार में ग्रहण करने की अभ्यस्त थी और अनुमानों को उसने सदा ही त्याज्य समझा था परन्तु आज उस सभा जैसे ये सभी तनिक-सा अवसर पा एक साथ ही उसके ऊपर टूट पड़े हैं। वह सोचने लगी—"कल ही तो वह कमल पुष्प लेकर आये थे और आज वह एक प्रश्न दे गए। क्यों? इनमें से यदि एक अलंकार है तो दूसरा" ।

उसे विश्वास था कि आचार्य शिष्य ने जो कुछ कहा होगा मधुक ने निश्चय ही वह सब कुछ बता दिया है फिर भी जैसे उसे आज मधुक पर विश्वास नहीं हुआ पूछने लगी— "क्यों मधुक आचार्य शिष्य ने कुछ और तो नहीं कहा था?"

मधुक ने यथापूर्व ही नत मस्तक रह कहा—"नहीं देवी उन्होंने और कुछ भी तो नहीं कहा।"

जिस संध्या बेला में अभी तक देवी शिप्रा का मुख अधिकाधिक दमक रहा था आज उसी में उसके मुख पर उदासी की गहरी छाया पत्तों-सी छाती। कक्ष की ओर बढ़े प्रथम पग के साथ ही मन पूछने को उद्यत हो उठा—"क्यों मधुक तो क्या यह लक्षण उन्होंने आत्महत्या का भेजा है?" किन्तु उसने ऐसा पूछा नहीं। क्यों? क्योंकि उसे विश्वास था कि आचार्य शिष्य कभी ऐसा नहीं कर सकते। वह मन से बोली—"क्या मैं उन्हें अब तक इतना भी नहीं समझ पाई हूँ।" किन्तु फिर दूसरे पग के साथ एक दूसरा ही प्रश्न उसके मस्तिष्क से आ टकराता फिर तीसरा चौथा और सदा संयत दीखने वाली देवी शिप्रा एक नहीं अनेक प्रश्नों का किसी अन्य के नहीं बल्कि अपने ही प्रश्नों का उत्तर पाने को व्याकुल भी हो उठी।

आचार्य शिष्य किसी को व्याकुल देखें और वह दुःखी न हो यह उनका स्वभाव नहीं था परन्तु यदि आज उसने कहीं देवी शिप्रा को इसी मनोदशा में देख लिया होता तो वह निश्चय ही प्रसन्न हो गया होता। क्यों? क्योंकि उसकी इस व्याकुलता को देख एक तो वह आश्वस्त हो गया होता और फिर उसी के साथ वह उस [illegible] का भी [illegible] हुआ अनुमान कर लेता जो बहुत ही [illegible] किसी का अपने [illegible] में बोध और सस्नेह दुलार [illegible] करने के लिए प्रेरित कर रहा है। पर आचार्य शिष्य इससे सदा वंचित ही रहा। क्यों? क्योंकि उसकी दृष्टि में देवी शिप्रा अत्यधिक सौम्य थी और कदाचित् उसके इसी सौम्य रूप के सम्मुख वह कभी भी स्वयं अपने मन की बात प्रकट न कर सका। तो भी प्रसन्न इस संतोष पर आज [illegible] नहीं था और यदि था भी तो उसे आज इतना अवकाश ही कहाँ

वह पुनः उसी प्रसंग पर सोचता जिसके प्रवाह में उसने अपने को मन ही-मन बार-बार भावग्रस्त हुआ अनुभव किया था और उससे भी अधिक बार उसे अपने मन की केवल एक भ्रान्ति समझ प्रगट अपनी ही किसी मूढ़ता पर हँस रहता था। अतः आज देवी चित्रा व्यर्थ ही मैं व्याकुल हुई क्योंकि इस समय आचार्य शिष्य का भवन तो अट्टालिका से न जाने कितनी दूर—यद्यपि नगर परिधि में ही—फिर भी दृष्टि छाया से बहुत दूर निकल चुका था। वास्तव में वह इस समय जयराज के आवास की ओर जा रहा था कि मार्ग ही में अनिरुद्ध मिल गया। अनिरुद्ध की धारणा थी कि आचार्य शिष्य मिलते ही कहेंगे—'क्यों अनिरुद्ध इस कार्य में और इतना समय? उसने भी सोचा—'यदि वह यह कहेंगे तो मैं भी कह दूँगा प्रातः ही से निराहार हूँ और आपने मुझे लगाया था यह क्या ही विचित्र कार्य और किया। पर उसने यह सब व्यर्थ ही सोचा क्योंकि जब वह आचार्य शिष्य के सम्मुख आया तो आचार्य शिष्य ने पहले तो एक जिज्ञासापरक की-सी मूक दृष्टि से उसका जैसे आपादमीप अवलोकन किया और फिर अपने यथोचित गम्भीर दृढ़ स्वर में आदेश दिया—"अनिरुद्ध जयराज सहित सभी को तत्काल बन्दी बना लिया जाए।"

यह आदेश सुन अनिरुद्ध स्तब्ध रह गया जैसे उस पर कोई वज्र प्रहार हुआ हो। किन्तु वह शीघ्र ही सजग हो बोला—"आर्य क्या कुमार कीर्तिरथ को भी?"

"हाँ क्यों नहीं?" आचार्य शिष्य ने दृढ़ता से कहा।

"पर वह तो इस समय पितृ वियोग से ।"

आचार्य शिष्य उसे मध्य ही में रोक कह उठा— पर उसने क्या कीर्तिरथ ने केवल युवक की ही हत्या नहीं की वरन् अपने पिता की अकाल मृत्यु के लिये भी तो वही दोषी है।"

यह कह वह तनिक रुका कुछ सोचता-सा रहा फिर अपने स्वाभाविक गम्भीर स्वर में बोला—"और अनिरुद्ध इस समय मैं गणाध्यक्ष के दुर्ग की ओर जा रहा हूँ, इस आदेश पालन के पश्चात् तुम भी वहीं अपने को प्रस्तुत करो।

और तत्पश्चात् आचार्य शिष्य पवन के एक प्रबल झोंके की भाँति दुर्ग की ओर बढ़ लिया। अनिरुद्ध कुछ क्षणों तक तो खड़ा कुछ सोचता-सा रहा और फिर उसने अपना अश्व भी उसी दिशा में दौड़ा दिया आचार्य शिष्य के अश्व की गति से भी अधिक तीव्र गति के साथ फलतः उसका अश्व आचार्य शिष्य के अश्व से आगे निकल गया केवल आगे ही नहीं वरन् आचार्य शिष्य के अश्व के सम्मुख आ उसने उसका मार्ग भी रोक लिया। आचार्य शिष्य की पूरी शक्ति से अश्व की वल्गा को खींच रुक खड़ा हो गया। और, उसका चित्त हुआ जैसे स्वाभाविक रूप ही तत्परता में अद्भुत कोप पर आ पड़ा। उधर अनिरुद्ध ने भी इसी मध्य अपना अश्व सर्वथा आचार्य शिष्य के अश्व से हटा लिया। किन्तु, जब तक आचार्य शिष्य कोप से कुछ पूछे अनिरुद्ध ने अश्व पीठ पर बैठे-बैठे ही अपना मस्तक नत कर, कातर भाव स्वर में कहा—"आर्य, मैं भी अपराधी हूँ।"

आचार्य शिष्य के मुख से एक भारी साँस निकल सौम्यता के अन्तर्मुख में विलीन हो गई। फिर अपने सहायक की ओर देखते हुए वह तनिक सोच बोला— अनिरुद्ध

मुझे यह भी विदित है परन्तु आज मैं देवी महामाया से उपकृत हुआ हूँ अत: इसी से कुछ क्षोभ गया।"

अनिरुद्ध ने अपना शीर्ष पूर्व से भी अधिक अवनत कर कहा—"आर्य यह विश्वासघाती क्षमा की याचना करता है अपने जीवन के लिए नहीं वरन् वैशाली की रक्षार्थ।"

"पर अनिरुद्ध उसके लिए मैं आश्वस्त हुआ चाहता हूँ। जानते हो मातृभूमि घृणिता के साथ यह धृष्टता किसने की है?" अंतिम वाक्य के समाप्त होते-होते आचार्य शिष्य का कण्ठ स्वर क्रोधाविष्ट हो रहा और समूचा मुख तमतमा उठा। अनिरुद्ध ने संभ्रम दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा— नहीं तो आर्य।"

आचार्य शिष्य आवेष्टित कण्ठ स्वर में ही बोला— 'तो सुनो यह कांड तुम्हारे ही विश्वासघात के कारण हुआ है। और जानते हो यह किसी वैशालिक का ही षड्यन्त्र लेकर आया था।"

यह सुन अनिरुद्ध का समूचा मुख भी सहसा तमतमा उठा। सावेग बोला— "आर्य आश्वस्त रहें मैं भी उसका प्रतिशोध अवश्य लेकर रहूँगा।"

आचार्य शिष्य जैसे आश्वस्त हो रहा और फिर यह कुछ भी कहे बिना पूर्व की ही तीव्र गति से दुर्ग की ओर दौड़ लिया।

यह शरद् ऋतु थी वह ऋतु, जिसमें दिवस ने इधर संध्या के आंचल में मुँह ढाँप विश्राम के लिए पैर पसारे नहीं कि, बस उधर सर्वत्र अंधकार छा रहता है। फिर यह कृष्ण पक्ष का उत्तरार्द्ध भी था और आज गण महानगरी वैसे ही क्षोभ संतप्त थी। रात्रि की गहनता ने शीघ्र ही जैसे भयावह रूप ग्रहण कर लिया किन्तु उसकी इस विकरालता में भी यदि एक ओर आचार्य शिष्य का तो दूसरी ओर उसके सहायक अनिरुद्ध का अश्व सरपट दौड़ता जा रहा था और उससे भी अधिक गति से दोनों ही के मस्तिष्कों में विचारों का प्रवाह गतिमान था।

इधर अनिरुद्ध का अश्व यदि नगर के मुख्य द्वार पर आकर रुका तो आचार्य शिष्य का अश्व गणाध्यक्ष के दुर्ग में प्रविष्ट हो रहा। वहाँ इस समय केवल गणाध्यक्ष ही नहीं वरन् उनके पास ही महाबलाधिकृत प्रचण्ड देव भी विराजमान थे और उनकी उस समय की मुख मुद्राओं को देख कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे दोनों ही किसी गूढ़ मंत्रणा में व्यस्त थे। गणाध्यक्ष के हाथ में इस समय एक ताड़पत्र भी था। उधर नगर द्वार पर का अनिरुद्ध प्रधान द्वारपाल को दूर ही से देख उसे सावधान कर उठा। साथ ही द्वार को तुरन्त बन्द करने का आदेश कर वह फिर अश्वारूढ़ हो उसी अत्यावेग से नगर की ओर लौट लिया। और मार्ग में जो भी गण पुरुष मिला उसे भी सावधान करता चला। वह स्वयं भी अत्यधिक सावधान हो उठा।

गणाध्यक्ष सिंह आचार्य शिष्य द्वारा प्रस्तुत प्रसंग को देख कुछ चकित हुए। साश्चर्य बोले—"यह एक मानव के हाथ में था! परन्तु आयुष्मान यहीं क्यों कि वह वैदेशिक एक मानव ही था?"

आचार्य शिष्य इस समय स्पष्ट ही कुछ क्षोभ-सा गया तथापि सहज

बोला—"बन्धुवर अब आप इस प्रमाण के मोह में न पड़ें, प्रमाण खोजते-खोजते ही तो अन्ततः यह स्थिति आ उपस्थित हुई है, यदि अब उसका और मोह किया गया तो फिर बन्धुवर वैशालिकों के मुख पर कलंक लगा हुआ ही समझो।

"इसका अभिप्राय आयुष्मान् ? देखो मेरे पास अभी-अभी मगध ही से प्रधान अमात्य आर्यवर गोपाल का यह पत्र आया है और उसमें उन्होंने लिखा है कि राजा अजातशत्रु तथागत की पुण्य स्मृति में बन रहे तीस स्वर्ण स्तूप स्तूपों के दर्शन किया चाहते हैं यदि गण शासन उसकी अनुमति प्रदान कर दे तो मगध राज्य की समूची जनता उसमें अपने को अत्यन्त उपकृत हुआ मानेगी। साथ ही सम्राट की इस वैशाली यात्रा से दोनों पड़ौसी राज्यों के मध्य के सम्बन्धों में भी सुधार होगा और फिर किसी दिन यह राजगृह नगरी भी तो वज्जी संघ के गणाध्यक्ष का स्वागत कर अपने को धन्य हुआ मानेगी।

आचार्य शिष्य ने पत्र को अत्यन्त ध्यान से सुना और जो कुछ सुना उससे वह अपने ही किसी निर्णय के प्रति जैसे सशंक हो उठा। पर साथ ही उसे पत्र पर भी विश्वास नहीं हो पा रहा था परन्तु उसी के साथ उस अपने में अविश्वास का कोई स्पष्ट कारण भी नहीं दीख पड़ा। अतः वह पुनः दुविधा में पड़ गया वैसी ही दुविधा में जिससे आज प्रातः ही तो उसे जैसे मुक्ति मिली दीख पाई थी। वह निराश हो गया। फिर भी बोला—"बन्धुवर मन में न जाने कब से एक भय बना हुआ था जो आज सत्य होकर ही रहा। बन्धुवर इस प्रमाण के अभाव में ही तो मैं आज तक व्यर्थ में एक रहस्य को छिपाता रहा। आर्यवर जानते हो वह रहस्य क्या था ? अकाल देवी आम्रपाली के आगमन के दिन ही जो चार मागध तरुणों की हत्या हुई थी वह केवल संयोग मात्र नहीं वरन् योजना बद्ध थी और उसमें आचार्य वर्षकार का भी हाथ था।"

यह सुन गणाध्यक्ष स्तब्ध रह गए। आचार्य शिष्य ने जो कुछ कहा उस पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ वह सावेश बोले—'आयुष्मान् तुम यह कह क्या रहे हो ? क्या यह शासन से भेद छिपाने का प्रयास नहीं हुआ ?

आचार्य शिष्य नत मस्तक हो बोला—"बन्धुवर, इसी आरोप की तो मुझे पहले भी आशंका थी और इसी कारण प्रमाण के अभाव में मैं इस रहस्य को प्रकट करने में असमर्थ रहा। वास्तव में वह मेरी अनुभूति है उसके कारण दुविधा भी रही उसी दुविधा में मैं इतने दिनों तक एक विक्षिप्त की भाँति घूमता भी रहा घूमता रहा इस आशा से कि कदाचित् किसी दिन कोई प्रमाण मिल जाए यद्यपि वह प्रमाण मेरे पास आज भी नहीं है पर अब मैं अपनी अनुमति में और संदेह करूं मेरी यह सामर्थ्य भी नहीं रही। आज तो आपको मेरी अनुभूति पर ही विश्वास करना होगा अन्यथा कह दो बन्धुवर कि मैं वैशालिक नहीं वरन् वैशाली का कोई शत्रु हूँ।

आचार्य शिष्य के अन्तिम वाक्य को सुन गणाध्यक्ष सिंह को जैसे सहसा कुछ स्मरण हो आया आचार्य बहुलाश्व का पत्र उनके नेत्रों के सामने स्थिर हो गया परन्तु साथ ही वह सोचने लगे—'यह भी कैसी विचित्र बात है ! प्रकट में वह कुछ कहने को भी उद्यत हो रहे परन्तु इसी मध्य महाबलाधिकृत पीठिका से उठ बोले—'और तुम्हारी इस पत्र के सम्बन्ध में क्या धारणा है, बन्धुवर आचार्य शिष्य ?"

आचार्य शिष्य ने उत्तर में पहले तो कुछ सोचा, सोचा कि जब एक बार दोषारोपण हो ही चुका तो फिर मैं अपने ही में भला क्यों संदेह करूँ। पर वह कैसे अविश्वास बोला— "सम्राट् यह निश्चय ही एक प्रपंच है। मेरा निष्कर्ष है कि मगध राज अजातशत्रु इस समय यहीं वैशाली में आचार्य वर्षकार के प्रासाद में हैं।"

यह सुन सोमा ही चकित हो रहे। किन्तु मान हुआ गणाध्यक्ष सस्पर्श पूछ उठे— "और यदि नहीं हुए तो आयुष्मान्?"

"सम्राट् यह निर्णय करना आपका दायित्व है, मेरा दायित्व शंका को प्रकट करना था और वह मैंने कर दिया।"

आचार्य शिष्य के मुख पर इस बार जय निश्चय आत्मविश्वास की रेखा उभर उठी।

इधर आचार्य वर्षकार इस समय अपने निजी कक्ष में चिन्तित आसीन थे। उसी कक्ष में पीठिका पर एक व्यक्ति भी विराजमान था। सहसा उस व्यक्ति की ओर दृष्टि कर वह बोले— "सम्राट् अब एक क्षण का भी विलम्ब न केवल साम्राज्य के लिए वरन् हमारे जीवन के लिए भी घातक है। दुर्ग को भेजे गए दूत का अब तक न लौटना निश्चय ही इस बात का द्योतक है कि उसे वहाँ नजरबन्द कर लिया गया है। सम्राट् आप इस अज्ञात की सुरक्षा प्रमाण का कम करके न समझें, मगध साम्राज्य के नाम पर जो चार युवकों की बलि कराई गई थी, उसमें तो भी प्रश्न हो सकता है। इसका आभास मुझे पहुँचे ही दिन पा गया था, परन्तु यह वैशाली की न्याय व्यवस्था ही थी कि प्रमाण के अभाव में यह आपके इस विनीत सेवक का कुछ भी न कर सका। उसके हाथ तो मेरे बड़ी बनाने से रह ही गए, मेरे विरुद्ध मुँह भी बन्द रहा। पर आप अब इस समय तक सब रहस्य प्रकट हो चुके हैं, कदाचित् कोई प्रमाण भी मिल चुका है, अतः सम्राट् अब आप उठें और आकाश के पूर्व भाग में एकत्र साम्राज्य के सैनिकों का आह्वान करें। गुप्त शस्त्रागार में मैं उन्हें कभी का शस्त्र प्रदान कर चुका हूँ और वे अब युद्ध के लिए पूर्णतः सन्नद्ध हैं।"

सम्राट् सोत्साह पीठिका से उठ बोले— "तो आर्यवर फिर साम्राज्य का यह विनीत सेवक भी प्रस्तुत है। आप भी आगे बढ़ मेरा मार्ग-दर्शन करें।"

आचार्य वर्षकार का अन्तर उत्साह से हिलोर उठा। मुख भी खिल उठा और नेत्र मानो किसी चिर आकांक्षित विजय को सम्मुख देख मुस्करा उठे। वह बोले— "सम्राट् आप तो साम्राज्य के रक्षक हैं। आप ही के बाहुबल पर तो उसके विस्तार का दायित्व है। अन्यथा यह विनीत सेवक किस योग्य है जो मगध-अधिपति के मार्ग दर्शन की धृष्टता करे।"

सम्राट् नत मस्तक हो बोले— "आर्य मैं तो निमित्त मात्र हूँ। वस्तुतः मगध साम्राज्य के संस्थापक तो आप हैं। अन्यथा गंगा तट का पारकर, इधर यहाँ वैशाली तक मागध सैनिकों का आना कभी संभव हो पाता? कदापि नहीं आर्य, यह सब आप ही का नीति कौशल है जिसने असंभव को भी संभव कर दिखाया।"

आचार्य वर्षकार एक उन्मुक्त ठहाका दे हँस उठे, हँसते रहे। उनकी यह हँसी साधारण नहीं थी, वरन् जैसे विजयोन्माद की हँसी थी जिसे सुन एक बारगी वह

उसका अश्व फिर तत्क्षण ही तो त्वरित गति से उसी ओर दौड़ लिया। उसके पीछे-पीछे अनिरुद्ध भी दौड़ उठा। नागरिक भी अपने आवासों की ओर चिल्लाते हुए, आह्वान करते हुए थे— अरे भागो नगरी वालो जागो अब भी जाग उठो भागो वैशाली वालो वैशाली के साथ विश्वासघात हुआ है। मगधवीरों की सहायता से पहरों में नए उपाय से नहीं वरन् मागध सैनिकों ने नगर में प्रवेश किया है।

और इस प्राचीर पर खड़े होकर जब महाबलाधिकृत प्रचण्डदेव ने अपनी दृष्टि फैला मागध सैनिकों को देखा तो वह उनकी संख्या को देख चकित हो उठे हठात् भी। पर जब उन्होंने इस अन्धकार में कुछ नागरिकों को भी आते देखा तो उनके हृदय में उत्साह का संचार हो उठा। पास खड़े ही गणाध्यक्ष सिंह सेनापति भी खड़े थे। उनकी ओर दृष्टि कर वह बोले—"बन्धुवर यदि हम किसी प्रकार भी इस रात्रि इनके साथ संघर्ष करते रहें तो प्रातः हमारी विजय निश्चित है। आप स्वयं गणध्वज की रक्षा करें और मैं ।

इसी समय देवी रोहिणी पीछे से कह उठी— बन्धुवर गणध्वज की रक्षा मैं करूँगी और तुम दोनों ही सभी अंगरक्षकों को साथ ले इनकी अग्रिम पंक्ति पर टूट पड़ो। अग्रिम पंक्ति में ही तो वह विश्वासघाती आमात्य वर्षकार अजातशत्रु के साथ उपस्थित है। यदि एक बार उसको समाप्त कर दिया तो फिर उनके सैनिकों का साहस भी जाता रहेगा।

किन्तु वर्षकार ने उसे इतनी बातों को इतनी दूर से भी भाँप लिया था। वह सैनिकों का आह्वान कर कह उठा— अरे सैनिको देखते क्या हो इन कपाटों को तोड़ भीतर प्रविष्ट हो रहो।" और फिर जितनी शक्ति से उसने सैनिकों को उच्च स्वर में ललकारते हुए वह कह उठा—"अरे सैनिको क्या देख नहीं रहे कि तुम्हारे पीछे कौन बढ़े आ रहे हैं। अरे मूर्खो वे वैशालिक हैं—वैशालिक।"

उधर साथ में वर्षकार का कण्ठ स्वर कानों से टकराते ही महाबलाधिकृत प्रचण्ड देव का क्षत्रिय रक्त भी खौल उठा। मेघ गर्जन सदृश कड़कते स्वर में वह बोले— विश्वासघाती वर्षकार आज तेरा यह विश्वासघात न केवल तेरी ही वरन् तेरे सम्राट की भी जान लेकर रहेगा और इन मागध सैनिकों का यहाँ वैशाली के राजपथों पर ही रक्त बहता दिखाई देगा।

वर्षकार एक उच्च ठहाका दे हँस उठा। फिर बोला— 'अरे ओ प्रचण्ड देव क्या मैं विश्वासघाती हूँ? विश्वासघात तो किसी दिन तूने किया था कि गंगातट पर मागध वाहिनियों को बुला लिया और फिर उन पर इधर वैशाली से प्रहार करा दिया। प्रचण्ड आज यह उसी का प्रतिशोध है।

और फिर उसी के साथ एक अन्य कण्ठ स्वर वहाँ गूँज उठा— और प्रतिशोध है उस अपमान का भी जो एक दिन वैशालिकों ने मेरे साथ किया था। पितृवर की मृत्यु के पश्चात् मुझे नहीं वरन् मेरे अनुज को अभिषिक्त कर मुझे अपमानित किया था और फलस्वरूप मुझे विवशता से राजगृह की ओर पलायन करना पड़ा था। पहचान लो वैशालिको मैं वही गोपाल हूँ मगध साम्राज्य का एक प्रमुख अमात्य गोपाल और इस समय वैशाली में साम्राज्य का एक राज्यपाल।" फिर वह भी एक उच्च ठहाका दे हँस

उठा हँसता रहा। उसकी कर्कश हँसी समूचे वायुमण्डल पर गूँज उठी। इसी मध्य दुर्ग के द्वार कपाट भी मानों भयंकर आर्तनाद कर टूट उठे उधर नागरिकों से जूझते सैनिक उच्च कण्ठ स्वर में मगध साम्राज्य का जय-जयकार करते हुए आगे बढ़ निकले खड्ग से खड्ग टकराने लगे और महाबलाधिकृत चण्डभद्र तथा गणाध्यक्ष सिंह भी अपने अपने खड्ग का चुम्बन ले आक्रमणकारी सैनिकों की प्रथम पंक्ति पर टूट पड़े अंग रक्षक अन्य सैनिकों की शेष पंक्ति से जूझ उठे तथा सिंह सीधे अजातशत्रु की ओर बढ़ लिया चण्डभद्र भी सैनिकों में जूझता हुआ वर्षकार की ओर बढ़ता रहा दूर ही से बोला— अरे ओ विश्वासघाती वर्षकार यह युद्ध है इसमें सम्मुख उठा अब कायर की भाँति क्यों खड़ा है ?"

वर्षकार हँस उच्च स्वर में बोला—"अरे ओ अबोध बालक अपने कान खोल कर सुन मेरा शस्त्र तो कभी का चल चुका अब तू बता मैं भी तो देखूँ तेरा यह कैसा शस्त्र कौशल है।"

चण्डभद्र उससे भी अधिक उच्च स्वर में बोला—"मैं निहत्थों पर शस्त्र नहीं चलाता और जो शस्त्र तूने चलाया था वह कभी का विफल हो चुका ऐसा नहीं वैशालिक जाग उठे हैं।"

वर्षकार फिर एक उच्च ठहाका ले हँस पड़ा हँसता रहा कि उसकी इस हँसी पर युद्ध रत सैनिकों की पिछली पंक्ति की ओर से आहतों का करुण क्रन्दन आ उठा और फिर उसी के मध्य आचार्य शिष्य का उन्मत्त कण्ठ स्वर गूँज उठा और गूँज उठा फिर उस पर अनिरुद्ध के एकाकी कण्ठ से निकला गणराज्य का जय-जयकार केवल कण्ठ स्वर ही गूँज कर नहीं रह गया वरन् अनवरत रूप में खड्ग से खड्ग भी टकरा रहे थे। केवल खड्ग ही परस्पर टकरा कर नहीं रह गए, उनके टकराने स्वर पर मृदंग की थाप भी गूँज उठी और फिर मांस पेशियाँ भी बज उठीं पद ध्वनि भी हो उठी देवी शिप्रा के आदेश आज कदाचित ताण्डव नृत्य की धुन बजा रहे थे और स्वयं देवी शिप्रा ? वह तो मानो फिर जैसे शिव की भावना में अवतरित हुई थी नृत्य मंच पर नहीं स्वयं रण प्रांगण में आचार्य शिष्य न जाने बजाते बजाते एक बार नक्कारों में उलझी और देखा आज वह सचमुच अपना रूप भूल गई रूप में उस दिन से भी जिस दिन कि उसने सर्वप्रथम मधुपर्व के अवसर पर देवी आम्रपाली के साथ उसे नृत्य मंच पर अवतरित होते देखा था अधिक सुन्दर दीख रही थी और फिर वह अकेली ही नहीं थी उसके साथ मंजरिका भी आई थी और आई थी सामन्त पुत्री चारुस्मिता भी और स्वयं महामाया ? उसके हाथ में इस समय वही खड्ग था जो आज प्रातः ही तो सुरक्षा प्रधान ने उसे प्रदान किया था उसकी गति तीव्र थी उसका कण्ठ स्वर भी मगध सैनिकों पर होते प्रत्येक प्रहार के साथ-साथ यह कह रही थी— सुमित्रा इन्हें क्षमा न करो इनका संहार ही शोभा देता है देखा नहीं इनमें से ही किसी एक आततायी ने उस रात्रि हमें अकेला समझ तेरा कैसा अपमान किया था।" और आचार्य शिष्य इन सभी के इस रण कौशल को देख भी रहा था तथा साथ ही वे जो कुछ कह रही थीं वह भी सुन रहा था। उत्साहित हो उच्च कण्ठ स्वर में वह पुकार उठा—"बढ़ते चलो घबराओ नहीं हम सब उठो और बढ़े जा

रहे हैं विजय हमारी निश्चित है और अब मगध पर हमारा ही राज्य होगा पर साम्राज्य का नहीं गणराज्य के उच्च आदर्श का जिसमें इन विश्वासघातियों का सर्वनाश हो रहेगा।"

किन्तु अंशुधर सिंह ने यह सब कुछ जैसे अनसुना कर दिया मानों उसके तथा राजा अजातशत्रु के मध्य पर्याप्त समय से चल रहे द्वन्द्व-युद्ध के ये निर्णायक क्षण थे। मगध देव भी इसी प्रकार जूझ रहा था और जूझ रहे थे दुर्ग के कतिपय अंग रक्षक मागधों की एक पूरी पंक्ति से ऐसी पंक्ति से जो सम्राट की रक्षा के लिए कृत-संकल्प हो कर आई थी मध्य पंक्तियों वाले सैनिकों का आगे पीछे दाएं-बाएं चारों ओर ही प्रहारों का क्रम गतिमान था। और इन अनवरत वह्नि प्रहारों के मध्य आपाय वप कार सोच रहा था—'कदाचित फिर यह कोई भूल हुई है, वैशाली के ये नागरिक तो आते ही जा रहे हैं तथा इधर जो हैं उनमें भी उत्साह यथापूर्व है केवल यथापूर्व ही नहीं वरन् वह आते नागरिकों को देख और बढ़ता ही जा रहा है। यह तो प्रत्येक बीतता क्षण हो ।"

वह निराश हो उठा निराश दृष्टि से उसने गोपाल की ओर देखा किन्तु गोपाल का इस समय किसी ओर भी देखना असम्भव था वर्षकार ने देखा कि उसके शरीर से केवल स्वेद-कण ही नहीं वरन् रक्त भी प्रवाहित है और वह इस समय मगध देव से जैसे हत पराक्रम हुआ केवल प्रतिरक्षात्मक युद्ध कर रहा है। यह देख वह घबरा उठा। उसने फिर कातर दृष्टि से सम्राट् की ओर देखा वह भी जैसे थके से प्रतीत हुए, केवल थके हुए ही नहीं वरन् स्पष्ट ही सिंह के प्रहारों को रोक रहे थे। अब सम्राट् और प्रतिरक्षात्मक युद्ध करें? फिर तो पराजय निश्चित है अपना सम्हालता हुआ वर्षकार आवेग मध्य पंक्ति में घुस पड़ा और फिर उसी तत्परता से कतिपय कातरप सैनिकों को साथ ले वहीं वापिस लौट आया सैनिक जैसे किसी अवसर की घात में खड़े हो गए।

और वर्षकार सहसा ऊर्ध्वबाहु हो उत्साहित कण्ठ स्वर में घोषणा कर उठा—"वीरो सिंह मारा गया अब केवल शृगाल ही बचे हैं और देखो आचार्य शिष्य जीवित ही पकड़ा जाए।"

उधर आचार्य शिष्य भी प्रत्युत्तर में जैसे आह्वान कर उठा—"वैशाली के वीरो अंशुधर सिंह मारे गए, तो भी गणराज्य अजर अमर है वह अक्षुण्ण है उसकी कीर्ति-अमर है सूर्य की भांति उसके आलोक की भांति आज राहु ने उसकी ओर अपना हाथ बढ़ाया है बढ़ाया है तो क्या हुआ वह अभी नष्ट विनिष्ट हो रहेगा। और फिर वही आलोक हो रहेगा वह आलोक जिसमें अन्धकार स्वतः नष्ट हो जाता है।"

परन्तु सिंह अभी भी सम्राट से जूझ रहा था हाँ वर्षकार की घोषणा को सुन मगध देव ने मेघ कोरों से ऊपर की ओर अवश्य देखा उसका देखना था कि कई सैनिक एक साथ ही उस पर टूट पड़े, यह देख गणाध्यक्ष का जैसे श्वास फूल उठा एक बार उसने अपनी दृष्टि उठा मगध देव की ओर देखने का भी प्रयास किया कि सम्राट् का खड्ग उसकी ग्रीवा पर आ पड़ा।

गण का प्रतीक गया!

परन्तु फिर भी आचार्य शिष्य नागरिकों को अपने साथ मे मगध सैनिकों की पिछली पंक्ति से जूझता रहा देवी शिल्पा का भी खड्ग अपने पूरे वेग से चल रहा था, और वहीं बचा देवी महामाया के खड्ग की भी मंजरिका के इस रणकौशल को देख वह गर्व का अनुभव कर उठा परन्तु सहसा उसे अनिरुद्ध का स्मरण हो आया पर्याप्त समय से उसका स्वर सुनाई नहीं दिया था अत उसने चारों ओर दृष्टि फैलाकर देखा वह कहीं भी नहीं दीख रहा था तो क्या ?

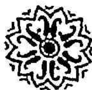
उसका प्रश्न जैसे शेष रह गया ।

सहसा कुछ मगध सैनिकों ने देवी महामाया को घेर लिया फिर भी वह उन से जूझती रही परन्तु कब तक जूझती रहती ? देवी शिल्पा उसकी सहायतार्थ दौड़ी तो वह भी घिर उठी । इधर प्रथम पंक्ति के सैनिक भी अपना कार्य समाप्त हुआ समझ उधर ही की ओर अपने अन्य सैनिकों की सहायतार्थ दौड़ लिए, केवल कुछ सैनिक शेष रहे अंगरक्षकों से जूझते रह गए । और कुछ सैनिकों को वर्षकार ने रोक लिया उनसे वह मृत सिंह और मकरध्वज के शवों को उठवा उसी ओर हो लिया जिधर अभी भी युद्ध अविराम था । किन्तु फिर भी आचार्य शिष्य हताश नहीं हुआ प्रतिशोध की अबला जैसे उसे पुलकित मे चमत्कार उठी वह दृढ़-संकल्प हो उठा युद्ध करता रहा कि इसी मध्य महामाया का आर्तनाद उसके कानों से आ टकराया तत्क्षण उसने उधर की ओर देखा ही था कि मगध सैनिकों ने तत्परता से उसकी ओर बढ उसके खड्ग के मध्य भाग पर तीव्र प्रहार किया ।

खड्ग विखंडित हो भूमि पर जा गिरा ।

फिर भी वह खंडित खड्ग की सहायता से ही जूझता रहा कि सहसा एक मोटी रज्जु मंडराती-सी उसके शरीर से आ लिपटी ।

मानो रात्रि के अन्धकार में कोई विशाल अजगर सहसा उसकी काया से लिपट उठा ।





उपसंहार

क्या शेष रहा और क्या अशेष हुआ ?

यह एक प्रश्न है जो अगली प्रात उठे वैशालिकों ने अवश्य ही अपने से पूछा होगा और वास्तव में उन्होंने यह पूछा भी।

उधर सदानीरा की उद्दंड लहरें भी इस समय तक कुछ शान्त हो चुकी थीं अतः नव-प्रभात में नागरिकों ने भी मानो चैन की-सी सांस ली। परन्तु, साथ ही उन्हें ध्यान हो आया आभ्यन्तर वैशालिक क्या अब हृदय के इतने कठोर हो गए कि मगध शासन की ओर से सहायता का आह्वान करता हुआ एक नहीं वरन् तीन-तीन स्थानों से नगारा बज उठा और फिर भी उन्होंने इधर की ओर मुख तक नहीं किया मानो कोई बात नहीं उन्हें तो हमारी सुधि नहीं थी अतः अब हम स्वयं ही जा उन्हें अपनी कृतज्ञता का सम्वाद दे आते हैं। परन्तु मध्याह्न पूर्व में जब वे नगर की ओर आए तो इतने दिन चढ़े तक भी मुख्य-द्वार के कपाट बन्द रहे देख वे स्तब्ध रह गए, उनमें से कुछ चकित भी हुए और कुछ केवल कौतूहल का भाव प्रकट कर रह गए कुछ ने समझा—'यह तो वैशालिकों का प्रमाद है। पर जब उन्होंने अपनी दृष्टि ऊपर उठा देखा तो वे बस अपना माथा ठोकते ही रह गए वैशाली की अभेद्य प्राचीर के मुख्य द्वार पर कोई वैदेशिक ध्वज लहरा रहा था। और सम्भवतः नगर में इस समय कोई घोषणा भी की जा रही थी। बाहिर वैशालिकों ने कपाटों से कान लगा कुछ सुना तो वे स्तब्ध ही रह गए। उद्घोषक विजयोन्मत्त कण्ठ स्वर में घोषणा कर रहा था— ऐ वैशाली के प्रजाजनो आज मध्याह्नोपरान्त में वैशाली के मुख्य-राजपथों पर से मगध साम्राज्य के यशस्वी सम्राट् विदेहीपुत्र अजातशत्रु की विजय यात्रा निकलेगी और फिर दुर्ग के मुख्य प्रकोष्ठ में एक राजसभा होगी राजसभा में साम्राज्य-निष्ठ वैशालिकों को पुरस्कार प्रदान किया जाएगा तथा बन्दियों को ।"

बाहिर वैशालिकों ने फिर पीछे आगे की बात ही नहीं सुनी उन्होंने तो फिर भी कुछ सुनी परन्तु जो वैशालिक इस समय मुख्य-नगर के भव्य प्रासादों उच्च अट्टालिकाओं और साधारण आवासों में थे उन्होंने तो इतना भी सुनने का प्रयत्न नहीं किया, यदि सुना तो अब राजपथों पर एवं वीथियों में पहरा देते राज पुरुषों ने और वास्तव में उन्हीं को इस विजय यात्रा में सम्मिलित भी होना था। तो फिर ? किन्तु छोड़ो इस बात को। बस यही मान लो कि वैशाली हत-पराजित ही थी। और क्या विजित नहीं ?

प्रश्न जैसे फिर शेष रह गया। पर कदाचित् ऐसा नहीं।

और मध्याह्नोपरान्त जब वैशाली के सूने राजपथों पर से घोषित यात्रा निकली तो सम्राट् कुछ खिन्न कण्ठ स्वर में बोले— 'आर्यवर इससे तो इसे रहने ही दो।" किन्तु उनका प्रधान अमात्य वर्षकार बोला—"नहीं सम्राट् जब हमारी विजय हुई है तो फिर उस उपलक्ष्य में यह यात्रा भी निकलनी ही चाहिए, यदि राजपथ सूने हैं तो क्या हुआ नगर से बाहर कपोत तो सहस्रों हमारा स्वागत कर रहे हैं।"

और अंततः वह राजसभा भी हुई जिसमें पुरस्कार के लिए तो कोई नहीं आया पर हाँ बन्दी अवश्य उपस्थित किए गए क्योंकि यह कार्य भी साम्राज्य के सैनिक अब तो और भी सुगमता से कर सकते थे। और इस राजसभा में एक नहीं एक एक कर अनेक बन्दियों को उपस्थित किया गया और आचार्य सिम्ह ने जब बन्दी अवस्था में ही महावीर मेरिज रत्न देवी रत्न कमम गणमंबाहक मृत्युंजय प्रधान सेनावाहक कपिल उसकी पत्नी काबा और फिर उसी पंक्ति के अन्तिम छोर पर कमार कीर्तिरथ एवं जनरथ को भी देखा तो वह चकित रह गया मधरिका और देवी सिप्रा तथा देवी रोहिणी का तो उसे उस समय रात्रि में ही पता लग गया था। और जब ये सभी आ गए तो आचार्य वर्षकार ने स्वयं सिंहासन आसीन सम्राट् अजातशत्रु के सम्मुख मस्तक नत कर सविनय निवेदन किया— 'सम्राट्! ये सभी बन्दी साम्राज्य के शत्रु और घोर शत्रु हैं अब विश्वासघाती जो यह आप इन्हें साम्राज्य एवं व्यवस्था के हित में उचित दण्ड प्रदान करें।" और फिर बन्दी आचार्य सिम्ह के सम्मुख आ उसने प्रश्न किया—'क्यों अज्ञात कुल युवक यदि तू चाहता तो मुझे बन्दी बना सकता था फिर भी तूने ऐसा क्यों नहीं किया?"

किन्तु आचार्य सिम्ह इस प्रश्न के उत्तर में मौन रहा। उसे मौन रहा देख आचार्य वर्षकार दृढ़ कण्ठ स्वर में बोला—"बंदी जानता नहीं यह सम्राट् अजातशत्रु की राजसभा है और उसमें सम्राट का प्रधान अमात्य तुझ से अपनी रुचि का प्रश्न कर रहा है और उसका उत्तर न देना एक दूसरा कदाचित् पहले से भी अधिक असह्य अपराध होगा।"

किन्तु आचार्य सिम्ह इस बार भी मौन ही रहा। अतः आचार्य वर्षकार ने इस बार निश्चय ही अपने को अपमानित हुआ अनुभव किया। अपने अन्तर की खीझ को मिटाने के प्रयास स्वरूप उसने सभी सभासदों की ओर अपनी दृष्टि कर पीछे सगर्व कहा—"मान्यवर सभासदो चूंकि यह अज्ञातकुल है कदाचित् इसी से यह लज्जा का अनुभव कर रहा है।"

इसी मध्य बन्दी गणसंवाहक मृत्युंजय बोल उठे—"आचार्य वर्षकार कदाचित् आप भूल कर रहे हैं यह राजा चेटक के पुत्र हैं और यदि न भी हुए होते तो भी आपको साधारण शिष्टाचार तो कम से कम ।"

परन्तु इसी मध्य स्वयं सम्राट् कह उठे—"बन्दी मृत्युंजय अज्ञातकुल है आर्य पर यदि इसमें आपको भ्रम हुआ है तो बन्दी मृत्युंजय का भी यह केवल भ्रम ही है कि यह राजा चेटक का पुत्र है यह न तो अज्ञात कुल है और न ही क्षत्रिय पुत्र।"

"तो फिर क्या यह कोई आर्यपुत्र है सम्राट्?"

आचार्य वर्षकार के मुख पर उपहास की कुटिल-सी मुस्कान खेल उठी।

किन्तु सम्राट् अजातशत्रु पर्यंकस्थ सहज भाव में बोले—"आर्यवर यह मागधपुत्र भी नहीं है वरन् एक ब्राह्मण पुत्र ही है, स्वयं आचार्य वर्षकार का ही आर्य।"

आचार्य शिष्य ने यह सुन जैसे लज्जा अथवा आत्मग्लानि से अपना मुख नत कर लिया।

पर आचार्य वर्षकार यह सुन स्तब्ध रह गया भारी कण्ठ से पूछने लगा—इसका कोई प्रमाण सम्राट् ?

सम्राट अजातशत्रु ने क्रमशः आचार्य शिष्य और आचार्य वर्षकार की ओर किंचित मुस्कान के साथ देखते हुए कहा—'प्रमाण चाहिए आर्यवर तो लो यह पत्र, जो आचार्य बहुलाश्व ने किसी दिन सिंह सेनापति को भेजा था और अब इसी दुर्ग के एक कक्ष की मंजूषा से प्राप्त हुआ है।"

भरी राजसभा में जिसमें कि आचार्य वर्षकार ने अपने को सम्मानित किए जाने की आशा की थी सार्वजनिक रूप से हुए इस रहस्योद्घाटन पर उसने भारी अपमान का अनुभव किया। वह क्रोधित हो उठा और किसी पर नहीं वरन् स्वयं सम्राट पर, एक सभासद के हाथ से उसने खड्ग ही तो छीन लिया पर बढ़ लिया आचार्य शिष्य की ओर। सक्रोध सावेग बोला—'सम्राट् यदि यह प्रमाण सत्य है तो यह लो।"

एक क्षण में ही आचार्य शिष्य का शीश धराशायी हो रहा पर उसके नेत्र जैसे हँस रहे थे उन्हें इस प्रकार हँसते देख कर भी मंजरिका रो उठी साथ ही अन्य महिला बंदी भी पर देवी शिप्रा नहीं रोई वह सर्वथा संयत ही रही। उसके हाथ तो बंधे हुए ही थे अतः नेत्रकोरों ही से मंजरिका की ओर देख सकी और फिर नेत्रों में ही न जाने क्या कुछ कहा कि मंजरिका शान्त हो गई। साथ ही उसके मुख पर गर्व का-सा भाव छा उठा। सजल नेत्रों और सूखते ओष्ठों पर मुस्कान की लहर उठी।

उधर सम्राट् बोले—'आर्यवर यह तो आपने उचित नहीं किया आचार्य शिष्य साम्राज्य का भी उसी प्रकार निष्ठावान सेवक बन सकता था जैसे कि वह कभी गण-राज्य का रहा था।"

इस पर आचार्य वर्षकार नम्रता से नत मस्तक हो बोला—'महाराज यह आप की भूल है वह तो केवल गणराज्य का ही सेवक बन कर रह सकता था और आज जैसे मैंने गणराज्य के साथ विश्वासघात किया है कदाचित् वैसा ही वह भी किसी दिन इस मगध साम्राज्य के साथ कर बैठता "

यह कह अमात्य वर्षकार सवेग देवी शिप्रा की ओर बढ़ बोला—"दासीपुत्री! अन्य बंदियों के सम्बन्ध में अब कल निर्णय होगा अब तू अपने नृत्य-कौशल से सम्राट का मन प्रसन्न कर।

किन्तु देवी शिप्रा भी आचार्य शिष्य की ही भाँति उत्तर में मौन रही।

वर्षकार जैसे देवी शिप्रा के मनोभाव को ताड़ गया। अतः वह इस बार कुछ दृढ़ता से बोला—'अरी ओ दासी भी क्या तू यह नहीं जानती कि यह सम्राट अजातशत्रु की राजसभा है और जिसने तुम्हें आदेश दिया है वह मगध साम्राज्य का महामात्य है बता तू नृत्य करेगी या नहीं ?"

देवी शिप्रा ने उत्तर में सदा की भाँति सर्वथा अविचलित रहे कहा— आचार्य

मैंने तो सदा ही एक व्यापक समाज के सम्मुख नृत्य किया है और उसी नृत्य की मैं अभ्यस्त भी हूँ। सीमित सभा में नृत्य करना मेरे लिए एक दुविधा है।"

"परन्तु यह राजसभा है और अबोध छोकरी यह सीमित ही होती है। यदि तू सम्राट् को प्रसन्न कर सकी तो तुझे राज नर्तकी बना दिया जाएगा।"

"आचार्य मुझे इसकी कोई अभिलाषा नहीं।"

तो फिर बिना अभिलाषा के ही सम्राट् को प्रसन्न करने के लिए नृत्य कर तुझे मुक्त कर दिया जाएगा।"

"आचार्य जब मुझे मुक्त करने वाली वैशाली ही दास बन गई तो फिर सभा मैं स्वयं ही स्वतन्त्र होकर क्या करूँगी।" सहसा राज सभा बैठे वैशालिकों के उन्मुक्त कण्ठ स्वरों से गूँज उठी। सभी मुक्त स्वर में 'साधु-साधु' कह उठे। पर आचार्य वर्षकार उत्तेजित हो उठा। सावेश बोला—"फिर भी आज तुझे नृत्य करना होगा।

देवी चित्रा भी इस बार दृढ़ता से बोली—"आचार्य यह असम्भव है।"

"असम्भव है?" आचार्य वर्षकार ने आग्नेय नेत्रों से उसकी ओर देखते हुए कहा। किन्तु, देवी चित्रा ने सर्वथा अविचलित रह, पुनरपि दृढ़ कण्ठ स्वर में ही कहा—"हाँ आचार्य असम्भव ही है। बंदी बना लेने से केवल तन ही विवश हो सकता है पर उसके साथ मन भी दास बन जाए, यह अनिवार्य तो नहीं।

आचार्य की उत्तेजना इस बार क्षोभ में परिणत हो रही और वह उसी प्रकार सावेश आगे बढ़ लिया जिस भाँति कि कुछ समय पूर्व आचार्य शिल्प की ओर बढ़ा था रक्त रंजित खड्ग उसके हाथ में था ही। किन्तु उनके उठने से पूर्व ही सम्राट् सहसा एक उच्च ठहाका दे हँस पड़े फिर बोले—"आर्यवर जीवन में आपने कभी पराजय स्वीकार नहीं की यदि आज कर ही लेंगे तो कदाचित् जीवन का एक भारी अभाव दूर हो रहेगा।"

और आचार्य वर्षकार सम्राट् की यह बात सुन न तो पीछे हट सका और न आगे ही बढ़ पाया। मस्तक नत कर केवल इतना ही कह सका—"सम्राट्! आपकी जैसी आज्ञा।"

